शमशेर, नागार्जुन एवम् त्रिलोचन की काव्य-संवेदनाओं का तुलनात्मक अध्ययन

इलाहाबाद विश्वविद्यालय
की डी० फिल० उपाधि हेतु
प्रस्तुत शोध प्रबन्ध
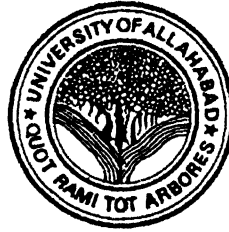
शोध निर्देशक
प्रोफेसर राजेन्द्र कुमार

शोधार्थी
बद्री दत्त मिश्र

हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

2001

UNIVERSITY OF ALLAHABAD
ALLAHABAD-211002

प्रो० राजेन्द्र कुमार
हिन्दी विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय

मै प्रमाणित करता हूँ कि श्री बद्री दत्त मिश्र ने मेरे निर्देशन मे **'शमशेर, नागार्जुन एवम् त्रिलोचन की काव्य–संवेदनाओ का तुलनात्मक अध्ययन'** शीर्षक डी० फिल० उपाधि के लिए शोधकार्य किया है। इन्होने विश्वविद्यालय की नियमावली के अनुरूप अपना कार्य पूरा किया है। मूल ग्रन्थो के साथ सहायक ग्रन्थो का यथा साध्य अध्ययन कर इन्होंने मौलिक रूप से यह शोध प्रबंध प्रस्तुत किया है।

दिनांक : 30-6-2001

(प्रो० राजेन्द्र कुमार)

हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

अनुक्रमणिका

भूमिका

शमशेर , त्रिलोचन और नागार्जुन हिन्दी के सबसे उम्रदराज कवियो के रूप मे सक्रिय रहे। यह हिन्दी का सौभाग्य है। यह किसी भी भाषा का सौभाग्य हो सकता है। यह किसी भी समाज और किसी भी संस्कृति का सौभाग्य हो सकता है। अलबत्ता हिन्दी वाले इन तीनो की विलक्षण उपस्थिति के प्रति उदासीन ही जान पड़ते है। कुछ कर्मकाण्डी किस्म के लेखों–आलेखो को यदि छोड दिया जाये तो पता लगेगा कि कविता को सवेदना और रचना के शिखरों तक ले जाने वाले इन बुजुर्ग सर्जको के साथ सतत् संवाद की कोई अनिवार्यता नही महसूस की गई है। अजीब तदर्थवाद है।

इन तीनो कवियों ने अपने समय की उत्कृष्ठ रचनाये की लेकिन इस बात का प्रमाणित करने के लिये भाष्य नही लिखे। टीकाये नही प्रस्तुत की। कुछ और करने के लिये जैसे वो निरउपाय थे । सिर्फ कविता ही लिख सकते थे ।

एक बात और इन तीनो ही कवियो ने कविता मे दार्शनिक होने से घृणा की।कविता मे सिद्धान्त नही बघारा। मुद्राये नही अख्तियार की। सरल रहें।

कई बार कठिन दिखकर भी सरल रहे। प्रयोग करके भी प्रयोगवादी होने की विपत्ति से बचे रहे। नया करके भी नयी कविता की फार्मूलाधर्मिता के जाल मे नही फसे । समाज के साथ एक जीवन्त रिश्ते के कारण उन्हे आध्यात्मिक होने की मूर्खता का वरण नही करना पडा। अज्ञेय और नरेश मेहता इसी अध्यात्मिक मायापथ के कारण निष्प्राण होते गये हैं ।

हिन्दी कविता मे बहुत तोड–फोड हुई है। यह बात शायद अलक्षित ही रही है कि शमशेर अन्यतम मूर्तिध्वंसक रहे हैं। लेकिन इस तोडने मे इतना मर्म और संवेदन रहा है कि तोडने कि प्रक्रिया मे भी शमशेर सगीत का सृजन करते रहे हैं। सारी प्रक्रिया सूफियों की याद दिलाती है, जो इस्लाम की सुन्नी कट्टरता के विरूद्ध उदारता और सहजता का प्रस्तावित करते थे। विरोध लेकिन प्रगति और सगीत के साथ।

शमशेर मे रूप के प्रति बला का खिंचाव है। इस खिंचाव के कारण ही शमशेर में निरतर एक 'उन्मन' मदहोशी रहती है। शमशेर की कविता बाख के तरानों की याद दिलाती है। शमशेर शायद इसीलिए कमतर शब्दों का इस्तेमाल करते हैं कि उनकी कविता को पढा तो जाए ही, उसे सुना भी जाय । किसी भी अन्य कवि में इतनी सारी अनुध्वनिया नही सुनाई देती , जितनी शमशेर मे ।

दिलचस्प है कि शमशेर , त्रिलोचन औरनागार्जुन तीनों ही फक्कड ही रहें है। न दुनिया से कुछ हासिल करने की तमन्ना और न कुछ खोने का विलाप इसी लिए तीनों कवियो मे एक संत भाव

दिखाई देता है। यहां तक कि शमशेर की बहुत निजी किस्म की प्रेम कविताओ ने भी अंदाजे बया गर्क होने का नहीं। गालिब की तरह शमशेर भी इसी अनुभव को सिद्ध नही मानते । यद्यपि उसके आकर्षण को झुठाते हुये नहीं।

शमशेर ने अपनी असहमति को भी गैर–सख्त तरीके से कहा। लेकिन नागार्जुन ने अपनी असहमति को राजनीतिक विपदा की हैसियत दी। उन्होने विरोध को शाप देने की शैली मे व्यक्त किया। सवेदना के साथ सदेश की शर्त को नागार्जुन कभी नही भूलते। इसी लिए उनकी कविता मे चिढाने, बिराने और अंगूठा दिखाने की नाटकीयता दिखती। नागार्जुन ' एजिट प्राप्ट' (एजिटेशन प्रोपेगेडा) के अन्यतम कवि हैं। वे कवि की सामाजिक भूमिका के प्रति सचेत कवि है।

कहा जा सकता है कि शमशेर ' सौन्दर्य और सगीत' के उद्भावक है। तो नागार्जुन असाहमति के प्रवक्ता। त्रिलोचन मे इन्द्रिय बोध और विरोध कभी मुखर नहीं रहा। कहा जा सकता है कि काव्यात्मक नेरेटिव का इस्तेमाल करके वे एक सरल भारतीय मनुष्य को नैरेट करते है। इसके लिए उन्होंने सानेट का अद्भुत इस्तेमाल किया है। त्रिलोचन कविता मे बहुत विदग्ध है। वह कविता में बतियाते है। वह कविता में बतियाते हैं। बतकी करते है। एक अभाव ग्रस्त जीवन जीने के बावजूद उनकी कविता के में विगलन, विलाप और व्यर्थ व्यथा का निरसन है। दरअसल त्रिलोचन ने सानेट लिखकर यह सिद्ध किया है कि छंदो में लिखी कविता अब भी प्रासगिक हैं और आधुनिक भाव बोध की विरोधी नही है। सच तो यह है कि नागार्जुन शमशेर और त्रिलोचन ने छंदों पर गाहे–ब–गाहे हाथ अजमाया।

त्रिलोचन न तो शमशेर की तरह चकित करते हैं न और नागार्जुन की तरह साक देते हैं । एक और बात कह दी जाय त्रिलोचन ने कमी सभा लूटने के अंदाज मे नही लिखा हैं यह एक निरावेग अदा है। न अक्षता, न श्लथ। बहुत सामान्य । बहुत साधारण । लेकिन सादे जीवन की तरह ही निर्दोष और नैतिक और अनोखी ।

यह बात बडी दिलचस्प लगेगी इन तीनों ही कवियों ने तदुरुस्त कवितायें नहीं लिखी। महाकाव्यात्मक होने की कोशिश उन्होंने नहीं की। प्राय· उन्होंने छोटे–छोटे आकारों वाली कवितायें लिखी। यह इस बात का भी प्रमाण है कि वे ये कवि काव्यात्मक महात्वाकांक्षाओं से आवेस्ट नहीं थे। कवि भारतीय कविता के अन्यतम श्रोत है। वे भारतीय सौन्दर्य –चेतना, नैतिकता और असहमति के प्राण श्रोत भी है। वे एक बेहतर सामाजिकता के आग्रह है। उन्हे जानना कविता को जानना ही नही है। जीवन को समझना भी होगा । यह भारतीय समाज का दुर्भाग्य है कि एक दो

कौडी का राजनीतिज्ञ जो कुछ कहता है वह अखबार के सुर्खियो मे आता है। जबकि यह बुजुर्ग मनीषा लगभग निर्वाषित रहे ।

प्रस्तुत शोध प्रबध हिन्दी कविता के इन्ही अन्यतम कवियो को केन्द्र मे रखकर प्रस्तुत किया गाय है। जिनकी अद्‌भुत रचनाशीलता सिर्फ हमें विस्मित करती है। इन कवियो की रचनाये जीवन के प्राय हर आयाम को अपने में समेटे है। इसके द्वारा वे एक संपूर्ण रचनात्मक सवाद की तैयारी करते है। अपने मूल मे ये जीवन समग्रता की कविताये है। इन तीनों कवियों की एक साथ उपस्थिति एक नये रचनात्मक आवेग को जन्म देता है। सम्भवत· इसी लिए फगीश्वनाथ रेणु ने कहा था–'' त्रिलोचन (जी) को देखते ही हर घर मे मन के ब्लैक बोर्ड पर एक अ–गणितिक,असाहित्यिक तथा अवैज्ञानिक प्रश्न अपने–आप लिख जाता है वह कौन सी चीज है, जिसे त्रिलोचनमे जोड देने पर वह शमशेर हो जाता है और घटा देने पर नागार्जुन ? (फणीश्वर नाथ रेणु–चुनी रेणु हुयी रचनायें–भाग–२) रेणु के द्वारा उठाया गया यह अ –गणितिक प्रश्न दिलचस्प है लेकिन इसके बहुत विश्लेषण मे न भी जाया जाय तो भी इस बात को बखूबी रेखाकित किया जा सकता है। कि वे कवि अपनी रचनात्मक स्वायत्ता के बावजूद उस पारस्परिक लेन देन की नुमादंगी करते है। जो जो महान समकालीनो के बीच घटित होती है। यदि देखा जाय तो तीनों ही कवि साम्यवाद मे अपनी गहरी प्रतियुत्ति के बावजूद अपने स्रोतो की तलाश अलग–अलग रूपो मे करते रहे। नागार्जुन ने मैथिली और सस्कृति की काव्य परम्पराओं से अपने काव्य सृजन को संयुक्त किया तो त्रिलोचन में अवधी की धरती की अनगूंजे बजी। शमशेर में हिदुस्तानी, फारसी संस्कृति का दो अरब सभव हुआ। ये तीनों कवि इस तरह अपनी मौलियता के लिए आह्वान थे। ये कवि अपनी ताकत के स्त्रोत अपने जीवानुभवों से ग्रहण करते थे। जन के प्रति अपनीप्रतिबद्धतायों को उन्होंने अपने जीवन संघर्षों से कभी स्वायत्त नही नहीं होने दिया , इसीलिए साम्यवाद इन तीनों कवियों में एक बडा रचनाशील हस्तक्षेप है। वह किसी भी तरह से उन्हें सरलीकरण और सपाटता से बचाये रखता है। शमशेर की क्लासिकी ख्वायत, नागार्जुन की ललकार, त्रिलोचन की सहज जनपदीय प्रवहमानता में यदि रेणु को कोई एकान्विति दिखी है तो अनुचित नहीं लेकिन इसके बावजूद उनके सघन मांलिघता और व्यक्तित्व की अद्वितीयता निरंतर अक्षत बनी रहती है।

यह अकारण नहीं है कि समकालीन कविता की सबसे प्रमुख धारा ने इस त्रयी को अपने सम्बोध्यके लिए सबसे अधिक प्राणवान और वैध और प्रासंगिक माना। समकालीन कविता का कोई भी समीक्षंक इस बात को आत्मसित नही कर सकता कि समकालीन कविता मे प्रतिश्रुति, जनोन्मुखता, जीवन–संपृप्ति लोकराग, जीवनाख्यान, प्रतिष्ठान विरोध, प्रतिरोघ के तत्व इन तीन कवियो से ही मूल

और विस्तृत रूप से ग्रहण किये गये है। इस तरह से हिन्दी कविता की आदर्शवादी भाववादी धारा अपने अप्रमाणिक और निरर्थक मान ली गयी। अज्ञेयवाद की लतरानिया स्वयमेव वायवीय और जीवन–विरोधी और जनाकांक्षा विरोधी सिद्ध हो गयी। कहना चाहिये कि इस कविता ने विरोध की बडी वृहत आधार भूमि का निर्माण नही था, उसके विस्तार के बडे वैचारिक और सवेदनात्मक प्रयत्न थे। यहा संवेदना संज्ञान से मिलती थी और भावभूमि परिवर्तन की उत्कट इच्छाओ से। यह विरोध की परपराओ की खोज और छानबीन और उसके सवेदनशील पुनर्वास के अपूर्व और अद्वितीय प्रयत्न थे। प्रतिरोध पक्ष का यदि एक जनोन्मुख आधार समकालीन कविता मे तलाशा गया है तो उसके लिए इस त्रयी के प्रति कृतज्ञ होने के प्रभूत आधार है।

● ● ● इन्हीं कवियो की कविताओ को सामने रखते हुये यह कोशिश की गयी है कि उनकी सवेदना के तारो को पकडा जाय। इस कम मे प्रस्तुत शोध प्रबन्ध आठ अध्यायो मे विभक्त किया गया है। प्रथम अध्याय का शीर्षक है – संवेदना · काव्य संवेदना, अर्थ और व्यापकत्वः जिसके अन्तर्गत चार खण्ड हैं। प्रथम संवेदना आशय और स्वरूप, द्वितीय रचनाशीलता के सन्दर्भ में सवेदना के आयाम, तृतीय संवेदना स्थिति या प्रकिया, चतुर्थ–अनुभव विचार और अनुभूति।

प्रथम उप शीर्षक सवेदना के आशय और स्वरूप से सम्बन्धित है जिसके अन्तर्गत संवेदना के अर्थ को स्पष्ट करते हुये इसकी व्यापकता को बताया गया है। संवेदना मूलतः आधुनिक जीवन बोध से विकसित हुआ शब्द है जिसकी व्यापकता की सामान्यतः परिधि मनोविज्ञान दर्शन शास्त्र और साहित्य शास्त्र के क्षेत्र मे है। यद्यपि मनुष्य जन्म से इस प्रत्यय से आबद्ध हो जाता है तथापि अपने अनुप्रयोग मे विशेषतः इन परिक्षेत्रों के लिए यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व हैं। मनोविज्ञान में सवेदना का प्रयोग चेतना की वह अवस्था है जो किसी एक इन्द्रिय के उत्तेजित होने पर उत्पन्न होती है और जिसका तार्किक विश्लेषण नही किया जा सकता। दर्शन शास्त्र में खासतौर पर पाश्चात्य दर्शन शास्त्र में मूलतः संवेदना को ही केन्द्र मे रखते हुये अनुभवीवादियों ने बुद्धिवादी सम्प्रदाय के विपरीत अपने सैद्धान्तिक आधारो को गढा। संवेदना साहित्य के मूलभूत आधारो में है असल में यह संवेदना ही है जो मनुष्य की रचनात्मक शक्ति को प्रेरित और उद्‌बोधित करता है और इस तरह उसे सास्कृतिक रूप से सम्पन्न बनाता है।

द्वितीय अध्याय रचनाशीलता के संदर्भ में संवेदना के आयाम शीर्षक से है। जिसे अनुभव और प्रेरणा, कविता के वैचारिक संघर्ष, वस्तु और रूप का द्वन्द्व, आत्म संघर्ष की प्रकिया, समकालीनता की

चुनौतियाँ जैसे बिन्दुओ के आधार पर विश्लेषित किया गया है। रचनाशीलता का सम्बन्ध मनुष्य की क्रियात्मकता से जुड़ा है जिसका सीधा सम्बन्ध मनुष्य की मानसिक उन्नति से है। भले ही उसका साधना पक्ष वैयक्तिकता परक हो किन्तु साध्य पक्ष का सम्बन्ध तो उस सामूहिक अवचेतन से है जिसके बल पर कोई भी शब्द सृजन का रूप गृहण कर पाता है। स्पष्ट है कि रचनात्मकता का परिप्रेक्ष्य व्यापक हो और उसकी परिधि मे समूह की चिन्तायें अनुस्युत हो।

सवेदना : स्थिति या प्रक्रिया नाम से तीसरा अध्याय व्यक्ति के रचनात्मक आग्रहो के विषय मे हैं इसके अन्तर्गत रचना प्रक्रिया के मूल अधिगम, रचना प्रक्रिया, सर्जक द्वन्द्व, सर्जन और अनुभव शीलता के आधार पर सवेदना की मूल अवस्थिति और सृजन मे उसकी सक्रिय साझेदारी को पहचानने की कोशिश की गयी।

चतुर्थ खण्ड अनुभव विचार और अनुभूति मे रचना प्रक्रिया के अन्तर्गत इनकी मौलिक स्थिति के संदर्भ मे विचार करते हुये इनकी पारस्परिकता को निर्दिष्ट किया गया है।

द्वितीय अध्याय का नाम आधुनिकता बोध यथार्थ और संवेदना का गतिशील सम्बन्ध है जिसके अन्तर्गत दो खण्ड है। प्रथम खण्ड का शीर्षक है – अनुभूति और विचार का सम्बन्ध और आधुनिक संवेदना का रूपायन । इसके अन्तर्गत सर्वप्रथम अनुभूति की विशिष्टता और रचना का द्वन्द्व के को समझने की कोशिश की गयी है। असल मे अनुभूति का विषय हमारे यहाँ रचना प्रक्रिया के मूलभूत शर्तो के साथ जुड़कर रही है और नयी कविता आन्दोलन में तो इसकी ईमानदारी को लेकर तमाम बहसें भी हुयीं। द्वितीय अध्याय के दूसरे खण्ड का नाम यथार्थ की संवेदना और संवेदना का यथार्थ है। इस खण्ड में यथार्थ बोध और उसकी सवेदना के साथ संगति एव यथार्थ के स्वरूप पर विवेचन करते हुये अभिव्यंजना और यथार्थ के अन्तः सम्बन्धो को बताया गया है। इसमें यथार्थ वाद अति यथार्थ वाद, यथार्थ और कल्पना, आत्माभिव्यंजना की शर्ते आदि बिन्दुओ के द्वारा सृजन की संवेदनात्मक स्थिति को समझने का प्रयास किया गया है। रचना का तात्पर्य है इस जीवन जगत के वास्तविकता से एक जागरूक रिस्ता कायम करना । इस रिस्ते की एक मानवीय वस्तुगत ऐतिहासिक संरचना होती है जो रचना प्रक्रिया को प्रेरित ही नही संचालित भी करती है। यहीं पर कवि की अनुभूति की प्रामणिका भी सिद्ध होती है। जो मूलत. जीवन यथार्थ के प्रतिश्रुत होता है। विज्ञान के आलोक में मनुष्य की बौद्धिकता अधिक विकसित हो गयी है इसलिए ग्रहण के स्तर पर वही रचना स्वीकार्य होगी जो रचना के स्तर पर विवेक सम्पन्न यही विवेक सम्पन्नता वस्तुतः अनुभूति की प्रामाणिकता है। जिंदगी सच्चाइयो के प्रति लेखक की आस्था का प्रतिमान जितना ऊंचा होगा उसकी रचना तत्वान्वेषण के दृष्टि से उतनी ही सार्थक होगी।

तृतीय अध्याय 'शमशेर नागार्जुन और त्रिलोचन की सामाजिक सवेदनाओ का तुलनात्मक अध्ययन' है। इसके अन्तर्गत इन कवियो के सामाजिक सवेदनाअे को विश्लेषित किया गया है। आस पास के फैले हुए अपने परिवेश और वातावरण से एक रचनाकार अपने संवेदनाओ को ग्रहीत करता है स्पष्ट है कि वह जिस समाज मे रहता है जिस बोली बानी और परिवेश के साथ उसका साक्षात्कार होता है उसका प्रभाव कवि की रचनात्मक भाव भूमि को निश्चितता प्रभावित करता है। ऐसे में उसकी रचना सवेदनाएं इनके द्वारा नियंत्रित होती हैं। शमशेर, नागार्जुन और त्रिलोचन तीनो का रचना संसार यद्यपि स्वायत्त है तथापि समकालीन समय की चुनौतियॉं, और उनसे उपजे सामाजिक दबाब इनकी कविताओ को समवेत रूप में प्रभावित करते हैं। त्रिलोचन और नागार्जुन के यहॉं जहॉं यह सामाजिक संरचना बहुत ज्यादा यह खुले रूप में आती है वहीं शमशेर के यहॉं यह अपनी तमाम सामाजिक प्रतिबद्ध के बावजूद एक दूसरे स्तर पर जो ज्यादा सूक्ष्म है प्रतिध्वनित होती है।

इन तीनों कवियो की सामाजिक सवेदनाओं को अलग–अलग प्रस्तुत करने से पहले सामाजिकता के अवधारणा को स्पष्ट किया गया है। सामाजिकता की यह अवधारण हमारे इतिहास को और हमारी परम्पराओ मे जहॉं अनुस्युत रहता है वहीं वर्तमान की ढेर सारी चुनौतियो जो व्यक्ति और समूह दोनों स्तर पर होती है, भी विद्यमान रहती है।

इन दोनों उपशीर्षकों के पश्चात् अध्याय तीन मे इन तीनों कवियो की सामाजिक सवेदनाओं की तुलना प्रस्तुत कर यह बताने का प्रयास किया गया है कि इनकी अपनी विशिष्टताए क्या है और किस स्तर तक वे एक दूसरे के पूरक हैं।

प्रबन्ध का चतुर्थ अध्याय 'शमशेर,नागार्जुन और त्रिलोचन की कविताओं का लोक धर्मी परिप्रेक्ष्य लोक का तात्पर्य अंग्रेजी शब्द 'फोक' से है जो नागर मानसिकता के विपरीत ग्रामीण परिवेश और वातावरण का प्रतिनिधित्व करता है। लेकिन लोक का तात्पर्य जन सामान्य भी इस तरह अपनी अर्थ निस्पत्तियों के चलते यह अपने आप मे व्यापक अर्थच्छवियों वाला शब्द है । लोकात्मता मूलतः मनुष्य के सहज जीवन चर्या भावबोध और उनकी वास्तविक संस्कृति का वाहक है। स्वाभाविकता इसका सहज गुण है चतुर्थ अध्याय के प्रथम खण्ड लोकात्मता मे लोक शब्द की इसी व्याख्या और मनुष्य बोध से उसके गहरे सम्बन्धो को संक्षिप्त रूप से प्रस्तुत किया गया है।

लोकात्मकता की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशिष्टता व्यक्तित्व की सहजता से जुडा हुआ है। यह सहजता एक मनुष्य का दूसर मनुष्य के साथ इस पृथ्वी के साथ उसके वातावरण व पर्यावरण के साथं भी उसके सहज और आत्मीय सम्बन्ध को बतलाता है। इसी परिप्रेक्ष्य मे शमशेर,नागार्जुन और

त्रिलोचन की कविताओं का विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है जो अपने मूल मे बेहद प्रीतिपरक कविताए हैं और जिनका इस देश दुनिया और समाज के साथ सीधा तादात के है। इनमे लोकात्मकता को लेकर सर्वाधिक विशिष्ट पहचान त्रिलोचन की रही है नागार्जुन की कविताए भी इस संदर्भ मे हमें बहुत विभोर करती हैं तथापि सूक्ष्मता के साथ जीवनगत सदर्भो को स्वय को जोडने की बलवती इच्छाओ के अधीन रहते हुए शमशेर ने लोक का एकदम अजब चेहरा दिखलाई पडता है। पत्तियों मे घिरे फूलो की सुगन्ध जैसा–सूक्ष्म महीन और बेहत तरल। इन तीनो कवियो के लोकात्मक रचाव को समझने का प्रयास प्रस्तुत अध्याय मे किया गया है।

शोध प्रबन्ध का पांचवा अध्याय 'शमशेर, नागार्जुन और त्रिलोचन की कविताओ का वैचारिक परिप्रेक्ष्य' है। विचार का सम्बन्ध दर्शन और जीवन दर्शन दोनों से होता है । दर्शन मे आकर जहॉ यह जागतिक प्रत्ययों के विश्लेषण को प्रस्तुत करता है वही जीवन दर्शन के स्तर पर यह स्वय व्यक्ति की अपनी निजी प्रतिबद्धताओं, आकाक्षाओ, इच्छाओ और इन सबसे आगे बढकर एक वैचारिक प्रणाली में विश्वास का सबब बनता है। विचारधारा व्यक्ति के अपने सोंच को दिखलाता है। विचारधारा के इसी स्वरूप पर इस अध्याय के प्रथम खण्ड मे विचार करते हुये इस अध्याय के द्वितीय खण्ड में शमशेर, नागार्जुन और त्रिलोचन के विचार धाराओं का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इन तीनो कवियो की वैचारिक प्रतिबद्धता मार्क्सवाद के प्रति रही इस रूप मे नागार्जुन के यहॉ जहॉ इस विचारधारा और इसके जनवादी स्वरूप के प्रति अगाध समर्थन और अक्खडपन तक जाकर अपनी बात को कहते हैं। वही त्रिलोचन प्रतिरोध की संयत प्रणाली के अन्तर्गत मार्क्सवादी दर्शन मे अपनी आस्था को व्यक्त करते हैं । शमशेर के यहां सारा झगडा इसी को लेकर है क्योंकि शमशेर ने अदभुत वैयक्तिक किस्न की रचनाएं जहॉ एक ओर प्रस्तुत कीं वहीं दूसरी ओर स्वय के ठोस मार्क्सवादी होने की बार बार वह घोषणा करते हैं शमशेर की कविताए भी इसका साक्ष्य प्रस्तुत करती हैं कि उनकी प्रतिबद्धताए इस विचार धारा को लेकर बहुत स्पष्ट हैं। इस पूरी प्रकिया मे लेकिन यह सिद्ध हो जाता है कि यह तीनों अपने वामपथी रूझानो मार्क्सवादी दर्शन मे विश्वास जन के प्रति अपनी प्रतिबद्धताओं के द्वारा प्रतिरोध की अदम्य लालसा इन्हे प्रतिपक्ष के कवि के रूप में निर्मित करती है।

छठवॉ अध्याय 'शमशेर, नागार्जुन और त्रिलोचन की कविताओ का वैयक्तिक परिप्रेक्ष्य के अन्तर्गत इन तीनो कवियो के वैयक्तिकता, उनके अन्तर्गतत उनके राग–बोध जीवन के प्रति उनके दृष्टिकोण, समकालीनता की चुनौतियो से टकराती उनकी दृष्टि आदि पर विचार किया गया है प्रत्येक रचनाकार एक अपना 'निजत्व' होता है। अपने सी दृष्टि के तहत वह जीवन और जगत के

साथ अपने रिश्ते जोडता है उसमें स्वय की पसंदगी न पसदगी रूचियॉ, इच्छाए, अनिच्छाए, अवधारणा इत्यादि एक साथ सयुक्त रहते हैं इन सभी के सम्मिलित प्रयासो से एक व्यक्तित्व का निर्माण होता है कविता के विश्लेषण में वैयक्तिकता का अध्ययन यहॉ इसी परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है कि इससे इन तीनों कवियो के कविताओ व इनकी रचनाशीलता से परिचित हुआ जाय वैयक्तिक स्तर पर शमशेर अत्यन्त सूक्ष्म भाव रखते हैं। शमशेर के यहॉ कविताओ की अत्यन्त सुन्दर अर्थ छवियॉ वस्तुत. उनकी इसी वैयक्ति मनोदशा के कारण उभरी हैं और कवियो का कवि शमशेर यदि उन्हें कहा गया तो वास्तव मे यह उनके सूक्ष्म मनोभावो और मनोदशाओं के कारण ही सभव हुआ। त्रिलोचन में वैयक्तिकता का यह भाव आत्मबोध के स्तर पर व्यक्त हुआ है लेकिन यह आत्मबोध आत्मप्रग्लभता से नहीं उपजा बल्कि अपने इस दुनिया मे अपने होने की करूणा से उपजा है जो दृष्टि की निर्मलता और सनाज के लिए उनके कर्तव्यों को याद दिलाने वाला है। बहुत अक्खड शैली में अपनी बात कहने वाले बाबा का रागात्मक बोध, जो उनकी वैयक्तिकता से ही नि.श्रित हुआ है, अद्भुत है। असल मे जन के प्रति रागात्मक बोध ने ही उनकी वैयक्तिकता को निर्मित किया है।

सातवॉ अध्याय 'सौन्दयत्मक, संवेदना के परिप्रेक्ष्य मे शमशेर,नागार्जुन और त्रिलोचन की काव्य संवेदनाओ का तुलनात्मक अध्ययन शीर्षक से प्रस्तुत किया गया है।' जिसमें इन तीनो कवियो की सौन्दर्य परक अवधारणाओ को स्पष्ट करते हुये जीवन और जगत के इनके दृष्टिकोण को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। अपने सौन्दर्यात्मक चित्रण के द्वारा शमशेर जहॉ कविता मे एक दृश्य की उपास्थना करते हैं वही नागार्जुन की सौन्दर्य चेतना जीवन से लेकर प्रकृति तक फैली दिखाई पडती है। त्रिलोचन के यहॉ सौन्दर्य के बडे ही छोटे–छोटे दृश्य आते हैं जो जीवन के प्रति उनके रागबोध और स्वयं उनकी सौन्दर्यात्मक अवधारणा के भी प्रतीक हैं । शमशेर ने कविता मे सौन्दर्य की अवधारणा को ही बदल दिया। उनकी कविता दृश्यों का वर्णन नहीं स्वयं चित्रात्मक अनुभूतियो मे वर्णित हो जाने वाले प्रत्यय है। उनके यहॉ शब्दों के ढेर सारे अनुगूंजे हैं जिसमें जीवन के राग समुद्र की लहरें पहाड. के चित्र और कोमल अंखुओं तक की उपस्थिति है प्रकृति दृश्यों को जितनी सघनता से चित्रित किया उतनी ही तन्मयता से उन्होंने नानवीय सौन्दर्य को भी रचा । रचाव यह कलात्मकता उनके व्यक्ति चित्रों मे स्त्री के सौन्दर्य मे बहुत खुलकर लेकिन बहुत संश्लिष्ट तरीके से प्रस्तुत किया है। त्रिलोचन के यहॉ भी सौन्दर्य के बडे –बडे नये चित्र मिलते हैं लेकिन नागार्जुन के प्रकृति चित्रो की तरह वह धारासार नहीं है। त्रिलोचन के चित्र जीवन की गतिविधियों से जुडे हुये चित्र हैं। ऐसे में मनुष्य के बहुत छोटे–छोटे सुख उनके सौन्दर्यान्कन का कारण बनते हैं। नागार्जुन

सौन्दर्य को भर–भर कर आख पीने वाले हैं सच तो यह है कि कालिदास से सप्रभावित नागार्जुन ने बादलो के जितने चित्र प्रस्तुत किये हैं उतने शायद ही हिन्दी के किसी कवि ने प्रस्तुत किया हो। नागार्जुन के यहाँ प्रेयेसी के नही पत्नी की यादें और इसीलिए वे बार–बार बहुत सघनता से जीवन के हर मोड पर सौन्दर्य के हर अकन के साथ याद करते हैं। त्रिलोचन की कवितायें नागार्जुन के सौन्दयात्मक विधान का एक प्रकार के प्रतिपूरक हैं। जहाँ प्रकृति से लेकर किसान मजदूर तक उनके भाव बोध की परिधि में उपस्थित हैं।

प्रबन्ध का ऑठवॉ अध्याय काव्य भाषा के सौन्दर्य से जुडा हुआ है। भाषा असल में रचनाशीलता का वह पहला सोपान है जो अनुभूति को भाव को मूर्तरूप प्रदान करता है। भाषा की उपस्थिति मनुष्य की उपस्थिति है। मनुष्य इसी लिए है क्योंकि भाषा है। वह भाषा जिसके द्वारा हम दूसरे से जुडते हैं दूसरों की सवेदनाओं और अनुभूतियों में सरीख होते हैं और अन्ततः मनुष्य बनते हैं। भाषा मे जब अर्थ केअद्वैतकी स्थिति उत्पन्न होती है तब अपने रचनाशील अवस्थिति मे यह काव्य भाषा का रूप धारण करती है स्पष्ट है वहाँ भाषा का बोध रचना शील, सभावनापरक और सश्लिष्ट होती है। काव्य भाषा जन भाषा नहीं हो सकती लेकिन वह जन की भाषाओं को मुखरित करने वाली भाषा जरूर होती है। काव्य भाषा के और खास तौर पर शमशेर और नागार्जुन और त्रिलोचन की भाषा के सन्दर्भ में प्रस्तुत किया गया है। इस सन्दर्भ में जहाँ शमशेर की काव्य भाषा है अर्थ के अद्वैति स्थिति का परिचायक हैं वही नागार्जुन की पक्षधरता उन्हें अपनी भंगिमा के अनुरूप भाषा और शब्द तलाशाने की अद्भुत ऊर्जा प्रदान करता है। त्रिलोचन के यहाँ तथ्य की शांत चित्तता है उसी प्रकार उनकी भाषा में भी अनायास नहीं कि वे सॉनेटो का इस्तेमाल करते हैं जिसकी मूल प्रकृति ही परिधि 'परकता' है लेकिन यह शाति चित्तता कविता की ऊर्जा का स्खलन न होकर काव्य ऊर्जा का दोहन है।

शमशेर नागार्जुन और त्रिलोचन समकालीन कविता के सर्वाधिक विशिष्ट कवि हैं इन कविताए जीवन में आस्था की कविताएं हैं इनसे गुजरना जीवन से गुजरना है इनके साथ रहना अपने बचपन के साथी के साथ रहना है लेकिन इन कवियों की कविताओं को समझने का दावा मुझ जैसा अल्पज्ञ नहीं कर सकता तथापि मैंने इस विषय पर कार्य करने का दुस्साहस किया। इस कार्य मे मैं अपने तमाम शुभ चिन्तको, सुहृदो का आभारी हूँ जिनकी प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष की गयी सहायता के द्वारा मैं यह कार्य पूर्ण कर सका।

मै अपने शोध निर्देशक प्रो० राजेन्द्र कुमार का आभारी हूँ जिन्होने समय–समय पर मुझे निर्देशित किया। श्रद्धेय गुरुवर्य की अनुकम्पा मेरे ऊपर सदा बनी रही। विषय चयन से लेकर प्रस्तुतीकरण तक वे मुझे शिष्यवत् स्नेह देते रहे। मै हिन्दी–विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के गुरूजनो का भी आभारी हूँ जिनसे मैने हिदी सीखी। इस दृष्टि से मै प्रो० मालती तिवारी (अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, इ० वि०), प्रो० सत्य प्रकाश मिश्र (हिन्दी विभाग, इ० वि०) का विशेष आभारी हूँ। डा० किशोरी लाल (सेवा निवृत्त प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, इ०वि०) का नाम न लेकर मैं ऋषि ऋण की अवहेलना नहीं करना चाहता। मै अपने मित्र डा० शैलेन्द्र त्रिपाठी (प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, विश्व भारती) एव श्री दिनेश कुमार राय (शोध छात्र, हिन्दी विभाग, इ० वि०) का भी आभारी हूँ जिन्होने मुझे लगातार प्रोत्साहित कर बमित्र धर्म का निर्वाह किया। डा० शुचिता त्रिपाठी (प्राध्यापक, राजनीति विभाग, एम० डी० पी० जी० कॉलेज, प्रतापगढ) का भी मै आभारी हूँ जिनकी प्रेरणा से शोध–सम्बन्धी विषयेतर कठिनाईयो को दूर कर सका।

अपने पिता के स्नेहिल आशीर्वाद को लिपिबद्ध करने मे मै अपने को असमर्थ पा रहा हूँ। वे मेरे जीवन के केन्द्र मे है, और मैं वह परिधि हूँ जिसकी दृष्टि केन्द्र पर रहती है। उनके आत्मबल ने मुझे सदा प्रेरित किया। मैं अपनी मॉ के प्रति श्रद्धावनत् हूँ। मेरी मॉ मेरी अक्षर गुरु भी रही है और उनके ऑचल की छॉव तले मैने सर्वदा अपने को अजेय महसूस किया। मै अपना यह शोध–प्रबन्ध अपने पिता और मॉ को समर्पित कर रहा हूँ। अपने अग्रज श्री राधाकृष्ण मिश्र एव श्री देवी प्रसाद मिश्र का प्रोत्साहन मुझे सदा मिलता रहा। इस कार्य के प्रति उनकी उत्सुकता मेरे लिये प्रेरक सिद्ध हुई। समकालीन कविता के सशक्त हस्ताक्षर देवी प्रसाद मिश्र की सर्जनात्मकता का मै कायल रहा हूँ। मेरी जीवन–सगिनी स्मिता ने अपनी तमाम व्यस्तताओ के बावजूद भी मुझे गृहकार्य से मुक्त रखा। उनके इस सहयोग से मैं अपने लक्ष्य पर ध्यान केन्द्रित कर सका। अपनी पुत्री अनुष्ठा एव पुत्र पुलक की बालसुलभ चंचलताओ ने मुझे सर्वदा प्रफुल्लित किया। मैं परिवार के अन्य सदस्यो का भी विविध कारणों से ऋणी हूँ।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, पुस्कालय, इ० वि० वि० साहित्य अकादमी, दिल्ली और पुस्तकालय फिरोज गॉधी कॉलेज, रायबरेली के अधिकारियों और कर्मचारियो को भी धन्यवाद देना चाहूँगा, जिनकी उत्तम व्यवस्था के चलते मुझे शोध–सामग्री का अकाल नही झेलना पडा। इन सबके बावजूद शक्ति बाजपेयी, जितेन्द्र सिंह तथा केदार यदि सहयोग न करते तो यह शोध–ग्रन्थ इस रूप में सामने न आ पाता।

इस शोध प्रबन्ध को सामने लाने मे रंजीत मोहन जी ने जिस प्रकार से अपना तकनीकी सहयोग दिया उसका मैं हृदय से आभारी हूँ। इलाहाबाद मे विद्या सडको पर भी मिलती है और मैं उस समय और परिवेश का भी आभारी हूँ जिस क्षण यह विद्या मुझमें समाहित होती रही।

३० जून, २००१

बद्री दत्त मिश्र
प्रवक्ता, हिन्दी विभाग
फीरोज गॉधी कॉलेज
रायबरेली (उ० प्र०)

संवेदना : आशय और स्वरूप

'सवेदना' शब्द की व्युत्पत्ति 'विद' धातु मे 'यु' प्रत्यय जोडने से 'यु' के स्थान पर 'अनु' आदेश के होने व 'इ' को गुण करने से 'वेदन' शब्द के कारण हुई है। तत्पश्चात स्त्रीलिग मे 'टापू' प्रत्यय जुडने पर वेदना शब्द बना। 'वेदना' शब्द के पूर्व सम् उपसर्ग जोडने से सम्वेदना शब्द बना है। 'वेदना' का सामान्य अर्थ है– कष्ट, दुख या पीडा। 'सम उपसर्ग के प्रयोग से वेदना शब्द मे अर्थ वैशिष्ट्य उत्पन्न होकर सवेदना का अर्थ सहानुभूति हो जाता है। –१

सवेदना शब्द प्रयोग और सदर्भ के अनुरूप विभिन्न अर्थो का वाचक हैं। अंग्रेजी मे सवेदनाके लिए सेन्सेशन सेम्पथी, ससेशनलिज्म, इमोटिव मीनिंग, एम्पेथी इत्यादि शब्द प्रयुक्त होते है जो प्रसगानुसार साहित्यिक, मनोवैज्ञानिक व दार्शनिक तथ्यो को प्रकट करने के लिए होते हैं। अंग्रेजी के बरक्स हिन्दी में सवेदना शब्द ही है जो अपने आप मे बेहद व्यापक व तमाम अर्थ व्याप्तियों के लिए प्रयुक्त होता है। वस्तुत संवेदना शब्द का यह अर्थ व्याकत्व हीउसे बेहद महत्वपूर्ण और इसी क्रम में बेहद सूक्ष्म भी बना देता है जहां अनेक अर्थ सम्भावनाये सशिलष्ट स्तर पर प्रयुक्त होती है।

मानव जीवन का विकास विकसित हांते संवेदना का ही चढाव होता है। किसी चीज को देखना, वास्तव मे देख कर तुरंतभूल जाना नहीं है अपितु यह मस्तिष्क को सक्रिय बनाना होता हैं कारण यह है कि हर चीज वह चाहे भग्न जगत् से सम्बद्ध हो या कि भौतिक चीजो से, मनुष्य को सवेदित अवश्य करती है। संवेदना का यह ग्रहण मनुष्य को इसी लिए पग–पग पर करना पडता है।

संवेदना शब्द आधुनिक जीवन बोध से विकसित हुआ शब्दहै। ऐसा नहीं है कि मध्यकालीन या प्राचीन साहित्य मे संवदेना का विकास नहीं मिलता है। परन्तु आधुनिक काल मेंपहली बार संवेदना एक विशिष्ट अर्थ प्रदान करके इसको भी एक मूल्य के रूप मेंजाना गया। यह जीवन का बोध कराने वाला ऐसा शब्द है जहां तमाम अनुभव विचार अनुभूति, दर्शन, तर्क व जीवन को समझने की समझ हमें एक साथ देखने के मिलती है।

सामान्यत. शब्द का प्रयोग मनोविज्ञान, दर्शन शास्त्र व साहित्य शास्त्र के अंतर्गत हुआ है। इसीलिए इस शब्द की मनोवैज्ञानिक, दार्शनिक व साहित्य शास्त्र के सन्दर्भों मे विभिन्न व्याख्याये भी

१– मंजुला पुरोहित – नयी कविता सेवेदना और शिल्प अध्याय २ पृ०–१८

उपलब्ध होती हैं मनोविज्ञान कोश के अनुसार संवेदना चेतना की वह अवस्था है जो किसी एक इन्द्रिय के उत्तेजित होने पर उत्पन्न होती है और जिसका तात्विक विश्लेषण नहीं किया जा सकता है। अन्य मनोविज्ञान शब्द कोश के अनुसार "–१

इन्द्रिय ज्ञान का वह अन्तिम तथा अपरिवर्तनीय अश जो उत्तेजना पर आश्रित होते हुए भी इन्द्रिय संग्राहको को प्रभावित करता है। जो वास्तव में अमूर्तिकरण है। सामान्यत· शीरर विज्ञानव मनोभौतिकी की प्रक्रिया प्रारंभिक अनुभव के रूप में पर्णित होती है।"–२

इस प्रकार मनोविज्ञान शास्त्र मे सवेदना का अर्थ ज्ञानेद्रिय से प्राप्य प्रभावों के रूप मे जाना जा सकता है। साहित्य में सवेदना शब्द का प्रयोग सामान्यत सवेगात्मक मनः स्थितियो के लिए प्रयुक्त होता है जबकि मनोविज्ञान मे इसका अर्थ बाह्य पर्यावरण से प्राप्त होने वाली उस उत्तेजना के रूप मे लिया जाता है जिसे हमारी इन्द्रिय ग्रहण करती है इन्द्रियो द्वारा ग्रहीत उत्तेजना की वृहद मस्तिष्क व्याख्या करता है जिसके कारण उत्तेजना प्रत्यसीकरण अथवा ज्ञान में बदल जाती है। मनोविज्ञान शास्त्र में साहित्य व्यवहछत संवेदनाके समानार्थक सवेग (इमोशन) और भावना (फीलिग) शब्द है। मनोविज्ञान में इन शब्दो की भी व्याख्या मिलती हैं

संवेग की परिभाषायें विभिन्न मनौवैज्ञानिको द्वारा विभिन्न प्रकार से दी जाती है। वे सब परिभाषायें इस ओर संकेत करती है कि 'संवेग' एक जटिल भावात्मक मानसिक प्रक्रिया है। जिस समय भाव की अभिव्यक्ति बाह्य एवं आंतरिक शारीरिक परिवर्तनो में हो जाती है। तो उसे हम 'संवेग' कहने लगते है। सवेग की जो परिभाषा पी.टी यंग ने दी है, वह उपयुक्त प्रतीत होती है। इनके अनुसार सवेग सम्पूर्ण व्यक्ति में तीव्र उपद्रव करने वाला हैं जिसका उद्‌गार मनोवैज्ञानिक होता है तथा जिसके फलस्वरूप व्यवहार चेतना अनुभूति अंतरावयव सबंधी क्रियाये होती है। –२ – पी टी. यंग S S mathur की पुस्तक जनरल साइकोलाजी से उद्धृत

जबकि भाव भावना या फीलिंग एक प्रारम्भिक सरल मानसिक प्रक्रिया है जो प्राणी को सुख की अनुभूति कराती है। एक प्रारम्भिक सरल मानसिक प्रक्रिया होने के कारण इसका विश्लेषण सम्भव नहीं है फिर भी मोटे तौर पर हम इसे निम्नांकित आधारों पर जान सकते है–

---

१ – Philips Lawrence Harriman - The New Dictionary of Pshycology Page 303 The State of Awareness which Results when sense organ is stimulated and which cannot be analyged into any ilements.

२– जेम्स ड्रान डिक्शनरी आफ साइकालाजी पृ०–२६४

१– 'भाव' चचल एव क्षणिक होते हैं। एक भाव बहुत शीघ्र समाप्त हो जाता है फिर दूसरे भाव का अनुभव होने लगता है सुख के बाद दुख व दुख के बाद सुख का अनुभव होने लगता हैं।

२– भाव का संबध जीव के किसी अग विशेष से नही होता है।

३– एक साथ एक से अधिक भाव अनुभव नही किये जा सकते है। अर्थात एक ही समय मे हम सुख और दुख दोनो का अनुभव नहीं कर सकते है बल्कि यह अनुभव हमें अलग–अलग होता है।

४– प्रत्येक भाव की मात्रा एक सी नहीं होती। कोई भाव बहुत प्रबल हो सकता है। कोई कम प्रबल और कोई पूर्णत निर्बल।

५– मनुष्य भाव को सदैव अपने अदर महसूस करता हैं। इस कारण हम इसको आत्मगत कहते है। परन्तु यह इसकी मुख्य विशेषता हो ऐसा नहीं है। भावो का अध्ययन केवल आतरिक निरीक्षण विधि के द्वारा ही हो सकता है।

संवेग तथा भाव में अंतर

कुछ मनावैज्ञानिनक भाव तथा संवेगमे अतर नहीं करते व दोनो को एक समान ही समझते है। परन्तु ये दृष्टिकोण गलत है। इन दोनो में अंतर है यद्यपि दोनों का सबध मन के भावात्मक पक्ष से है। सवेग तथा भाव दो भिन्न मानसिक प्रक्रियाये है।

१– भाव सरल एव प्राथमिक मानसिक प्रक्रिया है, परन्तु सवेग एक जटिल भावात्मक मानसिक प्रक्रिया है। भाव का विश्लेषण सम्भव नही जबकि संवेग का विश्लेषण इसमें सनिनहित विभिन्न उपक्रियाओं मे किया जा सकता है।

२– भाव में संवेग सम्मिलित नही होता जबकि संवेग भावयुक्त होता है।

३– भाव केवल दो प्रकार का मान्य है सुख का भाव तथा दुख भाव। परन्तु संवेग कई प्रकार का होता हैं। इसके अंतर्गत हम भय, क्रोध, प्रेम, घृणा,शोक, आश्चर्य इत्यादि को रख सकते है।

४– भाव आत्मगत (Subjective) होता हैं संवेग आत्मगत तथा वस्तुगत (Subjective & Objective) दोनो प्रकार का होता है। भाव का आत्मगत होने से हमारा तात्पर्य यह है कि भाव की अनुभूति हमे स्वयं अपने अदर होती है। हम किसी दूसरे भाव का अनुभव या उसको प्रत्यक्ष रूप से देख सकने मे असमर्थ रहते है। संवेग को आत्मगत तथा वस्तुगत दोनों कहा जाता है क्यो कि संवेग, जैसे क्रोध व्यक्ति अपने आप मे अनुभव करता है और इसके साथ ही आंतरिक एवं बाह्य व्यवहारों मे इसकी अभिव्यक्ति भी होती।

५– जब संवेग होता है तब व्यक्ति में अनेक प्रकार के आतरिक तथा बाह्य शारीरिक परिवर्तन होते हैं परन्तु जब भाव होता है तब व्यक्ति किसी भी प्रकार के शारीरिक परिवर्तन को व्यक्त नही

करता और इसी लिए भाव के समय व्यक्ति साधारण अवस्था ही रहती है जबकि संवेग के समय वह अधिकतर असामान्य अवस्था धारण कर लेता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भाव और संवेग मे अनेक अतर है। शारीरिक परिवर्तन बाह्य एव आतरिक संवेग की विशेषतायें हैं जबकि भाव मे ये परिवर्तन नहीं होते हैं,

सवेदना का भावना और अनुभूति से अंतर स्पष्ट करते हुए गैरेट ने लिखा है कि सवेदना मे भावनाओ और अनुभूतिये के इस रूप मे भिन्न है कि ये परस्पर अधिक तीव्रता से कम तीव्रता मे बदलती रहती है जबकि भावना सुखप्रद से उदासीन होती हुयी दुखप्रद में बदलती है सम्वेदनाओ के विपरीत अधिकाश भावनायें सम्पूर्ण शरीर तंत्र को प्रभावित करती है और केवल अपवाद रूप मे ही एक इन्द्रिय तक सीमित रहती है। –१

सम्वेदना और ऐंद्रिय अनुभूति के अन्तर को स्पष्ट करते हुये सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक विलियम जेम्स ने लिखा है कि ."सम्वेदना विश्लेष्णात्मक दृष्टिकोण से प्रत्यक्षीकरण से अपने विषय की आत्यंतिक सरलता के कारण मिली होती है। इसका कार्य केवल तथ्य से प्रारम्भिक परिचय मात्र है।–२

इस प्रकार संवेदना के सम्बन्ध मे मनोविज्ञान शास्त्रवेत्ताओं के विभिन्न मतों का अनुशीलन करने के पश्चात हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि मनोवैज्ञानिक दृष्टि से सम्वेदना वाह्यपर्यावरण से प्राप्त होने वाली मात्र उत्तेजना है। जिसे हमारी इन्द्रियां ग्रहण करती हैं। यह ज्ञानेन्द्रियों की प्रतिक्रया है, जो उत्तेजित होने पर मष्तिष्क और नाडीमण्डल के केन्द्र में स्नायुक धाराये भेजती हैं इस प्रकार मस्तिष्क का प्रथम प्रत्युत्तर ही संवेदना है।

हमारी संवेदनायें शनै· विकसित होती है। यह ज्ञान के आधार पर आगे बढती है। ज्ञान का आधार हमारी इन्द्रियां हैं जिसके द्वारा हम देख, समझ बूझकर, महसूस कर चीजों को अपने ज्ञान का विषय बनाते हैं। यही ज्ञान जो इन्द्रियो के माध्यम से हमें प्रत्यक्ष बोधा के आधार पर होता है। संवेदना का विषय बनता है। इस सम्पूर्ण ससार की तमाम भौतिक की वस्तुए और मन जगत के तमाम मानसिक अनुभव हमारी सवेदनाओके आधार भूत कारण हैं यानी संवेदना देखे हुए और भोगे हुए वस्तु सत्य था संचित ज्ञान होता है। जो प्रत्येक व्यक्ति की अपनी पूंजी होती है। जागतिक पदार्थो से मनुष्य का जुडाव लगातार रहता है, इसके उत्त भिन्न अनुभव भी प्राप्त होते हैं उसका ऐसी चीजों से सम्पर्क प्रत्यक्ष भी होता है और अप्रत्यक्ष भी। एत्त तमाम जुडाव व्यक्ति को बडबडाते भी हैं, उत्तेजित उद्वेलित भी करते हैं। अब यह उद्वेलन कितना हैं, यह व्यक्ति विशेष के मानस पर आधृत

1- Herry E Carret Gen. Pshycology - Page 173

2- William james - The Principle of Pshycology - Page 2

होता है। कुछ व्यक्ति बेहद संवेदनशील होते हैं तो कुछ मे सवेदन शीलता का भाव कम होता है परन्तु कोई भी व्यक्ति एकदम से निरपेक्ष नहीं रह सकता। सवेदनशीलता का अंश व्यक्ति मे कमोबेश होता जरूर है। मात्रा का फर्क वहा हो सकता है, परन्तु उसकी उपस्थिति पर कोई प्रश्न नही खडा किया जा सकता।

इस प्रकार वे सारे मनोविकार जो देश और काल की सापेक्ष में उत्पन्न होता हैं और जिनमे भौतिक जगत का प्रत्यक्ष बोध अनिवार्यत समाया रहताहै सवेदना पर 'आधृत होते हैं। वस्तुत. यथार्थ परिवेश के सम्यक ज्ञान का सूक्ष्म मानसिक अनुभूतियो मे पर्यवसान ही सवेदना है। सवेदना हमारे ज्ञान तत्व का परमाणु है।

ज्ञानतत्व को इस परमाणु का विवेचन दर्शन शास्त्र मे भी मिलताा है। क्यो कि देखे हुए का विश्लेषण दर्शन की जिम्मेदारी है अत विवेचन का आधार वह संवेदना में भी तर्काश्रित तरीके से ढूढता है। वैचारिक स्थितियां ही सघन होकर दर्शन का आधार प्राप्त करती हैं। मानवीय जीवन को प्रभावित करने वाली सभी वस्तुओ का एक मान होता है। संवेदना जो कि हमारे जीवन के साथ बहुत गहरे स्तर पर जुडी है का भी एक दार्शनिक आधार है, जो पाश्चात्य दर्शन में अनुभववाद के रूप मे सामने आया। यह ' बुद्धिवादियो ' के तर्कों को सिद्ध करने का सर्वाधिक महत्वपूर्ण बिन्दु यह था कि व्यक्ति के ज्ञान का स्त्रोत बुद्धि नहीं हो सकती अपितु यह आधार सिर्फ हमारी इन्द्रियो द्वारा प्राप्त अनुभव ही हो सकता है। स्पष्टहै कि हमारे अनुभव संवेदनाओं से सघनता से जुडे होते हैं और इस कारण अनुभव को आधार मानकर चलने वाला दार्शनिक मतवाद संवेदनवाद को बहुत महत्व देता ही था।

अनुभववाद मानता है कि मनुष्य के ज्ञानकोष मे जो कुछ है वह सब अनुभवजन्य है। जन्म के समय मनुष्य के मस्तिष्टमें किसी प्रकार का ज्ञान विद्यमान नहीं रहता। जन्म के बाद वह अनुभव द्वारा प्राप्त और विकसित होता है। इसलिए अनुभववाद हमारे मस्तिष्क की तुलना साफ कागज या कोरी पट्टी की तरह करता है जिस पर अनुभव के पूर्व कुछ भी अंकित नहीं रहता।

पाश्चात्य दर्शन में वैसे तो अनुभववाद का विशुद्ध रूप में सर्वप्रथम विवेचन लॉक ने किया है तथापि उनसे पूर्व के कुछ प्राचीन विचारकों से हम अनुभववाद का प्रारम्भिक रूप पाते हैं ।प्राचीन अनुभववादियो में प्रोटागोरस और उनके द्वारा स्थापित सोफिस्ट सम्प्रदाय था। इसके अलावा जेनो तथा उनके स्टोइक सम्प्रदाय की भी गणना की जाती हैं। ये विचारक एन्द्रिय अनुभव को ही ज्ञान का ही एक मात्र साधन मानते हैं। तथा उसके अलावा अन्य किसी साधन को उसके लिए समर्थ नहीं समझते। सवेदन जन्य ज्ञान को आधारभूत मानने के कारण सोफिस्ट सम्प्रदाय को संवेदनवाद भी

कहा जाता है। आधुनिक युग मे बेकन तथा हौबस की रचनाओ मे इन्द्रियानुभाव की ओर झुकाव मिलता है, किन्तु ये विचारक पूर्णरूप से अनुभववादी नही कहे जा सकते। खासकर बेकन ने तो कुछ ऐसे विचारो का प्रतिपादन किया है जो अनुभववाद के विरुद्ध पडते है, तथापि आगमन प्रणाली पर विशेष बल देने व सवेदन को ज्ञान प्रक्रिया का आधार मानने के कारण उन्हे अनुभववादी समझा जाता हैं लेकिन अनुभावाद का पूर्ण विकसित रूप लाथ बर्कले और ह्यूम इन तीनो अग्रेज दार्शनिको के विचारो में देखने को मिलता है मिल का दर्शन भी अनुभववाद का समर्थन करता हैं।

भारतीय दर्शन मे चार्वाको ने अनुभववादियो विचारधारा का समर्थन किय है वे इन्द्रियानुभव या प्रत्यक्षमात्र को प्रमाण मानते है। चार्वाको के अनुसार इन्द्रियो द्वारा ही विश्वसनीय ज्ञान प्राप्त हो सकता हैं। अनुभववाद के विकास का प्रथम दौर वह था जब उसमे और बुद्धिवाद में तीव्र विरोध दिखाई पड़ता है आगे चलकर यह स्पष्ट हो गया कि अनुभववादी व बुद्धिवादी प्रवृत्तियां एक दूसरे की पूरक हैं विरोधी नहीं। काट के दर्शन में इन दोनो प्रवृत्तियो मे समझौता कराने का प्रयास किया गया है। उन्नीसवी और बीसवी शताब्दियो में भौतिकी के विकास से अनुभववाद ने बल प्राप्त किया। अर्थ क्रियावाद, यथार्थवाद, भाववाद आदि अतत अनुभववाद पर ही निर्भर है।

लॉक ने सर्वप्रथम सहज प्रत्ययो का खण्डन किया। उनका कहना है कि मानव मन में किसी भी प्रकार का प्रत्यय अथवा ज्ञान सहज नहीं है। हमारे ज्ञान का प्रारम्भ और अंत इन्द्रियानुभव है। मानव–मस्तिष्क में इन्द्रियजन्य संवेदनों द्वारा क्रमश उसमें प्रत्यय या विचार आते है। इसी क्रम मे वह संवेदना को परिभाषित करते हुए कहते है– "सवेदना शरीर के किसी भाग मे उत्पन्न हुयी गति या संस्कार हैं जो बुद्धि में कुछ प्रत्यक्ष उत्पन्न करता हैं संवेदना की उत्पत्ति की प्रक्रिया कुछ इस प्रकार है। " बाह्य वस्तुओ का इन्द्रियों पर आघात होता है। इन्द्रियां इस आघात की सूचना मस्तिष्क को देती है। मस्तिष्क इस सूचना से मन को प्रभावित करता है, फलस्वरूप मन में एक विज्ञान की उत्पत्ति होती है। मन में इस प्रकार विज्ञान उत्पन्न होने की प्रक्रिया को ही सवेदना कहते है।"–१

बर्कले लॉक के अनुभववाद को लेकर चलते हैं। लांक ने सहज प्रत्ययों का खण्डन किया, खण्डन की इस प्रक्रिया को आगे बढाते हुए बर्कले ने लॉक द्वारा स्वीकृत अमूर्त प्रत्ययों और भौतिक द्रव्यों का भी खण्डन करते हुए अपने प्रसिद्ध मन्तव्य का प्रतिपादन किया कि सत्ता दृश्यता है अर्थात् अस्तित्व का अर्थ है प्रतीति का विषय होगा। बर्कले का मानना है कि हमार ज्ञान अनुभव जन्य प्रत्ययो तक सीमित है। लॉक ने ज्ञान प्राप्ति क लिए तीन बातों को आवश्यक माना था अनुभवकर्ता, विषय और प्रत्तय। बर्कले ने केवल अनुभवकर्ता तथा अनुभव द्वारा प्राप्त प्रत्ययों को ही स्वीकार किया और

१– आधुनिक दर्शन का वैज्ञानिक इतिहास – जगदीश सहाय श्रीवास्तव – पृ० ५६

बताया कि हमारा ज्ञान केवल प्रत्यय ज्ञान है और सारे बाह्य पदार्थ प्रत्ययो के अलावा और कुछ नही है। बर्कले ने जोर देकर कहा कि प्रत्यय ही साक्षात् प्रत्यक्ष के विषय हैं। प्रत्यक्ष का विषय मन मे साक्षात् उपलब्ध होता हैं, न कि किसी प्रत्यक्ष द्वारा मन मे उसका प्रतिनिधित्व होता हैं। बर्कले को इस सिद्धात को पुरोधानवाद भी कहा जाता है।

वास्तव मे सवेदनवाद का यह विकास बर्कले के यहा अपनी पूरी गति से दिखायी पडता है परन्तु इसकी चरम परिणति ह्यूम के विचारो मे ही मिलती है।

ह्यूम सवेदना को ज्यादा जटिल तरीके से विश्लेषित करता है। वह इसके लिए सस्कार शब्द का प्रयोग करता है।ह्यूम के अनुसार हमारा ज्ञान प्रत्यक्षो से मिलकर बनता है। इन प्रत्यक्षो को दो भागो मे विभाजित किया जा सकता है सस्कार और विज्ञान इसी सस्कार शब्द को वह सवेदना और स्वसवेदना के लिए प्रयुक्त करता है।

संस्कारो और विज्ञानो का भेद स्पष्ट करते हुए ह्यूम कहते हैं कि जो प्रत्यक्ष तीब्र और स्पष्ट होते हैं उन्हे सस्कार कहते हैं पर जसे प्रत्यक्षक्षीण और अस्पष्ट होते हैं उन्हे विज्ञान कहते हैं। इन दोनों का भेद उस तीब्रता और स्पष्टता की मात्रा मे है जिसके साथ वे हमारे मानस से टकराते हैं और हमारी आत्मा में प्रवेश करते है। इन प्रत्यक्षों को जो बडी शांति और तेजी के साथ आते हैं हम संस्कार कहते हैं और इसनाम के अंतर्गत मे अपने सभी इन्द्रिय सवेदनो, मनोवेगों और भावनाओंको समझता हू जो आत्मा मे सबसे पहले प्रवेश करती है। विज्ञानो से मेरा तात्पर्य विचार या चितन में प्रयुक्त होने वाले इनके प्रतिरूपों से है।

साधारण तौर पर कहा जा सकता है कि संस्कार तीव्र व शक्तिशाली हैं पर विज्ञान क्षीण और शक्तिहीन। सस्कार मौलिक व बिम्बवत हे। पर विज्ञान गाण और प्रतिबिम्बवत ˙ काल की दृष्टि से सस्कार पूर्णवर्ती है और विज्ञान पावर्ती। संस्कार प्रदत्त हैं तो विज्ञान निर्मित। संवेदना हमारी अनुभूति प्रवणता को दर्शाती है। जो सूक्ष्मातिसूक्ष्म प्रभावों को ग्रहण करने की क्षमता से पूरित होती है। इसका अर्थ यह भी होता है कि कोई साहित्य किन भावनाओं की प्रतीति हमे करा सकने में समर्थ होताहैं भावनाओ को ये स्तर विविध होते है।वह आधुनिकबोध भी हो सकता है। या मानव अस्तित्व की बुनियादी विवशताायें भी।

वह व्यक्ति स्वातत्र की भावना भी हो सकता है या यथार्थ के तत्वो की अन्विति भी। सवेदना का धरातल चाहे जो हो, अभिव्यक्ति उसे साहित्य के माध्यम से ही मिलती है। नयीअनुभूति नयी माषिक अर्थवत्ता अनुभवो की नया सयोजन तथा मानव संबधो के परिवर्तन की सूक्ष्म परख आदि से

ही साहित्य की सवेदना स्पष्ट होती है। भाषा भाव और प्रेरणा तीनो ही प्रत्येक काल मे साहित्य की सवेदना को नयी अर्थवत्ता प्रदान करते है।

साहित्यशास्त्र मे सवेदना शब्द का मूल अर्थ ग्रहण करते हुए भी उसे एक विशिष्ट अर्थ के रूप मे स्वीकार किया गया है। साहित्यिक सदर्भ में सवेदना शब्द सामान्यत साहित्यकार की चेतनानुभूति की उस मनोदशा का द्योतक है। जो उसे सृजन की प्रेरणा और रचनाविधि की शक्ति व सामर्थ्य प्रदान करता है। सवेदना शब्द के मनोविज्ञान शास्त्र एव साहित्यशास्त्र गृहीत अर्थो के अतर को स्पष्ट करते हुए डा नगेन्द्र ने लिखा है कि "मूलत संवेदना का अर्थ है ज्ञानेद्रियो द्वारा प्राप्त अनुभव अथवा ज्ञान। किन्तु आज कल सामान्यत. इस शब्द का प्रयोग सहानुभूति के अर्थ मे होने लगा है मनोविज्ञान में अब भी इस शब्द का प्रयोग इसके मूल अर्थ मे ही किया जाता है और उस अर्थ में यह किसी बाह्य उत्तेजन के प्रति शरीरतत्र की सर्व प्रथम सचेतन प्रतिक्रिया होती है साहित्य में इसका प्रयोग स्नायविक संवेदनाओ की अपेक्षा मनोगत सवेदनाओ के लिए ही अधिक होता है। इस प्रकार साहित्य संदर्भ में सवेदनशीलता मन की प्रतिक्रिया की शक्ति ही है जिसके द्वारा संवेदनशील व्यक्ति दूसरे किसी व्यक्ति के सुख दुख को समझकर उससे अपना तादात्म्य स्थापित कर लेता है।"–१

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार "संवेदना का अर्थ सुख दु:खात्मक अनुभूतियां ही हैं, उसमे भी दुःखानुभूति से इसका गहरा संबध है। संवदेना शब्द अपने वास्तविक या अवास्तविक दुख का कष्टानुभव के अर्थ में आया है। मतलब यह है कि अपनी किसी स्थिति को लेकर दु:ख का अनुभव करना ही संवेदन है।"–२

डा. आनंद प्रकाश दीक्षित के अनुसार "संवेदना उत्तेजना के सबध मे देह रचना की सर्व प्रथम सचेहन प्रतिक्रिया जिससे हमें वातावरण की ज्ञानोपलब्धि होती हैं।"–३

डा. राम स्वरूप चतुर्वेदी साहित्य के महत्व को रेखाकित करते हुए कहते है। "ससार को समझना दर्शन का काम है। उसे बदलना रजनीति का और उसकी पुनर्रचना साहित्य का दायित्व है।"–४ साहित्य की क्रांतिकारिता को स्वीकार करते हुए वे संवेदना को एक विस्तृत आधार प्रदान करते हैं जिसके तहत वह मानवीय चित्त प्रवृत्ति और युग की परस्पर सम्बद्धता को रेखाकित करते है। उनके अनुसार आज की भाषा मे चित्त वृत्तियो के सश्लेष को सवेदना कहा जायेगा ।

---

१ – मानविकी परिभाषा कोष – साहित्य खण्ड –पृ० – २३२
२ – हिन्दी साहित्य का इतिहास – पृ० – ६६१–६२
३ – हिन्दी साहित्य कोष – भाग १ – पृ० ८६३
४– हिन्दी साहित्य की संवेदना का विकास–आमुख

सवेदना मे बदलाव को समझने से साहित्यिक युगो की परिकल्पना और उनके बीच के महत्वपूर्ण अतरालो को समझा जा सकता है।

जो साधारण दृष्टि के लिए ओझल बने रहते है। अज्ञेय की दृष्टि में सवेदना वह यत्र हैं जिसके सहारे जीवयष्टि अपने से इतर सब कुछ के साथ सबध जोडती है। . वह सम्बन्ध एक साथ ही एकता का है और विभिन्नता का भी। क्यों कि उसके सहारे जहा जीवयष्टि अपने से इतर जगत को पहचानती है वह उससे अपने को अलग भी करती है। " साहित्य की सबसे बडी उपयोगिता या सार्थकता इस बात मे मानी गयी है कि वह हमारे संवेदना का विस्तार करता है। जैसा कि डा० राजेन्द्र कुमार कहते है।" सवेदना विशुद्ध ऐन्द्रिय सवेदन का पर्याय नही है। हालाकि इन्द्रिय सवेदन के प्रत्यक्ष या परोक्ष सवेदन का आत्यन्तिक निषेध भी उसमें नही है। ऐंन्द्रिय संवेदन बाह्य यथार्थ के ऐन्द्रिय प्रभावो को ग्रहण करते है।बस उनकी इतनी ही इयत्ता है। सवेदना इससे कुछ आगे की चीज है। ऐन्द्रिय प्रभावो का ग्रहणाशीलता के स्तर पर प्रभाव न कहना, बल्कि आंतरिक यथार्थ के अनुभव मे ढल जाना और फिर किसी बृहत्तर किन्तु सूक्ष्म अंतबोध या कि भावदृष्टि से उसका सयोजित होना इस पूरी प्रक्रिया के परिणाम स्वरूप जो चीज उभरती है वस्तुतः उसी को संवेदना का नाम दिया जाना चाहिये।"– १

और "साहित्यकार की ग्रहणाशीलता में ऐन्द्रिय प्रभावों को अतिक्रांति करके यथार्थ अनुभव को जब उसकी व्यापक भावदृष्टि से संयोजित और संग्रर्धित होने का मौका मिलताा है, तब जाकर उसकी संवेदना का पूर्ण रूपायन हो जाता है।"–२

सच यह है कि संवेदना तो जीव मात्र की मजबूरी है;सिवाय गहरी निःस्वप्न नींद की घडियो के,एक क्षण भी हमारे अस्तित्व का ऐसा नहीं जब हमारी इन्द्रिय मन और बुद्धि किसी न किसी संवेदना के गिरफ्त मे नहीं आती। संवेदना शब्द के इसी व्यापकता व उसकी महत्ता को प्रतिपादित करते हुए किशोर आचार्य लिखते हैं " साधारणतया सवेदना शब्द को सेननेसीवीलटी के माध्यम से समझने की चेष्टा की जाती है जबकि सवेदना शब्द का अर्थ सम्भवतः सेनीसीवलिटी से अधिक गहरा एवं व्यापक है संस्कृत के विद् से उत्पन्न होने के कारण इसका अर्थ अंग्रेजी शब्द सेन्सेशन या परसेप्शन तक ही सीमित नहीं रहता बल्कि नालेज एवं अन्डरस्टैडिंग भी इसी सीमा मे आ जाते हैं इस प्रकार एक सीमा तक बौद्धिक चेतना भी सवेदना शब्द के अर्थ में समाहित है।

इस प्रकार सवेदना शब्द की मनोवैज्ञानिक विशारदो एवं सहित्य शास्त्रियों द्वारा प्रदत्त विभिन्न

---

१ – साहित्य मे सृजन के आयात और विज्ञानवादी दृष्टि – पृ० – १५५

२ – वही पृ० – १५५

व्याख्याओं के अनुशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि सवेदना ज्ञानेद्रियो का अनुभव अथवा मन की प्रतिक्रियात्मक शक्ति है। साहित्य रचना की दृष्टि से सवेदना का विशेष महत्व है। जब हमे सवेदना को अनुभूति दशा, भाव प्रवणता और बौद्धिक सबध चेतना का पर्याय स्वीकार करते हैं तो सवेदना निश्चत साहित्यिक सरचना का अनिवार्य तत्व उपकरण सिद्ध होती है। यो तो प्रत्येक प्रकार की साहित्यिक सरचना के लिए सवेदना का सापेक्ष महत्व है कि काव्य रचना के लिए सवेदना का सर्वाधिक महत्व है। प्राचीन काव्याचार्यो ने काव्य के विधायक तत्वो मे भाव तत्वो को विशेष स्थान दिया हैं। आधुनिक युग की रचना प्रक्रिया मे भी भाव तत्व का स्थान है यद्यपि उन उन्मेष बौद्धिकता और वैचारिकता का ज्यादा प्राप्त होता है।

आज की कविता में भावतत्व और रसात्मकता का स्थान बृद्धिचेतना तथा अनुभूति ने ले लिया है। काव्य की सृजन प्रक्रिया के रचनात्मक उपकरणो मे आपातिक परिवर्तन के बावजूद भी सवेदना काव्य का अनिवार्य उपकरण बनी हुई हैं निर्माण पक्ष की दृष्टि से विचार करने पर निर्विवाद है कि कविता एक क्रिया है– एक व्यापार है। चेतन पाणिमात्र के व्यापार और क्रिया के मूल मे किसी न किसी संवेग का होना अनिवार्य है बिना संवेग अथवा भावोद्रक के किसी क्रिया की निष्पत्ति चेतन प्राणी द्वारा सम्भव नही है। विचार की तीब्रता और गहराई में मनुष्य स्थिर हो जाता है और भाव की तीब्रता में चल। जिस प्रकार व्यावहारिक जीवन मे चेतन प्राणी जीवन की रक्षा के निमित्त अपेक्षित वस्तु के अभावबोध अथवा अतृप्ति के कारण संयोगवश प्रवृत अथवा निवृत्त होता है, ठीक वही बात काव्य जगत के लिए भी कहीं जा सकती है। काव्य जैसी क्रिया मे भी प्रवृत्त होने के लिए सवेग अथवा अनुभूति का होना आवश्यक है। फलतः यह कथन निरापद एवं निर्भान्त होगा कि कविता चाहे प्राचीन हो या नवीन वह सवेदनशील मन की प्रतिक्रिया है और संवेदना ही कविता का चिरन्तन विधायक तत्व है।

नयी कविता यहा नयी कविता से किसी आंदोलन विशेष की कविता न समझी जाय की सम्पूर्ण प्रक्रिया रचना प्रक्रिया मे संवेनना का तत्व सर्व प्रमुख रहा है। आज की कविता के प्रत्येक सर्जक और समीक्षक के मुक्त कठ से संवेदना के महत्व को स्वीकार कियां है। सच तो यह है किआज कीकविता श्रेष्ठता केमूल्यांकन का मापदण्ड गहन संवेदनशीलता और अनुभूति की प्रमाणिकता को ही माना जा सकता है यद्यपि अनुभूति की प्रमाणिकता को ईमानदारी के साथ जोडकर डा नामवर सिंह बात के लिए लगातार सावधान करते है कि इसका उपयांग आत्मसाक्षात्कार और आत्मान्वेषण के लिए हो, न कि आत्मरति के लिए कविता के नये प्रतिमान क्यो कि साहित्यिक प्रतिबद्धता या जिस मानवीय मूल्य के लिए रचनाकार प्रतिबद्ध है उसके पीछे एक पूरा समाज उसका

सहयोगी है। वह जिस मूल्य जिस जीव्न दर्शन को प्रक्षेपित करना चाहता है, वह पूरे समाज का है जिसका वह प्रतिनिधित्व करता है। नैतिक व अनैतिक मूल्य जिसकी परिभाषा परिवेश पर आधारित है, दोनो उसकी निगाह मे रहते हैं। वह स्वरूप मूल्य की प्रतिष्ठा करता है, उसके लिए लडाई लडता है। उसकी सारी लडाई व्यक्ति के स्तर से होने के बाद भी व्यक्तिगत न होकर समाजगत है। लेखक के रूप मे पूरा समाज जडता है। समाज के अतर्विरोधो का वह प्रत्यक्ष दृष्टा होता है। सच तो यह है किएक रचनाशील व्यक्तित्व अपने कर्म और दायित्व के प्रति सजग होकर अपने सृजनानुभवो मे जीवन की अनेक अनिवार्य संवेदनाओं के व्यापकतर अभिधारण भूमि को अभिव्यक्ति की जीवन्तता प्रदान करने के लिए निमित्त छटपटाहट महसूस करता है। एक रचनाकार की रचनात्मक पहचान तभी बनती है जबकि उसकी अभिव्यक्ति मे निरन्तर जीवानुभवो से जुडकर अपनी कलात्मक संवेदनाओं को व्यापकतर करने का प्रयास किया जाता है। इसीलिए आज के कवि को सहृदय या भावुक नहीं अपितु सवेदनशील कहा जाता है। क्यों कि यह प्रक्रिया कवि केमनस जगत से ही सम्बद्ध नहीं है अपितु इसका सबंध बाह्य जीवन एवं सामाजिक परिवेश से भी है। इस तरह आज के कवि कीसवदेनाशीलता के अनेक स्तर है। दूसरे शब्दो में नये कवि की संवेदनशील अनुभूतियों की संरचना मे वैयक्तिक जीवन के साथ–साथ सनीष्ट जीवन की प्रतिक्रियाओं की भी महत्वपूर्ण भूमिका है। लक्ष्मीकात वर्मा के शब्दो में वर्तमान संवेदनशील अनुभूतियां आज की रचना मे मात्र आतरिक प्रस्पुटन से विकसित नहीं होती, उनका एक बाह्य स्तर भी है। यह स्तर आज के जीवन के उस सत्य से संबंध है, जिसमे समस्त मानव की अंतर्वेदना हमारी संवेदना से सम्बद्ध होकर व्यक्त होती है। ... हमारी विचाराशक्ति, धारण शक्ति, अनुभूति के स्तर पर व्यापक एव विराट मानव की भवितव्यता के प्रति उन्मुख होती है उससे द्रवित व प्रभावित होती है। मानव व्यक्तित्व की यह सामूहिक वेदना देशकाल की सीमा में अपने अपने रूपों के माध्यम से व्यक्त होती है।

समकालीन कविता समाज तथा युगजीवन की कविता है।अतः समय की धारदार और बेबाक पहचान ही इस कविता का एक बुनियादी चरित्र हैं। " समकालीन कविता ने अपने इतिहास से टक्कर ली है। इसलिए इसकविता का सौन्दर्य भी पूर्व कविता सेभिन्न है। इस जूझती हुयी कविता ने समकालीन की जटिलताओं और अन्र्द्वंद्वों से टकराटकरन केवल अपने क्षेत्र को व्यापक बनाया बल्कि उसे एक अंतर्राष्ट्रीय रूप भी प्रदान किया हैं उसका यह संघर्ष केवल इतिहास का नही, वस्तुरूपो का भी संघर्ष रहा है। यह पागल प्रतीकों से आगे की कविता है। पागलप्रतीको के इतर जो सहजता होती है, वह आज की कविता की एक महत्वपूर्ण विशिष्टता है यथार्थ सश्लिष्ट है पर आज का कवि उसे सहज और सीधे तरीके से रचने का निरंतर अभ्यास कर रहा है।

शब्दो का मूलभूत सौन्दर्य मानवीय जिजीविषा को जीवन्त करने, सघर्ष को गतिशल चेतना देने की प्रक्रिया में निहित है। शब्द आहत मानव समुदाय को संकल्प अस्तित्व एवं गरिमामय करने की सुचेष्टा से ही प्राणमय रह पाते है। हमारे भाषा और साहित्य मे मानवीय पक्षधर शब्दो की ऐतिहासिक भूमिका रही है। ऐसे रचनाकारो के यहा शब्द मनुष्यता, सस्कृति और अस्मिताा के लिए तने हुए रहे है। और आज भी समकालीन कविता शब्दो का इस्तेमाल सकल्पो के साथ कर रही है और इसलिए उसकी सक्रियता के आगे प्रश्नचिन्ह नहीं खडा किया जा सकता।

****

अध्याय १ – खण्ड-ख

रचनाशीलता के सन्दर्भ मे संवेदना के आयाम

काव्य जीवन की अनुभूतियो को मुखरित करता हैं। अपनी व्यापकता मे वह समस्त मानवीय अनुभूतियो एव विचारों का पुजीभूति स्वरूप होता है। जीवन की सूक्ष्मतम सवेदनाओ एव तीब्रतम अनुभूतियो का प्रतिपालन काव्य मे होता है। मनुष्य को विकासक्रम में आये हुए अनेक विध सामाजिक राजनैतिक एव सांस्कृतिक आंदोलनो का वास्तविक इतिहास काव्य मे निहित है। काव्य "अपनी समस्त प्रेरक शक्तियो को ही जीवन की प्रेरणाओ से ही प्राप्त करता है। जीवन मे व्यक्त विभिन्न प्रवृत्तियां काव्य की उपजीब्य है। विभिन्न सामाजिक परिवर्तनों एव वैचारिक आदोलनो से उत्पन्न मानवीय उत्थान पतन का बिम्ब काव्य मे दिखायी पडता है। इस प्रकार मानव की प्रतिभा शांति और सवेदनशीलता की अभिव्यक्ति काव्य मे ही होती हैं। "–१ काव्य कवि को साक्षर अनुभूति का प्रत्यक्षीकरण है इस आतर अनुभूति के प्रत्यक्षीकरण का क्या उद्‌देश्य है? सृजनात्मक अनुभूति के स्वरूप व निर्माण की प्रक्रिया क्या है? काव्य की मूल संवेदना के घटक उत्पादों में सर्जनात्मक के साथ संवेगात्मकत ही अतिरिक्त होती है अथवा कुछ और? सर्जनात्मक अनुभूति के काव्य तत्व व्यक्तिगत परिवेश के होते है।या समष्टिगत ?

ये सारे प्रश्न रचना और रचनाकार के सबंधो अैर सृजनात्मक क्षणों से सम्बद्ध हैं।

इस सन्दर्भ में अज्ञेय का मत है कि "काव्य का उद्‌देश्य तीब्र एवं गहन अनुभूतियो को आनंद की एक ऐसी भूमिका पर पहुंचाना है,जहां वह अपनी गहराई के कारण सामान्य हर्ष और विषाद से परे हो जाती है उनका मत है समय की दूरी सभी अनुभवों को मीठा कर देती है। ––

: तात्कालिक परिस्थितिया भले ही कितने मीठे और कटु हों।"–२

इसी क्रम में वे आगे कहते हैं "गहराई का एक आयाम होता है जो अनुभूति को कडवी मीठी की परिधि से परे ले जाता है "अज्ञेय फिर कहते हैं " कविता अब भी व्यक्ति सत्य का साधरणीकरण करके आनन्द की सृष्टि करना चाहती है। –३

यहॉ पर अज्ञेय ने ब्यक्ति सत्य के साधरणीकरण की शर्त भी जोड दी हैं । साधरणीकरण होने के

---

१ – डा० राम जी तिवारी – स्वातन्त्रयोत्तर हिन्दी समीक्षा मे काव्य–मूल्य – पृ० ६६

२ – अज्ञेय आत्मनेपद – पृ० १४७

३ – अज्ञेय आत्मनेपद – पृ० १४७

पश्चात व्यक्ति सत्य स्वयं ही व्यापक सत्य के रूप मे बदल जाता है। यही कारण है कि अज्ञेय स्वान्त· सुखाय लिखी जाने वाली रचना के प्रति अपनी असहमति प्रकट करते हैं । वे इस बात को मानने को तैयार नहीं कि कोई काव्य स्वत सुख के प्रयोजन से लिखा जा सकता है। उनका मत है "मैं स्वान्तः सुखाय नहीं लिखता। कोई भी कवि लेखक स्वत सुखाय लिखता है अथवा लिख सकता है। यह स्वीकार करने में मैने सदा अपने को असमर्थ पाया है। पुन वह कहते है। काव्य की भावानुभूतियां यथार्थ जीवन की अनुभूतियों से सर्वथा भिन्न और विशिष्ट होती है। वे सर्वदा सुखद होती है। काव्य के क्रोध, शोध, पीडा और जुगुप्सा से भी आनन्द मिलता है जबकि यथार्थ जीवन मे ऐसा नहीं होता।"–१

तात्पर्य यह है कि अज्ञेय एक ओर तो स्वत सुखाय सिद्धात का स्पष्ट विरोध करते हैं और दूसरी ओर आनन्दानुभूति को काव्य का अन्तिम प्रयोजन मानते हैं । इसी प्रकर वे एक ओर तो कवि जीवन की वैयक्तिक अनुभूतियों के साधारणीकरण की बात करते हैं वही मानवीय चेतना के नूतन सस्कार जैसे व्यापक उद्‌देश्य का भी प्रतिपादन करते है। स्पष्ट है अज्ञेय के यहा अतविरोधो के लिए पर्याप्त अवकाश हैं ये अपने अतर्विरोधों का शिकार स्वयं ही हो जाते हैं और सवैधानिक स्तर पर अन्तिम प्रकार से कोई निर्णय नही दे पाते है।

डा. रामस्वरूप चतुर्वेदी का मत है कि "कला सबसे पहले कला है और अत तक कला है डारु चतुर्वेदी को इस प्रतिष्ठान से स्पष्ट है कि वे काव्य अथवा कला के किसी पूर्व निर्धारित प्रयोजन को स्वीकार नहीं करते। वे मानते हैं कि कला अथवा काव्य स्थिति विशेष में स्वतः स्फूर्त प्रक्रिया है। किन्तु यहां पर समस्या यह उत्पन्न होती है कि रचनाकार काव्य सृजन कोपूर्व वहीं से प्रेरणा ग्रहण करता है या नहीं। यदि हां, तो प्रेरक तत्व ही काव्य को प्रयोजनीय बना देंगे और यदि नही तो कविता रचना में प्रवृत्त होना ही कठिन हो जायेगा। यदि वह स्वत· सुखाय लिखता है तो सुख की उस भूमि की खोज ही उसका प्रयोजन होगा। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि प्रयोजन का नितांत अभाव को सजीव को रचना प्रक्रिया में पूरी एकाग्रता के साथ प्रवृत्त नहीं किया जा सकता और ऐसा न होने पर किसी उत्कृष्ट कृति की अपेक्षा अथवा कल्पना बेकार है। इस प्रकार यह प्रतिपादन अनेक अंतर्विरोधों को जन्म देता है और एक प्रकार के अनिर्णय की स्थित उत्पन्न करता हैं।"

वस्तुतः कविता व मनोरंजन के लिए है उन उपदेश के लिए वह अन्वेषण और आत्मान्वेषण की ओर इस तरह अपने आप को ति और समाज के प्रति अधिक सजग होने की विशिष्ट विधि हे गयी हैं ।

---

१ – (हिन्दी साहित्य: एक आधुनिक परिदृश्य – अज्ञेय पृ०–११६)

कविता हल्के मनोरजन के लिए नही होती, उसका उद्‌देश्य जीवन के प्रति दायित्व का निर्वाह है। इस संदर्भ मे रमेश चन्द्रशाह का मत उल्लेखनीय है। उनके अनुसार साहित्य जहा एक ओर अतरात्मा और समग्रता की चिता करता है। वहीं पर मनुष्य एव मानवीय नियति के प्रति भी उत्तरदायी है इस प्रकार प्रकार मानवीय नियति के प्रति दायित्व का बोध करने वाला उद्‌देश्य अधिक ग्रहण शील है।
आज के काव्य मे सामाजिकता का आग्रह उत्तरोत्तर बढता जा रहा है। डा. केदारनाथ सिह के शब्दो मे "समाज के प्रत्येक सदस्य की छोटी से छोटी चेतन क्रिया किसी न किसी रूप में सामाजिक हुआ करती है फिर कविता समाज के रूप मे अधिक सवेदनशील व्यक्ति की क्रिया है अत उसकी सामाजिकता असदिग्ध है।"–१
काव्य में सामाजिक मंगल एवं सामाजिक संश्लिश्टता की यात्रा जिस अनुपात में बढती है उसी अनुपात मे उसकी पलायनवादिता एव गलदशु भावुकता कम होती जाती है।भाव का परिवर्तित युग काव्य के ऐसे प्रयोजन को स्वीकार करता है। जो सामान्य जनजीवन की समस्याओं का बौद्धिक समाधान करे। मुक्ति बोध के शब्दो में आज ऐसे कवि चरित्रो की आवश्यकता है जो मानवीय वास्तविकता का बौद्धिक और हार्दिक आकलन करते हुए सामान्य जनो के गुणो और उसके संघर्षों से प्रेरणा व प्रकाश ग्रहण करे।

काव्य का प्रयोजन अपने सामाजिक आग्रह के साथ ही बौद्धिकता के सश्लेष की मांग करता है। आज के वैज्ञानिक युग में जिस प्रकार काव्य में भी सम्भवत तर्कशील बुद्धि ही जीवन के यथार्थ को उसकी सफलता में ग्रहण कर सकती है। परन्तु अकेला बुद्धि वाद ही जो कि उसकी उपयोगिता कहीं से भी किसी भी स्तर पर कम नहीं है काफी नही । जैसा कि डा. राजेन्द्र कुमार कहते हैं – "विज्ञान में मनुष्य की उस मानसिक शक्ति पर जो तर्क विवेचन और विश्लेषण आदि में प्रवृत्त होकर उन्ही के आधार पर अपने निर्णय देती है विश्वासकिया जात है मनुष्य का तर्कना शक्ति में विश्वास एक ऐसा विश्वास है।"–२

जिसके आधार पर वह प्रत्यक्षीकृत वस्तुओं की प्रकृति में नियविहीनता और स्वेच्छाचारिता को बर्हिगत करते हुए उनमें पारस्परिक संगति और अन्विति को टटोलता है। इस विश्वास में हृदय या भीवत्सय की अपेक्षा बुद्धि और विचार तत्व की प्रधानत रहती है। यो काव्य आदि कलाओं में भी बुद्धि को कम महत्व नहीं है लेकिन उसमें बुद्धि को ही एक मात्र सर्वाधिक विश्वसनीय तत्व नहीं माना जाता ।

---

१ – (केदारनाथ सिंह तीसरा स्वरूप पृष्ठ १८५)

२ – (डा० राजेन्द्र कुमार – साहित्य मे सृजन के आयाम और विज्ञानवादी दृष्टि – पृ०–७३)

कला के चार तत्व हैं, भाव तत्व, बुद्धि तत्व, कल्पना तत्व, और शैली तत्व। इन चारो के सहज समन्वय मे ही सार्थकता हैं स्पष्ट है कि कोई एक अकेला तत्व ही सार्थक काव्य सृजन की शर्तो को पूरा कर सकता।

मानव सस्कृति का सवहन साहित्य का प्रयोजन है। साहित्य ने निरन्तर मानव सस्कृति का सवहन किया है। युग विशेष की उपलब्धियो को मानव युग के लिए सुरक्षित रखा है । सास्कृतिक की सवहन और अगतयुग तक उसे पहुचाना साहित्यिक का एक स्वीकृत प्रयोजन रहा है।
इसी लिए साहित्य को समाज का दर्पण माना जाता है । दर्पण मानने का सीधा आशय साहित्य को जीवन से सम्बद्ध करना ही है। जीवन की उपेक्षाकर साहित्य की व्याख्या करना सम्भव नही है और जीवन अपनी व्यक्ति निष्ठ स्थिति मे समाज के परिवेश के बाहर नही जा सकता। साहित्य किसी भी युग के समाज के सांस्कृतिक संचरण का संवेदन मे स्फुरण है पूरे युग जीवन को साहित्य ग्रहण कर उसके सारगर्मित क्षणों के अनुभवों को व्यापक स्तर पर सवेदित करता है। साहित्य का समस्त अनुभव उसकी सारी संवेदना उसकी व्यंजना और उसकी उपलब्धि सामाजिक सन्दर्भ मे ही सार्थक होती है। साहित्य की सार्थकता मूल्यों के विवेचना अथवा स्थापना मे ही नहीं वरन उसके सृजन तथा वहन करने मे भी है।

वस्तुतः साहित्यकार मात्र छायाकार नही होता, छायाकार या अनुकृतिकार से कहीं अधिक वह रचनाकार या स्रृष्टा होता है। सामान्यतः यह माना जाता है कि साहित्य सृजन एक वैयक्तिक क्रिया है, स्वतः सुखाय है परन्तु स्वतः सुखाय की भावना से प्रभावित रहते हुए भी वह सृजन की ओर प्रेरित होता है। उसके सृजन की पृष्ठभूमि में अर्थ यश आदि के सन्निहित रहते हुए भी इन प्रेरणाओं का मूल व्यक्ति समाज और उसका परिवेश होता है। उसकी क्रिया विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों का परिणाम है सामाजिक सरचना की एक इकाई के रूप में लेख अपनी अंत' क्रियाये करता है। उसकी अभिव्यक्ति का लक्ष्य जहा दूसरों को सहअनुभूति करा कर रागान्वित करता है वही मानव मन में प्राणिमात्र के प्रति संवेदना जगाना भी है जो मानवीय संबध व्यवहार एक रचनाकार की क्रियाये दूसरों से प्रभावित होती है। और दूसरों को प्रभावित करती है। असल में होता यह है कि मनुष्य का अनुभव जो बाहर की दुनिया से जुड़ा हुआ भी है हमारी रचनारत सकल्पशील वांछा और उससे प्रेरित हमारे आन्तरिक ताप मे से होकर (आवेग को या लेने की क्रिया में, एक हद तक स्वय बदलकर) नये रास्ते के स्वभाव वाला यात्री हो जाता है। उसकी पुरानी पहचान लगभग गायब हो जाती है। जिसका विश्लेषण कर पाना न तो इतना सहज है और न ही यहां सम्भव भी है। लेकिन यह तथ्य है कि कवि के अन्दर समाया (उद्वेलित) लावा अपनी शक्ति वैभिन्य मे एक बर्फ

चाकू का कठोर कटाव या तेजस्वित ताप लिये लिये अपनीसामर्थ्य के गणित के तेज धारदार या लचीले तौर–तरीके से विन्यस्थ आधारोपर ही रचना की वाहक और वाछित शक्ति हो उठता है। वास्तव मे यह 'सब कुछ ही' हमारे अन्दर समाहित आवेग की विशिष्ट अतरगता से उत्पन्न प्रतिफलित, गुणवत्ता ही है। यह हमारे अन्दर मनस्तत्वो की आपूर्ति सक्रिय उपस्थिति या क्रिया–प्रतिक्रिया का अनजाना सा ना रूपान्तरित प्रतिफल होता है। रचना मे इस अन्तर्घटित का कम महत्व नही है। यह सब वस्तु को अन्तर्वस्तु मे बदलना या रचना होने के लिये अपने ही अन्त साक्ष्य में फैलकर व्याप्त हो जाना है। मुक्तिबोध ने इसलिये ही इसे सास्कृतिक प्रक्रिया कहा है।

इस प्रसंग मे हमें यह याद रखना होगा कि वस्तु को अन्तर्वस्तु में बदलने की आन्तरिक प्रक्रिया मे कवि की प्रतिबद्ध वांछा के अनुरूप मानस मंथित हो उठता है। उसकी समस्त आवेग विधामिनी शक्तियां परिगतिया (नकारात्मक भी) सतत उभरने और उबरने लगती है। अन्तर्वस्तु के इस अंत.शोधित और संवार्धित रचाव के परिणाम स्वरूप (अंत में) रचना की विशेष गुण्वत्ता मे उसे हासिल हो पाती है। मोटे तौर से रचना निहित प्रखरता, सघनता, रागात्मकता, लयोन्मुख राग या रागोन्मुख लय, विशिष्ट संवेदनीय लय, त्वरित तापित तुरीयता यह भी कि सतप्त धार से मौन आदि रचनोन्मुख विशिष्टताएं है जो वांछित तौर से सहायक या बाधक बनकर गति को प्रभावित करती हुई प्रकारान्तर से अर्न्तवस्तु की अक्षमता या क्षमता से निम्रत होने का प्रमाज प्रस्तुत करती है। कह सकते है। कि कवि के मन्तब्य को रचनारूप मेंपाने के अंर्तसघर्ष का अंतर्भाग ही अन्तर्वस्तु है। यनि इस स्थिति की सभी वस्तुस्थिति या अन्तर्वस्तु से उपजी, आन्तकि चेतना की धडकन का अग होती है। जो रचना को पुष्टि करती है।

"वास्तव मे वस्तु जब रचना की अन्तर्वस्तु का रूप लेने लगती है। तो उसमे अर्थ वृत्ति के साथ आवेग प्रवृत्ति भी अन्तर्मूत से उठती है। हमारा काव्य इतिहास इस बात कासाक्षी है कि यह आवेग प्रवृत्ति हमेशा एक से रूप मे नहीं रही है। यह अपनी अन्तर्वघनता को लेकर, चतुर्दिक वेग उत्सुक वांछा से समय समय पर अपने गुण धर्म, आयोजित प्रवृत्ति पहचान को बदलती रही है। उदाहरण के लिये जो आवेग प्रवृत्ति किसी जमाने में अपनी वेग उत्पफुल्लता मे प्रवाह का सैलाब लेकर चलती थी वह आज इतनी बदल गईहै कि अपनी दशा दिशा में बिजली की पतली लकीर की तरह अन्दर धसकर गहराती पर ऊपर बिना कौंधे ही निष्पन्न हो जाती थी। यह खुलती खौलती तो है पर किसी बडबोले चमत्कार से दूर ही रहती है। इसके अन्त. सृजित वेग का यह अदृश्य पारदर्शी प्रवाहाशील बंधन, शब्द–शब्द और उनके अर्न्तभूत अतरालो का अपने से भरता हुआ विम्बित स्मृति साक्ष्यों की छायातक में से निथर निखर कर कविता के गति व पारदर्शी एकानुभूत गतिमय बंधन मे

साहित्य क्रांति नही करता, "वह मनुष्यो के दिमाग बदलता और उन्हे क्रांतिकी जरूरत दे प्रति जागरूक बनाता है।"–१

और अपनी बिकी हुई मेहनत बेसहारा जिदगी की आकाक्षाये, समाजिक उलझनो मे होने वाले मानसिक तनाव, स्थिति–परिस्थिति की क्रिया–प्रतिक्रिया सवेदनाये आदि को अपने मे सम्मिलित करने वाला विचार–वेदना–मण्डल जब लोक मुक्ति की नयी क्रातिकारी विचारधारा से और भी सशक्त और संवेदनमय हो जाता है " तब जिस साहित्य का आविर्भाव होता है , मे महान मनुष्य सत्य होता है।"–२

जरूरी है हम आज की कविता और समकालीन यथार्थ दोनो के सदर्भ मे प्रतिबद्धता एव उसकी प्रासगिकता की पहचान समकालीन कविता के प्रतिमान के रूप मे न करे। यह पहचान उन कलावादी रूझानों के विपरीत खडी होती है । जो लेखकीय स्वतत्रता के नाम से आज भी प्रभवर्गीय शिविरो मे अपनी जडे जमाये हुए है। ये रुझाने वर्तमान सामाजिक यथार्थ मे परिवर्तन की प्रक्रिया के बजाय परोक्षतः यथा स्थिति को बल देती है। बेशक ये ऐसे काल्पनिक सघर्षों में साहित्य को उलझाती है जिनका व्यवस्था परिवर्तन के लिए सीधे और सही सघर्ष से कोई रिश्ता नही है। कारण "लेखकीय रचतंशता समाज से कोई दायत्विपूर्ण रिश्ता जोडने से मुकरती है। ससमे उसे राजनीतिक गंध मिलती है जो उसे समाज में खुद खेलने की छूट नहीं देती। दरअसल साहित्य को राजनीतिक संदर्भों से अलग रखने का प्रयत्न खुद मे ही एक अराजनीतिक राजनीति है।"–३

जीवन और समाज के प्रति दायित्व तथा उसमें हिस्सेदारी का अभाव तौर पलायन ही 'आधुनिक बुद्धिजीवी' को अजनवी और पराया बनाता है जीवन से उखडा हुआ लेखक आत्मनिर्वासित होकर अपने ही विभिन्न मानस में चीजों का अर्थ दंढता रह जाता है। यह उसके ज्ञान और अुनभव के स्त्रोत का कट जाना होता है। वह अपनी जडो से उसका सबंध जुडे तो उसका अनुभव पुष्ट हो और उसकी रचना को नई शक्ति तथा ताजगी प्राप्त हो। यह सही है कि कला को किसी एक निश्चित कटघरे में कैद नहीं किया जा सकता है और उतना ही सच यह भी है कि कला का अनन्त स्त्रोत वह जीवन ही है जो एक रचनाकार के चारों ओर स्पंदित होता रहता है। सारा ज्ञान और अनुभव तो उसक आदमी में ही है जो असंख्य तादाद मे उन उपेक्षित स्थानों पर बिखरा है जिससे ऐसे रचनाकार कोई रिश्ता ही नही रखते। यह कक्षा के क्षरण का समय होता है। वह अपनी

१– (आले अहमद सुरुर–क्या साहित्य विफल है?,'समकालीन साहित्य' जन. मार्च १९९२ पृ० ११)

२ – (मुक्ति बोध– नये साहित्य का सौंदर्य शास्त्र पृ०– ७४)

३ – (जगदीश नारायण श्रीवास्तव – समकालीन कविता पर एक बहस – पृ० ३६)

प्रासगिकता और परिणामत प्रभाव खो देता हैं वहा किसी भी प्रकार की सामाजिक सास्कृतिक क्रिया ही नही रह जाती। फलत बचता है सिर्फ एक सन्नाटा। भयावह सन्नाटा। जिसमे भी वह कलाा देखता है। जो कि उस कला का कोई हृदय रही नही रह जाता। यह असावधानी अराजकता का सबंध है जिसके चलते वह राजनीतिक शक्तियो और सामाजिक अतर्विरोध की सही पहचान कर उसे अपना वैचारिक रिश्ता नही जोड पाता। "कला के द्वारा क्राति संभव न हो, कला के द्वारा वास्तविकताओ को न बदला जा सके कलाा हथियार का विकल्प न हो सके पर इसमे सदेह नही कि यदि उसकाा सही उपयोग किया जाय तो वह इन सबकी प्रेरणा जरूर देगी क्यों कि वह अपने समय की क्रांति चेतना से स्वयं प्रेरित होती है। "–१

कला का यह रचनात्मक उपयोग क्या है? शायद यही सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न है। अपने समय और संसार में जीते हुए हम सर्जना मे लिप्त रहते हैं ताकि अपने को और अपने समय को जान सके। जीने और जानने का यह उद्यम आत्म अनुभव की एक अनवरत प्रक्रिया है जो प्रत्येक मनुष्य के भीतर बैठे रचनाकार के साथ होती है। दरअसल संसार मे जन्म लेने वाला हर व्यक्ति किसी न किसी रूप में सृष्टि को रच रहा होता है और इस तरह समाज को जानने का प्रयत्न कर रहा होता है। मनुष्य का प्रत्येक भौतिक उद्यम उसकी श्रम चेतना से जुडा रहता है और उसकी सभ्यता संवेदना के विस्तार मे प्रतिफलित होती आयी है। लेकिन सभ्यता के भौतिक उपक्रमो ने उसे इतना भव्य रूपाकार और साथ ही ऐसी जटिल बनावट दे डाली है कि उसे समग्रता में पकड पाना लगभग असंभव हो चला है " शायद ऐसी कोई कृति अब सभव नही जो समकालीन संसार की अतर्लिष्ट वास्तविकता को महाकव्यात्मक सम्पूर्णता में अवतरित कर सके न ही कोई रूपक, मिथक या दंतकथा उसके रहस्य को धारण करने में समर्थ जान पडती है। दरअसल सभ्यता ने स्वयं आाधुनिकता के लिए नपये मिथक गढ लिये है। वे परस्पर इस कदर गुंथ गये हैं कि कुल मिलाकर वे खंडित अनुभवों के गुंजतक से झांकते उलझते अर्थ की झलक मात्र दे सकतेहै। सम्पूर्णता स्वयं एक गूढ मिथ बन चुकी है सि अपकूटित नही किया जा सकता। जो खण्ड रूप है वही यथार्थ है।"–२

लेकिन मुनष्य के आत्म संसार की स्वयं पूर्णता को भंग कर यदि आाधुनिक सभ्यता ने उसे खण्डित चेतना के धरातल पर उतार दिया तो उसने इससे उपजे शून्य को भरने का भरसक जतन भी किया। " इसके लिए उसने एक स्वप्न की रचना की विकास और समृद्धि के स्वप्न की जिसमें

---

१ – (रचना के सरोकार पृ०–११६–विश्वनाथ प्रसाद तिवारी)

२ – (लेख– जय प्रकाश–यथार्थ की माया पल प्रतिपल मार्च जून २००० पेज ४६)

एक तनता की विचारानुभूति कम से कम आज की कविता की बदलती सम्वेदना की प्रस्तुत कर पाती है। ''–१

एक रचनाकार का सृजन न पूर्ण काल्पनिक होता है अैर न पूर्ण वैयक्तिक। एक सामाजिक क्रिया के रूप मे उसके विश्लेषण की अपेक्षा होती है। क्यो कि उसके उद्यम की भूमि समाज ही है। लेखक की वैयक्तिक चेतना की पृष्ठभूमि मे सामूहिक चेतना का प्रभाव सक्रिय होता है। उसके विचार उसकी धारणाये और उसकी अनुभूतिया सामाजिक अतः क्रियाओ का परिणाम है। सृजन क्रिया और अनुभूतिया सामूहिक प्रतिनिधानो की ही अभिव्यक्ति है। साहित्य वैक्तिक क्रिया नही है। लेखक की क्रिया का विश्लेषण अनेक आधारो पर किया जाता है। जैसे सृजन के लक्ष्य और साधनो की अत· सम्बद्धता के सन्दर्भ मे लेखक की भूमिका का विश्लेषण रचना क्रिया की वस्तुनिष्ठा और व्यक्ति निष्ठा की जांच, सृजन में निहित प्रेणको का विश्लेषण । बेवर मे सामाजिक क्रिया के अर्थपूर्ण बोध जो समाज शास्त्रीय अध्ययन का केन्द्र बिन्दु माना है। इनके अनुसार वही क्रिया सामाजिक हैं जिसमे उसके करने वाले के साथ अन्य व्यक्तियो के मनोभावों और क्रियाओ का समावेश हो।

वह अन्य व्यक्तियो के अतीत, और भावी व्यवहार से प्रभावित क्रिया का ही सामाजिक मानता है। लेखक की कृति साद्देश्य होती है अत उसका बोध और उसकी क्रिया सामाजिक क्रिया का रूप धारण करती है। उसकी स्पष्ट पक्षधरता जन के प्रति होनी चाहिये। " यहां पर 'जन' शब्द एक विशेष अर्थ प्रदान करता है जो वैज्ञानिक विकास, उद्योगवाद, प्रजातंत्र, सर्वहारा, मध्यवर्ग, समसता, स्वतंत्रता और ब्यास जैसे 'प्रत्ययों' एवं विचारकों का एक सगुफित गत्यात्मक रूप है। इन सभी वे तथ्योने न्यूनाधिक रूप से जन संस्कृति के मिथक को ऐसा आकार और स्वरूप प्रदान किया है जो विचार और कार्य के धरातल पर मानवीय क्रियाओ को एक अर्थवत्ता प्रदान करती है, तो दूसरी ओर मानव की सर्जनात्मक शक्तियों को एक नया आयाम प्रदान कर रही है। यह 'जन' शब्द केवल एक 'विचार' है। एक ऐसा विचार दर्शन जिसने केवल राजनीति और अर्थनीति को प्रभावित नही किया है पर साहित्य कल, दर्शन, धर्म, और अन्य मानवीय क्रियाओ का भी रचनात्मक एवं वैचारिक स्तर पर प्रमाणित किया हैं।''–२

रचना इसी लिए वह ही महत्वपूर्ण होती है जिसकी पक्षधरता स्पष्ट हो और जिसका दृष्टिकोण बिल्कुल साफ।

---

१ – 'कविता मे वस्तु के अर्न्तवस्तु बनने की प्रक्रिया' – 'मलय' – 'वर्तमान साहित्य कविता विशेषाक'–पृ०–३५३

२ – (वीरेन्द्र सिंह 'जन संस्कृति का मिथक' साक्षात्कार – मई जून १९९५ पृ० १३०)

उसकी स्वतंत्रता प्रति फलित हो सके। लोकतत्र, उद्योगवाद, विध्कि व्यवस्था के विकास के साथ यह स्वप्न भी उत्तरोत्तर विकसित हुआ। मनुष्य की खोई हुई सम्पूर्णताा इससे भले ही पुनरूपलब्ध न हुयी, भले ही उसका शून्य पूरी तरह न भर सका हो, किन्तु मुक्ति की आकाक्षा को अपेक्षाकृत ठोस एव लौकिक सदर्भों मे परिभाषित कर पाने की आशा उसके भीतर (जरूर) उदित हुयी। लोकोत्तर से विछन्न हो जाने का जो अभिशाप मनुष्य को आधुनिकता के हस्तक्षेप के चलते आगे चलकर भोगनेको विवश होना पडा, उसकी किसी हद तक क्षतिपूर्ति मानवीय मुक्ति के इस भव्य आश्वासन मे मौजूद थी कि कल्याणकारी राज्य (वेलफेयर स्टेट) अपने नागरिको के सारे दुख दूर कर देगा। पुनर्जागरण और ज्ञानोदय का समूचा महाविशर्म मुक्ति के इस स्वप्न को सामाजिक क्रांति की देहरी तक खींच लाने का उपक्रम कहा जा सकता है। लेकिन बडी विडम्बना यह है कि स्वतंत्रता का स्वप्न देखने वाली सभ्यता ने अपनी मुक्ति के उन्माद में अपने से इतर सभ्यताओं की नैसर्गिक स्वतत्रता का अपहरण कर लिया। औद्योगिक समाज की हिंस्त्र महत्वाकाक्षायें उन्नीसवीं सदी के उग्र राष्ट्रवाद मे और दूसरी ओर औप निवेशिक विस्तारवाद में सयोजित हो गयीं, जबकि बसवी सदी में उन्होने विकराल साम्राज्यवाद का रूप ले लिया। संस्थाबद्ध मानवीय शोषण की ज्ञानोदय मूलक आकाक्षा वास्तविक के धरातल पर अपने मानवतावादी चरित्र मे मूर्त न होकर शोषण की निर्बध स्वतंत्रता में चरितार्थ हुयी। इसे सहज ही लक्ष्य किया जा सकता हैं कि तकनीकी विकास के सामातर राजसत्ता के चरित्र में भी गुणात्मक ४.४ लाख आये हैं। क्या आधुनिक साम्राज्यवाद के इतिहास को तोप, बारूद और जहाजरानी और इन्फारमेशन टेक्नांलांजी के तकनीकी विकास से अलग करके देखा सकता है? आधुनिक लोकतंत्र जिस संविधान को केन्द्र में रखकर कानून का शासन स्थापित करता है क्या यह राज चलाने की तकनीकी मात्र नहीं है? गौर किया जाना चाहिये कि तकनीकी ने राज्य सत्ता को निरंतर शांति प्रदान कर न सिर्फ उसेक भौगोलिक प्रसार के रास्ते सुझाये हैं बल्कि सूक्ष्त स्तर पर उसके ऐतिहासिक विस्तार की युक्तियां भी ईजाद की हैं। इस प्रक्रिया में राज्य सत्ता क्रमश. शक्ति सम्पन्न, क्रूर, निरंकुयर और हिंसक होती गयीहै। तकनीकी ने उसे इतना चतुर और सक्षम बना दिया है कि सीधे आक्रमण किये बगैर भी वह किसी राष्ट्र की सप्रभुता का अपहरा कर सकती है। आज किसी भी किस्म का अध्निायकवाद वस्तुतः तकनीकी की सर्वोच्चता को सूचित करता है और सही मायनों में वह तकनीकी का अधिनायकत्व निर्मित करता है। एक स्तर पर पहुंचकर तकनीकी अर्थ व्यवस्था, व्यवसाय, सांस्कृति सब कुछ अपने वश कर लेती है। तकनीकी इतनी शक्ति अर्जित कर लेती है कि वह स्वयं राजसत्ता बन जाती है यहीं वह समाज था कि वह स्वय राजसत्ता बन जाती है यही वह समाज का एक ऐसा अतिकेन्द्रीकृत ढाचा गढ़ लेने में सफल हो जाती है। यहा मनुष्य

एकात जैसा भी कुछ नही। यह सिर्फ मनुष्य के यथार्थबोध को नियंत्रित ही नहीं करता बल्कि यथार्थ से वचित भी करता है। वस्तुओ ने मानवीय संबधो को तुच्छ बना दिए है उन्हे निरर्थक बनाते हुए स्वयं अपने सदर्भ मे ये सामाजिक बधनो से मुक्त हो गयी है वे अपने आप मे सामाजिक मूल्य बन गयी है। इस पृष्ठ भूमि मे वस्तुये एक उपभोक्ता के ससार में अकल्पनीय भव्यता के साथ प्रकट होती है। सुख, सुरक्षा और आनद का स्वर्गीय आश्वासन देती। दूसरी ओर सावधान करते हुये अशोक बाजपेयी कहते हैं – " राजनीति और तकनालाजी मिलकर हर जगह बेजा कब्जा करती जा रही है। इसमें शक नहीं कि बीसवी शताब्दी के निकट इन सबके बीच एक रचनाकार को एक जबर्दस्त आत्म सघर्ष से गुजरना होता है। क्यो कि अब चीजे उतनी सहज और सरल नही जितनी कि दीखती हैं। लडाई दिनो–दिन जटिल होती जा रही है। आज जब सब कुछ ऊपर से इतना सहज और साधारण क्यो मान लिया जा रहा ? यहां रघुवीर सहाय की एक टिप्पणी को याद किया जा सकता है। उन्होंने लिखा था कि अपनी हर लडाई मे हम उन्ही के उद्देश्यो की पूर्ति कर रहे हैं जिनके विरुद्ध सघर्ष है। यह बात सचमुच भयावह रूप से इस वक्त सामने है। सत्ता के तत्र ने बहुत से रचनात्मक माध्यमो पर कब्जा कर लिया है और उन्हे वह अपने तरीके से इस्तेमाल कर रहा हैं। ये माध्यम समाज को तोड रहे हैं और अन्याय के खिलाफ उसने और प्रतिरोध की जगह हताशा और पैसिविटी को बढा रहे है। संस्कृति विचार इतिहास और सवेदना सबका एक खास तरह से केन्द्रीकरण हो रहा है। राजनीति मानव संबंधों तक का तय कर रही है। मनुष्यता के सामान्य ज्ञान और अपने समय के समाज को लेकर मूलगामी जिज्ञासाओं का अब कोई अर्थ नहीं है। " मनुष्यता और न्याय की जटिल संवेदनाओं का विकल्प अब प्रगति उपलिब्धयो के एक आयामी तथ्य और आंकडे बनेगे।"–१ सारी मानवीय गतिविधियों को केवल सास्कृतिक हचलतों तक सीमित कर देने की यह पेशकश सचमुच भयावह है। एक विशिष्ट तरीके से व्यापक समाज के अवेचतन को गढा और नियंत्रित किया जा रहा है। यह एक नये प्रकार का सर्व सत्तावाद है। समकालीन रचनाकार के समक्ष यह एक नये प्रकार का संकट हैं। सच तो यह है कि कविता आज एक छद्म तरीके को प्रतिपादित करने की चुनौती से गुजार रही है।

कविता ने इस चुनौती को स्वीकार किया है। "भारतीय समाज में उन्माद और उपभोग की इन नयी वास्तविकताओं में छिपी बर्बरता के सूक्ष्म रूपो की पडताल और एक बुनेयादी नैतिक ताने बाने को बचाये रखने की चिंता हमारी समकालीन कविता की मुख्य चिता है। जिस दौर मे इतिहास के नकार के स्मृतिहीन उत्सव हो रहे हैं और कला की स्वायत्ता की चतुर रचनायें चल रही हैं उसी दौर में यह

---

१ – (विजय कुमार-'कविता की संगत'-पृष्ठ– १०)

कविता मनुष्य होने के मूलभूत गरिमा से भी वचित लाखो करोडो मनुष्यो की हीनता और दुखदर्द को समझना चाहती है।"–१

यह कविता नैतिक मूल्यो पर आधारित जीवन दृष्टि तथा मनुष्य के बुनियादी राग व ऐंद्रिकता को बचाये रखने की कोशिश मे अपनी सास्कृतिक जडो, परम्पराओं और लोक जीवन के तत्वों की ओर भी लौटना चाहती है। विविधता की दृष्टि से यह कविता अपने पूर्ववर्ती किसी भी काल की कविता से कहीं अधिक विविधतापूर्ण और अनेक आयामी है। एक बुनियादी सवदेन शीलता और मानवीय व्यवहार को बचाये रखने का संघर्ष, हर परिवार की दुनिया, स्त्री और बच्चों के प्रति चिता, जातीय स्मृतियो की खोज, रणात्मक जीवन का अंकन आदि वे तमाम बाते हैं जिन्होने अस्सी के दशक में ग्रासरूर य 'रेडिकल' की समझ को ज्यादा जडन और जटिल बनाया है। उपेक्षित और कमजोर तबकों के दुख के प्रति तरर्थवाद से हटकर वास्तविक सहानुभूति की खोज और इस सब मे अपनी वर्गीय स्थिति का आत्मबोध इसकविता की मुख्य विकास रही है। " यह कविता कमजोर तबको के भव विह्वल चित्र न होकर मनुष्य और मनुष्य के बीच उन जीवंत रिश्तों की खोज ज्यादा है जिन्हे शोषक व्यवस्था लगातार विरूपित करती जा रही है। यह बात इस दौर में उभरे कवि राजेश, अरुण, कनल, उदय प्रकाश, असद जैदी, विष्णु नागर, मंगलेश डबराल, तानेन्द्र पपित, इब्बार रब्बी, देवी प्रसाद मिश्र, लीलाधर जगूडी, आलोक धन्वा आदि की कविता में अलग–अलग तरीको और शैलियों से प्रमाणित होती है। मनुष्य के समच्च्य यहा अरूप और अनाम लोगों की भीड नही, बल्कि जीवंत, सक्रिय और संघर्ष शील मानव इकाइयों के समुदाय हैं जिनके निश्चित वर्गगत आधार भौगोलिक परिवेश, उनसे उपजे मनोभाव, अभिप्राय और उद्देश्य है।"–२

अन्यायपूर्ण समाज–व्यवस्था में विराट मानव–समुदायों को निरूपित होते देखने के बाद का रास्ता इनके यहां सिनिसिज्म या रूमानी आक्रोश की ओर नहीं जाता, बल्कि इन घिरे हुये मनुष्यों से एक बुनियादी, गतिशील, ऐंद्रिक लगाव की ओर जाता है ताकि रचना इस अमानवीय तंत्र के सामने प्रतिपक्ष की भूमिका निभा सके।

यह एक ऐसी कविता है जिसने अपनी शक्ति और ऊर्जा को अपने अंदर समेटा है इन कविताओ में आस–पास के जटिल जीवन की मानवीय जिजीविका विश्वास और मूल्यो की सर्जनात्मक अभिव्यक्ति है उसने मानवीय मूल्यों मे बुनियादी आस्था को अपनी रचनाधर्मिता और वैचारिक को केन्द्रीय भाव माना है। स आस्था से संश्लिष्ट उसकी पक्षधरता न सिर्फ प्रखर तरीके से उभरी है बल्कि उसमे

---

१ – (विजय कुमार, कविता की संगत, पेज –११)

२ – (विजय कुमार, कविता की सगत, पृष्ठ –४८)

सवेदनात्मक सघनता भी आयी है। आज की कविता के आत्म सघर्ष और उसकी उपलब्धियो का आकलन करते हुए कुवर नारायण इसीलिए कहते हैं – " बदलते हुए सदर्भ मे मनुष्य के सबसे कम उद्घाटित या विलुप्त होते, जीवन स्त्रोतो की खोज और भाषा मे उनका सरक्षण शायद आज भी कविता की सबसे बडी ताकत है।"–१

समकालीन कविता मे परम्परा और आधुनिकता के द्वद्व को समझकर ही उसकी विशिष्टाताओ को रेखांकित किया जा सकता है। आज कविता ने अपने विकास की कई मजिलेपार कर ली हैं। आज उसे किसी सकीर्ण तारे की जरूरत नहीं है। आज गहन मानवीय और सामाजिक सवेदना के प्रति वह कहीं अधिक जागरूक है। बनावटी पन अब उसकी सीमाा नहीं रहा। परन्तु उसकी सभावनाये उसकी रचनात्मकता की शर्त पर ही स्वीकार की जा सकती हैं। इस रचनात्मकता का जीवन के साथ कोई विरोध नही है। जीवन को कितना जाना जा सकता है और रचनात्मक बनाया जा सकता है। यह कविता के लिए महत्वपूर्ण योगदान है। इन कवियो की चिता जीवन विकास की जटिलताओं और अतर्विरोधो को रचनात्मक शक्ल मे ढालकर आलोचनात्मक विवके उत्पन्न करना कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। आज जिंदगी के सवाल कही अधिक उलझे और पेचीदा हो गये है। इसलिए संश्लिष्ट यथार्थ को रचना की शंभु देना आसान नही यही कारण है कि यथार्थ को एक सामाजिक संसार में ही पहचाना जा सकता है। समकालीन रचनाकार इसीलिए अपने आधार से जुड़ते हैं और मनुष्य की दुनिया के भीतर घुसते है। फलतः अनेक प्रकार के किसान या शोषित वर्ग के जीवन पर लिखकर प्रगतिशील के लिए अपने समय की सघर्षशील जातीयता की खोज महतवपूर्ण हुयीं। फलतः इस संघर्ष का क्षेत्र भी व्यापक हुआ। यहां बदलते उजड़ते गाव है, समस्याग्रस्त किसान है बढते शहर फैक्ट्रियां, झोपडियां और श्रमिक हैं। औद्योगिक पूंजीवाद और उसकी लूट है।अपहरण आतंक और धर्म का कारोबार करने वाला वर्ग है बाढ सूखे और भूकप है। इसलिए विस्थापित और शरणार्थियो की समस्या है। यहां जीवन रोमांस नहीं बल्कि तिम्र और तीखा है। यह कैसे है इसे समकालीन रचना परिदृश्य से भलीभाति जाना जा सकता है।

कविता को लकर बहुत हल्का भी मचता रहा हैं। एक आंच तो यह है कि शताब्दी का अंत होते–होते कहानी की तरह कविता भी मृतप्राय हो गयी। आज बहुत से लेखक समीक्षकों ने इसके अंत की घोषणा कर दी। सास्कृतिक पतन का न जानने वाले ही ऐसी बाते करते मिलंगे। जैसे आज भी ऐसे लोग मिल जायेगे जो छायावाद से आगे की हिन्दी कविता को नही जानते, नहीं मानते बावजूद इसके कि कविता लिखी जा रही है और अच्छी कविता लिखी जा रही है। इस प्रकार समकालीन कविता के

१ – (आज और आज से पहले– कुंवर नारायण पृष्ठ ८५)

सामने , भीतर और बाहर दोनो तरह की चुनौतिया है। भीतर कविता रचनाकारो के छोटे खेमो कलावादी रूपवादियो से तो बाहर मूल्यहीनता विचार शून्यता और दृष्टि विपन्नताा से। मामला कविता के रचाव का हो या चेतना के स्तर पर समाज से उसकी बदलती सांस्कृतिक परिपस्थिति और यथार्थ के धरातल पर उतर रही इन चुनौतियो की पहचान के जरिये इसके वास्तविक कारणो को चिनिहित किया जा सकता है। जैसा कि राजेश जोशी कहते है। उन्होने रंग उठाये। और आदमी को मार डाला। उन्होने सगीत उठाया। और आदमी को मार डाला। उन्होने शब्द उठाये। और आदमी को मार डाला। हत्या एकदमन नया नुस्खा तलाश किया उन्होने . स्पष्ट है इस कविता की अनेकोन्मुखी चिता ने उसकी संरचना और पद्धति को एक परिवर्तन कामी शक्ति के रूप स्थापित किया। यह सामाजिक घटनाओ के अंतर अन्वेषण की प्रवृत्ति और कार्यकाष्ठा की औचित्यपूर्ण श्रंखला को पहचानने में हमारी मदद करने का जज्बा है।

यह जब्बा तभी हो सकता है। जबकि वह ज्यादा अनुभूति प्रवण और अंतरग हो। भावप्रणता के ये गुण कविता मे अनायास ही है। यही कारण हैं कि ये कविताये जिंदगी के छोटे–छोटे सुखो की भी हिस्सेदारी में पीछे नही है। पूल,चटका रग,पेड, धूप और गिलहरी क इनमें असंख्य संदर्भ है। यहां कविता का इद्रियबोध उसकी प्रखर रागात्मकता के साथ बिंध कर आाय है। यह पारदर्शी होने के कारण सहज लेकिन गहन अंतरगता से युक्त कविताएं है। इस सामाजिक अंतरगता में वर्ग सरचना के सूत्र कुछ इस तरह क्रियाशील हो जाते हैं कि सामाजिक संरचना की नयी नयी भूमिका उद्घाटित होने लगती है। लेकिन वर्तमान में जीती ये कविताये परपरा की उपेक्षा करने वाली कविताये नहीं है। इनके यहां अतीत में जाने का अवसर किसी रोमांटिक भावबोध वास्तविकता के सघन ससार को वर्तमान के यथार्थ बोध से संयुक्त करने का प्रयास है। बल्कि यह सामाजिक वास्तविकता के सघन ससार को वर्तमान के यथार्थ बोध से संयुक्त करने का प्रयास है। इस क्रम में देवी प्रसाद मिश्र की कविताये उल्लेखनीय है। जहां परम्परा, अतीत इतिहास को एकदम भिन्न दृष्टिकोण और नजरिये मे देखने की कोशिश की गयी है। यहा परम्परा के जीवन अंशों का उपयोग आदमी को उसकी पहचान देने के लिए हुआ है। बहुसरचनावादी समकालीन ढाचे में अंतर्विरोधो और तनावों मे भी विविधता होती हैं स्थिर न होकर गति अगति के बीच में अनेक स्तरों पर प्रकट होती ह एक रचनाकार इन्हीं समकालीन स्तरोंसे अपने यथार्थवाद को गढता है। इसके लिए उसे अपने जनजीवन को व्यक्त करने के लिए तमाम औजारो की जरूरत होती है।सामाजिक सबधों की पहचान के लिए उनका उपयोग करने में इसीलिए उसे समकालीन वादता बिल्कुल नही मिला करती क्यो कि बहुस्तरीय यथार्थ बहुस्तरीय कश्य के द्वारा ही अभिव्यंजित किया जा सकता है। चूंकि कला की अंत. प्रतिबद्धता और

उसका मूल स्वभाव महज इशारा भर नही है बल्कि इससे आगे बढकर वह जीवन प्रक्रिया को बदलने का सघर्ष होता है। फलत. यहा रचना पुनर्नवीकरण की प्रक्रिया मे अपनी विकास परपरा से कटकर नही रहती बल्कि वह सामाजिक क्रिया शीलता की हिस्सेदार बनकर आगे आती है। इस रूप मे यह बडी चिताओ की कविता है। संकट ग्रस्त समय ने जैसे–जैसे अपनी क्रूर लीलाओ का बढाया है उसी अनुपात मे कविता ने अपनी धार को भी यह एक ऐसी कविता है। जिसने समकालीन समय की कठिन और ठोस सचाइयो से टकराने और समाज बदलने की दूरगामी लडाई मे शामिल नये आदमी की वास्तविक पहचान, को उभारा जो बार बार कहती है इस दुनिया मे बचे हुए हैं हम सुनते हुए अधूरी आकाक्षा की पदचाप। जो एक बर्फ की विशाल गरम घाटी मे खिलने की कामना लिये। (कुमार अबुज एक नही होती दुनिया में)।

****

अध्याय १ – खण्ड ग

सवेदना : स्थिति या प्रक्रिया

जीवन को, उसकी घटनाओ को पूरी शिद्दत से देखना हमारी सवेदनाओं को विकसित करने की प्रक्रिया है। यह एक स्थितितब होती है जबकि रचनाकार इन विशिष्ट परिस्थितियो मे रहता हैं, परन्तु प्रक्रिया वह तब होती है जबकि अनुभव का दाय उसे मिलता है। कहने का तात्पर्य यह है कि स्थिति विशेष में आने पर रचनात्मक आधार सुद्ढ होते है और विचार प्रक्रिया जो किसी घटना विशेष से सम्बद्ध होकर हमारे सामने अनुभव की वस्तु व मानसिक सामग्री बनकर सामने आती हैं । वैचारिक प्रक्रिया की यह स्थिति रचनाशीलता की मनोभूमि तो प्रदान करती है परन्तु स्वय रचना नही बन पाती । विचार के इस स्तर पर रचनाशीलता का वह कच्चा माल प्रस्तुत करती हैं

रचनाकार अपने युग और समाज से केवल प्रभावित ही नहीं होता वरन् वह सभी तथा भोक्ता भी होता है। यूंकि उसका अनुभव व्यक्तिगत नही होता इसलिए समाज की परिस्थितियां उसकी रचना के लिए सिर्फ आधार तैयार करती है। एक चित्रकार पहले एक बिम्ब की कल्पना करता है तथा बाद मे इस बिम्ब से चित्र में उभार कर उसकी पुनर्रचना करता है। उसके कलाकर्म की यही सार्थकता है। यही क्रम रचनाकार के साथ भी चलता है। रचनाकार के मस्तिष्क तक ही कोई विचार सीमित रहेतो उसका कोई सामाजिक मूल्य नहीं होता इसलिए जरूरी जाता है कि रचनाकार उस विचार को अभिव्यक्ति दे। अनुभव की यह प्रक्रिया रचना की रचना प्रक्रिया से घनिष्ट रूप से सम्बद्ध होती है। प्रक्रिया से सवेदना की पूरी प्रणाली विकसित होती है। विकसित होती है। से मतलब एक स्थिति विशेष से बढकर एक अनुभव पकता है लेकिन वह एक रचना नहीं बनता। संवेदना जब प्रक्रिया से स्तर पर आतीहै तो हम भौतिक जगत से बढकर अनुभवात्मक जगत तथा रचना जगत तक पहुचते

हैं, परन्तु प्रक्रिया के रचनात्मक जगत का विश्लेषण करने से पूर्व, इसके अनुभवात्मक जगत का विश्लेषण अपेक्षित है।

रचना मनुष्य के अनुभवशील निरीक्षक और सवेदनशील आस्वादक की सृष्टि है अतीत को अपनी सवेदना मे घोलकर वर्तमान का सीधा साक्षात्कार करता हुआ रचनाकार सृष्टि का समूचा आत्मस्वीकृत रूप तैयार करता है। उसकी आत्म स्वीकृति बिम्ब रूप मे होती है उसके अंतसू में एक चित्र बनता है चित्र का आधार घटनाओ पर प्रत्यक्ष रेखाओ के बजाय अमूर्त अनुभव होते है। यह चित्र रचना के क्षणो म अनुभूत्यात्मक स्थितियो को सामने लाते है। सारा सास्कृतिक जीवन जो मूर्त रूप मे है घुट–धुट कर अनुभव बनने की प्रक्रिया में अमूर्त होता रहता है। अनुभव का लम्बा क्रम आदमी को सत्य के नजदीक लाता है। जिसका अनुभव विशाल होता है उसका सत्य उतना ही समर्थ होता है अनुभव की उपस्थिति किसी भी स्तर पर और कही भी प्राप्त हो सकती है। यह हमारी वाह्य इन्द्रियो द्वारा प्राप्त हो सकता है, यह हमे मानसिक स्तर पर विचारो द्वारा सम्प्रेषित हो सकता है। बाह्य और अन्तर का यह ज्ञानस्रोत वास्तव मे एक स्थिति है जो ज्ञान का आधार बनती है। मोटे अर्थों मे तो प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करना, उसका अनुभव करना और फिर उस वस्तु या परिस्थिति की अनुपस्थिति मे पुन. अनुभव का दोहराव–संवेदना का निर्माण करता है। इस प्रकार सवेदना अपने स्वरूप में बहुत सूक्ष्म होती है। संवेदना वैचारिक स्थितियो के संश्लेष को बताता है। किन्हीं स्थितियो का ज्ञान प्राप्त करना ही संवेदना नही है अपितु यह अन्तरकी प्रक्रिया है जहा एक प्राप्य अनुभव का इस्तेमाल दूसरी जगह ज्यादा अर्थपूर्ण तरीके से हो। वहा प्रत्यक्ष ज्ञान का सीधा उपयोग न करते हुए भी उस प्रत्यक्ष ज्ञान से मिले अनुभव को अपने मे एक रचनाकार पचाता है। और फिर घटना विशिष्ट के संदर्भ मे पूरी इमानदारी से अपनी सवेदना का विषय बनाता है। इसलिए सवेदना ज्ञान के श्रोत से आगे बढकर कुछ और है जहां ज्ञान का उपयोग सृजनात्मक स्तर पर होता है।

यह सम्पूर्ण प्रक्रिया रचनात्मक को ज्यादा सश्लिष्ट बनाती है। उन वह उस बिदु तक पहुचने मे सहायता देती है वह हृदय का भावबोध का समस्त आकलन कर उके जहा अपने जहा अपने को वह तर्कवाद से आगे बढकर रसदशा को प्राप्त कर सके। इस दशा की प्राप्ति सृजन का अमूल्य क्षण होती है। सृजन की पूरी अर्थवत्ता यहा पर प्रकट होती है। इस प्रकार सवेदना की अवस्थिति प्रक्रिया मे है और प्रक्रिया एक वायवीय रहने वाली वस्तु नही है किन्तु यह सृजनशील मानस की थाती होती हैं। इसे रचना प्रक्रिया भी कहा जा सकता है। "सृजन प्रक्रिया के मूल मे लेखक होता है जबकि अधिगम प्रक्रिया की शुरुआत पाठक से होती है। एक श्रेष्ठ सत्य सम्प्रेषण और चिरजीवी रचना वह होती है जिसमेंये दोनो प्रक्रियायें एकान्वित हो जाती है। यह एकान्विति अत्यन्त सूक्ष्म रूप में सृजन प्रक्रिया के दौर में रचनाकार के स्तर पर ही घटित होती है।"–१

रचनाकार प्रक्रिया की शर्ते किसी भी रचनाकार के लिए भिन्न स्थितियों के बावजूद लगभग एक सी होती हैं। यह कार्य व्यापार हमारी परिस्थिति, परिवेश व पर्यावरण के भिन्न होने के बावजूद मानसिक स्तर पर एक होता है। यह रचनात्मक द्वंद्व है जो प्रत्येक मननशील व्यक्ति में होता है सृजन के क्षणो के पहले की बेचैनी हर रचनाकार में होती है। यह ऐठन तब तक चलती है जब तक सोचा गया, अनुभूत अंश विचार के रूप में न उतरे। कुम्हार की चाक पर चढने के पूर्व माटी के लोंदे सा अस्पष्ट अनुभव रचनात्मक द्वंद्व की सन पर चढकर ही धार पाता है । वैचारिक उत्तेजना, वैचारिक टकराहट से ही उत्पन्न होती है।यह ऊर्जा का क्षरण नहीं, ऊर्जा का विस्तार हैं।

लेकिन ऊर्जा के इस विस्तार मे पाठक कीउपस्थिति भी महत्वपूर्ण होती है। रचना–प्रक्रिया के दौरान पाठक की उपस्थिति का अर्थ अत्यंत व्यापक है। पाठक यहां अकेला नहीं आता अपितु उसके साथ उसका वह सारा ससार भी आता है, जिनके बीच वह जी रहा होता है। कहना न होगा कि पाठक के साथ–साथ स्वय लेखक भी इसी ससार के बीच जी रहा होता है। "क्योंकि कोई जो इस कवि अपने चौतरफा से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। इस चौतरफा की कविता की रचना प्रक्रिया मे मेरी दृष्टि में सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका होती है यही वह तत्व है जो एक कवि की जिज्ञासा होने को विवश करता है।"–२

१– (शंभूगुप्त–लोकधर्मी काव्य भाषा और समकालीन कविता–निष्कर्ष १६–२० पृ०–८६ जुलाई १६६२)

२– (शंभू गुप्त–निष्कर्ष १६–२० जुलाई १६६२ पेज ८६)

मानव जीवन और अनुभव अपने मे जटिल सश्लिष्ट तथा गतिशील प्रक्रिया है। इस अनुभूति को खण्डित होने दिये बिना कविता उसकी पुर्नाचना करती है। और सर्जना का सूक्ष्मतम रूप यह सश्लिष्ट पुनर्रचना भाषिक सरचना या कि काव्य भाषा मे सबसे अधिक सम्भव होती है, बिंब प्रक्रिया से जो अपनी प्रकृति में अर्थ के द्वंद्व को परिचालित करती हुयी भी अर्थ और अनुभव के अहैतकी ओर उन्मुख है।

रचना प्रक्रिया के अंतर्गत सर्व प्रथम विवेच्य विषय हैं काव्यानुभूति परम्परागत भारतीय व पश्चिमी चिंतन दोनों मे इस पर बहुत विचार किया गया है। परिचयी साहित्य शास्त्र मे अवण इस'र विचार प्रस्तुत किाय गया है। परिचयी साहित्य शास्त्र में रचनात्मक अनुभव (क्रियेटिव एक्सपीरिंएस) और रचनात्मक शाति (क्रियेटिव एनर्जी) आदि पक्षों पर बहुत पहले से और बहुत ब्यापक रूप से विचार किया जाता रहा हैं।भारतीय चिंताधारा मे सर्वाधिक बल ग्रहण प्रक्रिया पर दिया गया और इसी दिशा मे काव्य के प्रतिमानो को प्रस्तुत एवं प्रतिष्ठित किया गया। काव्य की लोकोन्मुख एव आदात्यमक प्रकृति के अनुकूल वह था भी। पश्चिम में रचना प्रक्रिया पर सांगोपांग विवेचना स्वय रचनाकारो द्वारा किया गया है। उदाहरण स्वरूप विलियम वर्डस्वर्थ का नाम लिया जा सकता है जिसने अपनी काव्य सृजन की सम्पूर्ण प्रक्रिया को काव्य की अपनी परिभाषा मे ही व्याख्यायित करता चलता है। वर्डस्वर्थ के अनुसार पहले कवि को किसी वस्तु, घटना, क्रिया आदि का इद्रिय बेध होता है।इसके बाद वस्तु के अप्रयक्ष होने पर शाति के क्षणो मे उस भीख पर वह गहन चितन और मनन करता है। इसकी परिणति मन में मूलभाव जैसे भावों के जागरण से होती है।उसकी बाह्य अभिव्यक्ति द्वारा कविता अस्तित्व में आती हैं। उनके अनुसार—

१— काव्य रचना—प्रक्रिया के प्रथम चरण मे भावों का आनायास उच्छलन अथवा उत्प्रवाह होता है।

२— दूसरे चरण में शांति के क्षणों और प्रशांत मनोदशा में उन भावो का अनुस्मरण होता है जो केवल बौद्धिक स्मरण मात्र न होकर मानसिक भावना की क्रिया होती है जिससे प्रशात मनोदशा उदीप्त भाव दशा अस्तित्व मे आती है।

३— इसी भावोद्दीप्त मनोदशा में काव्य की बाह्य अभिव्यक्ति आरम्भ होती है। और भावदशा के साथ उसका विकास होता है।

४— भाव आनंद से पूर्ण, आनंदान्वेष्ठित होते हैं अत इस अवस्था में कवि स्वयं आनन्दाभूति की स्थिति मे रहता है।

५— कवि की यही आनन्दानुभूति काव्याध्ययन द्वारा पाठक मे भी समानान्तर आनंद सृजन का कारण बनती है।

वर्डस्वर्थ काव्य–रचनामे प्रकृति के अनिवार्य महत्व को रेखाकित करते हुए कवि की निश्च्छलता, सच्चाई और ईमानदारी को महत्वपूर्ण तत्व मानता है। स्वय भाव का मोती हुये बिना कोई कवि सफल काव्य का सृजन और सम्प्रेषण नही कर सकता। भावन की तीब्रता को भी वह अनिवार्य मानता है। कविता को सुधारने के लिए वह अधिकाधिक चितन, मनन परीक्षण और पुनर्परीक्षण के महत्व और उपयोगिता को स्वीकार करता है।

रचना प्रक्रिया के संदर्भ में जहां कालरिज का संबध है, उसका मानना है कि अनुभूति, संवेदना और भाव का समन्वय ही कला सृजन का आधार है। कांलरिज का मानना है कि कलाकार के मन मे किन्ही अज्ञात और अनाख्येय करणों से भावान्दोलन होता है। वह अभिव्यक्ति मार्ग का अनुसधान करता है। अभिव्यक्ति के माध्यम से भेद से ही कलाओं मे भेद की स्थितिबनती है। अर्थात् शब्द स्वर और रंग आदि के माध्यम से साहित्य, संगीत और चित्रकल का जन्म होता है। इस प्रकार मध्यम भेद कलाभेद का कारण है। पर चूकि भाव सब मे समान होता है अत वह सबको परस्पर सम्बद्ध करता है। वह अभेद की स्थिति पैदा करता है और कलात्मकता का यही आधार है। भाव के द्वारा उद्बुद्ध अतः प्रेरणा की अवस्था में कलाकार अपने देशकाल से अतीत होने लगता है। निजता और व्यक्तित्व बोध का लोप होने लगता है। और वह कल्पना द्वारा उस आनन्द दशा मे विषय वस्तु रूप और माध्यम के समन्वय या तादात्म्य में प्रवृत्त होता है। अंतः प्रेरणा का यह सिद्धात कला की आत्मिक अनुभूति और तज्जन्य आत्मिक आनंद को रेखांकित करता है।

सर्जन की क्रिया प्रतिभा द्वारा संचालित है। रचना के सृजन के समय प्रतिभा आत्मबोध की स्थिति में न होकर सर्जनात्मक कल्पनाके प्रतिभा आत्मबोध की स्थिति मे न होकर सर्जनात्मक कल्पना के अधिकार में होती है। यही कारण है कि जो अनुभव सामान्य व्यक्ति को प्रभावहीन और अनुभूति हीन छोड जाते है, वही प्रतिभाशाली कलाकार को अद्‌भुत अनुभवो से गुजर कर मरणासन्न बना देते है।कौलरिज के अनुसार काव्य की वस्तु कवि के व्यक्तित्व से पूर्णतः निरपेक्ष, दूरवर्ती होनी चाहिये। यह दूरत्व ही प्रतिभा की पहचान है। इस निर्णय निम्नवता अथवा अवैयक्तिकता से ही कला मे सार्जजनीनता आती है। सार्वजनीन भावों की अभिव्यक्ति के लिए माध्यम अपेक्षित है अतः काव्य मे प्रतीक योजना और व्यंजनावृत्ति यह कार्य सम्पन्न करते है। प्रतीक समन्वय को विशेष में ढालकर अनुभव बनाते है। इसी प्रकार भीख की व्यंजना शक्ति का प्रयोग भाषा की कमजोरियो और अक्षमताओं को दूर करके उउसकी अनन्त और सुन्दर अर्थ सम्पादन की क्षमताओ के बांध खोल देती है। कॅालरिज के अनुसार यह व्यजना को ही विशेषता है कि अच्छी कलाकृति या अच्छा काव्य बार–बारदेखने और बार बर बढ़ने पर भी आहलादित करता है। उससे हर बार नवीन सौन्दर्य, नवीन

आनन्द और नवीन आकर्षण प्राप्त होता है। मैथ्यू अर्नाल्ड मानता था कि कवि का व्यक्तित्व उसकी रचना मे अभिव्यक्ति होता है और उसके व्यक्तित्व के निर्माण मे कवि के जन्म, परिवेश परिवार, मित्र वर्ग जीवन से सबंद्ध छोटी बडी घटनाये, शिक्षा दीक्षा, सफलता विफलता अदि की अन्यतम महत्व होता है । अत किसी भी रचना के मूल्याकन मे उसके रचयिता के युग परिवेश और जीवनी का सम्यक पव्यिय आलोचक को प्राप्त होना चाहिये। तात्पर्य यह कि कवि की रचना प्रक्रिया मे उसके आस पास की वातावरण व कवि की निजी जीवनही सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटकहै। लेवतैलस्ताय रचना और कला तथा उसकी प्रक्रिया की आख्या इन शब्दो मे करते है। जो भावना किसी ने पहले अनुभव की हो, उसे स्वय में जगाना और स्वय मे जगाक मंगिमाओ रेखाओ रगो, ध्वनियो या शब्दों मे व्यजित रूप प्रकारो द्वारा इस भावना को इस प्रकार व्यक्त करना कि दूसरे भी उसका अनुभव करें यही कला की या सृजन की प्रक्रिया है। परन्तु ऐसी अभिव्यक्ति के कलाकृति बनने के लिए वह तीन अनिवार्य शर्तो का प्रावधान करते है–

१– इसमें ऐसी नवीनता होनी चाहिये जो विचार वस्तु को मानवता के लिए महत्वपूर्ण बना दे।

२– वह विचार तत्व इतनी स्पष्टता के साथ अभिव्यक्त हुआ हो कि यह सबकी समझ मे आ सके।

३– और रचना के लिए कलाकार का प्रेरक तत्व कोई बाहरी प्रयोजन या स्वार्थ न होकर अभिव्यक्ति की आंतरिक अनिवार्यता और प्रेरणा हो।

तौलस्ताय मानते थे कि कला या सृजन ऐसी मानवीय क्रिया है जिसमें एक व्यक्ति संचेतन रूप में अन्य संकेतो द्वारा स्वानुभूत भावनाओ को अन्यो के लिए सम्प्रेषित करता है। इस प्रकार दूसरों में भी वे ही भावनायें जागृत होती है और वे भी उनका अनुभव करते है। तौलस्ताय के अनुसार कला मानव जीवन उसके विकास, उसकी प्रगति और उसके कल्याण से सम्बद्ध सामान्य भावनाओं के सूत्र में सबको बाध देने का सर्वोत्तम साधन है। मनुष्य और मनुष्य के बीच एकता की स्थापना का कला से अधिक सार्थक और उपयोगी साधन और दूसरा कोई नही हो सकता है।

अपनी रचनाशीलता को उद्घाटित करते हुए सलियर स्वय को अपने काव्य को कर्मशाला (वर्कशाप) और अपनी आलोचना को उंसका उपजात (बाईप्रेडक्ट) कहता है। अपनी आलोचना को अपने काव्य–सृजन के प्रसंग मे अपने चिन्तन मनन की परिणति और अपने चिन्तन का प्रयास मानता हैं। इसलिए उसका सृजन और समीक्षा अन्योन्याश्रित है। अपनी आलोचनात्मक मे वह 'परम्परा' को बहुत महत्व देता है। परम्परा के जीवंत विकास का ही परिणाम वह मानता है जिससे आत्मनिष्ठ (सब्जक्टिव) अंश स्वत. गौण हो जाता है। और वस्तुनिष्ठ (औबजेक्टिव) के महत्ता एवं प्रमुखता प्राप्त होती है। इसी क्रम में सृजन के निवैयक्तिक होने की शर्त को इलियट ने अनिवार्य माना है, वह कवि

के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति को निरर्थक मानता है। कवि अपने व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति करता ही नही। वह एक माध्यम मात्र है ऐसा माध्यम जिसमें सस्कार और अनुभूतिया विलक्षण तथा अप्रत्याशित रूप मे सयोजित होती है वह ऐसा पात्र हैं जिसमे अनन्त सवेदन वाम्यखण्ड, बिब आदि सचित रहते हैं और तब तक वैसे ही पडे रहते है। जब तक सर्जन का क्षण नही आता। सर्जन का क्षण आते ही वे अपना अपना स्वरूप त्याग कर और नये रूपों मे सयोजित होकर अपना स्वरूप त्याग कर और नये रूपोमे सयोजित होकर कला का विग्रह धारण कर लेते है। इसलिए महत्व कवि के व्यक्तित्व का नहीं है। महत्व उसके भावो या वस्तु गत घटको का भी नही है। महत्व कलात्मक प्रक्रिया की घटको का भी नही है। महत्व कलात्मक प्रक्रिया की तीव्रता का उसके दबाव का है जिसमे विभिन्न भावो का संयोजन या विलपन होता है और वे घुलमिलकर एक हो जाते है। यहा वैयक्तिक प्रज्ञा का महत्व ही है पर व्यक्तिव का नही। वस्तुतः काव्य व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति न होकर व्यक्तित्व से मुक्ति है व्यक्तित्व से पलायन है इसलिए कहता है। व्यक्तिगत भावों का प्रशासन कला नही है वरन् उनसे पलायन कला है। निजता त्याग और निजता का निरन्तर निषेध कवि के सृजन की प्रक्रिया है। कविता लिखने का अनुभव किसी प्रकार का दर्शन (विजन) नही है वरन् यह एक प्रक्रिया है जो कागज पर शब्द सयोजन में विप्रांत होती है जो कागज पर शब्द सयोजन मे विप्रांत होती है। भावो की महानता और तीव्रत नहीं वरन् सृजन–प्रक्रिया के इस दबाव की उत्कटता महत्वपूर्ण होती है जिसके कारण रचना भी उत्पत्ति होती है।

इस प्रकार इति पर की यह काव्य सृजन संबंधी मत अपने पूरे स्वरूप मे नव समीक्षा संबंधी आग्रह से युक्त है जिसने समकालीन रचनाशीलता को भी बहुत ज्यादा प्रभावित किया है। वस्तुतः भावनाओ को आंदोलित करने की जो शक्ति साहित्य में है, वह किसी अन्य माध्यम मे नही। आधुनिक युग मे बौद्धिकता के विकास के साथ–साथ अब मानव जीवन में परिवर्तित दृष्टिकोण का आगमन हुआ। साहित्य ने इस बात को समझा है। आज समाज देश एवं विश्व की बदलती स्थितियो ने मनुष्य काके अपने अस्तित्व के प्रति अत्यधिक सजग बना दिया है। विज्ञान के आलोक में उसका मानस इतना तर्कशील एवं शंकालु हो उठा कि परम्परा से मान्य तथ्यों को भी बिना प्रश्न चिन्ह कराये वह नही रह सकता। जीवन की जटिलतायें एक रचनाकार को आंदोलित कर उसकी रचनादृष्टि में उदत होने लगी परिणामस्वरूप कृति की प्रकृति को पूर्णरूपेण समझने के लिए कवि के अन्त पक्ष अथवा रचना प्रक्रिया के साथ साक्षात्कार, वर्तमान चितन के लिए अनिवार्य हो उठा।

आज लगभग सभी सर्जक एव समीक्षक इस बात से सहमत हैं कि जीनानुभूति एक विशेष प्रक्रिया में कलात्मक अनुभूति में परिणत होती है। अतीत को संवेदना में घोलकर वर्तमान का

सीधा साक्षात्कार करता हुआ रचनाकार सृष्टि का समूचा आत्म स्वीकृत रूप तैयार करता है। सारा सासरिक जीवन जो मूर्तरूप में है, घुट–घुट कर अनुभव बनने की प्रक्रिया में अमूर्त होता रहता है। अनुभव का लैब क्रम आदमी को सत्य के नजदीक लाता है। जिससे अनुभव विशाल होता है। उसका सत्य उतना ही समर्थ होता है।

वस्तुत· कृति का निर्माण भौतिक निर्माण से भिन्न होता है। एक रचना मे सजीव विशिष्टता का अत्यधिक महत्व होता है। एक ईमानदार रचनाकार अपनी मौलिकता के आधार पर भौतिक जीवन की सम्पूर्ण अपूर्णता संतृप्ति को रचना प्रक्रिया मे पूर्णता व सतुष्ट प्रदान करते है। यह सजीव विशिष्टता को आचार्य भामह ने प्रतिभा, व्युप्तत्ति और अभ्यास के साथ जोडकर देखा। वे इन तीनो के काव्य हेतु बताते हैं यानी रचना प्रक्रिया की शर्त। आगे इन्ही हेतुओ की तरह–तरह भीमांसा हुयी लेकिन भीमह का मत खडित न किया जा सका। आचार्य दंडी को छोडकर प्राय सभी आचार्यो ने इन हेतुओ सर्वप्रधान प्रतिभा को ही माना।

यद्यपि काव्य शासत्रियों ने कवि को संदर्भ में ही प्रतिभा का इस्तेमाल किया लेकिन किसी भी विशिष्ट ज्ञान या उपलब्धि मे यह हेतु रूप मे विद्यमान रहती है। हम वैज्ञानिक प्रतिभा, राजनैतिक प्रतिभा, दार्शनिक प्रतिभा आदि प्रायोग बार–बार देखते ही हैं। "असल मे प्रतिभा अंत· शक्ति की विरल और विशिष्ट उद्भावना है। जहां तक कवि प्रतिभा का संबंध है। गहरे संवेदन में अनुभूत करने, प्रतिभा (इमेज) रचने की क्षमता, चीजों और विचारों के अंत· गूढ सहसंबंधो, अंतर्विरोधों या जटिलताओं की पहचान और संप्रेषण की अद्भुत क्षमता वाली अभिव्यक्ति प्रतिभा के लक्षण।"–१ अभिनव गुप्त ने अपूर्ण वस्तु के निर्माण में संक्षम प्रज्ञा को और भट्टोत ने नवोन्मेषशालिनी प्रज्ञा को प्रतिभा कहा है। दोनोंही अपूर्वता, प्रज्ञा और कल्पनात्मक नवसृजन को प्रतिभा मानते है। जाहिर कि प्रतिभा को ईश्वर प्रदत्त मानते हुए भी इन आचार्यों का बल उसके प्रज्ञात्मक स्वरूप पर है। इस तरह सचेतन ज्ञानवृत्ति को कविता के हेतु रूप मे महत्व दिया गया है।

कवि का प्रतिभा होना ही काफी नही है। उसे प्रतिभा को विभिन्न उपादनों से खरा और समृद्ध करना होता है। इसीलिए भारतीय मनीषियों ने प्रतिभा के साथ व्युत्पत्ति और अभ्यास को भी काव्य हेतु मानाहै। ये हेतु एक प्रकार से कविता के उत्पन्न होने समृद्ध होने और अभिवक्ति में परिवर्तित होने को व्याख्यायित करते है। प्रतिभा अंतः शक्ति का स्रोतहै। और रचना का स्त्रोत है। व्युत्पत्ति। प्रेषण और अनुभव ससार का पुनसृर्जन करता है अभ्यास। "यहां सुविधा के लिए वर्गीकरण

---

१ – (कविता की तीसरी आंख– प्रभाकर क्षोत्रिय – पृष्ठ ८८)

भले कर लिया गया हो लेकिन प्रतिभा अभ्यास और व्युत्पत्ति दोनो मे निहित रहती है। कोरा ज्ञान और छद निर्माण व्यग का अभ्यास किसी को कवि नही बताता है। प्रतिभा एक अग्नि है। जिसके बिना दिया, बाती और तेज प्रकाश नही कर सक्ते। परन्तु प्रतिभा की अनवरत दीप्ति के लिए शेष दो उपादानो की जरूरत बनी रहेगी।''—१

प्रतिभा एक चालक की आग है जो बिना किसी ब्राच या आतरिक उत्प्रेरण अथवा सघर्ष के वह ज्वलित नही होती। ''प्रतिभा मे विक्षोभ पैदा करने वाला आघात प्रेरणा है। प्रेरणा कोई देववाणी नही है, वह संसार की घटनाओं प्रभावो और यथार्थ अनुभवो के संघात से उत्पन्न उत्तेजना है जो प्रतिभा को सृजन के लिए भीतर से उकसाती है।यह कोई क्षणिक इलहाम नहीं हैं वह जीवन पर्यत अर्जित घटनाओं और सवेदना का पूंजीभूत रूप भी हो सकती है और एक पूरे कवि के परे काव्य जीवन में संचरित भी हो सकती है। इसके सैकडो प्रमाण हैं। परन्तु प्रेरणा तभी सार्थक हो पाती है जब कि वह रचना मे रूपायित हो और वह रचनामें तभी रूपायित हो पाती है जबकि काव्यानुभूति का रूप ले ले।''—२

प्रेरणा काव्यानुभूति में तब्दील होकर प्रतिभा को केवल उकसाती ही नही रचना के दौरान प्रत्येक पल कवि के साथ रहती है। जिस जगह प्रेरणा रचना का साथ छोड़ देती है रचना निर्जीव औपचारिकता से ज्यादा नहीं रह पाती। श्रेष्ठ कृतित्व को प्रेरणा आर—पार बीधे रहती है। कुछ रचनायें कुछ दूर चलने के बाद या कोई कविता पंक्ति दो पंक्ति चलने के बाद घिसटने लगती है इसका कारण ही यह है कि प्रेरणा ने रचना का साथ छोड दिया। बहुत कम रचनाकार होते हैं जो यह सवाल उठाते हैं कि आखिर रचना ही क्यों? क्यों कि इस सवाल के साथ ही यह सवाल भी उठता है कि साहित्य किसके लिए? उसका प्रयोजन क्या है? और इससे भी कम लोग होते हैं, जो इन प्रश्नो का सही उत्तर समझते हैं। ''यह सवाल हर सही रचनाकार को रचनात्मक शक्ति के वेग के कारण पूछना ही पडता है। यदि वह ऐसा नहीं करता है तो उसकी रचना साहित्य को विकसित नही कर सकती। यह प्रश्न अपने से पूर्व की रचनाओ की प्रासंगिकता से ही सम्बद्ध नही है, बल्कि अपने युग की रचनात्मक शक्तियों की मांग से भी सम्बद्ध है।''—३

और यह बात ही प्रेरणा से सम्बद्ध है क्यों कि साहित्य की मूल प्रेरणा जन ही और इस जन के समूह से बनी समाज ही हो सकता है। क्यों कि इस प्रश्न मे एतिहासिक सामाजिक शक्तियों के दबाव के

---

१ — (कविता की तीसरी आंख प्रभाकर श्रोत्रिय पृ० ८६)

२ — (वही पृष्ठ ६०)

३ — (डा० सत्यप्रकाश मिश्र—मुक्तिबोध का साहित्य: पुनर्विचार के लिए कुछ नोट्स 'पक्षधर'—पृ० ५१)

फलस्वरूप बदली हुयी सामाजिक परिस्थिति के कारण विकसित हुए नये मानव सम्बंधो के सन्दर्भ मे रचना के अर्थ के बदल जाने की स्वीकृति भी है।"–१

"आम राय बनानी है कि रचना तात्कालिक मनोवेग नही होती। उसमे आदमी की सजग मनसा की अभिव्यक्ति होती है।"२

आदमी इतिहास की जनवादी व्याख के अनुसार अपने सस्कार गढ लेता है। वे सस्कार उसे एक नियम का बोध कराते हैं और नियमो मे वस्तुवादी यथार्थ की परीक्षा का ली जाती है।

"रचनाकार अपने मानस मे लबे समय से चलती हुयीइस प्रक्रिया को जाने या समझबूझ न पाये परन्तु यथार्थ जीवन के सम्पर्क के फलस्वरूप रचना कीबीज वस्तुओ उसके मानस मे एक लबे समय एकाग्र होती रहती है। उनमे पारस्परिक क्रिया प्रतिक्रिया होती रहती हैं और एक विशेष उत्तेजक क्षण मे वे एक निश्चित रूप मे ढलकर उसकी रचना या कला मे अभिव्यक्ति होती है।"–३ परन्तु रचना की यह प्रक्रिया अज्ञेय के लिए पूर्ण रूपेण विवेच्य नही होती है। इस सबध मे उनका कथन है कि "रचना की प्रेरणा जिन अभ्यतर तनावो, दबावो, दमन उन्नयन की क्रियाओ से मिलती है। वे जिन गुत्थियों के साथ अभिन्न रूप से सग्रहित होती है, उन्हें कलकार नहीं देख सकता। देख सकता तो वे हल हो जाती। उनमे शक्ति संचय न हो पाता। उनकी शक्ति का रहस्य और प्रतिज्ञा यही है कि वे कृतिकार के लिए रचना–प्रक्रिया पर बल देना आवश्यक हो गया है। वहा पर अपनी रचना–प्रक्रिया के बारे में कोई प्रामाणिक बात नहीं कह सकता।"–४

अज्ञेय के अनुसार सृजन के क्षण मे कवि एक एसी निर्वक्तीकरण की स्थिति मेंपहुच जाता है जहां सर्जनात्मक संभावनायें अनन्त हो उठती है। कवि स्वयं इन समस्त संभावनाओ के प्रति सतर्क नहीं रहता अर्थात कृति में अभिव्यक्ति अधिकांश अवचेतन कीउपज होता है।अज्ञेय विश्लेषण में सामान्य कलाकार की रचना प्रक्रिया की बात करते है। अज्ञेय के अनुसार जहां तक बोध साथ दे सकता है वहां तक किसी कृतिकार की रचना प्रक्रिया का विश्लेषण कर सके यह सर्वथा असम्भव है। इस कठिनाई का कारण बताते हुए अज्ञेय ने कहा है कि यह प्रक्रिया एक तनाव की स्थिति है जो ग्रंथियों के कारण सम्भव है और यदि बोध की किरणें उस ग्रंथि पर पहुंच जायें तो तनाव आता, संश्लिष्टता आदि सर्जना के गुण न आ पाये।

---

१ – (डा० सत्यप्रकाश मिश्र–मुक्तिबोध का साहित्य पुनर्विचार के लिए कुछ नोट्स,'पक्षधर'–पृ० ५१)

२ – (मार्क्सवादी साहित्य चितन – डा. शिव कुमार मिश्र – पृष्ठ ३६६)

३ – (डा० शिव कुमार मिश्र – वही)

४ – (अज्ञेय हिन्दी साहित्य एक आधुनिक परिदृश्य पेज १३५–३६)

वस्तुत जीवनानुभूति और सर्जनानुभूति मे अतर होता है क्यो कि जीवन के यथार्थ कलात्मक अभिव्यक्ति मे कुछ न कुछ अवश्य ही रूपातरित हो जो है। चाहे वे अनुभव से प्रसूत पफैण्टेसी के हो, या ग्रथियो से प्रेति तनाव की स्थितिसे निष्पन्न हो अथवा किसी पूर्व कालिक घटना या अनुभव से प्राप्त विकसित रूप से प्राप्त हों। इस संदर्भ मे मुक्तिबोध का कहना है कि "यह अनिवार्य नहीं कि काव्य की वास्तविक रचना का क्षण युगवाद रूप से हृदय के द्रवण का चित्त की रसात्मकता का भी क्षण हो। हृदय मे सचित प्रतिक्रियाये, अनुभव,आवेश मय अनुरोध, अतप्तरचना शक्तिया जो हृदय मे सचित है। उत्थित तरगित और प्रवाहित होकर सवेदनात्मक उद्‌देश्यो की दिशा मे जब उमडने लगती है साथ ही जीवन दृष्टि से ज्योतित होकर अतन्यो के सम्मुख दृश्यगान होने लगी है तब वस्तुत हमें एस्थेटिक इमोशन प्राप्त होती है।"–१

इन पक्तियों मे जीवनुभूति से सर्जनात्मक अनुभूति का अन्तर अधिक स्पष्ट रूप से लक्षित होता है। मुक्तिबोध ने सर्जनानुभूति की विशिष्टता को उद्‌घाटित करने के लिए ही एस्थेटिक इमोशन की सज्ञा द्वाराउसे भिन्न बताया है। इस प्रकार जीवनानुभूति व्यक्तिगत संदर्भों की होती है फलत अतिरिक्त आवेश, कटुत और तिक्तता से सवलित होती है किन्तु सर्जनात्मक अनुभूति निवैयक्तिक और सयति होती है।

परन्तु अज्ञेय और मुक्तिबोध की निर्वयक्किता मं अतर है। "मुक्तिबोध यह मानते हैं कि व्यक्ति जैसे मनुष्य होता है और उसमे व्यक्ति से मनुष्य और मनुष्य से व्यक्ति बनने की सामर्थ्य बनी रहती है वैसे ही साहित्य मे भी व्यापक मानवीयता की निरतर संभवना रहतीहै। इस व्यापक मानवीयता की वास्तविकता मे सदेह हो सकता है परन्तु मनुष्य की क्रेन्द्रीयता या उसकी सामूहिक संकल्प शक्ति पर संदेह तो समस्त ऐतिहासिक विकास प्रकृति के ही विपरीत है।मनुष्य में अपने से ऊपर उठने की, अपने से परे जाकर सबके लिए कहने की इच्छा या आकाक्षा होती है। वही आकंक्षा साहित्य को मुक्ति बोध के अनुसार साहित्यकता प्रदान करती है। अपनी सभी रचनाओ मे व्यक्तिवादिता चेतना में बदलाव की आकांक्षा रखते रहे।"–२

इसीलिए उन्होंने सवाल उठाया कि रचना ही क्यो ? कला के दूसरे क्षण के विवेचन मे उन्होंने निजत्व से मुक्ति का संकेत किया है। 'व्यकित्वान्तत्ति' होने की प्रक्रिया कला के इस दूसरे क्षण की अनिवार्यता है और बिना इसके रचना केवल प्रतिक्रिया आवेग या कुष्ठा महान होगी। एक अर्थ में टी.एस. इलियर की निवैयक्किता का भी

---

१ – (मुक्तिबोध,'नयी कविता का आत्म संघर्ष' पृष्ठ १६)

२ – डा० सत्य प्रकाश मिश्र, मुक्ति बोध साहित्य पुनर्विचार के कुछ नोट्स', पक्षधर', पेज – ५३)

यही अर्थ में तात्पर्य हैं। परन्तु टी.एस. इलियर की इस धारणा मे उसके सानाजिक परिवेश का वर्गीय चरित्र भी हे। वह निवैयक्तिकता को व्यापक मानवीयता का पर्याय नही मानता है जबकि मुक्तिबोध इस निजत्व बोध को निजत्व मुक्ति केरूप में विश्व मानवता या व्यापकतर सत्ता के बोध का पर्याय मानते है। "मेरा अपना ख्याल है (बहुत से लोग इसे नही मानेगे हो) प्रत्यंक आत्मचेना व्यक्ति को अपनी मुक्ति की खोज होती है। और वह किसी व्यापकतर सत्ता मे विलीन होने मे ही अपनी सार्थकता समझता है। किन्तु आज की दुनिया में यह व्यापक सत्ता विश्व मानवता तथा तत्सबधी मूर्तिमान समस्याये और प्रश्न ही हो सकते है। अतएव प्रत्येक लेखक एक विशेष अर्थ मे इसी उच्चस्तर सत्ता मेकेवल विलीन ही नही होता वरन् वहां विलीन होकर क्रियाशील हो उठता तत्स्थानीय तत्क्षेत्रीय सारे भूगोल इतिहास का आकलन करके। सक्षेप मे मुक्ति व्यापकतथा व्यापकतर क्रिया शीलता का दूसरा नाम है।"–१

टी एस एलियर के आधार पर ही अज्ञेय भी सृजन करने वाले प्राणी और भोक्ता के बीच अंतर मानते है। वस्तुत यह अंतर प्रकारान्तर से शोषको का समर्थक ऐसी पूजीवादी व्यवस्था को अधिमान्यता प्रदान करने वाला है जहां वास्तविक जीवन में अनुभव का अभाव हो परन्तु आत्म प्रत्यक्षता रचना की शर्त हो रही हो। इसीलिए यदि इसका कोई अन्य अर्थ हो तो भी वस्तु सत्य के नकार पर आधारित एक सामाजिक चाल है।

मुक्ति बोध ने सम्पूर्ण रचना प्रक्रिया को तीन क्षणों की क्रमबद्धता में देख है–

१– आत्मचरितात्मक और सृजन शील ये संवेदनात्मक उद्देश्य हृदय मे स्थित जीवन्त अनुभवो को संकलित कर उन्हें कल्पना के सहयोग से उद्दीप्त औरमूर्तिमान करते हुए एक ओर प्रवाहित करदेते है। यह कला क प्रथम क्षण है या कहिये सौंदर्य प्रीतत का क्षण।"–२

२– कला का द्वितीय क्षण तब उपस्थित होता है जब लेखक मेंशब्द सवेदनायें जागृत होकर वह विषय तत्वों को व्यक्ति करने लगता है।" ३ –

३– कला का तीसरा क्षण भाषा भाव के बीच द्वंद्व की है। इन दोनों में प्रतिक्रिया और सघर्ष होता है। वे दोनों को बदलते है। दोनों में संशोधन होता है। (एक साहित्यिक की डायरी)

कला के इन तीनों क्षणों के संक्षिप्त तरीके से मुक्तिबोध एक साहित्यिक की डायरी में उद्घृत करते हुए कहते है। कि "कला का पहला क्षण जीवन की उत्कर तीव्र अनुभव क्षण है–

---

१ – (नयी कविता का आत्म सघर्ष तथा अन्य निबंध पृष्ठ १७६)

२ – (नये साहित्य का सौंदर्य शास्त्र– पृ० १४)

३ – (नये साहित्य की सौंदर्य शास्त्र– पृ० ६५)

दूसरा क्षण, अपने अनुभव का अपने कसकते दुखते हुए मूलो से पृथक हो जाना और एक ऐसी फैंटसी का रूप धारण कर लेना मानो वह फैंरेसी अपनी आखो के सामने खड़ी है।... . तीसरा क्षण है इस फैरेंसी के शब्द द्वद्व होने की प्रक्रिया का अनुभव और उस प्रक्रिया की परिपूर्णवस्था की गतिभरता।''–१

मुक्ति बोध अपने उक्त कथन मे सृजन के विशिष्ट क्षण का विश्लेषण उपस्थित करते विकास की इसी प्रक्रिया में होकर अपने तीसरे क्षण में अभिव्यक्ति के माध्यम से रूपाकार ग्रहण करती है। रचना के बाद अपनी रचना को तटस्थता से देखने के बाद ये क्षण अपना विज्ञान समझाते हैं। वास्तव मे अपने विज्ञान के प्रति समझदार न हो सकने के कारण कलाकार का सृजन सार्थक नहीं रहता। कलाकार की सार्थकता ऐतिहासिक अनुभवो में गूजने, समाज से जुडने सबको समेटने और रचना के विस्तार मे सबकी अभिव्यक्ति करने और अभिव्यक्ति के बाद आतर की पीडा से मुक्ति पाने व मुक्ति के कारण कार्य सम्बन्ध की दधि होने मे है। क्योंकि इस समूचे क्रम को रचना और आलोचना दोनो स्तर पर हमने इतिहास के साथ पाया है। कला का इसके अलावा कोई और मार्ग बेमानी ही है। ''कई बार कला के व्यक्तिवादी समर्थक सामूहिक रूझान में डूबी कला मे रेजीमेन्डेशन का आरोप लगाते है। वास्तव में रेजिमेन्टेशन उस समय रचना में आता है जब रचनाकार में वस्तु जगत के तथ्य का आभ्यतरीकरण नहीं होता। उसकी संवेदना में अनुभवों से घुलमिलकर समूचे उपलब्ध ज्ञान का व्यक्तित्व का अंग नही बना लेता।''– २

जो विचार जीवन के सभी मसलो पर समझदारी की बात करता हो, जो अपने आप मे सम्पूर्ण ऐतिहासिक मनुष्यता की गाढ़ी कमायी होता हो जो उसे रचनाकार कैसे छोड सकता है? कविता जीवन और समाज की खास व्यवस्था की परिकल्पना है उस परिकल्पना से जुड़े उद्देश्य से प्रतिबद्ध है। इसलिए आज की कविताओ की अंतर्धारा मे एक तीखा सघर्ष है, मुष्य की शक्ति के पक्ष में मनुष्य विरोधी शक्तियों के खिलाफ संघर्ष । दरअसल आज की कविता एक तरफ विचार धारा से जुडकर यह प्रमाणित करने मे लगी है। कि शोषक व्यवस्था के दलदल मे फंसी जनता को उबारने में आज उकसी भी एक भूमिका हैं। दूसरी तरफ अपारबयानी और कलात्मकता के अतिरिक्त बोझ दोनों से बचकर यह कविता रचना शीलता की अपनी चुनौती स्वीकार करती है। मुक्ति बोध भी यथार्थ जीवन के परे अच्छी कविता की कल्पना नहीं करते। उनके अनुसार ''कवि केवल रचना प्रक्रिया में पडकर की कवि नहीं होता वरन् उसे वास्तविक जीवन मे अपनी आत्मसमृद्धि का प्राप्त करना पड़ता है और

१ – (मुक्तिबोध एक साहित्यिक की डायरी पृष्ठ १६)

२ – (डा. कमला प्रसाद 'दरअसल' पेज– ३८)

मनुष्यता के प्रधान लक्ष्योसे एकाकार होने की क्षमता को विकसित करते रहना पडता है।"१ सार्वजनिकता से विच्छिन्न होकर, वैयक्कि राग द्वेष की सकीर्णता मे सकुचित होकर कला लक्ष्य नष्ट हो जाती है। क्यो कि कला सम्पूर्ण मानवता से अपना उपजीव्य ग्रहण करउसके विकास और परिष्कार की स्थितिया उत्पन्न करती है।वस्तुत सर्जनात्मक अनुभूति की निर्वेयक्तिा की इस भाव भूमि पर अवतरित होना, व्यापकता की सम्भावना को शामिल करता है।

निर्वयैक्तिकरण की इसी अनिवार्य स्थिति के स्पष्ट करते हुए मुक्तिबोध अन्यत्र कहते हैं कि "विश्व संघर्ष की पार्श्व भूमि में व्यक्ति स्थिति को रखकर अंतर वाह्य वास्तविकताओंसे प्रेरित जो लक्ष्य चित्र सर्विभूति होते हैं वे भव्य प्रेरणाओं को उत्सर्जित करते है।"–२

इन वक्तव्ययों के आलोक मे इतना स्पष्ट है कि कविता निरा आत्म निवेदन नहीं है। वह केवल किसी व्यक्ति विशेष अथवा सर्जक की वैयक्तिक प्रतिक्रिया मात्र नहीं है बल्कि यह एक प्रकारकी अव्यक्तीकरण की स्थिति है। इसी स्थिति मे कवि अपने सीमित व्यक्तित्व को ब्यापक व्यक्तित्व के साथ जोडता है। अज्ञेय ने इसका रास्ता परम्परा के प्रति समर्पित होने में बताया है। जबकि डा. राम स्वरूप चतुर्वेदी ने अह को मुक्ति में । वास्तव मे अह से मुक्ति का भी अभिप्राय वयं की स्वीकारोक्ति ही है। सामंथी करण अथवा सार्वजनिकता में परम्परा अनिवार्य रूप से विद्यमान रहती है। जब व्यक्ति सम्माजिक परिवेश मे अपना आत्म विस्तार करके अपने समस्यीकृत रूप मे समाज की अविच्छिन्न कड़ी बनता है, तब वह परम्परा के साथ जुड जाता है। क्यो कि परम्परा समाज के बीच उस अंत. सलिला धारा की भांति प्रावध्यान रहती है जो अविराम गति से सामाजिक संस्कृति को सिंचित करते हुए उसे जीवन शांति प्रदान करती रहती है। समाज यह कहना बहुत बडी बेमानी होगी जिनमें कहा जाता है कि साहित के विषय मे दुनिया के अन्य प्रसंगों से रहकर बात की जानी चाहिये। परन्तु इस तरह की विचार धारा कलावादियों की जीवन को कविता से बहिष्कृत करने की एक सोची समझी साजिश है। जीवन का कविता से गहरा लगाव है, अब यह बहस का मुद्दा नहीं है और इसलिए इस तरह की तमाम कोशिशें अपने स्वरूप में इसीलिए मनुष्य विरोधी है।

व्यक्त्तिव विलयन अथवा विर्वयैक्तिकरण की जिस दिशा पर इनता बल दिया जा रहा है उसका सूक्ष्म परीक्षण नितांत आवश्यक है। ध्यान से देखने पर ज्ञात होता है कि निवैयक्किता के अतिवादी स्वरूप को स्वीकार करने वाले उसे अपना अनुभवाधृत कथन भले मान लें, किन्तु इसे आत्यंतिक प्रक्रिया के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। यह प्रक्रिया अतिवादी रूप में न ले तो

१ – (मुक्ति बोध 'नयी कविता का आत्म संघर्ष' पृष्ठ २८)

२ – (मुक्तिबोध: 'नयी कविता का आत्म संघर्ष' पेज– २५)

सर्जना की ओर से स्वीकार की जा सकती है। और न ग्रहण की ओर से । "क्योंकि विश्व की कब तक ऐसी कोई भी ऐसी कृति नही है जिसमे कर्ता व्यक्तित्व न झाँकता हो।"–१

कवि व्यक्तित्व ही वह भेदक तत्व है जिससे विभिन्न लोगों की कृतियो की पहचान की जाती है। अनेक बार एक ही विषय पर विभिन्न कवियो द्वारा लिखी जातीहैं किन्तु उनका प्रभाव भिन्न–भिन्न स्तरो पर भिन्न–भिन्न रूपो में पडता है। यह अतर कवि के व्यक्तित्व से ही आता है। इस सबंध मे कहा जा सकता है कि यह व्यक्तित्व वस्तु या विषयगत नहीं होता, शांलीगत है। अत. सर्जनात्मक अनुभूति के निवैयक्तिक होने की अभिप्राय यथावत एवं अक्षत हैं यह प्रसंग भी रचना प्रक्रिया की है जिसमे अनुभूति स्वतत्र न होकर रचना की प्रक्रिया मे रहती है। जैसा कि रामस्वरूप चतुर्वेदी कहते हैं।" सृजन द्वैत से अद्वैत की प्रक्रिया मे से होता है जहा अनुभूति उत्तरोत्तर सशिलष्टता होती जाती है। प्लेटो ने जिसे नैतिकता के उत्साह अतिरेक में कला की यथार्थ से तिहरी दूरी कहा वह वस्तुत यथार्थ की तिहरी संश्लिष्ट परत हैं। अनुभव को बटते जाने मे रचना असंभव होती है।"–२

एक दृष्टि से देखने पर यह बात समझ में आ जाती है कि सृजन के क्षणों में व्यक्तिगत का विलयन सम्भव है। मुक्तिबोध यह कहते हैं कि सर्जनात्मक अनुभूति के अनुरूप फैरेंसी कीनिर्माण होता है और तीसरे क्षण मे फैरेंसी अपने अनुरूप अभिव्यक्त उपकरणो द्वारा रचतः व्यजित हो जाती है। इस सम्भावना को ध्यान में रखते हुए देखा जाय तो स्पष्ट होगा कि व्यजना की इस प्रक्रिया में शैली के सभी अभियंजक उपकरण तो उसमे समाहित हो ही जाते है। ऐसी दशा मे व्यक्तित्व की सर्जनात्मक अनुभूति में ही समाहित होना असम्भव नही है। डा. रघुवंश का भी मानना है कि अनुभूति वही सर्जनात्मक है जा कलात्मक माध्यम के साथ ही उभरे। उनके अनुसार यदि अनुभूति में सृजन की क्षमता होती हैं तो वह सहज ही कलात्मकि माध्यमो को खोज लेगी अथवा बिना कलात्मक माध्यमो के अभिव्यक्त ही नहीं हो पायेगी।

कवि स्पष्ट भी है और अनुकर्त भी; वह सृजन भी करता है, आत्माभिव्यक्ति भी, पर साथ ही उसमें अनुकरण का तत्व भी रहता है क्यों कि जो वस्तुयें पहले से विद्यमान हैं उनके सादृश्यं पर वह नयी सृष्टि करता है। वह सृजन प्रक्रिया का वाहक है जिसमें अनुभवका अनुभूतिमे बदलना और अनुभूति का कविता बनने की लंबी प्रक्रिया की वह दृष्टा होता है।

---

१ – (डा राम जी तिवारी 'स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी समीक्षा में काव्य मूल' पेज ६६)

२ – (डा० राम स्वरूप चतुर्वेदी 'आलोचना' जु० सि० ६७ पेज– ८६)

****

अध्याय १ – २४०६५–७

'अनुभव, विचार और अनुभूति'

साहित्य संवेदनशील रचनाकार की जीवन और जगत के प्रति रागात्मक और वैच प्रतिक्रिया का परिणाम है समजा और प्रकृति से लेखक अनुभव सचित करता हैं उस अनुभव को सजग और सचेत होकर कलात्मक रूपात्मक अनुभूति मे बदलता है और अंत मे उस "अनुभूति अभिव्यक्ति की इस सम्पूर्ण प्रक्रिया मे जीवन का बोध और रागात्मक संबधो की खोज तथा पह प्रकट होती है। अनुभव की व्याप्ति इन्द्रियानुभव से लेकर चिंतन मनन तक है।"–१

मनुष्य विचारशील प्राणी है, इसी कारण वह अधिक सवेदनशील और अनभूतिशील में व्यापकता और गहराई होती है।अनुभूति के तीन सोपान है।

१– संवेदन

२– अनुभव

३– भावना।

भावना मे संसर्ग, स्मृति, अनुभव और विचार का संयोग होता है। रचनाकार सचेतन अनुभ तथा शेष का सयोग होता है। रचनाकार सचेतन अनुभूति तथा शेष सृष्टि के साथ रागात्मक वैचारिक संबंध के बोध को ही रचना के आधार भूत तत्व के रूप मे ग्रहण करता है। लेखक अनुभूति के विस्तार का अर्थ है उसकी चेतना प्रगति और विस्तार तथा चेतना के विस्तार का अर्थ है आत्म चेतना का लोक जीवन और लो चेतना के द्वंद्व और समाहार से ही उसकी 'मानवीय चेतना' अधिक गहरी होतीहै। कला सृजन रचनाकार का मूल चित्त जो संस्कार और नवीन अनुभवों का सम्पुंज है और निर्माण चित्त संस्कार और अनुभवों को कलात्मक स्वरूप प्रदान करता है, दोनों की सक्रियता व्यक्त होती है। ए रचनाकार के मानस में संस्कार और अनुभव का द्वंद्व और तनाव सदा वर्तमान रहता है और ज लेखक इस तनाव की प्रक्रिया उसके स्वरूप और कारण को पूर्णतः समझता है, वहीं आत्म संघर्ष माध्यम से । "२

समाज की संघर्षशील चेतना की व्यजना में सक्षम होता है। "जो कवि अपनी चेतना रागांश और बोधाश में संतुलन कायम नहीं रख सकते। वे ही भवुकताा के शिकार होते है। भावुकत में भाव प्रतिगामी होत है, अनुभूति अवैज्ञानिक होती है और यथार्थ बोध का अभाव होता हैं। काव्य

१ – ('शब्द और कर्म'-मैनेजर पाण्डे – पृष्ठ ४८)

२ – ('शब्द और कर्म'-मैनेजर पाण्डे – पृष्ठ ४८–४६)

रचना मे विरोध बौद्धिकता और भावुकता मे होता है बौद्धिकता और रागात्मक अनुभूति मे परस्पर विरोध नही होता। कविता मे ज्ञानात्मक सवेदना और सवेदनात्मक ज्ञान का सयोग ही उसे शक्ति और गति प्रदान करता है। भावुकता की अधिकता के परिणाम स्वरूप कविता मे अनुभूति की अभिव्यक्ति न होकर अनुभूति का वर्णन होने लगता है।" इसके लिए कला मानवीय सवेदना की क्रिया है वह व्यक्ति चेतना की संवेदनशीलता की देन है मानव की मानवीयता को जागृत और परिष्कृत करने की क्रिया का परिणाम है। व्यक्ति चेतना अपनी सामाजिक क्रियाशील अस्तित्व के अनुरूप बनती है।चेतना मानव के चेतन अस्तित्व और उसके क्रियाशील व्यक्तिव के अतिरिक्त कुछ भी नही है। इसलिये लेखक सम्पूर्ण मानव व्यक्तित्व की चेतना के संघर्षशील विकास की गति और दिशा को पहचानने का प्रयत्न करता है। लेखक समाज मे केवल दर्शक ही नही सहभोक्ता भी है इसलिए दर्शक का ज्ञान और भोक्ता की संवेदना के सायेग से ही कवि की चेतना निर्मित होती है।कविता की आत्मपरक वस्तुनिकता मे ही निर्वेयक्तिकता होती है। कला मानव में जीने की कामना और जीवन की समस्या केवल 'व्यक्ति' की समस्या नही है बल्कि वह मानव की क्रिया है। व्यापक मानवीय रचनाशीलता की भी व्याख्या होनी चाहिये। मानव की रचनाशीलता उसकी सामाजिक क्रिया शीलता में व्यक्त होती है। इसलिए कवि की रचनाशीलता का संबंध मानव की सामाजिक क्रिया शीलता से है। कविता रचना ही नहीं सम्प्रेषण भी है, इसलिए उसके विश्लेषण की परिधि मे सम्पूर्ण मानव व्यक्तित्व या मानव का सामाजिक व्यक्तित्व भी है। अगर लेखक समाज की संघर्षशील चेतना का सवाहक और मानव मुक्ति का अर्थ है समाज में मानवीय संसार और मानवीय संबंधों की वापसी और स्थापना। यहीं कारण है कि मानव मुक्ति का प्रश्न वैयक्तिक नहीं, सामाजिक है।

मानवींय अनुभूति और समसामयिक सामाजिक यथार्थ के संवेदनशील बो से सम्युक्त रचना ही सार्थक होती है। साहित्य मे यथार्थवाद सामाजिक जीवन की सतत विकासशीलता में विश्वास और जनचेतना के अनुभवपूर्ण अभिव्यक्ति के विकसित होता है। समाज के यथार्थ के प्रति लेखक की प्राय चार मन· स्थितियां दिखाई देती है। एक मनःस्थिति वह है जिसमे कलाकार इस जगत को अवास्तविक मानकर किसी सुखद दुनिया की कल्पना करता है और उस काल्पनिक दुनिया में रहने का प्रयत्न करता है। दूसरी मनःस्थिति का कलाकार इस जगत् को सामान्यतः गम्भीरता से नही ग्रहण करता है, बल्कि वह उसके सतही रूप और छिछलेपन पर व्यंग्य करता है हंसता है। तीसरी मनःस्थिति का कलाकार समाज की विकृतियों और विडम्बनाओ की दुखद अनुभूति के व्याकुल होता है। और इसके भीतर की खोई हुई सच्चाई और अच्छाई की खोज का प्रयत्न करता है। एक चौथी मनःस्थिति ऐसी भी होती है जिसमें कलाकार यथार्थ के स्वरूप का सम्यक बोध प्राप्त कर समाज की

वास्तविकता को पहचानकर उसे तोडकर एकनवीन मानवीय समाज की रचना की क्रातिकारी प्रेरणा देता है। लेखक के निर्माणोन्मुख ध्वंस मे सामाजिक जीवन की विकास शीलता मे आस्था निहित होती है जीवन और यथार्थ के प्रति सुधारवादी समझौतावादी और क्रातिकारी ये तीनो दृष्टिकोण सम्भव है। समाज के यथार्थ से ऊबने , उसमे डूबने , सहने, उससे समझौता करने और उसे तोडकर नवीन सृजन की प्रेरणा देने की विभिन्न वैचारिक तथा भावात्मक जीवन दृष्टियो के अनुरूप ही किसी रचनाकार की रचना का स्वरूप निर्मित होता है। जाहिर है कि निराशावादी, समझौतावादी या सुधारवादी लेखक जनता की संघर्षाशीलता को कुठित और दिग्भ्रमित करते है। प्रत्येक युग की सवेदनशीलता और यथार्थ बोध के स्वरूप मे भी परिवर्तन होता है। मानवीय यथार्थ के अतर्गत केवल मानव का सामाजिक भौतिक अस्तित्व ही नही है बल्कि उसके रागात्मक और वैचारिक सम्बध भी है। काव्यालोचन मे किसी एक कविता मे व्यक्त यथार्थ के रूप उसकी बोध प्रक्रिया कवि की चेतना और यथार्थ से उसके सबध के स्वरूप की खोज अनिवार्य है। "कला की सामाजिकता या प्रयोजन शीलता का आग्रह नही है बल्कि वह कला के आधारभूत तत्व जीवनानुभव बोध प्रक्रिया रचना प्रक्रिया और अभिव्यक्ति के साधनो के स्वरूप में निहित है। कोई लेखक यह कहकर अपने अन्तर्मन से ही सवाद करने लगे तो उसकी रचना असामाजिक होने के कारण निश्चय ही अर्थहीन होगी।"–१

एक रचनाकार तो अपनी संवेदना के धरातल पर ही स्पंदन महसूस कर सकता है और स्पंदनशीलता की अभिव्यक्ति ही उसकी रचना के कलात्मकमूल्य को निर्धारित करती है। व्यक्ति की वे प्रतिक्रियाए जो उसे अन्य व्यक्तियों से जोडती है अथवा सघर्ष का रूप ले लेती है अनिवार्यतः इस प्रकार की स्पदन शीलता की विकृतिका सूचक मान ली जाती है। इसके अलावा इस प्रकार के चिन्तको द्वारा यह सवाल भी नहीं उठाया जाता कि रचनाकार की स्पंदन शीलता अथवा अनुभव क्षमता कैसे निर्मित होती हैं। आम तौर पर यही मान लिया जाता है कि यह प्रकृति की ऐसी देन है जो कुछ व्यक्तियो मे मुखर रूप मे विद्यमान रहती है और केवल ऐसे व्यक्ति ही कलाकृतियों की रचना कर सकते हैं। यहां यह समझाने की कोशिश भी नही की जाती है कि विभिन्न व्यक्तियो की संवेदनाओं और अनुभव क्षमताओ का रूप भिन्न भिन्न कैसे हो जाता है और वे अपनी अभिव्यक्ति के लिये अलग–अलग माध्मय क्यो चुनते है। विभिन्न रचनाकारों की काव्यानुभूति बुनावट को प्रकृति की उस रहस्यमय लीला का अग मान लिया जिसे हम चकित मुदित होकर देखते रह जाते है समझ नहीं सकते। यदि कुछ अनुभववादी चिन्तक यह स्वीकार भी कर ले कि सामाजिक परिवर्तनों के साथ काव्यानुभूति की बुनावट में भी कुछ फेर बदल हो जाता है तो भी वे यह जानने का प्रयास नहीं करते

१ – (ओम प्रकाश ग्रेवाल साहित्य और विचार धारा) पृ० ६६

कि सामाजिक परिवर्तनों की वास्तविक प्रक्रिया क्या है और काव्यानुभूति की बुनावट उनपरिवर्तनों के साथ–साथ कैसे बदलती है। इन चिन्तको का आग्रह है कि इन सवालो को उठाते ही एक साहित्यिक चिंतन के क्षेत्र मे बाहर कदम रख देते है। रचना के कलात्मक और ज्ञानात्मक मूल्यों को एक दूसरे से अलग अलग करने देखने के अधिकाश प्रयास के मूल मे इस प्रकार की हरस्यवादिता अवश्य छिपी रहती है।

इन चितकों की राय में किसी रचना का कलात्मक मूल्य इस बात से निर्धारित नहीं होता कि वहा क्या कुछ कहा जा रहा है अथवा आस–पास के जीवन के बारे मे हमें कितने तथ्यो से अवगत कराया जा रहा है, बल्कि हमे यह देखना होता है कि वहा रचनाकार ने अपनी सवेदना पर बाहरी जीवन के पडने वाले आधातों को कितनी प्रामाणिकता के साथ शब्दबद्ध किया है। कलात्मक दृष्टि से श्रेष्ठ रचना हम उसे कहेगे। जहा रचनाकार अपने भोगे हुये यथार्थ को बिना किसी व्यवधान के पाठक तक सम्प्रेषित कर देता है। यदि रचनाकार सायास अर्जित जानकारी अथवा आकडों का सहारा लेने लगता है तो इसका सीधा मतलब इन चिंतकों की नजरो में यही होगा कि या तो उसके पास किसी जीवंत अनुभव का आधार ही नही है या फिर उसे अपनी अनुभव की सच्चाई में विश्वास नही है। इसमत के अनुसार वास्तव मे विश्वास नहीं है। इस मत के अनुसार वास्तव में एक शुद्ध साहित्यिक रचना मे कोरी जानकारी की मात्रा शून्य के बराबर होनी चाहिये और उसकी कलात्मकता उस अनुभव की गहराई और जीवन्तता के अनुसार आंकी जानी चाहिए जिसमें रचनाकार हमें शब्दों के माध्मय से भागीदार बनाना चाहता है।

व्यक्ति की प्रतिक्रियाओं की काट–छांट करके उन्हें व्यक्ति निष्ठ एवं निष्क्रिय संपन्दनों में परिवर्तित कर डालने के अलावा अनुभव की इस परिकल्पना के अंतर्गत हमारी सभी प्रतिक्रियाओं में बौद्धिक शक्तियों का जो योगदान होता है उसकी भी अवहेलना की जाती है। समाज में जीने वाले किसी भी प्रौढ व्यक्ति के अनुभव में उसकी बुद्धि और विश्लेषण शक्ति अनिवार्य रूप में विद्यमान रहती है और उसकी भावनाओं को उभारने अथवा उन्हें दिशा प्रदान करने में उसकी बौद्धिक शक्ति की निर्णायक भूमिका होती है। हमारा अनुभव केवल शुद्ध ऐन्द्रिक भावों और आस पास के संसार की सामाजिक जीवन को निर्धारित करने वाली मुख्य शक्तियों की कम ज्यादा प्रखर पहचान हमेशा विद्यमान रहती है और इस पहचान के आधार पर हमारी भावनाओं का स्वरूप और उनकी दिशा बहुत हद तक ततय होते है। भावनाओं और बुद्धि को एक दूसरे से अलग करके हम भावनाओं को केवल उस स्थूल और यांत्रिक रूप में ही देख पाते हैं जो समाज के प्रभुता सम्पन्न तत्वों द्वारा संस्कारों के रूप में हम पर थोप दी जाती है। और जिन्हें हम निष्येष्ट रूप से आत्मसात कर लेते हैं या फिर उन्हे

ऐसी मूलभूत जैविक प्रवृत्तियो के रूप मे देखने लगते है जो किंचित सतही फेर बदल के बावजूद सर रूप मे आदिम काल से मानव स्वभाव की कच्ची सामग्री बनी चली आ रही है। ऐतिहासिक विकास ने मानव अनुभव मे जो आयाम जोडे है। उन्हें इस प्रकार के चितन में लगभग पूरी तरह नकार दिया जाता है। सामाजिक जीवन मे व्यक्ति को अपनी भूमिका के फलस्वरूप उसके व्यक्तिव का कैसे निर्माण होता है इसे भी समझ पाने की सम्भावना तब नही बची रहती कोई भी व्यक्ति अपने विकास के प्रत्येक चरण मे बुद्धि और भावना दोनो के माध्मय से अपने आस–पास के जीवन के साथ उलझता रहता है और इस प्रकार अपनी क्रियाओ द्वारा ऐसी समझ उत्पन्न करता है जो उसके तब तक के अनुभव के सारतत्व को लक्षित करती है। इसी समझ के आधार पर उसका वक्तित्व आगे विकास पाता है और इसी समझ के माध्यम से वह अपने नये पुराने अनुभवों को एक दूसरे से जोडता चलता हैं 'ज्ञान' के हमारा तात्पर्य वास्तव मे इसी 'समझ' अथवा 'पहचान' से होना चाहिये जो व्यक्ति को अपने समूचे अनुभवो के फलस्वरूप प्राप्त होती है। इस समझ में बुद्धि और भावनाएं दोनो ही अभिन्न रूप से विद्यमान रहती है। एक व्यक्ति के अतर जगत और वाह्य जगत मे जितनी तीव्रता और व्यापकता होगी उतनी ही प्रौढता उसकी समझ मे दृष्टिगोचर होगी। जब हम रचना के ज्ञानात्मक मूल्य को उसके अदर पायी जाने वाली रचनाकार की व्यक्ति और समाज के बारे में इस प्रकार की समझ के रूप मे देखने लगते हैं तो यह स्पष्ट हो जाता है कि उसका कलात्मक मूल्य उसके ज्ञानात्मक मूल्य के भिन्न नहीं हो सकता।

ज्यो–ज्यों किसी समाज में वर्ग संवर्ग तीव्र होता है वहा जनवादी कवियों के दृष्टिकोण का सुस्पष्ट होना और उनकी भावनाओं का प्रखर होना एक ही प्रक्रिया के विभिन्न पक्ष है। यदि किसीरचनाकार में भी बिखराव अथवा शिथिलता होगीऔर यदि भावनाओं के स्तर पर वह चोट महसूस नहीं करता अथवा केवल सतही हलचल महसूस करता है तो इसका मतलब है किह उसकी चिंतन पद्धतिमें भी कुछ समझौतावादी भ्रान्तिया अथवा विकृतियं विद्यमान है। ऐसे समय मे यह विशेष रूप से स्पष्ट हो जाता है कि रचना में पायी जाने वाली 'समझ' की कमजोरी से उसका कलात्मक मूल्य एकदम घट जायेगा। विचारशीलता यहीं अपनी भूमिका अदा करती है।

प्रत्येक सात्यिकार एक वर्ग विशेष के दृष्टिकोण को अपनाकर ही तत्कालीन जीवनप परिस्थितियो को समझने का प्रयास करता है अच्छा साहित्यकार सभी वर्ग गत पक्षपातों से ऊपर नहीं उठ पाता। बल्कि अपने समय के सबसे अधिक प्रगतिशील वर्ग का पक्षधर होता है वह सामाजिक जीवन की गतिविधियों से कट कर नही बल्कि उनमें पूरी गम्भीरता एवं सक्रियता के साथ शामिल होकर ही कुछ उच्च नैतिक आदर्शों की स्थापना करता है। प्रगतिशील वर्गों के पक्षधर के रूप में

तत्कालीन परिस्थितियों से साक्षात्कार करके ही वह इन आदर्शो का निर्माण करता है उनकी रचना से अनुबद्ध होने वाले ये आदर्श तत्कालीन परिस्थितियो की केवल उपज ही नही भी इंगित करते है।एक समूह का अंग बन जाने से साहित्यकार के अनुभव की विशिष्टता अथवा मूर्तता नष्ट नही होती बल्कि उसके इस प्रकार के निर्णय से तो वह और भी पुष्ट हाते है बशर्ते कि उसने अपने आपको प्रगतिशील वर्ग के बशर्ते कि उसने अपने आपको प्रगतिशील वर्ग के सामूहिक सघर्षों के साथ जोडा हो। व्यक्तिगत स्वतंत्रता और समूह गत आग्रहो के विरोध की बात उठा कर हम अक्सर मानवीय स्वतंत्रता की आवश्यक शर्तो से ध्यान हटा देते है। व्यक्ति की स्वतत्रता का सवाल वास्तव में शोषक उत्पीडक वर्ग के अध्निायकत्व को समाप्त करने के सवाल के रूप जुडा हुआ है। शोषण रहितसमाज की स्थापना के लिये किये जाने वाले सामूहिक संघर्ष मे शामिल होना लेखक की स्वतत्रता की आवश्यक शर्त है।

किसी भी अनुभव को समझाने अथवा प्रेषित करने के लिए एक निश्चित चितन पद्धति की विशेषताए अथवा दृष्टिकोण को अपनाना पडता है। जडता और यान्त्रिकता सभी चिंतन पद्धतियो की नहीं केवल गैर द्वद्वात्मक और भाववादी बुर्जुवा चिंतन पद्धातियो की विशेषताएं है। एक सुस्थिर दृष्टिकोण और चिंतन पद्धति के आधार पर जो निष्कर्ष और नान्यताए उभर कर आती है उन्हे कुछ समय के बाद एकदम निरर्थक मानने लगना अनुचित होगा। किसी भी समय पर वस्तुस्थिति को सम्पूर्णता में समझाने के प्रयास पूर्ण संचित शक्तियों और निष्कर्षो का महत्वपूर्ण योगदान होगा यद्यपि परिस्थितियो के बदले हुए स्वरूप को पहचानने के लिए हमें अपनी बौद्धिक क्षमता और संवेदना से निरन्तर काम लेते रहना पडेगा ' एक वर्ग से संबंध रखने वाले लोगो की सामूहिक समझ अकेले व्यक्ति की समझ से अधिक प्रखर और व्यापक होगी। इस 'समझ' के ज्ञानात्मक और संवेदनात्मक पक्षों को ध्यान में रखते हुए हम इसे मुक्ति बोध के शब्दो मे 'सवेदनात्मक ज्ञान' भी कह सकते है।

****

अध्याय २ – २खण्ड-क

अनुभूति और विचार का सम्बन्ध और आधुनिक सम्वेदना का रूपायन

कविता जीवन के बहुविध आयामो से गुजरते हुए अनुभूत सत्यो की कलात्मक अभिव्यक्ति है । स्थूल यथार्थ को सौंदर्य देती और कलारूप को प्रस्थापित करती कविता प्रत्यक जीवनानुभव को लचीला और व्यापक बनाने की कोशिश करती है । वह एक क्रूर तर्कशैली की जगह एक समानान्तर आत्मीय तर्कशक्ति आविष्कृत करती है जो प्रायः अमूर्त होती हुयी भी, हद दर्जे तक विश्वसनीयता और प्रमाणिकता हासिल करती है । कविता जीवनानुभवो की व्यापक साझेदारी है । जीवन तो सब जीते हैं पर सबको उसका बोध नही होता । "एक रचनाकार उस जीवन को भोक्ता ओर साक्षी दोनो होता है । वह रचता भी है और जीता भी है । रचनाकार जिंदगी से सीधे टकराता है तथा अपने मन और वस्तुजगत् के सम्पर्क से प्राप्त अनुभवो को रचना का रूप देता है । अपनी रचना का कथ्य वह जीवन यथार्थ से ग्रहण करता है किन्तु समूचा जीवन यथार्थ उसका कथ्य नहीं होता । रचनाकार इतिहास बोध और सास्कृतिक परम्परा के आधार पर निर्मित अंतदृष्टि से विकास की सही दिशा मे होते परिवर्तन, गत्यात्मक यथार्थ से एक हिस्से का चयन करता है ।"–१
अपने परिवेश से गहरी सम्बद्धता और उसमे हो रहे परिवर्तनो का सतत पर्यावलोकन कवि को अनुभव समृद्ध बनाता है और उसकी अनुभूति को तीव्र । समाज और प्रकृति से लेखक जो अनुभव सचित करता है, उस अनुभव को वह सजग और सचेत होकर कलात्मक रूपात्मक अनुभूति मे बदलता है और अत में उस अनुभूति को वह भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त करता है । अनुभूति और अभिव्यक्ति की इस प्रक्रिया मे जीवन का बोध और रागात्मक सम्बन्धों की खोच तथा पहचान प्रकट होती है । अनुभव की प्राप्ति इंद्रियानुभव से लेकर चिन्तन मनन तक है । एक रचनाकार सचेतन अनुभूति तथा शेष सृष्टि के साथ रागात्मक एवं वैचारिक सम्बन्ध के बोध को ही रचना के आधारभूत तत्व के रूप मे गृहण करता है । "लेखक की अनुभूति के विस्तार का अर्थ है उसकी चेतना की प्रगति और विस्तार तथा चेतना के विस्तार का अर्थ है आत्मचेतना का लोकजीवन और लोकचेतना से संयुक्त होना ।"–२ कलाकार की आत्मचेतना और लोकचेतना के द्वन्द्व और समाहार से ही उसकी 'मानवीय चेतना' अधिक गहरी होती है । कला–सृजन मे "रचनाकार का 'मूल चित्त' जो संस्कार और रवीन अनुभवों का सम्पुंज है, और निर्माण चित्त जो संस्कार और अनुभवों को कलात्मक स्वरूप प्रदान करता है।

---

१ – नन्दकिशोर आचार्य–रचना के सरोकार पृ०

२ – (मैनेजर पांडे – शब्द और कर्म पृ० ४८)

दोनो की सक्रियता व्यक्त होती है ।''–१

एक रचनाकार के मानस मे संस्कार और अनुभव का द्वन्द्व तथा तनाव सदा वर्तमान रहता है और जो लेखक इस तनाव की प्रक्रिया, उसके स्वरूप और कारण को पूर्णत. समझता है, वही आत्मसघर्ष के माध्यम से समाज की सघर्षशील चेतना की व्यजना मे सक्षम होता है । असल मे लेखक का रचना दायित्व और उसका सामाजिक दायित्व दोनो एक दूसरे मे घुले मिले होते है । वह अपनी रचना के प्रति जितना प्रतिबद्ध होता है उतना ही अपने चारो ओर की जिन्दगी के प्रति भी । अन्दर और बाहर के दोनो ही ससार उसके भीतर एक हो जाते है । अन्दर की अपेक्षा यदि लेखक को एक प्रकार के सस्ते प्रचार की ओर ले जाती है तो बाहर की अपेक्षा उसे एक प्रकार के कलावाद की ओर ।' यह छद्म है । लेखक छद्म नही होता । वह दृश्य जगत् के बीच चीजो को देखते हुए उनके आपसी सम्बन्धों की छानबीन करते हुए, उनकी तुलनात्मक पहचान करते हुए विकसित हुआ करता है । अपने समय की वास्तविकताओ का भोमृा और साक्षी होने के कारण लेख की रचना अपने समय का महत्वपूर्ण साक्ष्य होती है जो रचना अपने समय के लिए सच नही होती वह किसी समय के लिए सच नहीं होती । लेखक का रचना दायित्व और सामाजिक दायित्व दोनो एक दूसरे मे घुले मिले होते है । निर्यात–विवेक ही लेखक की ईमानदारी है । समकालीन वास्तविकताओं के प्रति जागरूक ईमानदारी ही लेखक का दायित्व है और यही जन संघर्ष में उसकी सक्रिय भूमिका भी । यही उसकी ईमानदारी की पूर्णता है जो रचना और रचनाकार की दूरी समाप्त करती है । यही उसका अनुभूतिपरक होना होता है ।

आज का जीवन जटिल हो गया है स्पष्ट है हमारा अनुभव संसार भी जटिल होगा ही । आज के अनुभव की जटिलता परिवेश की जटिलता है । आज का व्यक्ति जिस परिवेश मे जी रहा है उसमें उसकी मानसिकता पर उसका सर्वाधिक प्रभाव है । परिवेश का स्वरूप आज बाहर ही नही आतरिक भी हो गया है । हमारा अनुभव है कि हम किसी विशिष्ट स्थिति में भी अपने चेतना–स्तर पर विभिन्न प्रकार के अनुबोधों से आक्रान्त रहते है । किसी एक समस्या पर सोचते हुए विभिन्न प्रकार की मनोदशाओं से गुजरते है । हमारे वस्तु तथा व्यक्ति के सम्बन्ध आज इतने जटिल हैं कि उनकी एकांगी अभीव्यक्ति संभव नही है । वस्तुतः जानने की बहुआयामी धारणा के चलते अनुभव की तीव्रता को उसकी सम्पूर्ण चेतना से महसू किया जाता है । रचनाकार की कल्पना एवं दृष्टि के सन्निवेश में जो उत्परता से अभिव्यक्ति के लिए छटपटाता है वही कलानुभव होता है । प्रत्यक्ष अनुभव जब भावो और मनः स्थितियों के रूप में परिवर्तित होकर कल्पना के सयोग से पुनः तिग्म

---

१ – (मैनेजर पांडे – शब्द और कर्म पृ० ४८)

अनुभव मे परिवर्तित होता है तभी वह मूल्यवान होता है जैसा कि महीप सिह कहते हैं। "किसी सार्थक रचना के लिए प्रामाणिक अनुभव की ही नही, बल्कि रचनागत विषय मे दृष्टि और कल्पना की गहराई के साथ उतरने की भी जरूरत पडती है ।"–१

इसमे संदेश था कोई कारण नही है कि रचना नें कल्पना और दृष्टि का योग महत्वपूर्ण है । साहित्य मे अनुभूति का महत्वपूर्ण स्थान है । उसका प्रामाणिक होना भी आवश्यक है अन्यथा वह निरर्थक होगी । किन्तु इसकी प्रामाणिकता क्या हो, यह एक बडा प्रश्न है । अज्ञेय का कहना है "मेरा आग्रह रहा है कि लेखक अपना अनुभूत ही लिखे।"–२

नये रागात्मक सम्बन्धों से उत्पन्न मानवीय अनुभूति ही आज के कविता का प्रमुख तत्व है । मुक्तिबोध कविता मे भाव के महत्व को स्वीकार करते हुए भावों की सामाजिकता की ओर भी संकेत करते है । उनके अनुसार भाव मानव प्रसंगो के बीच पैदा होते है और जिस प्रकार मानव प्रसंग उलझे हुए होते है उसी प्रकार भावो मे भी जटिलता होती है । लक्ष्मीकात वर्मा ने नयी कविता के मूल्यांकन के प्रतिमानों की प्रस्तावना करते हुए "अनुभूतियो के प्रति ईमानदारी और भावनाओं में मानवीय वेदना' जैसे मानदण्डो की चर्चा की है ।"–३

विजय देव नारायण साही जीवन में भोगी गयी सभी अनुभूतियो को काव्य के विषय के रूप में स्वीकार नहीं करते । वे केवल विशिष्ट अनुभूतियों को ही काव्य विषय के रूप मे स्वीकार करते हैं । तीसरे अप्रक के वमृत्य के अंतर्गत अपने पच्चीस शीलो का विवेचन करते हुए चौदहवे शील के अंतर्गत वे कहते है – "जो मैने भोगा है वह सब मेरी कविता का विषय नहीं है । कविता का विषय वह होता है जो अब तक को भोगने की प्रणाली मे नही बैठ सकता है । हर कलाकृति ठोस, विशिष्ट अनुभूति से उपजती है और उसका उद्देश्य अनुभूति की सामान्य चोटियों को नये सिरे से परिभाषित करना होता है । परिभाषा विशिष्ट और सामान्य मे सामंजस्य का नाम है, बिना सामंजस्य के भोगने मे समर्थ होना असम्भव है ।" –४

साही के अनुसार काव्य विषय विशिष्ट अनुभूतियों के द्वारा ही उपलब्ध होते है । कवि अधिक संवेदनशील होने के कारण विशिष्ट एवं तीव्र अनुभूतियों के द्वारा आन्दोलित हो उठता है । यहां पर उसके जीवन की पारम्परिक प्रणाली में – जो उसने भोगा है – एक प्रकार का अतर और

---

१ – (हिन्दी कहानी : दो दशक की यात्रा – डा० महीप सिह – पृ० १६)

२ – (शरणार्थी भूमिका पृ० २)

३ – (नयी कविता के प्रतिमान–पृष्ठ ६६)

४ – (विजय देव नारायण साही – 'तीसरा सप्तक' पृष्ठ ४६३)

व्यतिक्रम उपस्थित हो जाता है । परम्परा से पोषित उसका विश्वास आदोलित हो उठता है । ''अपनी नयी दृष्टि से उत्पन्न अनुभूति के आधार पर साही प्रत्येक पुरानी मान्यता को नये परिवेश के परिप्रेक्ष्य मे देखने लगता है और नयी दृष्टि के अनुसार पुरानी मान्यता को परिभाषित करता है क्योकि "वह विशिष्ट अनुभूति बदल नही पाता है । तक तक बेचैन रहता है, जब तक परिभाषा को बदल नही देता ।'' अनुभूति की विशिष्टता को महत्व देते हुए साही विषय की यथार्थपरकता के सिद्धात का समान रूप से समर्थन करते है । वास्तविक अनुभूति के अभाव मे शब्दाडम्बर और कृत्रिम अनुभूति वाली कविता के सृजन को वे पाप मानते है । उनके द्वारा प्रतिपादित अनुभूति की विशिष्टता भी उसकी सार्थकता और मानवीय अनुभूतियों की तीव्रता मे है । उनकी स्पष्ट घोषणा है कि "सार्थकता बराबर तप नहीं, शब्दाडम्बर बराबर पाप ।'' कविता मे अनुभूति को काव्य तत्व के रूप मे विशेष प्रतिष्ठा मिलती है किन्तु यह पूर्ववर्ती काव्यानुभूति से अपनी बनावट और बुनावट मे भिन्न है और इसकी भिन्नता का आधार है सवेदना का बौद्धिक आधार यह बौद्धकता कविता की अतित्भिभावुकता तथा आवेश को नियत्रित करती है । इसीलिए कुँवर नारायण ''कविता को यथार्थ के प्रति एक प्रौढ प्रतिक्रिया की मार्मिक अभिव्यक्ति मानते है ।''–१

आधुनिक कविता की अनुभूति बौद्धिक संवेदनाओ की ही उपज है अत· उसमे उलझाव और तनाव है तथा इसमे ॅअनेक स्तर है फलत कविता के अनुभूति का क्षेत्र भी अत्यन्त विस्तृत तथा व्यापक है । नेमिचंद्र जैन के शब्दो मे ''अनुभूति की विविधता तथा विस्तार और उसकी स्वीकृति ही आज की हिन्दी कविता की विशेषता और उसका नयापन है ।''–२

कविता में कश्य की यह विविधता और व्यापकता अपनी विलक्षण अनन्यता से विस्मित और विमोहित करती है । यह कहना की समस्य नयी कविता भावात्मक सौदर्य से विभूषित है, मिथ्या होगा । साथ ही यह कहना भी असंगत एवं भ्रांतिपूर्ण होगा कि बौद्धिकता संकुल नयी कविता में अनुभूति सौदर्य का अभाव है । छायावादी कल्पना विलास के स्थान पर नये कवियो ने यथार्थ का सीधी साक्षात्कार किया है । विगत के गौरवगान और अनागत के मोहक स्वप्नो में न डूबकर नये कवि वर्तमान से सबस हुए है और उन्होने उसकी विभीषिका को पूरी सच्चाई के साथ अभिव्यक्त किया है । केवल कोमल, भव्य, उदात्त और रमणीय मे ही सौंदर्य को न देखकर जीवन के सम्पूर्ण रूप की प्रमाणिक अनुभूति और बेबाक अभिव्यक्ति आधुनिक कविता की सौंदर्य चेतना का नये आयाम देती है । अनुभूति एवं कथ्य की यह अभूतपूर्व नूतनता 'नयेपन' के प्रति अतिरिक्त मोह के कारण नहीं प्रत्युत,

---

१ – (तीसरा सप्तक – पृ० १४६)

२ – (बदलते परिप्रेक्ष्य – पृ० १०८)

परिवर्तित परिस्थितियो और आधुनिक बोध की अनिवार्य परिणति है । आज का कवि अनुभव की प्रामाणिकता के प्रति विशेष रूप से सचेत है । उन्होने इसे काव्य रचना के लिए प्राथमिक अनिवार्यता स्वीकारा है । 'अनुभूति की सच्चाई नयी कविता की अग्रिम विशेष्ता है । वह अनुभूति क्षण की हो या थाल की, सामान्य व्यक्ति की हो या पुरुष विशेष की, आस्था की हो या अनास्था की, अपनी सच्चाई में यह कवि के लिए नही जीवन के लिए भी अमूल्य है । नये कवि की मान्यता है कि जीवन का सत्य, व्यक्ति की छाप से युक्त होकर ही काव्य का सत्य हो सकता है ।' और कवि का सत्य वही होता है जो उसमे अनुभूति जगा सके । नयी कविता में यथार्थ अनुभवो के प्रति कवि की अटूट निष्ठा है । उसने युगीन चेतना को उसके अनावृत्त रूप मे व्यक्त किया है । यदि जीवन ही पुरुष और विसंगतियो से भरपूर है तो वह उस कल्पना या शब्दाम्बर का आवरण न बनकर उसकी निर्याज अभिव्यक्ति करता है क्योकि "कृतिकार का उद्देश्य केवल अनुभव का सप्रेषण है।"–१

परन्तु अनुभव का यह सप्रेषण अपने स्वरूप में आज का जीवन जटिल हो गया है स्पष्ट है हमारा अनुभव संसार भी जटिल होगा ही । आज के अनुभव की जटिलता परिवेश की जटिलता है । आज का व्यक्ति जिस परिवेश मे जी रहा है उसमे उसकी मानसिकता पर उसका सर्वाधिक प्रभाव है । परिवेश का स्वरूप आज बाहर ही नही आतरिक भी हो गया है । हमारा अनुभव है कि हम किसी विशिष्ट स्थिति में भी अपने चेतना–स्तर पर विभिन्न प्रकार के अनुबोधो से आक्रान्त रहते है । किसी एक समस्या पर सोचते हुए विभिन्न प्रकार की मनोदशाओ से गुजरते है । हमारे वस्तु तथा व्यक्ति के सम्बन्ध आज इतने जटिल हैं कि उनकी एकागी अभीव्यक्ति संभव नही है । वस्तुत जानने की बहुआयामी धारणा के चलते अनुभव की तीव्रता को उसकी सम्पूर्ण चेतना से महसू किया जाता है । रचनाकार की कल्पना एवं दृष्टि के सन्निवेश में जो उत्परता से अभिव्यक्ति के लिए छटपटाता है वही कलानुभव होता है । प्रत्यक्ष अनुभव जब भावो और मनः स्थितियों के रूप मे परिवर्तित होकर कल्पना के संयोग से पुनः तिग्म अनुभव मे परिवर्तित होता है तभी वह मूल्यवान होता है जैसा कि महीप सिंह कहते हैं "किसी सार्थक रचना के लिए प्रामाणिक अनुभव की ही नही, बल्कि रचनागत विषय में दृष्टि और कल्पा की गहराई के साथ उतरने की भी जरूरत पडती है । इसमें संदेश था कोई कारण नही है कि रचना में कल्पना और दृष्टि का योग महत्वपूर्ण है ।

साहित्य में अनुभूति का महत्वपूर्ण स्थान है । उसका प्रामाणिक होना भी आवश्यक है अन्यथा वह निरर्थक होगी । किन्तु इसकी प्रामाणिकता क्या हो, यह एक बडा प्रश्न है ।

---

१ – (अज्ञेय – भवन्ती पृ० – ८०)

परन्तु अनुभव का यह संप्रेषण अपने स्वरूप मे करता है प्रामाणिकता के सबध मे रिचर्डस यह भी मानते हैं कि यह आवश्यक नही कि कवि की अनुभूति यथार्थ योग के पश्चात ही प्रामाणिक होती है। वे मानते हैं कि कवि अपनी कल्पना के माध्यम से जिन स्थितियो से साक्षात्कार करता है वे भी प्रामाणिक ही होती है। यहा पर रिचर्डस यथार्थ माग से अधिक यथार्थ के आत्म साहित्यकार के महत्व देता है। एफ़आर लीपिस के अनुसार 'ईमानदारी' से यह अभिप्राय है कि कवि अपनी वास्तविक अनुभूति की मानवीय समझदारी के साथ अनुकल भाषा मे चित्रण करे। उसमे भावातिरेक न हो क्यो कि भावातिरेक की स्थिति में रचनाकार वास्तविकता से दूर हो जाता है और उसकी ईमानदारी कम हो जाती है। यानी कविता मे सम्प्रेषण के स्तर पर 'ईमानदारी' का अपना खास महत्व है और यह ही कविता का खास गुण भी है। अनुभूति की प्रामाणिकता के साथ अनुभूति ईमानदारी की तरह आज लगातार किया जा रहा है। रघुवीर सहाय ने अनुभूति के सदर्भ मे ईमानदारी की चर्चा करते हुए उसी एक व्यापक गुण के रूप में स्वीकार किया है। उनके अनुसार "ईमानदारी का मतलब यही है कि वस्तुओ का वास्तविकता और उनके अंतर्विरोधो को समझाकर उसकी व्यंजना को आत्मसार करने का एक अनवरत प्रयत्न किया जाय।"–१

वे ईमानदारीको को बौद्धिक स्तर का पर्याय मानते हैं। उनके अनुसार "ईमानदारी वास्तव मे एक मौलिक गुण है और उस स्तर का पर्याय है जिस पर आकर हमारा तर्क पूर्वग्रह और व्यक्तिगत रुचि से ऊपर उठ जाता है और जिस पर आभार हमे वस्तुओं की वास्तविकता सही अनुभव होता है वह उस चेतना के पहले की चीज है जो ज्ञान को क्षेत्रोमे विभाजित करती है जैसे ज्ञान समस्त एक है वैसे ही ईमानदारी भी समस्त एक हैं। क्यों कि वह केवल लेनदेन की एक निधि नहीं है, एक मनोवृत्ति है या दृष्टिकोण हैं । (वही पृष्ठ ५२) इसमें ईमानदारी को चेतना क स्तर पर अविभाजित रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। इसमें बुद्धि और हृदय में विभाजित करके ईमानदारी को समझने का प्रयत्न नहीं किया गया और साथ ही ईमानदारी का सम्बंध वास्तविकता से भी जोडा है। रघुवीर सहाय ईमानदारी के लिए बौद्धिक जागरूकता को भी अनिवार्य मानते है। उनके अनुसार जहां तक लेखक का संबंध है ईमानदारी का मतलब यही है कि वह उस बौद्धिक विफलता को लेकर जिए और उसे अस्वीकार न करे जो ज्ञान उसे दे जाता है और जो उसकी अनुभूति को सुधार जाती है।(वही पृ० ५४)

रघुवीर सहाय के इस विवेचन से स्पष्ट है कि ईमानदारी स्वय सिद्ध नहीं है, उसके लिए प्रयत्न जरूरी है। इस प्रकार अनुभूति की ईमानदारी में वास्तविकता के बोध पर भी बल दिया गया

---

१ – (लिखने का कारण– पृष्ठ ५५)

है। "रघुवीर सहाय ने 'ईमानदारी' मे वास्तविकता के बोध पर ही बल दिया गया है। रघुवीर सहाय ने 'ईमानदारी' की व्याख्या मे प्रमाणिकता का जिक्र कही नही किया है। डा नामवर सिंह के शब्दो मे "ईमानदारी समझदारी का दूसरा नाम है" रघुवीर सहाय की 'ईमानदारी' और 'ईमानदारी के बाद' की टिप्पणियों मे अनुभूति पर पूरा बल है, उसमे 'प्रमाणित अनुभूति' और 'अनुभूति की प्रामाणिकता जैसे बड़े पारिभाषिक शब्दो के बीज इन वक्तव्यो मे ढूढ भले ही लिए जाय किन्तु तथ्य यही है कि इन शब्दो का निर्माण बाद में हुआ जब नयी कविता का शास्त्र बना।' जिसका पहल दुर्भाग्यपूर्ण प्रयास लक्ष्मीकात का ग्रथ है नयी कविता के प्रतिमान।" –१

नामवर सिंह आगे कहते हैं कि "अनुभूति की ईमानदारी मूल्यो की मर्यादा को निखारती है किसी भी रचना के लिए अनुभूति की गहराई और ईमानदारी का अपेक्षित है न कि आवरण की पूरी मर्यादा और उसकी सकीर्णता। यहा यह बात ध्यान देने योग्य है कि अनुभूति की गहराई के साथ–साथ अनुभूति की व्यापकता भी आवश्यक होती है और अनुभूति की गहराई अनुभूति की व्यापकता पर ही निर्भर करती है। इस सबंध मे डा. नामवर सिंह ने लिखा है कि "अनुभूति की गहराई हर हालत मे अनुभूति की व्यापकता से निर्धारित होती है। व्यापकता का तिरस्कार करके जो लेखक गहराई लाने का दम भरता है दरअसल वह संकीर्णता के अधरूप से पडता है । उसकी अनुभूति का अर्थ सकुचित होता है और गहराई उथली होती है' –२

उनके अनुसार यह व्यापक मानवीयता की व्यापक भूमि, व्यापक परिवेश का बोध और अन्तर्वयमित्क सामाजिक संबधो के उद्घाटन पर निर्भर है। अनुभूति की जटिलता और तनाव के प्रश्नों को नामवर सिंह उठाते हुए कहते हैं कि अनुभूति की जटिलता का कारण आंतरिक वृत्तियो का वैविहय नहीं है वरन परिवेशगत द्वद्व का बोध है। इसी के अभिव्यक्ति में तनाव आता है। उन्ही के अनुसार "कथ्य – कथन के बीच द्वद्वात्मक संबंध है जिसे विरोधपूर्ण एकता की संज्ञा दी जा सकती है। जाहिर है इस विरोध पूर्ण एकता की भूमि पर कविता की स्थिति कही भी हो सकती है। किन्तु अंतत: यह स्थिति ही मूल्यांकन का आधार बनती है। कविता ने भाषा के स्तर पर इस विरोध पूर्ण एकता का तनाव चरम सिंह दिशा में जिस सीमा तक व्यक्त होता है उस सीमा तक कविता मूल्यवान होती है।" – ३

१ – (नामवर सिंह – कविता के नये प्रतिमान पृ० २००)

२ – (इतिहास और आलोचना पृ० १६)

३ – (नामवर सिंह – कविता के नये प्रतिमान पृ० ११९)

काव्यानुभूति के सन्दर्भ मे अनुभूति की ईमानदारी ही पर्याप्त है उसकी सच्चाई भी जरूरी है अनुभूति की यह सच्चाई वास्तविकता के बोध से निर्मित होती है। केवल अनुभूति की आत्मनिष्ठता से नही। अनुभूति की ईमानदारी सिर्फ आत्मनिष्ठा तक ही सीमित नही है। बल्कि उसमे यथार्थ बोध भी शामिल है। जैसा कि मुक्तिबोध ने लिखा है – "व्यक्तिगत ईमानदारीका नारा देने वाले लोग, असल मे भाव या विचार के सिर्फ सबसेमित्व पहलू केवल आत्मगत पक्ष के चित्रण को ही महत्व देकर उसे 'भावसत्य' आत्मसत्य की उपाधि देते है। किन्तु भाव व विचार का एक आब्जेक्टिव पहलू अर्थाथ वस्तुपरक पक्ष होता है आजकल लेखन कार्य में आत्मपरन के पक्ष को महत्व देकर वस्तुपरक पक्ष की उपेक्षा की जाती है। चित्रण करते समय आत्म परक पक्ष को प्रधानता दी जाती है वस्तु परक पक्ष को नही।" – १ इस प्रकार मुक्तिबोध अनुभूति की ईमानदारी की चर्चा करते समय इस आत्मपक्षीय दृष्टि को नाकामी मानते हुए उसे वस्तुपक्ष से भी जोडते है।

---

१ – मुक्तिबोध (एक साहित्यक की डायरी पृ० १३३)

''''''''''''''

अध्याय २ – 'खण्ड-ख'

यथार्थ की सवेदना और सवेदना का यथार्थ

जब हम यथार्थ की सवेदना कहते हैं तो यह एक 'वास्तव' को उत्घाटित करने मे हमारे अनुभूतियो को प्रकाशित करने के ढग से जुडा होता है। जब हम यथार्थ से सवेदित होते हैं तो वह हममे उसी रूप मे खुलता है जिसकी रचनात्मक परिणति बाद को सृजन के क्षणो मे होती है। वस्तु· सत्य के प्रति ब्यक्ति की दृष्टि का फैलाव उसे जानने के लिये होता है। वस्तु सत्य को ठीक–ठाक जानना और उसे पूर्णता से समझना हमारी अपनी यथार्थवादी दृष्टि का परिचायक होता है। किसी चीज के बारे मे उसे समझने के क्रम मे जैसे – जैसे हम उस वस्तु या परिस्थिति के समीप पहुँचते हैं वैसे – वैसे ही हम उसे ज्यादा जानने का दावा भी कर सकते हैं। यह करना हमारी अपनी मानसिक क्षमता व विश्लेषित करने की योग्यता पर निर्भर करता है कि हम उस विशिष्ट वस्तु या परिस्थिति को किस प्रकार से देखते हैं।

जब हम चीजो को यथातथ्य वर्णित करते हैं तो वह हमारी यथार्थ दृष्टि का परिचायक होता है। किसी एक घटना को देखना तत्पश्चात उसे अपनी रचना का विषय बनाना हमारी यथार्थवादी दृष्टि का परिचायक तो है परन्तु यथार्थ वास्तव मे वही नही है क्योंकि चीजो को यथातथ्य उभारना अभिधात्मक होना होता है। यह अभिधात्मकता वस्तु या परिस्थिति को देखने की शर्त तो पूरी करता हैपरन्तु रचनात्मकता का आधार यहीं नही बनता । यह सिर्फ दृष्टि देता है , शुद्ध रचनात्मक अवदान नही बनता , रचना की पृष्ठभूमि अवश्य प्रदान करता है। यहाँ रचनाकार उस देखे हुये को ब्यक्ति सापेक्ष होकर पुनः विचार करता है । तो यहाँ यथार्थ की संवेदना बनती है।

यथार्थवाद का वास्तविक सम्बन्ध फ्रेंच यथार्थवादी स्कूल से है। इसका प्रथम प्रयोग० सन् १८३५ ई० मे आदर्शवादी विचारधरा मे विश्वास करने चालों के विरूद्ध एक चिन्तन प्रक्रिया के रूप मे हुआ। बाद मे सन् १८५६ ई० मे एक पत्रिका 'रियलिज़्म' की स्थापना के इसका प्रयोग साहित्य मे होने लगा। १८८५ में ही क्लावेयर का प्रसिद्व उपन्यास "मैडम बावरी" प्रकासित हुंआ। इस प्रकार यथार्थवाद का एक आन्दोलन के रूप में सही विकास हमें १८५० ई० के बाद से दिखाई देता है। जिसमें यह आंदोलन विविध धार्मिक , राजनीतिक, वैज्ञानिक समाजशास्त्रीय एव अर्थशास्त्रीय कारणो से एक पूर्ण आंदोलन के रूप में जनता के सम्मुख आया।

जीवन की सच्ची अनूभूति यथार्थ है पर इसका कलात्मक अभिव्यक्ति-करण यथार्थवाद है। दोनों में भेदक रेखा खींचना कठिन है यथार्थवाद विविध मानव अनुभवों के पूर्ण एवं सत्य चित्रण पर

बल देता है। चूकि यथार्थवाद का प्रयोग आदर्शवादी और 'रोमारिसिज्म' (स्वच्छन्दतावाद) के विरोधी अर्थों मे किया जाता है अत. जो साहित्यकार मानव जीवन एव समाज का सम्पूर्ण वास्तविक चित्र उपस्थित करता है और अपने साहित्य का वास्तविक काल्पनिक ससार से न लेकर वास्तविक ससार से लेता है, उसे ही हम यथार्थवादी लेखक कह सकते है। यथार्थवादी कलाकार असम्भाव्य और अद्‌भुत को प्रकृति–विरुद्ध मानकर अपनी रचनाओ में उन्हे कोई स्थान नही देता। इस तरह जहा यथार्थवाद एक दृष्टि से आदर्शवाद को भी अस्वीकार करता है।

आर०एल० स्टीवेन्सन के अनुसार 'यथार्थवाद' का प्रश्न साहित्य मे मुख्यत. सत्य से अल्पाश भी सबध नही रखता य बल्कि उसका सबध केवल रचना की कलात्मक शैली मात्र से है। " जब कि कजामियां के अनुसार" यथार्थवाद साहित्य मे एक शैली नही बल्कि एक विचारधारा है।" १ " फलावेयर वस्तुगत दृष्टिकोण और जीवन को सामान्य पक्षो के महत्वपूर्ण उद्‌घाटन को यथार्थवाद की विशिष्टता मानता है।"२

यथार्थवाद के संबंध मे प्रेमचन्द का मत है कि यथार्थवाद चरित्रो को पाठक के सामने उनके यथार्थ नग्न रूप में रख देता है। जो इससे कुछ मतलब नहीं कि सच्चत्रिता का परिणाम बुरा होता हैं या कुचरित्रता का परिणाम अच्छा। उसके चरित्र अपनी कमजोरियों और खूबियां दिखाते हुए अपनी जीवन लीला समाप्त करते है। और चूकि संसार मे सदैव नेकी का फल बद नहीं होता, बल्कि इसके विपरीत हुआ करता है, नेक आदमी धक्के खाते हैं, यातनायें सहते हैं, मुसीबते झेलते हैं, अपमानित होते है उनकों नीकी का फल उल्टा मिलता है। प्रकृति का नियम विचित्र है।" डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते हैं"– कला क्षेत्र में यथार्थवाद ऐसी एक मानसिक प्रवृत्ति है जो निरन्तर अवस्था के अनुरूप परिवर्तित और रूपायित होती रहती है।३ श्री नन्द दुलारे बाजपेयी के मत से " यथार्थवाद वस्तुओ की पृथक सत्ता का समर्थक है। वह समिष्टि की अपेक्षा व्यष्टि की ओर अधिक उन्मुख रहता है। यथार्थवाद का संबंध प्रत्यक्ष वस्तु जगत से है।"४ यथार्थवाद साहित्य की एक विशिष्ट ,चिन्तन पद्धति जिसे अनुसार कलाकार को अपनी कृति में जीवन को यथार्थवाद रूप का अंकन करना चाहिए। यह दृश्टिकोण वस्तुतः आर्दशवाद का विराधी माना जाता है पर वस्तुतः जो आर्दश उतना ही यथार्थ है। जितनी की कोई भी यथार्थवादी परिस्थिति जीवन में अदर्शवाद की कल्पना दुष्कर है। किन्तु अपनें परिभाषिक अर्थ मे यथार्थवाद जीवन की समग्र परिस्थितियों के प्रति ईमानदारी का दावा करते हुए भी प्रायः सदैव मनुष्य की हीनताओं तथा

---

1 Cazamian - A Histroy of English Lıterature .
2 Dictionary of world literature - P- 335
३ हजारी प्रसाद द्विवेदी – विचार और वितर्क– पृ० ६५
४ नन्द दुलारे बाजपेयी – आधुनिक साहित्य – पृ० ४२०

कुरूपताओ का चित्रण करता है। यथार्थवादी कलाकार जीवन के सुन्दर अश को छोडकर असुन्दर अशका अकन करना चाहता है। यह एक प्रकार से उसका पूर्वग्रह है।"१

मैनेजर पाण्डेय की दृष्टि मे यथार्थ का अर्थ अनुभव के सम्पूर्ण यथार्थ से है। केवल वस्तु जगत ही नहीं बल्कि मानव के अनुभूति जगत और चितन जगत का भी समावेश है। इसी बात का मद्देनजर रखते हुए मुरलीमगहर प्रसाद सिंह कहते है देखने की बात यह है कि यहा यथार्थ हमरी चेतना से स्वतत्र अपनी सत्ता नही रखता। इस यथार्थ में अनुभव और चितन भौतिक अस्तित्व की अधारणा पर सार्त्र गोल्डमान और ग्राम्शी ने बार–बार कितना तीखा प्रहार किया है। गोल्डमन ने तो इस तथाकथित यात्रिक रुझान की उत्पत्ति लेनिन की रचना भौतिकवाद और अनुभव सिद्ध आलोचना मे देखी है। गोल्डमान की दलील है कि वस्तुपरक विश्व की यह मार्क्सवादी लेनिनवादी अवधारणा विषय विषयी संबंध की द्वद्वात्मक प्रकृति की अवहेलनी करती है और मनुष्य के विश्वबोध के क्रांतिकारी प्रभाव के अस्वीकार करती है। इस सम्पूर्ण विवाद मे ग्राम्शी का वक्तब्य सशोधन वादियो की गुत्थी को सामने ले जाता है ऐसा प्रतीत होता है कि तत्वमीमसा परक भौतिकवाद में 'वस्तुपरक' का अर्थ है ऐसी वस्तुपरकता जो मनुष्य से स्वतत्र होकर भी रह सकती है। पर अगर कोई यह वमृव्य दे कि मनुष्य का अस्तित्व का लोप हो जाने पर भी यथार्थ की अस्तित्व रहेगा तो समझाना चाहिये कि ऐसा वक्तव्य देने वाली व्यक्ति चाहे तो आलोकिक ढग से अपनी बात कह रहा है या किसी न किसी किस्म के रहस्यवाद में फंस रहा है। हम यथार्थ को मनुष्य के साथ उसके संबंध मे ही जानते है और चूंकि मनुष्य ऐतिहासिक रूप से बदल रहा है, अतः ज्ञान और यथार्थ भी बढ रहे हैं ।

हिन्दी काव्य विकास को विश्लेषण से इस निष्कर्ष पर पहुचा जा सकत है कि हिन्दी कविता की जातीय चेतना लोकमंगल की चेतना है। परिस्थितियों के प्रभाव और व्यक्तियों के स्वभाव के अनुसार कभी–कभी इस मूल चेतना में विक्षेप होता रहता है और कविता की गति सीधी रेखा के थोडा इधर या उधर यथार्थवाद को न समझने के कारण ही उत्पन्न हुयी है। यथार्थवाद वास्तव मे वस्तुओं के यथा तथ्य चित्रण पर नहीं, अपितु सत्यानुभूति से प्रेरित चित्रण पर बल देता है।

यहां यथार्थवादी और प्रकृतवादी कलाकारों कीं इष्टि भेद का संकेत प्रासंगिक होगा। यथार्थवादी के लिए जीवन का यथार्थ महत्वपूर्ण हैं उसमें पात्रः और स्थिति के गुण अवगुण अपने यथावत रूप में चित्रित होते हैं इसके विपरीत प्रकृत वादी इस धारणा से सचालित होता है कि मनुष्य अन्य पशुओं से किसी भी रूप में भिन्न नही है। जोला ने निर्भीकता पूर्वक स्वीकर किया है किप्रत्येक साहित्यकार का यह कर्तव्य है कि वह जीवन के विश्वासिनी यथार्थवाद चित्रो को चित्रित करे चाहे वे

---

१ डा० राम स्वरूप चतुर्वेदी – हिन्दी साहित्य कोष – पृ० ५१०

कितने ही बुरे एवं भ्रष्ट हों। फ्लाबेयर पहला व्यक्ति था जिसने साहित्यकारों से मांग की कि वे दैनिक जीवन के छोटे छोटे एवं नगण्य चित्रों को अपनी कला द्वारा साहित्य के उच्चस्त पर चित्रित करें।

ऐतिहासिक दृष्टि से 'प्रकृतवाद' यथार्थवाद के बाद का आंदोलन है। जोला के लेखों में इसकी सर्वोत्म व्याख्या उपलब्ध होती है। जोला,हापमैन, ड्रेजियर और फैरेल आदि प्रकृतवादी विवादों का दृष्टिकोण निराशावादी भौतिकवादी और नियतवादी था। ये प्रकृति और समाज की ऐसी बाह्य ओर आंतरिक शक्तियों पर विशेषरूप से दृष्टिगत करते थे जो मानव स्वतंत्रता के लिए बाधक और उसके विवेक एवं नैतिक उत्तदायित्व की संकीर्णता से अवरुद्ध करने वाली थी ये मानव एवं पशुओं की प्रवृत्ति में साम्य देखते थे। अतएव इस विचार धाराके लेखक प्रमुख रूप से व्यवहारवादी एवं प्रकृतिवादी स्वरूप के आधार पर प्राकृतिक विवेचन को विशेष महत्व देते थे। इस विवेचन का प्रमुख अंश यौन विकृति से संबंद्ध था ।" १ इस धारणा के अनुरूप प्रकृतवादी का आग्रह प्रायः मनुष्य की हीन गर्हित पाराविक और नीच प्रवृत्तियों और व्यवहारों के चित्रण का ही रहता है।

यथार्थवाद का ही आधार ग्रहण करते हुए अ यथार्थवाद का विकास किया गया। प्रथम विश्व युद्ध के परिणामस्वरूप आयी हुयी अव्यवस्था, अरजकत ने नाकारात्मक प्रवृत्तियोंको जन्म दिया।रुढ़ि के बंधनों को तोड़ने के लिए शुरू किये गये इस नाकारात्मक आंदोलन को कला के क्षेत्र में दादावाद कहा गया। इसकी स्थापना विभिन्न देशों से निर्वासित युवाओं ने स्विट्जरलैण्ड में कीऔर इसके नेता थे आलसास निवासी हान्स आर्य। इसी दादावाद ने फ्रांस में अति यथार्थवादको जन्म दिया। सर्वप्रथम इस शब्द का प्रयोग आपोलिनैर ने किया था पर इसको एक निश्चित अर्थ देने तथा इसकी सम्यक आख्या करने का श्रेय आंद्रे बेतों ने किया है जिन्होंने १९२४ ई० को एक घोषणा पत्र के द्वारा इसका स्वरूप निर्धारण किया।

अतियथार्थवाद की एक दार्शनिक पृष्ठभूमि भी हैं इस स्तर पर वर्कसांहीगेल और मार्क्स का उल्लेख कर सकते है।बर्गसां के रचनात्मक विकास फ्रायड के अचेतन मन हीगेल के द्वंद्वात्मक प्रणाली और मार्क्स के इतिहास की व्याख्या इस के सिद्धांतों और तत्वों में परिष्कृतिरूप से मिलते है।

अति यथार्थवादी लेखक मनुष्य के अवचेतन मन पर विशेष गोर देतीहै। केवल काव्य में ही नहीं बल्कि चित्रकला में भी इस मत का प्रकाश अतियथार्थवाद के नाम से हो रहाहै। समलोचकों ने अवचेतना मन की विलास लीला को ही अतिथ यथार्थवाद का सररियलिज्म के नाम से अभिहित किया

१– Dictionary of World Litt.

मान्यताओं का यह विरोध करता है। अतिययथार्थवादी मनुष्य मे अनेक पशु सुलभ प्रवृत्तियो मानता है है यह सिद्धांत आधुनिक नैतिकता को पूरी तरह खोखली मानता है और कलात्मक सृजन मे पम्पत्ति और उसका विचार है कि मनुष्य पशु के समान आचरण करता है। और बहुत सी पशु सुलभ सुविधाओ के प्रति ईर्ष्यालु अनुभव करता है। स्पष्ट है कि यह सिद्धात इस बात मे विश्वास करता है कि ससार मे बहुत सी वस्तुये और चीजे ऐसी है।जिनकी यथार्थ रूप मे व्याख्या होनी ही चाहिये।

यद्यपि यथार्थवाद का आधार लेकर व उसके वास्तविकता का बताने की प्रतिज्ञा व आग्रह क दाव प्राप्त कर यथार्थवाद को ही काफी खीचा गया परन्तु निश्चित रूप से सारे आंदोलन चाहे वे साहित्यगत हो या कि कलागत अपनी उपलब्धियो मे बहुत आगे तक नहीं जा सके। यथार्थ की अपनी पहचान बनी रही और है। क्योंकि वास्तविकता को निष्कपट तरीके से अभिव्यक्ति करना ही यथार्थवाद का उद्देश्य था, उसका लक्ष्य या कला के निर्माण के लिए यथार्थवाद ही सर्वोत्तम शैली है जिसके द्वारा समसायिक वास्तविक परिस्थिति का यथार्थ चित्रण किया जाता है जो कुछ है वह सत्य है जो कुछ हम देखते हैं या सुनते हैं जिसका अनुभव या अनुमान करते हैं, जिसकी कल्पना करते है, जिसे बुद्धि से जानते हैं अथवा जिसका हमे आभास मिलता है वह सच है इसलिए सत्य है। यथार्थवादी लेखक इस बात की आशा करता है कि वह प्राप्त सत्यों का पूर्ण कलागत ईमनदारी से अपनी कृतियों मे उपयोग करेगा।

यथार्थवाद एक ऐसे मार्ग के अनुगमन पर बल देता है। जो विकसन शील सृजन प्रक्रिया से सबंधित हैं इस विकासशील सृजन प्रक्रिया के मार्ग में जो भी शक्तियां अवरोध उपस्थित करती है, यथार्थवाद उन्हें तिरस्कृत कर उनके प्रति अनास्था का भाव प्रकट करता है।

यथार्थवाद कल्पना का पूर्ण तिरस्कार नहीं करता, पर कल्पना से उसका संबंध वहीं तक रहता है, जहां तक उसकी अनिवार्यता रहती है। साहित्य का सत्य कल्पना को लिकुल नहीं छोड देता वह यथार्थ के आधार पर जितना दृढ होता है, उतनी ही गहराइयों तक पहुचता हैं। प्रत्येक युग में वास्तविकता को ढूंढना ही सच्चा यथार्थवाद है। इसीलिए यथार्थवाद समाज की प्रमुख एवं ज्वलंत समस्याओं को अपने चित्रण के लिए चुनता है। मानवीय घुटन और पीडायें प्रेम की, घृणा की दिशा और उद्देश्य निर्धारित करती है। इसी आधारभूमि पर यथार्थवाद और मनवतावाद का संबंध स्थापित होता है। यथार्थवाद न तो इतिहास की वस्तुपरिगणन प्रणाली में विश्वास करता है और न ही वह कैमरे के समान है जो हूबहू चित्र उपस्थित करें अपितु यथार्थवाद का एक मात्र लक्ष्य वस्तुजंगत की स्थितियों को सामने रखते हुए सुन्दर से सुन्दरतम् स्थितियों की ओर समाज को उन्मुख कराना है। समाज की सच्चाईयों से रूबरू कराते हुए वास्तविकता के निकट ले जाने के कारण ही यथार्थवाद

एक मूल्य के रूप में हमारे सामने आता है। दिखते हुए को देखना और न दिखते हुए को समझना हमारी यथार्थ सवेदनाओं का मूल उत्स है। मनुष्य कुरूपता एवं विशेषताओ के परस्पर समन्वय का ही रूप है। उसके अच्छाइयां, बुराइयां, सभी कुछ विद्यमान है और इन्ही सबसे समाज का भी निर्माण होता है। यह सब हमे एक साथ सवेदित करती है, हममें एक बोध का निर्माण होता है। जो दृष्टि देता है समझने की और शक्ति देता है सृजन की।

संवेदना हमारे प्रातिभा–ज्ञान पर आधृत होती है, वस्तुत· इसका मुख्य श्रोत अनुभव ही है। प्राप्त अनुभव जो वास्तव में विगत ज्ञान ही होता है, उसकी के आधार पर हमारी सवेदानाओ का निर्माण होता है। स्पष्ट है कि अनुभव का फलक विस्तृत होता है, और उसका आधार व्यापक/राजनीति, समाज, इतिहास, संस्कृति, विज्ञान, धर्म, परिवेश– इस सबका स्वरूप वह हो सकता है और होता भी है। ज्ञान की यह फेलाव मनुष्य की सृजनशील और रचनात्मक प्रवृत्ति का द्योतक होता हैं, कुछ प्राप्त करने की जिजीविसा का परिचायक होता है। और इस ज्ञान सम्प्राप्ति के लिये वह सक्रिय रूप से प्रयत्नशील भी होता है । ज्ञान का प्रत्यक्ष बोध कराने वाली ये सारे बिन्दु हमारी यथार्थ से प्राप्त संवेदनाओ की कारण बनते है।

परिदृश्य का ब्यापक आकलन और उसके अनुरूप ही अपनी दृष्टि कर पिकास ही वह तत्व है जिसके आधार पर एक व्यक्ति भविष्स को निर्धारित करता हैं। ज्ञान का यह फैलाव एक साथ अतीत, वर्तमान और भविष्य तीनों को संयोजित करता है और यह सच भी है कि प्रगति का व्यापक आधार हमें तभी प्राप्त हो सकता है जबकि तीनो की अविच्छिन्नता स्थिर हो। यह मनुष्य मे जहां परम्परा बोध वर्तमान बोध और भविष्य बोध के सूत्र प्रदान करता हैं। वही एक पुष्ट , सार्थक विज्ञानवादी दृष्टि का भी विकास करता है। हमारी संवेदनायें इन्हीं आधारों पर विकसित होती है । जहॉ परम्परा का दाय होता है , वर्तमान की चिता होती है , और भविष्य को समझने की अकुलाहट रहती है। संवेदनायें हमें इस स्तर पर आधुनिक बनाती है, एक नण्यतर दृष्टि हमें प्रदान करती है वह हमें महसूस कराती है , जो महसूस करने लायक होता है और एक बोध जो जागृत अवस्था का द्योतक है हमें कराती हैं अपने पूरे विनिर्माण में वे जब हमें आधुनिकता का बोध देती है तो यह परम्परा का या कि वर्तमान की निषेध नहीं होता अपितु जो कुछ जैसा है, उसे महसूसने की शक्ति प्रदान करती है।

यह निर्विवाद है कि हम अपने आस पास फैले संसार से आख नहीं मूंद सकते है। उसके प्रति एक भाव हमारे मन में अनिवार्यतः रहता है और यही हमें उससे जोडता है। जुड़ने का तात्पर्य यह नहीं कि हम उसके पक्षधर हों ही। हम उसके प्रति प्रतिक्रियात्मक दृष्टिकोण भी रख सकते है

और उसमे रुचि भी ले सकते है। कहना यही ह कि युग बोध और सवेदना की मैत्री होती रहती है। एक तो वह व्यक्ति है जो सब कुछ देखकर भी देखे हुए को अनुभव नहीं करता है। अत उसमें अनुभूतिया नहीं जगती है। दूसरा वह है जो सब कुछ देखता है, देखे हुए के प्रति अपनी रुचि प्रदर्शित करता हुआ अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है यही कलाकार होता है और इसी की अनुभूतियां सवेदना का वृत्त बनाती है। इस वृत्त का विस्तार जितना अधिक होता है, कलाकार उतना ही बडा और प्रतिभाशाली सिद्ध होता है। यह विस्तार युग विशेष मे प्रचलित बोध या धारणा अवधारणाओं के प्रति चैतन्य दृष्टि रखने से सम्भव होता है। एक वाक्य में अगर कहा जाय तो युग चेतना ही संवेदना को गहरायी और विस्तार प्रदान करती है।

युग चेतना के बिदु, युग विशेष की जमीन से ही विकसित होते है।युग चेतना का मुख्य अर्थ है मनुष्य के सामूहिक व्यवहार मे परम्परागत प्राप्त मूल्यों से भिन्न मूल्यो की प्रतिष्ठा । किसी बाल विशेष का मनुष्य सामान्य रूप से इस परिवर्तन को अनुभव तो करता है, पर उसे स्पष्ट रूप से पहचानकर अभिव्यक्त नही कर पाता है। वह युग विशेष मे अधिकांश लोगो के मन मे प्रच्छन्न रूप से चलते रहने वाले जीवन लक्ष्यो , मूल्यो का बोध–मात्र है। जो लोग इतिहास के जानकार होते हैं और सामाजिक व्यवहारों के परिवर्तनो की कार्यकाष्ठा परम्परा को समझने की दृष्टि रखते हैं, वे उनके मूल रूप और कारण का अनुसंधान करते है। पर जो अधिक संवेनशील होतेहैं वे प्रत्येक युग की समस्या को अंतर्बोध द्वारा ग्रहण करते हैं ये लोग ही कलाकार की श्रेणी मे आते हैं।

कलाकारो की सवदेना आम आदमी की तुलना मे अधिक सक्रिय, अधिक ग्रहणशील और अधिक विस्तृत होती है। इसी कारण जो कुछ भी रचनाकारों की संवेदना में आता है, उसे वे इस ढंग से कहते है कि वह पाठकीय संवेदना बन जाता है। लेखकीय संवेदना का पाठकीय संवेदना बन जाना न केवल बहुत बडी बात है, अपितु यहां रचनाकार की उल्लेख विशेषता भी है। युग बोध का दो स्तरों पर ग्रहण किया जा सकता है– बौद्धिक धरातल पर और सवेदना के धरातल पर। रचनाकार का युगबोध उसकी संवेदना का स्तर बनकर तब आता हैं जब युग बोध संवेदना के आधार पर ग्रहण किया·जाय। ऐसे समय में उसके प्रभाव वास्तविकता और आकषर्ण का गुण कई गुना बढ जाता हैं , ठीक भी है एक रचनाकार किसी यथार्थ को वास्तविक रूप मे देखता है , तो उसे न केवल देखता है बल्कि भोगता और जीता भी है। वह यथार्थ का हित्सा बन जाता है और ऐसा होने पर ही उसकी अभिव्यक्ति संवेदनात्मक हो पाती है।

जब हम किसी लेखक की संवेदना को समझने का प्रयास करते हैं तो हें निश्चय ही सके परिवेश और उसकी कृति का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक हो जाता है। परिवेश का ज्ञान इस लिए

अपेक्षित है क्यो कि उससे हम यह निष्कर्ष पा सकते हैं कि रचनाकार का सृजन किस सन्दर्भ और किन धरातलो से जुडा है। रही कृति की बात तो उसका बोध इसलिए अनिवार्य होता है कि हम उसके रचनाकार की युगीन सवेंदना के रूप को समझ सकते है।

जीवन की स्थिति काई बेजान चीज नही होती वह वास्तव मे जीवत परिवेश है जिसके सबसे महत्वपूर्ण घटक है मनुष्य । वे मनुष्य जो सामाजिक सगति मे पारस्परिक लगावो के बीच रहते हैं। इसलिए

एक सच्चा सृजनकर्ता अपनी रचना के केन्द्र मे मनुष्य को ही रखता है। वह उस परिवेश और वातावरण को भी सामने लाता है जिससे मनुष्य की अस्मितता का ज्ञान हो और वह सुरक्षित रहे। रचना कर्म इस रूप मे मनुष्य और मनुष्यता को बचाने का एक संकल्प भी है। सच तो यह है कि अपने चारो ओर जो और जैसा उपलब्ध होता है, मनुष्य उसी के सूक्ष्म और स्थूल की रचना करता है। व्यक्तित्व के सदर्भ मे इसे सस्कार कहा जाता है और बाह्य जीवन के परिप्रेक्ष्य मे इसे परिवेश कहते है – –– किसी भी रचनाकार की मानसिकता और वैचारिकता पर अपने संस्कारो, परम्पराओं और विशिष्टताओ का प्रभाव पडता ही है। जब भी इस आधारभूत भूमि को, सत्य को अस्वीकारा जाता है तभी सृजनात्मक की तेजस्विता नष्ट हो जाती है, क्यों कि वस्तुत· इन सारी चीजो की सृजनात्मक समुच्चयता का ही तो नाम सर्जक व्यक्तित्व है। इन प्रभावो और परिवेश के बिना सृजनात्मक व्यक्तित्व सम्भव ही नही।

रचना के आर्विभाव में ही रचनाकार की आत्माव्यजना की आकुलता प्रतिष्ठित है। 'कपिर्यमनीषी पत्मिूः स्वयंभू, ईशापस्योपनिषद्' की उक्ति इसलिए सार्थक है क्यों कि काव्य के जन्म के मूल मे यही भाव है। परन्तु यह आत्मभिव्यंजना यह अकुलता अनुभूति के संस्पर्श से ही सम्भव है । अनुभव जब भीतर ही भीतर घुल मिलकर, रच पचकर ब्यापक स्तर पर भाव बोध को पैदा कर सकने की क्षमता पा लेता है, तब उसे अनुभूति के रूप मे जाना जा सकता है। साधारण रूप मे इसे इस तरह कहा जा सकता है कि सामान्य आदमी में अनुभव की प्रगाढता होती है और रचनाकार मे अनुभूति की। इसीलिए अनुमव से अनुभूति गहरी चीज है, कम से कम कृतिकार के लिए अनुभव तो घटित होता है पर अनुभूति संवेदना और कल्पना के सहारे उस सत्य को आत्मसात कर लेती है जो वास्तव में कृतिकार के साथ घटित नहीं हुआ है।

कवि जीवन के जिस यथार्थ का अपनी सहानुभूते के माध्यम से साक्षात्कार करता है, वह अपनी रचना में उसी का कलात्मक रूपान्तर करता है। रचना का अर्थ ही है – वास्तविकता का रचनात्मक रूपान्तर। इसी यथार्थ का सम्प्रेषण कवि का मुख्य लक्ष्य होता है। जीवनगत यथार्थ के

काव्यात्मक रूपान्तर के पश्चात् स्वय कवि उससे पृथक हो जाता है। सप्रेषण के माध्यम से कवि अपनी अनुभूति को सवेद्य बनाता है। इसी प्रक्रिया के माध्मय से रचनाकार समाज के साथ अपने को एकात्मक करता है। इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए कवि मे व्यापक सहानुभूति अपेक्षित है क्यो कि मानवीय संबंधो को साहित्य व्यापक सहानुभूतियो के आधार पर ही ग्रहण करने में समर्थ हो सकता है।

प्रत्येक उत्कृष्ट रचना सापेक्ष ही होती हैं रचनाकार और समाज के बीच एक अन्तरावलम्ब सदैव विद्यमान रहत है। कवि अपनी व्यष्टिगत अनुभूतिका काव्यात्मक रूपान्तर करके समाज अथवा ग्राहक को सप्रेषित करता हैं। अनुभूति एव रचनात्मक स्तर पर रचना एक व्यक्तिगत साधना एव प्रयास है, किन्तु अभिव्यक्ति के पश्चात वह समष्टिगत हो जाती है। यह कवि का कविता के माध्यम से आत्म प्रसार है। इस आत्म प्रसार का मूल्याकन ग्रहण पक्ष से होता है ।''किसी भी रचना के एक छोर पर होता है–रचनाकार का अनुभव ससार और उसकी अभिब्यक्ति की बेचैनी और दूसरे छोर पर होता है वह सामाजिक ससार जिसमे पाठक व दर्शक , स्रोता या अनुभावक अपने जीवन–अनुभवो और वास्तविक अनुभूतियो के अर्थ और और उसकी संरचना को, उस रचना के प्रिज्म मे से देखना समझना चाहता है ।
सृजन का जो बुनियादी कर्म है वह है यथार्थ का रूप व रिश्ते उसमे प्रतिबिम्बित होते है।" रचना का मतलब ही है इस जीवन जगत के वास्तविकता से एक जागरूक रिश्ता कायम करना। इस रिश्ते के एक मानवीय, वस्तुगत, और ऐतिहासिक संरचना होती है, जो रचना प्रक्रिया को प्रेरित ही नही संचालित भी करती है।[४] यही पर कवि की अनुभूति की सही तरीके से प्रमाणिकता सिद्ध होती है । अनुभूति की प्रमाणिकता का सम्बन्ध कवि की रचनात्मक ईमानदारी से होता है। ईमानदारी का अभिप्राय यह है कि ब्यक्ति की स्वानुभूति किस सीमा तक जीवन यथार्थ से सम्युक्त है।परिवर्तित परिवेश एवं वैज्ञानिक स्थापनाओ ने मानव–मस्तिष्क के अपेक्षाकृत अधिक तर्कशील और विवेकयुक्त बना दिया है। चतुर्दिक व्याप्त विसंगतियो और कटुताओके वातावरण में व्यक्ति की स्वेचतनता अधिक प्रखर हो गयी है। फलतः आज का व्यक्ति यथार्थ को भूलकर भावातिरेकता की स्थिति में नहीं पहुंच पाता। ऐसी स्थिति में कोई कवि यदि अपनी भावाकुलता की अतिरंजित अभिव्यंजना करता है तो वह युगीन सन्दर्भ मे जीने वाले ब्यक्ति की भावमयी अभिब्यजना मे तर्कशील मस्तिष्क को संतुष्ट करने की क्षमता स्वाभाविक रूप मे नहीं होगी। लेकिन कविता में वैधानिकता भी वहीं तक वांछनीय है जहां तक वह भावात्मक के लिए बाधक न बने। इस भावात्मकता में रचनात्मकता भी सन्हिति है।यह भावात्मकता भाववाद नहीं है।

विज्ञान के आलोक मे मनुष्य की बौद्धिकता अधिक विकसित हो गयी है, इसलिए ग्रहण के स्तर पर वही रचना स्वीकार होगी, जो रचना के स्तर पर विवेक सम्पन्न होगी। यही विवेक सम्पन्नता वस्तुतः अनुभूति की प्रमाणिकता है। प्रमाणिकता की इसी शर्त पर रचनाकार युग– जीवन से सम्बद्ध होता है। उसका आत्म सघर्ष समग्र मानवता का सघर्ष होता है। इसीलिए प्रामाणिक अनुभूति का काव्यात्मक संप्रेषण ही काव्य की उत्कृष्टता के प्रमाण है।

आज का सर्जक अपनी अनुभूति मे समस्त सन्दर्भो को बोध के स्तर पर स्वीकार करता हैं। इन्हीं संदर्भों के बीच उसके रचनात्मक अनुभव की प्रमाणिकता प्रतिष्ठित होती है।[५६] रचना की प्रामणिकता वास्तव मे रचनात्मक ईमानदारी से प्रकट होती है। कवि वही तक ईमानदार हो सकता है।जहां तक उसकी काव्यात्मक चेतना खण्डित नहीं होती। वह जीवन जगत को उत्तरदायित्व के साथ ही कविता के प्रति भी उत्तरदायी होता है।[५८]

कविता का जीवन से क्या रिश्ता है? "कविता दुनिया को समझने में हमारी मुश्किलें बढाती है या आसान करती है? हमें संतुष्ट करती है या बेचैन? यह सवाल अब कविता के बारे में जरूर ही पूछा जाना चाहिए । एक अपेक्षाकृत लम्बे समय में कविता को रखकर देखें तो कई बार यही लगेगा कि हमारी मुश्किलें बढाकर ही वह हमारे लिए अपनी सार्थकता सिद्ध करती है। सरलता या सहजता का कविता में इस्तेमाल भी हमेशा मुश्किले कम नहीं करता। सही विचारधारा या दृष्टि भी रचनाकर्म की कठिनाइयां हमेशा कम नहीं करतीं। अक्सर (खासकर कठिन समय में) वह रचनाकार पर यह जिम्मेदारी भी डालती है कि वह अपनी रचनात्मक क्षमता बढाकर समय की जटिलताओं को देख सके।" सच तो यह है कि कविता का रचना ससार यथार्थ को देखने की बानगी है। वह हमें हमारे "वास्तव" से परिचित कराती है। बस "महत्वपूर्ण यह होता है कि जिन्दगी की सच्चाइयों के प्रति लेखक की आस्था का प्रतिमान कितना ऊंचा और उत्कृष्ट होता है। उसकी रचना और अन्वेषण,जो उसके अनुभव में से जन्म ले रहा है, जिन्दगी की वास्तविकता से भी अधिक किसकिस क उद्घाटन कर रहा है। दुनिया को बदलने की प्रेरणा इस छिपे हुए सत्य के उद्घाटन कर रहा है। दुनिया को बदलने की प्रेरणा इस छिपे हुये सत्य के उद्घाटन से आती है, एक ऐसा सत्य जो दिखता हुआ भी लोगों को बाजवक्त दिखायी नहीं देता। और लगभग हमेशा ही होता है कि सच्चाइयां भी माकूल तरीके से अपनी सारी सिक्तों में जानी पहचानी नहीं जाती लेकिन अच्छा लेखक उनमें से अपनी रचना करता है तो एक ऐसा क्रांतिकारी सत्य उत्घाटित होता है जो देश और समय की सीमा भी पार करता है और हर दिल अजीज होता हैं।

****

अध्याय ३ — ॐ

समाजिकता · आशय एव स्वरूप

समाज व्यक्ति के समूह से निर्मित, विशिष्ट उद्देश्यो से बनाई गयी सस्था है। व्यक्ति समूह के द्वारा निर्मित और विकसित इस सस्था का विशिष्ट उद्देश्यो से बनाई गयी संस्था है। व्यक्ति समूह के द्वारा निर्मित और विकसित इस सस्था का विशिष्ट उद्देश्य व्यक्ति–समाज की रक्षा, उन्नयन और हित है। यह उद्देश्य व्यक्ति परक न होकर आवश्यक रूप से सार्वजनिक होता है। समाज का उत्तरदायित्व होता है कि वह अपने बीच रहने वाले व्यक्तियों के मध्य पारस्परिक सहयोग का भाव विकसित करे ताकि उनमें एकता, शाति और सौहार्द स्थापित हो सके। समाज मे रहने वाले व्यक्तियों से आशा और अपेक्षा की जाती है कि वे सार्वजनिक उद्देश्यो की पूर्ति के लिए शाति पूर्वक मिलकर कार्य करें शताब्दियों एवं पूर्व समाज के निर्माण के पीछे इसी प्रकार की भावना कार्यरत थी। तब से अब तक समाज की अवधारणा में अत्याधिक परिवर्तन आ चुका है। आज विश्व में विशिष्ट समाज, समुदाय या राष्ट्र मात्र की 'समाज' की संज्ञा से अभिहित नही होता, बल्कि वर्तमान परिस्थितियो में सम्पूर्ण विश्व ही एक समाज का रूप धारण करता जा रहा है।

वैसे एक व्यापक शब्द है। परिवार से लेकर विश्व व्यापी मानव–समूह तक को 'समाज' के विविधरूपों मे ग्रहीत किया जाता हैं लेकिन 'समाज' शब्द का वस्तुपरक आशय ऐसे अधिसख्य व्यक्तियों के समूह से होता है, जिनके उद्देश्य स्पष्ट और स्थायी होते है। समाज के बीच समुदायों का निर्माण होता है।

समाज के भीतर भी अनेक विभिन्नताएं और विशेषताएं परिलक्षित होती है। समाज मे व्यक्तियों के विविध कर्मों और विधि स्वार्थों के साथ–साथ उनके समाज तथा परस्पर विरोधी दोनो प्रकार के हित भी व्यवहारिक होते रहते हैं। जब तक इनमें संतुलन की स्थिति बनी रहती है तब तक समाज प्रगति की दिशा में प्रशस्त रहता है। लेकिन व्यक्तियों के परस्पर हितों में अधिक असंतुलन और असंगति आने पर समाज में संघर्ष, शोषण, पीडा, न्याय पक्षधरता और संकीर्णता वर्गीयता का भाव व्याप्त हो जाता है और परिणाम स्वरूप पूरे समाज में अव्यवस्था फैल जाती है। ऐसी स्थिति में सामाजिक चेतना के माध्मय से ही समाजिकप्रदूषणो को दूर किया जा सकता हैं। सामाजिक चेतना से रूढ़ि, निष्प्राण, परम्परा , अशिक्षा, अभाव,अन्याय, शोषण आदि के दुष्प्रभावों से मुक्ति मिलती है और सामाजिक व्यक्तित्व के निर्माण का मार्ग प्रशस्त होता हैं। सामाजिक व्यक्तित्व का अर्थ है शक्तिशाली, बौद्धिक और नैतिक व्यक्ति का निर्माण।

"सामाजिक चेतना के माध्यम से समाज मे व्याप्त प्रतिकूल परिस्थितियो के समाहार का ही नही होता, बल्कि वह नए ज्ञान से पोषित किसी नयी विचारधारा की वाहक होती हैं जब नयी विचार धारा व्यवहारिक होकर समाज की प्रगति मे सहयोग देती है तो यह नयी प्रगति ही सामाजिक चेतना कहलाती है ।"१

व्यक्ति और समाज के परस्पर सबंधो को भी यही सामाजिक चेतना रूपायित करती है। सामाजिक चेतना का भी एक विशिष्ट चरित्र होता है, जो आवश्यक रूप से व्यक्ति को जीवंत बनाए रखती है और चरित्र वह व्यवहार अथवा क्रिया है, जिसके माध्यम से सामाजिक जीवन मे व्याप्त असंख्य वस्तुओ का ज्ञान प्राप्त होता है। इसी से व्यक्ति और समाज की एकात्मकता प्रमाणित होती है और यही जीवनदर्शों, जीवन, जीवन-मूल्यों का अर्जन और नियमन करती है। समाज मे व्यवहाति नैतिकता, दर्शन, साहित्य, विधि विधान एक प्रकार से सस्कृति के विभिन्न रूप और तब माने जाते हैं लेकिन इन सबका उद्गम व्यक्ति चेतना ही है जिसे उदार अर्थों मे समाजिक चेतना का नाम दिया जा सकता है । व्यक्ति समाज आज जिस स्तर तक उठ सका है, उसके पीछे 'सत्य समन्वित' सामाजिक चेतना का विशिष्ट योग है जो सामाजिको को सगठित करके व्यक्तिगत हितो की अपेक्षा सार्वजनिक हितो का समर्थन और पोषण करती है।

साामान्य रूप से समाज विभिन्न वर्गों में विभाजित होता है और इस विभाजन के कारण उसकी कोई एक निश्चित विचार धारा नहीं बन पाती है। समाज में उसी वर्ग की विचारधार मे सर्वथा विपरीत होती है लेकिन समाज में उसी वर्ग की विचारधारा का वर्चस्व होता है जो आर्थिक और राजनीतिक दृष्टि से सम्पन्न रहता हैं । इस प्रकार कहा जा सकता है कि प्रत्येक विचारधारा का एक वर्ग स्वरूप होता हैं।

यहां यह प्रश्न उठाया जाता है कि क्या वर्ग स्वरूपा विचार धारा 'सत्य' को प्रतिबिम्बित कर सकती है? क्या वह वर्ग के अनुकूल तथ्यों और यथार्थ को विकृत करके प्रस्तुत नहीं करेगी? इस प्रश्न के उत्तर में मार्क्सवाद बतलाता है कि हमें विचारधारा को ठोस और ऐतिहासिक दृष्टिकोण से देखना चाहिये जिससे यह निश्चित हो सके कि किस वर्ग का प्रगतिशील अथवा प्रतिगामी वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है। कोई भी वर्ग तब तक सामाजिक विकास में प्रगतिशील भूमिका अदा करता है, जब तक उस वर्ग के हित वस्तुगत यथार्थ के साथ मेल खाते हैं तब तक उसकी विचारधारा मे आवश्यक रूप से, सत्य का समावेश होता है। किन्तु ज्यो ही उस वर्ग की प्रगतिशील भूमिक समाप्त

१–(साहित्य की सामाजिक भूमिका देवेश ठाकुर पृष्ठ १२)

हो जाती है त्यो ही उसकी विचार धारा मे भी सत्य का लोप हो जाता हैऔर वह 'सत्य' को अपने को हितो के अनुरूप तोड मरोड कर पेश करने लगता हैं ।

साहित्य की सामाजिक दृष्टि और ऐतिहसिक दृष्टि का सबंध

"साहित्य की सामाजिक दृष्टि समाज से साहित्य के विभिन्न प्रकार के सबधो की खोज करती है। लेकिन सहित्य कोई स्थित वस्तु नही है। वह परिवर्तनशील और विकासशील होता है। परिवर्तन और विकास की प्रक्रिया साहित्य की परम्परा के भीतर चलती है और वह समाज की प्रक्रिया से प्रभावित होती है। इस प्रक्रिया मे साहित्यिक कृतियो की रचना और बोध सारा क्रिया व्यापार घटित होता है। साहित्य और समाज के बीच सम्बन्ध दो परस्पर सम्बद्व विकास शील प्रक्रियाओं का आपसी सम्बन्ध है। इसलिए एक साहित्यक कृति का समाज से संबंध भी बदलता रहता है। समाज से साहित्य के बदलते सम्बन्ध की पहचान के लिए सामाजिक दृष्टि काफी नहीं है, ऐतिहासिक दृष्टि भी जरूरी है। तभी समाज और साहित्य की परम्परा, और उस परम्परा के भीतर की विभिन्न कृतियो के समकालिक और विकासशील सम्बन्ध की समग्रता का बोध हो सकता है। ऐतिहासिक दृष्टि के अभाव में साहित्य की सामाजिकतादृष्टि समकालिक संबंध तक सीमित हो जाती हैं । ऐसी स्थिति मे वह या तो अनुभववाद का शिकार होती है। या संरचनावाद का। इन खतरों से बचने के लिये सामाजिक दृष्टि और ऐतिहासिक दृष्टि मे एकता आवश्यक है। "१

क्योंकि तभी हम परिवर्तित हो रही सामाजिक संवेदना को रचना में अधिग्रहीत कर सकते है। चूंकि साहित्य के परिवर्तन का आधार सामाधिक परिवर्तन होता है दूसरे शब्दों में सामाजिक परिवर्तन साहित्य को प्रभावित और परिवर्तित करता हैं । लेकिन यहां यह भी ध्यान रखता होगा कि स्वयं साहित्य भी सामाजिक परिवर्तन की भूमिका में हस्तक्षेप करता है, कभी–कभी, यह हस्तक्षेप बहुत अप्रत्यक्ष होता है तो कभी प्रत्यक्षत.। प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष के ही सकेतों द्वारा वह समाज के यथार्थ को अभियंत्रित कर परिवर्तनका संकेत करता हुआ उन अवसरों को प्रदान करता है जिससे सामाजिक प्रक्रिया को रूपान्तरित किया जा सके। परिवर्तन के लिए एक प्रकार की तीव्र संकल्पात्मक प्रक्रिया की अपेक्षा होती हैं जो बदलते परिवेश की राजनीतिक सामाजिक सांस्कृतिक और धार्मिक धारकों को प्रभावित करती हैं । इतिहास गवाह है कि श्रेष्ठ उद्देश्य परक जुझारू साहित्य ने समाज को संवेदित और आंदोलित किया। साहित्य मे एक प्रकार की रसानुभूति या यों कहें आनन्दानुभूति का तत्व आवश्यक रूप से अनुस्यूत रहत है लेकिन साथ ही जब यह व्यक्ति पीडा, समाज पीडा और

१– डा० मैनेजर पाण्डे–साहित्य के समाज शास्त्र की भूमिका, पृ०–६५

सामाजिक यथार्थ के ज्वलत मुद्दों को छूता है तो यह व्यक्ति मन को विभोर नही आदोलित कर देता है । व्यक्तित्व परिवर्तन, समाज परिवर्तन की इन्हीं वैचारिक के चलते, समाज परिवर्तन के लिए आवश्यक ओज और सकल्प शीलता का वह नियामक बनता है। इस तरह यह न केवल प्रेरित करता है, कर सकता है बल्कि इसे अजाम तक पहुँचाने का कार्य भी करता है। यहीं पर साहित्य की व्यवहारिक भूमिका बनती हैं। वस्तुतः साहित्य इस अर्थ में सामाजिक परिस्थितियो और वस्तु स्थितियो का मुखापेक्षी नहीं ,बल्कि इससे आगे बढकर सामाजिक विनिमयो मे हिस्सेदार बनकर भी सामने आता है , और यही उसकी सर्वाधिक रचनात्मक भूमिका भी होती है। समाज मे मूल्यो व आदर्शो के बीच सघर्ष चलता रहता हैं।साहित्यकार इन मूल्यों व आदर्शो से प्रभावित होकर अपने रचनाकार्य में सलग्न होता है, तो उसकी रचनाओं में उन मूल्यो आर्दर्शो और प्रवृत्तियों का उदय होने लगता है जो तत्कालीन समाज के बीच विशिष्ट और महत्वपूर्ण माने जाते हैं । सामाजिक परिस्थितियो के समानान्तर साहित्य में ही यह प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती हैं।

इस प्रकार समाज और साहित्य मे परिवर्तन के कारक, परस्पर सम्बद्ध हैं। किसी प्राचीन समाज में जब–जब नए समाज के तत्वो का विकास होता है। तब–तब उन नए तत्वो से प्रेरित साहित्य मे भी परिवर्तन के तत्व परिलक्षित होने लगते हैं। साहित्य में परिवर्तन के अनेक कारण हो सकते हैं जब कोई पुराना, रूढिग्रस्त समाज अपनी अस्वस्थ परम्पराओं के लिए चरमावस्था पर पहुच जाता है और जब वहां सामाजिको के लिए उन सब को वहन करना असम्भव हो जाता है तब प्रतिक्रिया स्वरूप नये विचार एक आंदोलन का रूप ग्रहण कर लेते हैं।

परिवर्तन की प्रक्रिया धीरे–धीरे अपना स्वरूप ग्रहण करने लगती है और नए आदर्श समाज के बीच स्वीकृत होने लगते है। इन मूल्यो के प्रति साहित्यकार आकर्षित होता है। और उसकी रचना धार्मिकता में ये मूल्य उभरने उतरने लगते है। इस प्रकार सामाजिक मूल्यों के साथ–साथ साहित्यिक मूल्यों में भी परिवर्तन होने लगते है। अपनी संवेदना को विस्तार देने के कारण ही लेखक के साहित्य कोई स्थित वस्तु नहीं हैं यह परिवर्तन शील है और विकास शील होता है। परिवर्तन और विकास की प्रक्रिया साहित्य की परंपरा के भीतर चलती है और समाज की विकास प्रक्रिया से प्रभावित होती है । इस प्रक्रिया में साहित्यिक कृतियों की रचना और बोध का सारा क्रिया व्यापार चलता है साहित्य और समाज के बीच सबंध दो परस्पर सम्बद्ध विकासशील प्रक्रियाओं का आपसी सम्बन्ध है , इसलिए एक सहित्यिक कृति का समाज से सबंध भी बदलता चलताा हैं

गोल्डमन के अनुसार सत्य यह है कि कोई साहित्यिक कृति सामूहिक संरचना की होती है। क्यों कि व्यक्ति के माध्यम से समूह या समाज अपनी इच्छा आकंक्षा आदि को व्यक्त करता है।

जबकि ब्यक्ति विशेष की चेतना का अध्ययन कठिन है पर कृतियो मे उन व्यक्तियो की चेतना और अधिक विश्व दृष्टि स्पष्टता से व्यक्त होती है। अत· व्यक्त (लेखक) समझता तो यह है कि वह मात्र आत्माभियक्ति कर रह है परन्तु वह सामूहिक स्थितियों और सामाजिक चेतना या मानसिकताा को व्यक्त करता है।

"यांत्रिक भौतिकवादी और पाजिटीविट्स प्राकृतिक विज्ञानो की वस्तुगत पद्धति का यथावत लागू करने वाले लेखकीय सृष्टि को सचेत सृष्टि मानते है। जबकि साहित्य और कला मे चेतना और अवचेतना दोनों स्थितियों रहती है। अत. यही ठीक है कि कलाकृति मे ज्ञात या अज्ञात रूप से व्यक्त जो मनोलोक है, वह व्यक्ति गत सा लगने पर भी, वह किसी तरह सामूहिक मनोलोक को व्यक्त करता हैं।"–१

लुसिएं गोल्डमन क्षणिक रचनाओ को महत्व न देकर बडे लेखको के लेखन में प्रवृत्तियों और संरनाओ को सामुदायिक प्रवृत्तियो और सरचनाओ से संयुक्त करके विश्लेषण करता है । "इस पद्धति से देखने पर अज्ञेय की व्यक्तिगत सी लगने वाली वाणी, भावनायें , अनुचित और विश्वबोध वस्तुत· इस देश के यथा स्थिति शील वर्ग का है , जबकि मुक्ति बोध का अर्तद्वन्द्वात्मक साहित्य वैयक्तिक ऊहापोहपरक सा लगने पर भी मध्यवर्गीय अर्तचेतना के असंतोष , जन सहानुभूति और जन क्राति का ब्यंजक होने से संबंधित है। " –२

शब्दों के अर्थों को वस्तुगत सामाजिक संदर्भो से विलग करके भाषा–विज्ञान की यांत्रिकी विधियों अथवा कोरे साहित्यिक सदर्भो के आधार पर नहीं ग्रहण किया जायेगा। एक रचनाकार द्वारा शब्दों को नये अर्थ दिये जाने की संभावना को स्वीकार करते हुए भाषा के साथ अराजकतावादी खिलवाड की विफलता को भी पहचाना जायेगा। भाषा एक समूचे समाज की सामूहिक सांस्कृतिक उपलब्धि होती है और साहित्य कृति मे भी उसका यही स्वरूप कायम रहता है। ऐसा नहीं होता कि साहित्यकार शब्दों के सामान्य अर्थो को विनष्ट करके एक नयी भावों का सृजन कर डालता हो। साहित्यकार की भौतिकता के बारे में इस प्रकार की कल्पना कोरे व्यक्तिवादी अहकार को ही लक्षित करती है। प्रत्येक साहित्य कृति मे पाठक तक पहुंचने वाली आवाज के लहजे की विशिष्टता को भी कृति में प्रतिष्ठित होने वाले वस्तुगत सामाजिक संदर्भो के आधार पर ही पहचानने की कोशिश की जायेगी।

ओम प्रकाश ग्रेवाल–साहित्य और विचारधारा पृष्ठ १२०–१२१ साहित्यिक मूल्यो को समाज के

१–(साहित्यनुशीलन विभिन्न इष्टियां संपा डा. दयाशकर शुक्ल पेज ११५)

२–(वही– पृष्ठ ११५)

प्राथमिक स्ट्रक्चर मे सक्रिय रूप से विद्यमान विभिन्न वर्गो के हितो के साथ उनके अनिवार्य और नियामक सबध को ध्यान मे रखते हुए ही समझने की कोशिश की जा सकती है। तथा सास्कृतिक चेतना मे आने वाले परिवर्तनो को वर्ग-सघर्ष की ठोस वास्तविकता से अलग करके नही देखा जा सकता। वस्तुत: यह ठोस मुद्दे हैं जिनके आधार पर साहित्य और समाज के अत सबधों पर प्रकाश डाला जा सकता है।

****

अध्याय ३ — ८४ ८५

शमशेर की सामाजिक चेतना

शमशेर हमारे समय के सर्वाधिक विशिष्ट कवि है। शमशेर उन ऐस कवियो मे हैं जिनके पास जितनी सूक्ष्म दृष्टि हैं उतने संवदेन शील कान भी हैं , शमशेर की कविता अपनी मूक व शात प्रकृति के बावजूद गहरे अर्थों में एक संघर्षरत आधुनिक मानस की कविता है और यह संघर्ष हैं.... ... "अपने को गला तपाकर, अपने को न्योछावर कर।" शमशेर ने इस साधना से जो सत्य निकाला, वहीं उनकी कविता बनी। " –१ (ज्योतिष जोशी–शमशेर की कविता का यथार्थ लोक पल प्रतिपल पृष्ठ २८ अंक २५–२६ जुलाई–दिस० १९९३) कविता उनके जीवन का सत्य है। ऐसा सत्व जिसके अलावा कुछ भी सार नहीं बचता। जीवन कण , एक–एक शब्द जैसे उस महातप से निकले हुए है। जिसमें उनका समूचा जीवन होम हो गया है। अपने दुःखों, अपनी वेदनाओ और जमाने भर की सवेदनाओ के साथ। इसीलिए शमशेर की कविताएं अपने स्थापत्य मे हमें अपनी सजावट मे नहीं, वरन खुरदुरे निर्माण से प्रभावित करती है। "जहां हल्की सुगबुहाट भरी खींझ " भी मिलेगी और जीवन के अत्यन्त मार्मिक क्षणों के चित्र भी । और यहीं शमशेर अपने बहुत नजदीक के कवि लगते हैं .. . बेहद सामाजिक और चौकन्ने उनकी कविता का खुरदरा निर्माण समाज के खुरदरे यथार्थ को देखकर ही निर्माता हुआ है– समाज के साथ गहरे जुडने का संकेत करता हुआ। महत्वपूर्ण यह है कि शमशेर ने अपने अनुभवों को पूरे संयम, धैर्य और सावधानी के साथ अपने काव्य में रूपान्तरित किया है, जो किसी सफल काव्य की अनिवार्य शर्त होती है। उनके अनुभव तीव्र हैं लेकिन ये उत्तेजना में नहीं किये गये है बल्कि इन अनुभव को पूरी ऑच दी गयी है जिसके कारण वह भावावेश की कविता न होकर गहरे संवेदनों की भाषा बनी है। 'जीवन की तुलना में प्राणों का सयमन, सहजतम एक अद्भुत व्यापार सरलता का हमारी ही तरह कैसा दुरुहतम स्पष्टतम पिकासोई कला' –२

अपने परिवेश की विसंगतियों, हादसों, शोषण तथा त्रासदी को शमशेर हौले से एक वृहत्तर बोध में रूपायित करते हैं, तब जाकर वह कविता में तब्दील होती है। अपनी इसी काव्य संयम के कारण जहा कविता महज नारा या बयानबाजी बनने से बचती है। वही विरोध का स्वर एक ऊष्ण अर्तधारा के रूप में कविता का प्रमुख स्वर बन जाता है।

१–(ज्योतिष जोशी–शमशेर की कविता का यथार्थ लोक पल प्रतिपल पृष्ठ २८ अंक २५–२६ जुलाई–दिस० १९९३)

२–पृष्ठ ३२ प्रतिनिधि कविताए

"टूटेगे अरि–दल के पहाड के पहाड जब जन–बल का सागर दहाड कर उठेगा, जीवन की कमान"–१

व्यक्तियों वस्तुत शमशेर की कविता के साथ हमे यहभी सीखने को मिलता है कि प्रगतिशील मूल्यो के लेकर लिखी गयी कविता पर केवल नारो, जुलूसो और मशालों की छाप होना अनिवार्य नहीं है। मानवमुक्ति को इतर तरीको से भी, एक मुखर और प्रभावी स्वर दिया जा सकता हैं।इस संदर्भ मे शमशेर की कविता अपेक्षाकृत स्वतंत्र और मुक्त कविता है। असल में शमशेर की कविता में मनुष्य के पारस्परिक संबंधो के आधार पर उसे मनुष्य से जोडकर देखा जाता है। डा राजेन्द्र कुमार का यह कहना नितात सत्य है कि "'जो लोग प्रगतिवाद को साहित्य मे विद्रोह का सीधा रास्ता बनाने का दम भरने वाली उत्तेजना के रूप में पहचानते हैं उन्हें शमशेर के प्रगतिवाद से निराशा हो सकती है। शमशेर के काव्य की प्रकृति उत्तेजना की हैं ही नहीं यहां तो बस गहरी पिपासा है, मानवीय प्रेम की । "–२

उनकी अति प्रतिष्ठित रचना' 'अमन का राग' की निम्नाकित पक्तिया क्या इसे ताकीद नही करती–

युद्ध के नक्शों को कैंची से काटकर कोरियायी बच्चो ने
झिलमिली फूल पत्तो की रोशन फानूसे बनाली है
और हथियारो का स्टील और लोहा हजारों
देशों को एक दूसरे से मिलाने वाली रेलो के जाल में बिछ गया है।"

शमशेर की कविता में आतंक नहीं, थकान और जडता नही। वे डर और भय को वस्तुगत रूप में देखने मे सक्षम हुए है। वे जान चुके थे कि डर मेसृजनात्मकता के स्त्रोत है भयभयमीत को कुछ नहीं देता है पर जो उससे निबाह सकते हैं उन्हे कई चीजें दिखा सकता है। वह रचनात्मकता का उत्प्रेरक है। शमशेर आस्था के कवि हैं, उसे वह साथ–साथ प्रकट भी करते है। पर शोर मचाकर नहीं। चुपके से उसे कविता में ढाल देते हैं और फिर मानों उसका असर देखते हैं। वह जगाने का काम करते हैं................ करना चाहते है, पर उसको लेकर वह स्वप्न जीवी नहीं है। कभी –कभी उनकी कविताओं में एक खास किस्म का रहस्यबोध दिखायी देता है। लेकिन वे न तो ईश्वरवादी है और न वह किसी परम की खोज ही है। यह है और न वह किसी परम की खोज ही है। यह है प्रकृति के मूल किसी तत्वों तक पहुंचने की ललक जिसमें मनुष्य और समाज भी शामिल है। उनकी

१– पृष्ठ ३२ प्रतिनिधि कविताए

२– कल के लिये पृ० ४८

कविता मे सत्ता, सभ्यता और उसमे जीवित रहने वाले जन की स्थिति का गहरा विश्लेषण है जो हमारी पूर्ववर्ती सभ्यता के संदर्भ मे हमारी समझ को बढ़ता है।

जैसा कहा गया है कि शमशेर की कविताओं में उच्छवासित किस्म का आशावाद नही है। अपनी कविता मे इसीलिए बहुत ज्यादा उत्साहित भी नही दिखते। लेकिन उनमे एक उम्मीद है। उनकी कविता में बराबर एक खुशबू एव गध सी आती रहती है जो उस तरफ से जाती है जहा हमारी आज की दुनियां की सुन्दरता और क्रूरता दोनों ही मौजूद है। इस क्रूरता को खत्म करने का नुसखा समशेर के यहां नही है, और सुन्दरता में कोई कवि भला कैसे बच पायेगा? शमशेर की संवेदना का रूप मूलतः चूंकि चाक्षुष है इसलिए वे चित्रों में ही चीजों को समझते और पाते है। ये चित्र भारतीय जिन्दगी के है। वह उनकी कविता में रचा बता है जिसकी सगति आधुनिक मन से है। उसमे भावुकता है लेकिन सजग मानसिकता के साथ "इन आंखों से हम सब अपनी उम्मीदो की आंखे सेंक रहे हैं"–१

समकालीन भारतीय परिवेश को उसकी विविधताओं और विरोधाभासो में देखना और परखना चाहती है। इसके लिए शमशेर के यहां कविता की खास बनावट है, लेकिन उनके अधिकांश चित्रो के साथ खास बात यह है कि यह नही महसूस होता है कि वे बहुत कोशिश करके बनाये गये है। वे यूं ही बन जाते है। उनकी कविताओं में अनोखापन है बावजूद इसके कि वे वह कहते भी है। तारों सी है मेरी बातें–दुर्बाध, अतिसरता, अतिमूष अति निकट पलकों में–बच्चों सा है मेरा दुख जो खो गये हो। दुनिया के महामऊ में शमशेर अपने होने की असलियत को एक वास्तविक दुनिया के बीचो बीच खड़े होकर जानते थे। वे अपने अनुभव में यह भी जानते थे कविता अगर पूरी कार्यवाही नहीं है तो वह महत्वपूर्ण है। उसने फिर भी " मैं सुनूंगा तेरी आवाज पैरती बर्फ की सतहों में तीर सी। कुछ आलोचक शमशेर की सामाजिकता और प्रतिबद्धता और उनके द्वंद्व को उनकी कविता से जोडकर एक अमूर्त तर्क तक पहुंच पाते है। शेमशेर की कविताओं में प्रगतिवादी लहजा तो है परन्तु नागार्जुन त्रिलोचन की तरह सर्वहारा के जीवन से गहरी सम्पृक्ति नहीं है। इसका कारण शमशेर की आत्मपरकता, मनौवैज्ञानिक यथार्थवाद और वर्ग चेतना में परस्पर द्वन्द्व का होना है उनका दिघाग्रस्त विभक्त मन कभी प्रगतिवादी धरातल का संस्पर्श करता है, कभी आत्मपरकता का।"–२

जबकि स्वयं शमशेर का कहना है " मैं केवल आईडियोलाजी से हमेशा सोशल रहा। "

१– ये आंखें – अम्न काराग – पृष्ठ ६७

२– (नयी कविता, परिवेश प्रवृत्ति और अभिव्यक्ति – डा. बालकृष्ण राव गोविन्द रजनीश – पृष्ठ ५५)

कविताओ मे सोशल काशसनेस का प्रश्न उठाये जाने पर वे कहते है कि " आई नो माई वीकनेस, मैं मानता हू। पर जब कविता की बात आती है। आई एम हेल्पलेस" (एक साक्षात्कार मे) शमशेर अपनी सीमा का हवाला देते समय, वे भीतर ही भीतर अपनी सीमा को तोडते भी चलते है। यही गालिब का परस्प्र विरोधी द्वद्व है। शमशेर के लिए यह द्वद्व भाववादी उहापोह नही बल्कि वैज्ञानिक अनुभाव यात्रा का प्रयत्न है।"–१

शमशेर ने लिखा भी है–" मैं बेसिकली कवि ही अधिक हू। और मेरी कविता की दुनिया मुझे लगातार घेरे रहती है और अपने अदर रमाये रहती है। एकन्तप्रियता, तटस्थता, राजनीतिक हंगामो से धीरे–धीरे एक ऊबसी मेरे अंदर बढती गयी है। उम्र के साथ कई बाते आती है। बहुत सी सीमायें कार्यक्षमता आदि की तथापि मानव कल्याण के लिए मार्क्सवाद का पथ ही एक मेव पथहैं यह निश्चित मानता हूं । (उपर्युक्त) कवि का यह निजी वक्तब्य उसकी सामाजिक प्रतिबद्धता को क्या रेखांकित नही करता।"आदमी को आदमी की हैसियत से जोडे रखने मे महत्वपूर्ण निभाई है। अपने समय के यथार्थ का सामना करते ही उन्होने यह महसूस करना आरम्भ कर दिया था कि आदमी धीरे–धीरे कुछ और होता ज रहा हैं । एक कवि की हैसियत से ही वह जानते थे कि शुभकामना संदेश की सरल भाषा या तहस–नहस हो जानेकी शाब्दिक चीख असलियत को जाहिर नहीं करती। असलियत उनके घर मे है, और उनके पडोस मे, पड़ोस मे, याने उनके समूचे परिवेश में। यह परिवेश दैनिक जीवन के विवरणो में विलीन हो जाने वाली चीज नही है। विवरणों से परे जाकर, यथार्थ को देखने दिखाने के लिए एक तीव्र कल्पना शक्ति की जरूरत थी। शमशेर द्वारा इस तरह चीजों को गौर से देखनाशुरू किया गया। इससे उनकी करूणा विडम्बना मे रूपान्तरित होने लगी। यह एक रेखांकित करने योग्य तथ्य है कि शमशेर की इस विडम्बना में वह वाचालता नही है जो नागार्जुन के यहां है। वह व्यंग्य के कवि तो हैं नहीं बल्कि ऐसे कवि है जो मनुष्य की नियति के प्रश्न को सामाजिक स्थिति के संदर्भ में ही देखते हैं । सामाजिक स्थिति पर सोचते हुए वह जानते हैं कि उनकी भोली भावुकता को यथार्थ से टकराना ही होगा। इसलिए उन्होंने विडम्बना की ऐसी भाषा विकसित की है जिसमें उनकी करुणा अन्तर्निहित है। 'ओ मेरे घर' 'तूने युद्ध ही मझे दिया प्रेम ही मुझे दिया क्रूरतम कटुतम और क्या दिया' उनकी कविता की एक विशेषता यह है कि वह हमारे बहुत करीब की चीजों को हमारे मन में जिलाये रखने वाली कविता है। जिन चीजो की उनकी साधारणता के कारण हम उपेक्षा करते हैं वही जब कविता में हमारे पास आती हैं तो सिर्फ इतना ही नहीं कि हम उन्हे देखते है बल्कि इस देखने की प्रक्रिया में हम जैसे अपनी मनुष्यता की भाषा वापस पाते है।

१– (विष्णु चंद्र शर्मा समसामयिक कविता का कर्णधार – पहल १३ – पृष्ठ २१६)

साधारण के प्रति हमारे मन मे सम्मान जगाने वाली यह कविता तब स्वभावत असाधारण लगती है।

शमशेर की कविता की सबसे बडी खूबी है उनकी आतरिक सच्चाई। अपने भाव और भाषा दोनो मे जो एक कविता हैं.. .. . यह निजता जिस हद तक कवि की निर्मित है, उनसे अधिक वह उसकी सवेदन और उसके अनुभव लोक के बीच एक गहरे और सीधे सबध के दबाव का परिणाम हैं। इसीलिए शमशेर की कविता के गुणो को समझने के लिए उनकी कविता से गुजरना बहुत जरूरी है। वह कहते भी हैं " मेरी कविताओं में प्रत्येक पक्ति अपने आप मे छंद हैं, वह स्वतत्र भले न हो किन्तु आत्म निर्भर जरूर है,सपाटे मे उससे नहीं गुजारा जा सकता। "–१
वह सिर्फ जुमलो के कवि नहीं है। बल्कि अपनी हर कविता मे " इस घटना से उस घटना तक" की तरह शुरू के शब्द से आखिर के शब्द तक कविता की अनिवार्यता के तहत जाते हैं। उनकी कविता किसी केन्द्रीय भाव का तरह तरह से कहने या चमकीला बनाने से आलंकारिता से नहीं बनी है। उसमे उनकी समूची सुदीर्घ भाव यात्रा का इतिहास है, जो कविता पढते समय दुबारा हमारे मन मे घटना है। उनकी कविता के अंदरूनी घटना के सृजनात्मक ताप को समझने के क्रम मे उनकी पक्तियो द्वारा साधा गाय दृश्य मात्र दृश्य न होकर वह एकदम से हमारे भीतर आ जाता है, ... संवेदना की तरह और मन को अच्छा बनने, अच्छा करने के लिए कहता है। कवि ने अपने रचना संसार में तमाम चीजों को शामिल किया है। यहां तक कि कवि की संवेदना निर्जीव वस्तुओं को भी स्पर्श कर उनमें जीवन की सम्भावना टटोलतीहै।, जो इस परिदृश्य में दुर्लभ होती जा रही है। कवि का यह प्रयास केवल विषय वैशिष्टय का ही नहीं है बल्कि सवेदना की उस धा का भी बोध कराता है। जिसके कारण किसी ठोसती दिखने वाली चीज को भी भेदा जा सकता है।

शमशेर की संवेदना में पीडा की भूमिका गहरी है। उनकी पीड़ा प्रेम जनित भी है और सामाजिक जटिलताओं और विसंगतियों से भी उपजीहै। इसी लिए डा. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी कहते है– " वे कला के संघर्ष और समाज के संघर्ष को एक साथ रखकर देखते हैं। "–२
यह आत्मपरकता और वस्तुपरकता साथ–साथ उनकी कविता में दिखायी पडती है।"–३
शमशेर की दर्दपरक कविताओं में जिन्दगी का निजी कौना भी ऐसा कोना, जो निपट निजी होता है जगह पाये हुए है। अतृप्तियां स्मृतियां भीतर के हिस्से तक को चटखा देने वाला दर्द यह सब कुछ शमशेर की कविताओं में मौजूद है। पूरी ईमानदारी से इस आत्म वेदना को उन्होंने शब्दों

१ – (कविता और संवेदना– विजय बहादुर सिंह – पृष्ठ ४०)

२ – (समकालीन हिन्दह कविता – पृष्ठ ३०)

३ – (उपर्युक्त वही – पृष्ठ ३०)

के हवाले किया गया है। लेकिन दर्द भी इन स्थितियो के समझने के लिए हमे शमशेर के अकेलेपन को समझना होगा। उनकी कविता रूपी घर की उस सरचना को समझना होगा। उनकी कवितारूपी घर की उस सरचना को समझना होगा जहा शमशेर अकेले, निपट अकेले कर रहे हैं। वहा उनके पास कोई नही है। भौतिकरूप से भी, रचना सदभो के स्तर पर भी। विद्वता एसी कि सबको हिलाकर रख दे लेकिन जिदगी भर व्यवस्थित तरीके से रोटी का इतजाम नही किया, लोग थे लेकिन भीड मे वह अकेले थे। इस निपट अकेले-पन मे सिर्फ कविता ने उनका साथ दिया।" सच पूछिये तो कविता की शमशेर का घर था, और यह घर उन्होने स्वय बनाया था। अपने लिए । बडे जतन से। 'बे-दरो-दीवार का घर' । "गालिब की तरह" -१

उनकी कविता का एक बिब है। कोहनियो से तिकोना पहाड धकेलता हुआ आदमी। वे नितांत अकेलेपन मे अपने भौतिक अकेलेपन को जीने का उपक्रम करते हुए कोहनियो से ढेलते आदमी के रूप मे नजर आते हैं यद्यपि उस भौतिक अकेलेपन के साथ-साथ उनका रचनात्मक अकेलापन भी था जो निरंता सक्रिय रहा। जिनका अकेलपन भौतिक स्तर पर ही होता हैं वह उन्हे अंदर तक कुतर डालता है। शमशेर जैसे लोगों का अकेलापन रचनात्मक होता है और वह भौतिक अकेलेपन को भी संस्कारित कर देता हैं ।" - २

असल मे जैसा कि रघुवीर सहाय कहते है।" शमशेर ने व्यक्ति की अपूर्णता की बेचैनी और पूर्ण होने की बेचैनी को एक व्यक्ति मे समो दिया है। इससे अधिक गहरी गाढी अंधेरी शाति और नही हो सकती । साधारण लोग इसी को प्रेम की पीडा कहते है। परन्तु यह एक नया इंसान पैदा होने की पीडा है जिसे असाधारण रूप से ताकतपर कवि ही झेल सकता है।" -३

तभी वह कह सके- मैं कई बार मिट चुका हूंगा तभी तो वर्ना इस जिंदगी की इतनी धूम।

यह 'नया इंसान' कैसे पैदा होता है इसको समझने के लिए आवश्यक है कि हैं उनके लिविंग -प्रिसिपल को पहचाना जाय। उनके लिविंग प्रिंसिपल की पहचान उनके मार्क्सवादी नजरिये को समझे बिना सभव नहीं। दूसरा सप्तक के अपने वक्तब्य मे उन्होंने अपने शुरुआती दौर के बारे में लिखा हैं सन् ३८-३६....... से सन् ४२ तक मेरा रुझान ज्यादातर क्या बिल्कुल अपनी ही दुनिया के अंदर खिंचते चले जाने की तरफ रहा।" रजना अरगडे से बातचीत में उन्होंने इस दौर की अपनी कविताओं के बारे में कहा- ३७-३८-३६ उस समय की मेरी कवितायें (अधिकांश) बडी ( ) होती

---

१ - (नामवर सिंह- वह आखिरी मुलाकात) जनसत्ता २३ मई १९९३

२ - (गिरिराज किशोर-जनसत्ता २३ मई १९९३)

३ - (रघुवीर सहाय- सर्वेवर व मलयज द्वारा संपादित पुस्तक शमशेर से उद्धृत)

थी। मेरे जीवन में कुछ उल्लास नही रह गया था।" उल्लास न रह पाने का कारण था जीवन मे भयानक अकेलापन। उनके भाई डा तेजबहादुर चौधरी ने उन पर लिखे अपने सस्मरण में छुटपन मे मा के गुजर जाने, फिर पिता द्वारा दूसरा विवाह कर लेने के बाद उनमे पुत्रों के प्रति आ गयी फिर उपेक्षा और घर से अलग

हास्टल्की जिदगी की चर्चा की है। अपनो के स्नेह के अभाव के साथ-साथ बाकी अभाव भी थे। इस जीवन की चर्चा करते हुए रजना अरगडे को शमशेर ने बताया " मैं अपने ससार मे रहा। मेरी अपनी जिंदगी बन गयी। यह जिदगी कला की थी, साहित्य की। आसल मे एकाकीपन शमशेर के लिए उतनी ही ठोस हकीकत थी, जितना उनके लिए मौत । एक दूसरे ढग से कहा जा सकता है कि मौत उनकी जिंदगी का नक्शा बना रही थी। शमशेर के भाव जगत के सदस्य वे लोगथे जो अब इस जिदगी मे नही रह गये थे। जैसे अंधकार मे आखो के कारगर न रह जाने पर शेष इन्द्रियों का बोध अत्यत तीक्ष्ण हो उठता है, वैसे ही अकेलेपन ने प्रकृति पृथ्वी और समाज से खुद को जोडने वाले ततुओं के प्रति शमशेर की सवेदनशीलता को अत्यत तीव्र कर दिया था। उनकी रचनाओं के विवाद भरे स्वर की दिशिष्टता को पहचानना उनके इस जीवन तथ्य को समझे बिना सभव नहीं । कारण यह है कि उनके सम्पूर्ण काव्य मे जिस गहन वेदना की अंर्तधारा प्रवहमान है, वह उनकी वास्तविक जीवन परिस्थिति से उत्पन्न है ।"–१

शमशेर चाहते तो जीवन भर अकेलेपन के गीत गाते रह सकते थे। लेकिन जो कला की सच्चाई उन्हें बांधली थी, वह अकेलेपन में गर्क होने की जगह सम्पूर्ण प्रकृति और समाज से जुड़ने का आहवान करती थी। जैसा कि उन्होंने लिखा है, वे अस्तित्ववाद के सम्पर्क में भी आये और सुर्रियलिज़्म ने भी उन्हे प्रभावित किया, पर जल्दी ही वे इसके असर से निकल आये। अपने आपको टूटते हुए मध्यवर्ग का एक सदस्य मानकर अपने बारे में 'उदिता' की भूमिका में उन्होने लिखा"............ .. एक तिनके का सहारा सिर्फ सोशलिज़्म ही आडे आया। " यह एक आकर्षण और उत्तेजक विचार था, जो पूरे व्यक्तित्व पर गहरा असर डालने की ताकत रखता था। इसीलिए शमशेर के लिए यकह एक व्यक्तिगत और रचनात्मक अनिवार्यता बनकर सामने आया। मलयज ने अपने निबध बात बोलेगी, पर कब? में उन्हें उद्धृत किया है, " मार्क्सवाद मेरी रूहानी जरूरत थी, सच्ची जरूरत, उसने मुझे मार्बिड और रूग्ण मन' स्थिति से, जिसमें कि मुझे डर था कि पडा रहकर मै बिल्कुल डूब ही जाउंगा ,सपाट हो जाउंगा, मुझे उबारा । " शमशेर ने कहा वह (मार्क्सवाद) मेरी एक रूहानी जरूरत की पूर्ति करता था।"

---

१ – अपूर्वानन्द – शमशेर बहादुर सिंह और हिन्दी आलोचना–साक्षात्कार– जनवरी ९८–पृष्ठ –७२

तय है कि शमशेर विचार के स्तर पर समाजवाद, मार्क्सवाद अपनाते है। इसी को आधार बनाकर के क्षेत्र मे आते है। इस रूप मे वह सच्चे जीवन धर्मी रचनाकार है। "मुझको मिलते हैं अदीब और कलाकार बहुत लेकिन इन्सान के दर्शन है मुहाल" कहने वाले शमशेर न सिर्फ इसके द्वारा अपनी काव्य दृष्टि का परिचय देते हैं बल्कि इससे उनकी रचना मे मनुष्य की केन्द्रीयता का पता भी मिलता है। " शमशेर को जो लोग कलावादी सौन्दर्यवादी मानकर उनके काव्य मे कथ्य को अनदेखा कर शिल्प–सौष्ठव पर ही रीझते रहे हैं, वे खासतौर से उनकी सवेदनाशीलता और मनुष्य को ही सर्वोपरि मनने वाली अत्याधुनिक कला दृष्टि की अवज्ञा करते है। मनुष्य केन्द्रित कल या कविता पलायनवादी, अस्पष्टता वादी नही हो सकती और न राजनीतिक नारे और प्रचार के स्तर पर कलाहीनता का आश्रम ही ले सकती है। ऐसे मे, शमशेर की प्रयोगशीलता को जो लोग उनके काव्य में शिल्प पक्ष से ही जोडकर देखते है, उनका मूल्यांकन एकपक्षीय और एकागी ही माना जाना चाहिए।" – १

असल में शमशेर शुरू मे ही यह समझ सके थे– **जन का विश्वास** ही हिमालय है (दूसरा सप्तक प० ६८)

'दूसरा सप्तक' के अपने 'वक्तब्य' में शमशेर लिखते है। – " हम आज ही अगर अपने दिल और नजर का दायरा तंग न करते तो देखेंगे कि हम सबकी मिली–जुली जिदगी मे काव्य के रूपो का खजाना हर जगह बेहिसाब बिखरा चला गया है। सुन्दरता का अवतार हमारे सामने पल–हिन होता रहता है। अब यह हम पर है, खासतौर से कवियों पर, कि हम अपने सामने और चारों ओर की इस अनन्त अपार लीला को कितना अपने अंदर घुला सकते में काव्य के रूपो का खजाना हर जगह बेहिसाब बिखरा चला गया है। सुन्दरता का अवतार हमारे सामने पल–हिन होता रहता है। अब यह हम पर है, खासतौर से कवियों पर, कि हम अपने सामने और चारों ओर की इस अनन्त अपार लीला को कितना अपने अंदर घुला सकते है। "–२

जो बहुत सामाजिक होगा, अपने आस–पास की जिंदगी में दिलचस्पी लेगा, पडी इस खजाने से चीजों के चुन सकता हैं शमशेर इसी अर्थ में हमारी जातीय बोध और समकालीन यथार्थ के कवि है क्यों कि वह इन तमाम बिखरे हुए लेकिन महत्वपूर्ण विषयों को अपनी कविता की केन्द्रीय विषयवस्तु बनाते रहे यथार्थ से प्रतिश्रुत होकर समकालीन सामाजिकता को अपने कविता मे स्थान देते हैं वह जीवन में विश्वास करने वाले कवि हैं ।

---

१ – (समकालीन कविता का परिप्रेक्ष्य – रेवती रमण)

२ – शमशेर बहादुर सिंह (दूसरा सप्तक पृष्ठ– ८०)

उनका बोध उनकी अवधारणा को तय करती–

कविता तो किरणो की धार मे बेगवती सविता है

जहा से कि राग, उत्तप्त हो .

अतत: निस्तब्ध होते है।

रह–रह जहा से कि दिब्य रंग

रक्त ऊर्जा उभरती।"

लेकिन समकालीन क्रूर समय मानवीय राग को कहीं दाब देती है।

आज की चीख–पुकार मे

एक बहुत कोमल तान

खो गयी है

उसे पाना है।

यह कोमल तान क्या है? यह यही क्रूर समय की अमानवीय आपा–छापी है ।
जहा मनुष्य नहीं रहा। जहां जीवन मे आत्मा के प्राणों की सोधी गंध नही रही। आज हम इस समय में रहते हुए उस डरावनी व्यथा को बखूबी महसूस कर रहे है। यह मनुष्यत्व के लगातार छीजते जाने की परिणित है। कुछ ऐसा है जो बहुत सुन्दर और शुभ हैं, जो जीवन की जटिलतर होती जा रही संरचना में खो रहा है। इसकी पुनर्रचना भी अंततः जीवन ही में संभव है। कविता बनाते खुद मनुष्यत्व की पुनर्रचना नहीं, बल्कि इस दिशा में प्रवृत्त चेष्टा की गवाही है। कविता स्वयं समाज को बदल नहीं देती लेकिन बदलाव की बेचैनी को शब्द और अर्थ जरूर देती है।" शमशेर की कविता रागात्मक समृद्धि, विनम्र भाव और प्रयोग परकर्सस आफ एडवेंचर से संस्कारित कविता है। मनुष्यत्व की छीजन की व्यथा को दर्ज करते रहने तक उनका सरोकार सीमित नहीं है, वे इसका सकारात्मक प्रतिवाद करते हैं ऐंद्रिक जादू और प्रफुल्लता को व्यंजित करने वाले बिम्बों की रचना करते हुए। इस जादुई प्रफुल्लता मे ही लगातार बहती टीस की रेखा है, जो शमशेर की कविता में सृजनात्मक नैतिक अवसाद का आयाम उत्पन्न कर देती है। व्यथा के बीच सौंदर्य की प्रतिष्ठा ही कला की नैतिकता है, ठीक इसी अर्थ मे, शमशेर के अपने शब्दों मं " कला का सबसे बडा सघर्ष बन जाती है' मनुष्य की आत्मा का प्रेम का केवल कितना विशाल हो जाता हैं, आकाश जितना और केवल उसी के

दूसरे अर्थ सौंदर्य हो पाते हैं । मनुष्य की आत्मा मे।" – १

दूसरा सप्तक' मे सकलित शमशेर की इक्कीसवी कविता प्रेम और परिवर्तन की मिली जुली सरचना को बडे शक्तिशाली आवेग मे सामने लाती है–

चुका भी हू मैं नही
कहां किया है मैने प्रेम अभी
अब करूगा प्रेम
पिघल उठेगे युगों के भूधर
उफन उठेगे सात सागर
किन्तु मै हूं मौन आज
कहा सजे मैने साज अभी।
सरल से भी गूढ गूढतर तत्व निकलेगे
अमित विषमय जब मथेगा प्रेमसागर हृदय।
निकटतम सबकी। अपर शौर्यों की । तुम
तब बनोगी एक गहन मायामय । प्राप्त सुख
तुम बनोगी तब/ प्राप्त जय – २

इस कविता मे मानवीय प्रेम को व्यापक सामाजिक क्रांति से सम्बद्ध कर दिया गया है। प्रेम भी जो, उत्सर्ग को आत्मसात् करने वाला प्रेम है। युगो के भूधर, सात सागर प्रतीक बन कर आये है। यथा स्थितिवाद की व्यापकता, विराटता को प्रतिरूपित करने वाले इन उपादानों से अलग प्रेम का आलम्बन है जो– निकटतम सबकी। अपर प्रेमानुभूति और क्रांति–प्रक्रिया अभिन्न हो गये है। वस्तुत शमशेर का जो काव्य विवेक है, अपनेसमय और बाद के दौर के लिए जो रचनात्मक व्याकुलता है, यथार्थ को काव्य सत्य में रूपान्तरित करते हुए उनमें यथार्थ के पार जाने का जो साहस है, वह कुल मिलाकर नयी रचनाशीलता की जडों को पोषण देता है। असल में यह मनुष्यता के केन्द्रीयत्व का काव्य है।

रागात्मक समृद्धि में नैतिक सरोकर, जीवतता और अपने माध्यम के प्रति सर्जक की दृष्टि व दक्षता के समावेशन से वह आत्मा के सौंदर्य की खोज करने वाले बटोही हैं जहॉ एकदम निजी से

---

१ – (पुरुषोत्तम अग्रवाल–हंस जनवरी १९८७–पृ०४६)

२ – (दूसरा सप्तक – पृ० १०४)

लेकर अंतर्राष्ट्रीय राजनीति तक की वास्तविक घटनाओं के मूर्त सदर्भ विद्यमान है।

संवाद को सभव करने वाले शमशेर की सृजनात्मक महत्वाकाक्षा शब्द और अर्थ, विचार और ध्वनि की समग्र गति शीलता को कविता मे सभव कर पाने की रही है।

असल मे उनका सारा रचनाकर्म कविता को निरतर बनाये रखने और बचाये रखने का था। सरलीकरण और नकार के इस युग मे वे यह भी बताते हैं कि मनुष्य का सकट और कविता का रिश्ता कहां बनता है। इस रूप मे शमशेर कवि के पूरे जीवन चित्र का सम्पूर्ण जीवन के रहस्यों, अपने समाज और राजनीति और सस्कृति के बीच जो द्वद्व है, उसमे एक कवि अपराजित निवास की आकांक्षा रखता हुआ एक तीर की तरह समय के हृदय मे चुभा हुआ है। इसीलिए एक कवि की काल से होड है जो न सिर्फ उसके लिए बल्कि हमारे लिए भी अभिमान का विषय है। शमशेर की कविताये उनकी लिपि की स्मृति मे है। जो गाहे बगाहे हमे चौंका कर उठा देती है।

''''''''''''''

अध्याय-3-खण्ड-ग
नागार्जुन की सामाजिक चेतना

नागार्जुन ने अपने समय के यथार्थ और उसमे उत्पन्न हलाहल पर खास दृष्टि से अपना रचनात्मक दायित्व पूरा किया हैं यही कारण है कि वह न सिर्फ अपने काव्य कार्य के प्रति सचेष्ट रहे बल्कि पूर्ण समर्पित भी रहे। प्राय सामान्य रूप से जहा अन्य शब्दकर्मियो की दृष्टि नही जा पाती है– उस 'मामूली' को भी वह विशिष्ट बनाते है। काव्य बोध का एक विस्तारधायी गठन उनके पास है। इसीलिए वे शब्द कर्म के ससार मे दुर्लभ सृजन धर्मिता के दृष्टात के रूप में विकल्पहीन है। केदारनाथ सिह ने नागार्जुन पर लिखे अपने लेख का शीर्षक ही रखा है "नागार्जुन खतरनाक ढग से कवि होने का साहस।" – १

यह कहते हुए असल मे केदार नाथ सिह उस तात्कालिकता पर ऊगली रखते है जिसको आकार देने मे कवि बडा जोखिम उठाता है। जहा यह खतरे तक का स्पर्श करने लगता है। जोखिम का यह सदर्भ समाज और राजनीति सापेक्ष ही नही, कविता सापेक्ष भी है कविता की कालात्मकता को लेकर चिताओं के आकारका सवर्द्धन करता हैं, लेकिन बावजूद इसके नागार्जुन ने तात्कालिकता से अपने को कदापि विलग नही किया वरन्उसकी चुनौती स्वीकार कर ही उन्होने साहस और ईमानदारी का सबूत दिया है। केदानाथ सिह उसे स्वीकार करते हुए लिखते है– "एक तथ्य जिसकी ओर सहसा ध्यान नहीं जाता है, यह है कि तात्कालिक विषय पर कविता लिखना एक खतरनाक विषय पर कविता लिखना एक खतरनाक काम है।
यह खतरा केवल सामाजिक राजनीतिक स्तर पर नहीं होता, बल्कि स्वयं कविता के स्तर पर भी होता है।यह खतरा वहां हमेशा मौजूद रहता है कि कविता रह ही न जाय। पर नागार्जुन एक रचनाकार की दूहरीजिम्मेदारी के साथ इस खतरे का सामनाकरते हैं और इस दृष्टि से देखें तो उनमें खतरनाक ढग से कवि होने का अद्भुत साहस हैं पर उससे भी बडी बात यह है कि उनकी तात्कालिक विषयो पर लिखी हुयी कवितायें उनकी कविता संबंधी एक विशेष अवधारणा की ओर संकेत करती है। हम जानते हैं कि उनके यहां गंभीर कही जाने वाली कविताओं की संख्या कम नहीं है। उनके पूरे काव्य को समाने रखकर देखें तो दिखायी पडेगा कि उनकी प्रतिभा एक साथ अनुभव के दो ध्रुवान्तों पर काम करती है– एक तरफ प्रेम, वात्सल्य, करुणा और सौंदर्य जैसे गम्भीर समझे जाने वाले विषय हैं और दूसरी तरफ एकदम सद्यः दृष्टि, आसान और तात्कालिक विषय।नागार्जुन का रचना-लोक इन

१ – केदारनाथ सिंह – मेरे समय के शब्द पृ० – ५५

दोनो से मिलकर बनता है।" – १

असल मे जिसे केदारनाथ सिह 'अनुभव के दो ध्रुवान्त ' कहते है इन्ही के बीच नागार्जुन का पूरा समाज–पूरा भरा पुरा ससार फैला है जो उनके समाज सापेक्षता का ठोस उदाहरण है। यह असदिग्ध है कि अपनी अभिव्यक्ति के द्वारा नागार्जुन ने कविता को विस्तृत फलक प्रदान किये हैं उनमे सृजन की विविधता है यहा तक कि वे कविता को वर्जित प्रदेश तक लेकर गये हैं "इसीलिए जब मैं यह कह रहा हू कि नागार्जुन की कविता मे किसी भी और कवि की तुलना में बाहर की दुनिया की विविधता है तो मतलब यह है कि अगर केवल समाज के सदर्भ मे थोडी देर रुककर देखे तो हिन्दी मे अकेले कवि हैं नागार्जुन जिन्होने आदिवासियो पर सार्थक कवितायें लिखी है।" – २

इसमे दो राय नही हो सकती कि एक कवि और एक जीवन भरे इसान के रूप मे सबसे अधिक लुभाता है बाबा का मामूलीपन। यानी मामूली लोगो और मामूली चीजो के प्रति उनकी गैर मामूली दिलचस्पी। "सच तो यह है कि मामूली चीजो और मामूली लोगो के प्रति यह गहरी प्रतिबद्धता ही नागार्जुन इतना बडा और गैर मामूली कवि बनाती है कि आज उनकी कवितायें नहीं है बल्कि एक जीवंत इतिहास है। वे एक जरूरी साक्ष्य और दस्तावेज हैं, जिसमे पूरी शताब्दी की धडकने सुनी जा सकती है। तथा एक पूरी शताब्दी की सामाजिक राजनैतिक हलचलों और उतार–चढ़ाव जो देखा समझा और महसूस किया जा सकता हैं।" – ३

जीवन के सारे रागों का समावेश उसमे है, जो मन को बाधते रनाते हैं और विक्षुब्ध परेशान भी करते हैं। ; जिसे मुकम्मिल सर्जना कहा जा सके ऐसी है नागार्जुन की सर्जना। " घाट–घाट का पानी पीते हुए अपने देश और धरती के बहुत बडे प्रसार से नागार्जुन ने जिंदगी और मनुष्य की इस सम्पूर्णता को अर्जित किया और समेटा हैं । खुद की जिन मूलवर्ती संवेदनाओ के लिए मनुष्य इस धरती पर आया है, वे अपनी पूरी व्यापकता, गहराई और सघनता मे नागार्जुन की सर्जना में विद्यमान है। जितना उन्होंने धरती के सौन्दर्य को अपनी गंवाई आंखो से देखा और अपनी सर्जना मे रूपायित किया है उतना ही उसके सुख दुख दाह और ताप त्रास के चित्र अपनी रचना में उकेरे है। साधारण और असाधारण दोनों ही उनकी सौंदर्य चेतना में घुले मिले है। जहां तक धरती के दुखदाह और ताप

---

१ – (केदानाथ सिह – मेरे समय के शब्द पृ० ५६–५८)

२ – (मैनेजर पाण्डेय – साक्षेप का नागार्जुन अक पृ० १६६)

३ – (प्रकाश मनु – अजकल जनवरी ९९ पृ० १२)

त्रास का प्रश्न है, उसका सबध इस धरती मे रहने वालो से है उस कोटि–कोटि जनगण से साधारण जनो से है मनुष्य को उसकी सम्पूर्णता मे प्रस्तुत करते हुये भी जिसकी पक्षधरता उनके मूलवर्ती रचनात्मक सकल्प के रूप मे जीवनभर उनके साथ रही है "साधारण जन के सुख दुख हर्ष विषाद आशाओ आकाक्षाओ और उसके स्वप्नो तथा सघर्षो के साथ उनका यह एकात्म, उनकी यह पक्षधरता किताबी अथवा कोई सयोग भर नही है। स्वत साधारण जन का ही एक अश होने के नाते उसके अपने जीवन के हर्ष विषाद को उन्होंने स्वय पिया मागा है।" – १

इसीलिए इस धरती को वह बहुत चाहते हैं इसके एक–एक कण से उन्हे प्यार है। वह बर्दाश्त नही कर सकते कि कोई भी इसका बेजा इस्तेमाल करे–

धरती धरती है–
पन्हाई हुयी गाय ही
कि चट से दुह लो कटिया भर दूध
धरती–धरती हैं
चावल या गेहूं का ढेर नही
कि कुर्क करा के उठा ले जाओ
निछावर हमइस पर
तुम्हारी नही, हमारी है धरती।" – २

असल में यह हर उस आतताई के खिलाफ रचना कर्म है जो इस मुलायम धरती को अपने स्वार्थ और तिप्क्षा के लिए बडे आरामगाह और फिलो के लिए हडपने की कोशिश करते है। वह इसके एक–एक कण को अपने से जोड़ते है। जुडाव का यह जज्बा ही उन्हे मनुष्यता के प्रति प्रतिश्रुत करता है। काव्य प्रेरणा के जनजीवन से उद्भूद्‌ होने पर जन जीवन की स्थितियां और उसके सुख दुख सब कुछ काव्यानुभूति के विषय बनते हैं। तब जो कविता फूटती है उसका स्वताः सुखाय कदापि नहीं होता है। विडम्बना है कि ऐसी कविताओ के भी कुछ लोग बहुधा टिप्पणी या वक्तब्य करार देते हैं ऐसे लोग शायद भूल जाते हैं कि राजनीति और साहित्य मात्र अनिव्यक्ति मे ही भिन्न हैं अन्यथा

दोनो का उत्स एक ही हैं समसायिक यथार्थ माने जनता का यथार्थ माने जनता के जीवन का लक्ष्य

---

१ – (शिव कुमार मिश्र, परिषद, पत्रिका अप्रैल ६८ से मार्च ६६ वर्ष ३८ अक– १–४ पृ० ८४)

२ – (नागार्जुन चुनी हुयी रचनायें–२ पृ० ८०–८१)

और सघर्ष । इसमे कोई शक नही कि कविता को वक्तव्य बनाना कविता की शर्तो का अतिक्रमण करना है। ऐसी कविता स्थायी भाव की नही होती। किन्तु जिस समाज मे सलीके से जीना मुहाल हो, जहा दमन और उत्पीडन, शोषण और कमीशन, जाति और धर्म और दगा और दहन जीवनाचार बन गया हो, जहा सब कुछ ऊपर ही ऊपर पी जाने का रिवाज बन गया हो, वहा जीने की न्यूनतम जरूरतों की जद्दोजहद का स्थायीभाव बनना स्वाभाविक है। ऐसे समाज के कवि से क्लासिक अथवा क्लासिक भाव के काव्य की माग करना उसे समाज विमुख, अप्रासंगिक और कामनीय बनाना है। नागार्जुन इसी जमीन से सशक्त प्रतिरोध के कवि सिद्ध होते है। ऐसे कवि जिसकी कविता अपनी प्रतिबद्धताओ विश्वासों और मान्यताओके लिए कभी वक्तब्य बनती है तो कभी नारा। मगर किसी भी सूरत में व्यर्थ बकवास नहीं बनती। नागार्जुन की राजनीतिक कविताओं की इसी अर्थ में महत्ता है। इन कविताओ की सार्थकता देश के राजनीतिक जीवन में आजादी के बाद से अब तक जो कुछ भी घटा है उसका पूरा का पूरा आकलन प्रस्तुत करने मे हैं यानी यदि कविता वास्तव मे समकालीन जीवन में कोई प्रत्यक्ष भूमिका अदा करती है तो नागार्जुन की कविताओ ने यह कार्य पूरी मुस्तैदी से किया है। नागार्जुन ने खुद ही कहा है– " प्रतिहिंसा ही स्थायीभाव है मेरे कवि का" – १

नागार्जुन की कवितायें जाहिर है कि रोज–रोज नाना प्रकार की समस्याओं से जूझती सर्व साधारण की तबाह जिंदगी को और फटेहाल बनाने की जब कभी और जिस किसी ने भी कोशिश की तब कवि ने बेधडक कविता को हथियार बनाया और हमलावर का जमकर प्रतिकार किया है। सच तो यह कि आजाद भारत में उनसे ज्यादा हिम्मती और विद्रोही कोई और हुआ ही नहीं। इस माने में वह कबीर की परम्पराके रचनाकार है। जहां सिर्फ हमें उनकी सरलता, फक्कडपन, साफगोई, साहस और अद्वितीय जिजीविषा के दर्शन होते है। वह कभी भी किनारे पर बैठकर तूफान के ठहर जाने का इंतजार करने वालो मे नहीं है। जो सही न्यायपूर्ण और नैतिक है उसकी पक्ष धरता करने वालों में है। जन के लिए, न्याय के लिए यदि उन्हें कुछ विचलन भी करना पडे तो पीछे नहीं रहे बाबा। वह वामपंथी विचार धारा के निकट थे पर संपूर्ण क्राति के भी समर्थक थे। आपात्काल में जेल गये और संपूर्ण क्रांति के मोहभग होने पर उसके खिलाफ भी कविता निजी कांग्रेस को कोसा तो वामपंथियों की भी खबर ली। उन्हें जो सही लगा वह लिखा इसलिए कि वो सामाजिक प्रतिपक्षता का मतलब अच्छी तरह समझते हैं उन्होंने 'जनसत्ता' को दिये गये साक्षात्कार मे कहा भी ' ह म अपने विवेक को बहुत बडा स्थान देते है। कोई मुगालता नहीं कि हम गलती नही

---

१ – (पृ० – २५)

करेगे। लेकिन सही समय पर हमको अपने अदर की आवाज जो कहती है, उसका बड़ा महत्व है।"
— १

वह सही अर्थो मे जनकीय और वही उनका सल्ल था। यह तय है कि कवि जनता की तकलीफ को नहीं समझता वह बडा कवि नहीं हो सकता। नागार्जुन इस लिए भी बडे कवि है कि वह बार—बार जनता के दुख और तकलीफो से रोये हैं और यह तडप और हलचल उनकी कविताओ मे साफ—साफ नजर आती है। इस युगीन वेदना की बेजोड अभिव्यक्ति नागार्जुन की अकाल और उसके वाद जैसी कविता में है। सिर्फ आठ पक्तियों की यह कालजयी कविता खुद मे एक महाकाव्य का दर्द लिये है। इसमे बाई आंख से रची गई अकाल यंशणा की तस्वीर तो है ही लेकिन साथ ही साथ घर में दाने आने का मतलब क्या है, आंगन मे धुंआ उठना या कांये का पांखे खुलवाना किस कदर सुन्दर हो सकता है। इसे नागार्जुन की आंख से देख ही जाना जा सकता है—

कई दिनों तक चूल्हा रोया चक्की रही उदास,
कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उसके पास
कई दिनो तक लगी मीत पर छिपकलियो की गश्त
कई दिनों तक चूहो की भी हालत रही शिकस्त।
दाने आये घर के अदर कई दिनों के बाद
धुंआ उठा आंगन के ऊपर कई दिनों के बाद
चमक उठी घर भर की आंखें कई दिनो के बाद
कांए ने खुजलाई पांखें कई दिनों के बाद।

स्मरण नहीं होता कि अकाल पर और उससे उपजी भूख पर इतनी मामूली चीजों का वृतांत देकर लिखी गयी इतनी मुकम्मल कविता कही और है जो एक आम आदमी की घरेलू जिंदगी का पूरा चित्र आंख में रचा बसा देती है। यह सहज कविता है लेकनि यह सरल कविता नहीं है सहज वही होता है जिसकी अंतर्वस्तु जटिल होती है। यह कविता जटिल अंतर्वस्तुवाली है क्यों कि शब्दों मे मनुष्य न हो किन्तु काव्यार्थ में वह केन्द्र में है। मनुष्य की तरह शब्दों में 'भूख' का भी नाम नहीं लेकिन सारी यातना 'भूख' की है। ऐसी यातना है कि जिसमें मनुष्य के साथ पशु पक्षी जड चेतन सब एक साथएक तान एक लय मे ग्रस्त है। अकाल केवल शब्द नहीं भूख केवल शब्द नहीं, वह साक्षात मांगा जाता हुआ परिदृश्य 'फेनोमना' है, अनुभव है। कविता मे यही अनुभव अनुभूति बनकर असीम हो गया है। तद्‌भव शब्दों में, चिर परिचित हेतु में, आठ—दस पंक्तियों मे, ऐसी कविता

१ — (संदर्भ ग्रहण पंकज विष्ट जनवरी ९६ पृष्ठ ८)

शायद ही किसी अन्य भाषा मे लिखी गयी है। यह है सहजता की जटिलता।" – १

भारतीय वाचिक कविता की परपरा को नया जीवन देने वाले नागार्जुन की कविता मे आने वाला यथार्थ जीवनमे हर दिन और हर क्षण घटने वाला यथार्थ है पर उनकी यह काव्य दृष्टि मूलत ऐतिहासिकता के गहरे बोध से जुडी हैं मजेदार बात यह है कि साहित्य मर्मज्ञो, के लिए अपनी कविताओ के जरिये चुनौती भले देते हो लेकिन खुद साहित्य मे नही जीते। कविता लिखते समय उनके सामने अंत के रूप मे बडे–बडे कलावत उतना नही रहते जितना साधारण लोग रहते है।" – २

इस लिए वे अनुभूतियों और अनुभवो के लिए इन लोगो के बीच इनका हिस्सा बनकर रहते है और कविता लिखते समय अपनी अभियंजना को इन लोगों की उपस्थिति जरूरत और समझ के स्तर के अनुरूप ढाल कर प्रस्तुत करते हैं। "नागार्जुन पूरे जीवन के कवि है। वह राजनीतिक व्यंग्यकार भी हैं प्रकृति के चितेरे भी है। उनकी प्रकृति से आदमी अलग नहीं है। आदमी से प्रकृति अलग नही है। वह प्राचीन में कभी जाते है, तो नये से नये तक भी चले जाते है। वह प्राचीन का नये से, नये का प्राचीन से, रखरखाव कराते है। वह टकराव करते भी हैं उसमे नयी गतिशील समाजवादी दृष्टि लाते भी है। वह छंद शील है, छंदहीन हैं, जैसे बाबा अपनेज्ञान से आतंकित नहीं करते, वैसे उनकी कविता भीनहीं। उसमें जीवन, ज्ञान को उगली पकडाकर चल रहा है। ज्ञान जीवन पर छा नहीं गया। इसलिए कविता का कम से कम संस्कार रखने वाला आदमी भी उनकी कविता के निकट आ सकता है।" – ३

इसीलिए वह कह सके–

इसी में भाव इसी में निर्वाण
इसी मे तन मन इसी मे प्राण
यही जड जंगम सचेतन मां अचेतन जतु
यहीं हां नां किन्तु और परन्तु
यही है सुख दुख का अवबोध
यदों हर्ष विषार चिंता क्रोध
यहीं है सभावना अनुमान

---

१ – (अजय तिवारी– नागार्जुन की कविता)

२ – (अजय तिवारी नागार्जुन की कविता)

३ – (विष्णु नागर सारंगा दिस ८७ पृष्ठ २५)

यहीं स्मृति विस्मृति सभी का स्थान
छोडकर इसको कहा निरन्तर
छोडकर इसको कहा उद्दार
स्वजन, परिजन, इष्टमित्र पडोसियों की याद।" – १

लोक छोडकर न जाने का यही जज्बा, और "अपने ही खेत मे" – २

रमे रहने की सतई मानसिकताा नागार्जुन को बहुत विशिष्ट बनाती है। अपने ही खेत का विषलेषण करते हुए लीलाधर जगड्री लिखते हैं– "कवि का अपना मोर्चा या अपना खेत क्या हो सकता है? यह मोर्चा या खेत कविता के अलावा और क्या हो सकता हैं? नागार्जुन मे ही उत्तर ढूंढा जा सकता है– अपने खेत में हल चला रहा हूं। इन दिनो बुआई चल रही है । इर्द–गिर्द की घटनाये ही मेरे लिये बीज जुटाती हैं' . .. .. घटनाओ के बीज गाव, शहर और चारों दिशाओ से आ रहे हैं। कवि बाजारू बीजों की निर्मम छटाई की बात करता है और इसी कविता मे एक अद्भुत घोषणा है जो आधुनिक चितन पर एक प्रश्न चिन्ह तो लगाती ही है खेती और किसानी की तकनीक का भी अर्थ बदल देती हैं– 'मकबूल फिदा हुसैन की। चौकाऊ या बाजारू टेकनीक, हमारी खेती को चौपट करदेगी।' यहां कवि की सरस्वती और उसकी रचनाधर्मिता एक ऐसे कार्य के खेत (कार्य–क्षेत्र) मे बदल जाती है जहा कवि का इशरा किसी ऐसी घटना की ओर है जिसमे स्त्रियो की सहज आवाजाही या उपस्थित के निषेधके बीज बोये जा रहे हैं या उसके बोये जाने की सभावना बनती जा रही है।" – ३

इसी तरह शनीचर भगवान् मे कवि एक ऐसे व्यक्ति से मुखातिब है जो तरुणाई मे वामपंथी पार्टी के मेम्बर रह चुके हैं और जिनकी सास अपने दामाद को कम्युनिस्ट पार्टी का टिकट दिलवाने के लिए वैष्णोदेवी हो आयी है, और जो सज्जन स्वयं इधर शनीचर भगवान की तेल वाली परात मे सौ अठन्नियां चढ़ा चुके हैं। यानी शनीचर महाराज के पास अब पचास रुपये हो गए है। नागार्जुन कविता के अत मे संकेत करते हैं कि शनीचर तुम्हारे सर पर नही दिल मे आ विराजे हैं' और 'शनीचर का पुजारी' आप जैसे 'भगत' को ढूंढ निकालेगा।

यह यथार्थ की निपट द्वंद्वत्मकता है जिसे कवि बहुत सचेत भाव से पकडता है। बाजारू संस्कृति में कुछ भी सुरक्षित नहीं रहता, नागार्जुन की अंतर्हष्टि इस बात को समझ रही है इसलिए

१ – (नामवर सिह प्रतिनिधि कवितायें' – पृष्ठ २१)

२ – (नार्गाजुन का काव्य संग्रह – प्रकाशन वर्ष १९९७)

३ – (नागार्जुन अपने खेत में –लीलाधर जगूडी पल प्रतिपल ४६ अक्टूबर दिस. १९९८ पृष्ठ ४)

यह कवि जितना सकट मे आता खुद को महसूस करता है, उसकी जिजीविषा उतनी ही सघनता और तीव्रता से सुगबुगाने लगती है और वह नये सिरे एक बार फिर सक्रिय हो उठता है। यह कभी न चुकने वाली जिजीविषा और जीवन्तता दरअसल विवेक पूर्ण वैचारिकता और नैतिक सघर्षशीलता से उपजी है। इसी प्रकार दूसरी कविता मे भी इस काव्य नायक की वर्गीय स्थिति और स्वय नागार्जुन की वर्ग दृष्टि की पहचान का द्योतक है। यह न केवल समूचे समाज, परिदृश्य ,हर आदमी स्थिति परिस्थिति को देखने की दृष्टि है बल्कि यथार्थ का आकलन भी हैं यह इसी बाजारू संस्कृति के बिके हुए सुविधा परस्त लोगो का आख्यान है जहा वह हर तरीके अपनाकर स्वय को सुरक्षित कर लेना चाहता है । चाहे इसके लए उसे किसी भी मन्दिर मस्जिद हुआ ताबीज की परिक्रमा ही क्यों न करनी पडे।

यहां भ्रष्ट होकर सुरक्षित होने और सफल रहने का अर्थ सिर्फ इतना सा नहीं है जितना इनका शब्दार्थ है बल्कि इसकी व्यंजना बहुत दूर तक जाती है। जहां तक यह जाती है वह एक ऐसी स्थिति है जहा मनुष्य मनुष्य होकर भी मनुष्य नहीं रह जाता। यहा सुविधाग्रस्त मनुष्य मौकापरस्त हो जाता है। ऐसे लोगो से आप किसी नैतिक सघर्ष की उम्मीद नहीं कर सकते। अत भ्रष्टाजन्य सुरक्षा का अर्थ हुआ मनुष्यता के प्रति शत्रुता। अपनी इसी व्यापक दूरगामी ध्वनियो प्रतिध्वनियो के साथ नागार्जुन अपनी सामाजिक सतृप्ति और दृष्टि की वस्तुपरकता का सकेत देते हैं जो कवि की रचना प्रक्रिया एवं प्रविधि को एक भिन्न रूप प्रदान करता है।

असल मे नागार्जुन के कविता की मुख्य विशेषता इस भारतीय कविता की वर्णनात्मक करूणाशीलता है जो उसे मनुष्य के गहरे और आत्मीय जीवन के सघर्षों से एक बार फिर जोड देती हैं असंतोष विद्रोह और क्रांति के अवबोध से युक्त और संवेदनशीलता के गहरे ताप से संयुक्त उनकी कविता मनुष्य को उसके भीतरी सघर्ष यात्रा के लिए प्रेरित करती है। नागार्जुन के यहा जो रचनात्मक तनाव का गुस्सा है, उसे आम आदमी के दर्दीले हालात की कहानी की भाषा मे पुनर्रचित करने की कोशिश के उनके कविता ससार मे आसानी से लक्षित किया जा सकता हैं दर्द या शोषण की विडम्बना का सम्पूर्ण दृश्यालोक वहा है इस रूप में वह सार्थक सृजन संसार की कविता है जो आदमी को उसके मूल जातीय संदर्भ और संघर्ष में पहचानती है । केवल पहचान के कारण नही, मार्मिक पहचान के कारण नागार्जुन की कविता बहुत गहरी और इसलिए स्पष्टीकरण हैं यह सघर्ष को इतिहास और मानवीय विवेक की जडों में ले जाते हुए उसे नये सिरे से पहचान देती है।

''''''''''''''

अध्याय-3 - खण्ड-घ

त्रिलोचन की सामाजिक चेतना

त्रिलोचन हमारे जातीय बोध के कवि है। उन्होने वह लिखा, जिसे उन्होने महसूस किया। समय की नब्ज को पकडे वह हमारी समकालीन जीवन स्थितियों के ऐसे रचनाकार हैं, जिन्होने जीवन को बहुत नजदीक से जाकर छुआ है। उनकी कविताए एक सवेदनशील और आस्थावान इसान की भावनाओं और चाहतो की निश्कपट अभिव्यक्ति हैं, जो जड पदार्थों मे भी आत्मा की सिहरन ही जटिल समय की पहचान ने, इसकी चुनौती को स्वीकारने तथा मनुष्य और प्रकृति को किसी भी कीमत पर बचाये रखने की आकाक्षा से प्रेरित ये कविताये इस भयावह समय मे भी स्वार्थान्ध सभ्यता और कुटिल मानव विरोधी प्रवृत्तियो से जूझने का सकल्प लेकर नये मनुष्य की संवेदना से प्रतिभूत होकर लिखी गयी प्रतीत होती है।

ये विश्व पूजीवाद की चुनौतियो को स्वीकर करने वाली कविताये है। इनमें साहस और स्वाभिमान, साम्य, सद्भाव की आकांक्षा के साथ विन्यस्त है। गहज जीवनशक्ति, रूपाशक्ति और रागात्मक ऐश्वर्य के कवि के रूप मे त्रिलोचन की पहचान उनकी तमाम कविताओ में तत्परता से की जा सकती है।

त्रिलोचन के यहां कविता के गहन निहितार्थ हैं। कवि जानता है किसी भी मनुष्य के कहे जाने वाले समाज मे कविता की उपस्थिति मनुष्यता की भी उपस्थिति है। यही चीज आज दुर्लभ होती जा रही है। ऐसा लगता है कि नियोजित तरीके से कविता का ससार सीमित किया जा रहा है– तब, कवि, पाठकों को उनकी उपस्थिति से कविता का फलक उसकी हिस्सेदारी बढ़ाकर बनाता है और इन सब में कविता की अनिवार्य उपस्थिति दर्ज करता है। वस्तुतः इस युद्धरत समय में और इस प्रौद्योगिकी के युग में जहां कविता केवल छापाखाने की दुनियां तक और दृश्य, श्रृव्य माध्यम शब्दों के विकल्प के रूप मे आ गयी हो और जहां सच को सच कहने की परम्परा खत्म होती जा रही हो, वहां कविता ही सबसे बुरे दिनों में भी हमें आदमी बनाये रखती है।

कविता की रचनात्मकता को बचाये रखने मे इस तथ्य को निष्क्रिय आभार के रूप में नही वरन् इस संघर्ष के रूप मे देखा जाना चाहिए, जिसको मिलाकर त्रिलोचन की कविता का सौंदर्य निर्मित होता है। त्रिलोचन की कविता का यह संघर्ष छिपा हुआ नहीं है, पर यह कविता के भीतरी संघर्ष की तरह ही है। इस संघर्ष को पहचानने के लिए उनकी कविता के मनुष्य को पहचानना भी आवश्यक है और त्रिलोचन का यह मनुष्य वह है, जो अपने दोनों हाथों से खट रहा है। यह खेतिह है, मजूदर है और सम्पूर्ण जीवन है।

"त्रिलोचन ने बहुत सहज भाषा मे सादगी के साथ लोक भूमि पर छोटे–छोटे गीत लिखे है जिमने भावुकता का उफान कतई नही है बल्कि ठोस सवेदनाओ की छोटी–छोटी दीप्तिया दे खती है। इन गीतो मे मानव और प्रकृति सौंदर्य के प्रति गहरा लगाव लक्षित होता हैं। कवि का सौंदर्य बोध परिवार तथा लोक की स्वरूप भूमि पर छोटे–छोटे बिम्ब रचता है। इन छोटे–छोटे गीतो मे बिम्बो से जीवन मूल्यो की ऊष्मा फूटती हैं ये गीत या त्रिलोचन की अन्य कविताये यदि प्रगतिशील हैं तो इसी अर्थ मे उनमे कवि का सौदर्य बोध है जो सबको साथ देखना चाहता हैं जो खुली हुयी जीवन दृष्टि नी प्रकृति या मनुष्यकी छवि से बनता है और उसे अभिव्यक्ति देता है। कवि स्वरूप अनुभूतियो को एक मानवीय दृष्टि से रचता है जो हमारी मनुष्यता की प्रतीति को सघन करती है।" – १

यह त्रिलोचन का रचना ससार है – सामाजिकता के प्रखर उन्मेष वाली उनकी कवितायें पृथ्वी पर रहने वाले अन्तिम मनुष्य के सुख के लिए संघर्षरत हैं हवा मे फूलो की खुशबू की तरह फैली सब कुछ अगीकृत करने के लिए व्याकुल। कवि की अपनी अनुभूतिया बहुत सयमके साथ प्रकट होती है। उसमे चीख पुकार या अट्टहास का आलोडन नही है। न व चीज है जिसे आप अतृप्त वासना कर सकते हैं इन सब दोषो से मुक्त, विचारो और भावनाओ से आलोकित काव्य मिलना कठिन होता है। साथ ही कवि की प्रगतिशीलता अट्टहास पूर्ण आतरिक क्षतिपूर्ति के रूप मे नहीं आयी है, वरन् कवि के अपने जीवन– सघर्ष से मज घिसकर तैयार हुयी है। इसीलिए कवि कह उठा– मुझमे जीवन की लय जागी। मैं धरती का हूं अनुरागी सारी कविताओं मे कवि का गहरा आत्म विश्वास और सामाजिक लक्ष्य के प्रति ईमानदारी प्रकट होती है। यह मात्र ईमानदारी ही नहीं प्रत्युत उसका जीवन दर्शन है।

और ...."कवि में नैतिक सचाई बहुत प्रबल होने के कारण ही वह सामाजिक लक्ष्य के प्रति उन्मुख है। बहुत काफी लोगों का ख्याल है कि नैतिक सच्चाई से अनुप्रेरित कविता में काव्य कम होता है और थोरा उपदेश अधिक। परन्तु इस विचार में कोई सार नही है। कवि ने डायडेन्टिक काव्य के कई अपने उदाहरण रखे है। जो शुद्ध काव्य की दृष्टि से उत्कृष्ट चीजें है। इसी नैतिक भावना के कारण ही कवि अधिक मानवीय हो गया है। यह मानवीय गुण ही उसके साम्राज्यवादी ध्येय और तद्गत काव्य के उद्गम का मूल कारण है।" – २

आशय की ज्यादा गहराई और व्याप्ति के लिए त्रिलोचन की कविताएं एक ~~फैलाव लेती है~~।

---

१ – (राम दरश मिश्र– धरती के कवि त्रिलोचन– सापेक्ष– त्रिलोचन अक – पृष्ठ १४५)

२ – (गजानन माधव मुक्तिबोध – हंस –जुलाई १९४६)

यहा उनकी कोशिश न मालूम से तथ्य या चरित्र को बडा मूल्यवान या व्यापक बनाने की होती है। यह प्रतिबद्ध जीवन आस्था की कविताए है। यह उनके नैतिक आस्था के अर्थवान व्यवस्था का सयोजन है। ये कविताएं एक साथ मिलकर इस देश की आत्मा और भूगोल के हर हिस्से मे उतरती है। उनमे हरदम एक टोही की सी सावधानी और सकल्प है। स्पष्ट है त्रिलोचन " धरती से दिगन्त तक" नहीं बल्कि " धरती" के "दिगन्त" के रचनाकार है। मानव सौन्दर्य बोध के विकास वनस्पतियो और प्राणियों को योगदान त्रिलोचन के लिए महत्वपूर्ण है।

"मानव का सारा सौन्दर्य बोध जब विकास करता हैं, तब इनका अपना क्या योगदान रहता हैं,

आंखे ही इसे देख सकती हैं,

मैं उसी समग्रता को देखने का आदी हू।" –१ यह समग्रता और प्रवृत्ति का जीवित स्पन्दन कविताओ को नया अर्थ ही नहीं देता बल्कि ये कविताओ "हृदय की मुक्तावस्था" की शक्ति भी बनती है। इन कविताओ में बच्चो की सी निश्छलता है, जो चित्त को विस्तार प्रदान करती है। कविताओ के बिम्ब प्रतिमा के अर्थ के माध्यम से अनुभूति की प्रतिमा तक पहुचते है जैसे–

हवा डोली

घास बोली

आज मैंने गाठ खोली

फूल, तुम खिल

के झरोगे, " (पृष्ठ २४)

बादलो ने हलकी अगडाई ली,

एक ओर चमक जरा बढ गयी,

हवा नये अंखुओ से यू ही बतियाती है,

उनका नये अंखुओं से यूं ही – बत्यियाती है,

उनका सिर हिलती है,

फूल खिलखिलाते हैं।

ताप के ताप हुए दिन

(ज्ञापस, पृष्ठ– ३७)

---

१ – (त्रिलोचन – ताप के ताये हुए दिन)

इन कविताओ में कलात्मक सयम शब्दो से वर्णो के नाद सौंदर्य तक फैला है, जिसके कारण कविता मुक्ति और वक्तब्य दोनो ही होने से बच जाती है। यह अनुशासन लोक गीताम्मक धुनो पर आधारित "उल्लास" की गति और ऊर्जा के विस्फोट से सम्बद्ध पृथ्वी आकाश, फिर न हारा, सरसो का फूल कविताओ में दृष्टि केवल आलम्बन पर ही नही है, बल्कि वह उससे भी परे सामाजिक सत्य को भी हल्का सा उघारती चलती है। त्रिलोचन क्षण प्रतिक्षण विकसित काल को मुट्ठी मे बाध सकने की सामर्थ्य रखते है।" – १

उनकी सहस्त्र दल पृथ्वी आकाश और "हम साथी" कविताओ मे दृष्टिबद्ध सौंदर्य अनुभव के स्तर पर "कलाबद्धता का ही प्रभाव है, क्यो कि कविता मे काल स्थिर लगता है। परन्तु कुछ कविताओं में समय को रोककर कंधो पर हाथ रख कर वे निर्निमेष देखते है और फिर मुस्कराते हुए, बतियाते कर हाथोसे एकाएक छोड़ देते है। जैस "सहस्त्र दल कमल"।

इस कविता मे शब्द और अर्थ का साथ कर देश को क्रमश- काल के साथ ही साथ फैला दिया है जिसके कारण कविता का शब्दार्थ भर जाता हैं और पूरी सरचना से नया अर्थ झलकने लगता है, जो द्वंद्वात्मक अर्थ संहति के कारण होने वाले परिवर्तन की प्रक्रिया ही नही, परिणाम का संकेत निराला की "बादल राग" कविता की भाति ही करती है।" पूरी कविता को उद्धत करने का लोभ सवरण करना कठिन है।" – २

जब तक यह पृथ्वी रसवती है,
और
जब तक सूर्य की प्रदक्षिणा मे लग्न हैं,
तब तक आकाश में,
उमडते रहेंगे बादल मण्डल बाध कर
जीवन ही जीवन
बरसा करेगा देशों में, दिशाओ में
दौड़गा प्रवाह................ (पृष्ठ –१४)

मनुष्य की असहायता, निरन्तर बंटते चले जाने का भाव, पैरों के पास कीचड के होने का बोध मैने जो सोचा था ताप के ताप हुए दिन पृष्ठ ३६ कविता मे अपराजेय विवशता को अभिव्यक्ति तक ले जाता है। विवशता से संकल्प तक की यात्रा उद्देश्यहीनता की स्वीकृति देती है, जो " लाभ

१ – (डा. सत्यप्रकाश मिश्र– त्रिलोचन की देशी कवितायें पहल – १५ अक्टूबर १९८० पृष्ठ १२५)
२ – (वही–उपर्युक्त)

केन्द्रित संकल्प तक की यात्रा उद्देश्यहीनता की स्वीकृति देती है , जो "लाभ केन्द्रित व्यवस्था" के बढते हुए शिकजे का तीव्रता से अहसास कराती हैं–

जैसे हो, चलना तो है,

भले कुछ न हो संभर,

वही थल नही है, जो है

एक ओर खाई है,

एक और कुआ।"

अपनी कविता संग्रह ताप के ताए हुए दिन मे त्रिलोचन ने अपनी छोटी सी भूमिका मे पाठक और कवि के मध्य संबंध के अभाव पर अपनी पीडा इन शब्दो मे व्यक्त में व्यक्त की हैं–

कविता मेरी है और उनके प्रति अपनी जिम्मेदारी से मैं बरी नही। पर जिम्मेदारी की मजूरी का कोई खास मानी नही। यह मानी उस हालत में खास मतलब रखता जब जागरूक पाठक और कवि के मध्य सीधा सम्बन्ध होता । यी सीधा सबध अभी हिन्दी मे दिखाई नहीं देता, शायद आगे कभी हो।"

"उपर्युक्त कथन आज की कविता पर त्रिलोचन की एक बेहद तल्ख टिप्पणी– जैसा है और साथ ही स्वयं त्रिलोचन की कविता की प्रकृति के समझ ने की एक कुंजी भी। हिन्दी में पाठक और कवि के बीच सीधे सम्बन्ध का विघटन छायावादी कविता के साथ शुरू हुआ था। आज की कविता तक आते–आते यह स्थिति अपनी तर्क संगत परिणति को पहुंच गयी है। जहां कवि और पाठक के बीच सारे जीवंत सूत्र पूरी तरह टूट गये है। त्रिलोचन के कथन मे जो बेचैनी है, उसको इसी ऐतिहासिक संदर्भ में रखकर देखा जाना चाहिए। एक आधुनिक कवि के रूप मे त्रिलोचन अपनी इस विलक्षण ऐतिहासिक स्थिति और उससे पैदा होने वाली विडबना को जानते है। इसलिए यदि एक ओर वेअपनी कविता को सबका " अपना ही घर" मानते हैं तो दूसरी ओर उन्हें यह पीडा भरी जानकारी भी है कि–

महल खडा करने की इच्छा है शब्दों का

जिसमें सब रह सकें, रम सके, लेकिन सांचा

ईट बनान का मिला नहीं । " – १

"मैं यहां "सांचा" शब्द को रेखांकित करना चाहूंगा, क्यों कि "सांचा' यहा उस बडी वास्तविकता की ओर इशारा कर रहा हैं, जो शब्दों के बाहर है। उस बडे सांचे से कविता के इस

---

१ – (केदारनाथ सिह –मेरे समय के शब्द पृष्ठ– ७६)

"काम चलाऊ" सांचे का सीधा सम्बन्ध है। कवि भीतर यह तीखा एहसास हैकि शब्दो का ऐसा महल बनाने के लिए, जिसमे सब रह सके और रम सके, मानवीय सब्धो का सारा ढाचा बदलना होगा। "
— १

त्रिलोचन की कविता इसी बुनियादी चिता से पैदा होने वाली कविता है। इसीलिए उनके भीतर यह कचोट और एक दवा हुआ विश्वास है कि अभी हिन्दी मे पाठक और कवि के मध्य जो संबध दिखायी नही देता , "शायद आगे कभी हो",

इन कविताओ की जडे बहुत दूर तक फैली हुई है। साहित्यिक स्तर पर इन कविताओं के पीछे एक भरा—पूरा अतीत है। जिससे इनका गहरा और जिन्दगी सबध है। इस संबध का सबसे सीधा प्रमाण इन कविताओं की भाषा मे मिलता है। त्रिलोचन ने अपने समय की प्रचलित साहित्यिक हिन्दी से अलग और अंग्रेजी वाक्य विन्यास तथा मुहावरो के प्रभाव से बिल्कुल अछूती, एक ऐसी काव्य-भाषा विकसित की है जो पूरी तरह हिन्दी है। यह एकऐसी हिन्दी है जिसके शब्दो मे लगभग एक हजार वर्षों की संघर्षो की गूंजे है। और त्रिलोचन अपनी कविता मे उन गूंजो का भरपूर इस्तेमाल करते है—

समग सुगबुगाई
नहीं तो कही से
धुन आई क्या आई
चादर फिर फैलाई
फिर—फिर ताहि आई

त्रिलोचन की इस "चादर" के ताने—बाने कितनी दूर तक फैले हुए है। एक और यदि उसके सूत कबीर की "झीनी चदरिया" से मिले हुए है तो दूसरी ओर चादर को फिर फैलाना और फिर—फिर तहिआने को यह क्रिया अपनी तहों में तुलसी की उस वंदना को भी लपेटे हुए है———

द्रासत की गयी बीति निशा सब
कबहूं न नाथ नींद भरि सोये

शब्द की ऐसी गूंजें कवि के सघर्ष और पीड़ा को पूरे विश्वास से जोडती है।

त्रिलोचन की कविता इन्सानी रिश्तो और जीवन मूल्यों की ऐसी गहरी नदी है जो लगातार अपने समय, समाज, अपने परिवेश रूपी तहों से हौले—हौले बात—चीत करती हुयी आगे बढ़ती है।

---

१ — (केदारनाथ सिह —मेरे समय के शब्द पृष्ठ— ८०)

मानवीय गरिमा और संबंधों की ऊष्मा लिये त्रिलोचन कविता को जीन के साथ गहरे से जोड़ते है। वह जीवन के प्रसंगों में से बल्कि जीवन के प्रवाह से कविता के उपयुक्त प्रसंगों को चुनते है। वांछित अर्थ की निष्पत्ति प्रदान करता हुआ त्रिलोचन का काव्य मानवीय सम्बन्धों की आत्मीयता का काव्य है। त्रिलोचन कविता लिखते हैं, इसलिये कि ठोस किन्तु द्वंद्वात्मक और गतिशील यथार्थ जीवन से गहराई के साथ प्रेम करते है। तभी तो त्रिलोचन की कवितायें विघटन के इस दौर में भी आदमी से आदमी को जोड़ती है, आदमी से आदमी की कथाव्यथा कहती है, सहानुभूति दिलाती है, आदमी की अभियक्ति को आदमी के लिये, उसकी भाषा में आदमी को आदमी बनाने के लिए कारगर सिद्ध होती है जो विस्मृति के गर्त में फेंक दी जाये। वे नयी चमचमाती कवितायें है जो जीवनोन्मुखी है, उल्लास और गतिमानता के गुणों से मुक्त हमारी मानवीय स्मृतियों का सुरक्षित रखने वाली। धरती के त्रिलोचन इसीलिए कह सकें। –

" सुनता हूं मैं जीन का स्वर

गाता हूं में जीवन का स्वर" (धरती–पृष्ठ– ११)

विश्व का हृदय तक यह प्रसार त्रिलोचन की मानवीयता का ही प्रसार है। कवि मनुष्यता का मान रखने के लिये जीता है क्यों कि वह जीवन से प्यार करता है–

"औरों का दुखदर्द वह नहीं सह पाता है

यथा शक्ति जितना बनता है कर जाता है" (ताप के ताये हुए दिन –पृष्ठ– ४७)

या– " मैने उनके लिए लिखा है जिन्हें जानता

हूं जीवन के लिए लगाकर अपनी बाजी

जूझ रहे हैं, जो फेके टुकड़ों पर राजी

कभी नहीं हो सकते हैं, मैं उन्हें मानता

हूं। आगामी मुनष्यताओं का निर्माता।"

इस धरती और उसके बड़े तबके साथ प्यार करने का यह अद्भुत जज्बा त्रिलोचन की कविताओं का वह रंग है जिनसे वह अपने मनुष्य होने की नैतिक शर्त को पूरा करते है।

त्रिलोचन जीवन संघर्ष और जीवन सौंदर्य के अप्रतिम कवि हैं। उनकी कविता में चित्रित संघर्ष और सौंदर्य केवल उनका नहीं, बल्कि इस हिन्दी भाषी जाति का संघर्ष और सौंदर्य है, जिसे देखने और पहचानने की क्षमता हिन्दी के कविता के आधुनिकतावादी माहौल में लगातार खोती गयी है। त्रिलोचन ने न केवल इसे देखा और पहचाना है, बल्कि उससे वैसा आंतरिक लगाव स्थापित

किया है, जैसा कि कविता मे तुलसीदास और निराला तथा गद्य मे प्रेमचद –जैसे कथाकारो मे ही देखने की मिलता है।" – १

त्रिलोचन की विशेषता यह है कि वे कविताओ को ऐतिहासिकता से सम्पन्न बनाते है। ऐतिहासिकता अनुभव और सवेदना दोनो को प्रमाणिक बनाते एव गतिशील बनाती है। सामाजिक यथार्थ के आधार पर ही ऐसा सम्भव है। यथार्थ एक गतिशील सच्चाई है और उसकी गतिशीलता अतीत से चलकर वर्तमान मे होते हुए भविष्य की ओर जाती है। यह समय सापेक्षता ही कवि की अनुभूतियो को ऐतिहासिकता प्रदान करती है। ध्यान रखने की बात यह भी है कि ऐतिहासिकता अनुभूतियो की सवेदनाओ को न केवल प्रामाणिकता बल्कि व्यापकता भी देती है। इन्ही विशेषताओ से वे इस अवस्था को पाकर दीर्घायु होती है। इन्ही विशेषताओं से युक्त कृतिया ही क्लासिक का दर्जा पाती है।

त्रिलोचन की कवितायें इन्ही सदर्भो में क्लासिक हैं क्यों कि उनमें मनुष्य और उस नैतिकसभ्यता को अक्षुण्य बनाये रखने की ललक है।

" तेरे रोग द्वोष मे ले लूं, आ तू, आ तो,
झिझक न मेरी छाती सक सभाल सकती है।" (फूल नाम है एक पृष्ठ –२०)

त्रिलोचन की कविता का सवेदना संसार उतना ही विस्तृत है जितना उनका अनुभव संसार। वे अपने अनुभव, अपने रहने वाले ससार से लेते हैं , दरअसल जिसे हम कवि और कविता की आंतरिक विशेषताओं कहते हैं वे त्रिलोचन और उनकी कविता में पर्याप्त मिलेगी।

बिना किसी बड़बोलेपन के कोई राजनीतिक दर्शन न बघारते हुए और कभी–कभी तो आज की राजनीति जैसे स्वीकृत काव्य विषय को भी कविता में न लाते हुए अच्छी कविता हो सकती है। इसका उदाहरण त्रिलोचन की कई कवितायें पेश करती है।–

" बड़े–बडे शब्दों में , बडी–बडी बातों को
गहने की आदत और मे है, पर मेरा
ढर्रा अलग गया है,
ढाको के पातों को
थाली की मर्यादा देकर
पहना घोरा तोड़ दिया ।

यह कवि की संवेदन शील आत्मीयता है जिसके कारण ही यह संभव हुआ कि त्रिलोचन की

---

१ – (नंद किशोर नवल–'तापके ताये हुए दिन' सग्रह के फ्लैंपपर)

कवितायें अपने समय की चालू कविताओं, जन जन के लिए घडियाली आसू बहाने वाली कविताओ और वादो को शब्दो मे सप्रयास फिट करने वाली कविताओ से अलग दीखती है न केवल प्रकृति स्त्रियो से दोस्त ये या अपने देखे गये परिचित से और श्रमशील किसानो से बल्कि यह कवि मनवेतन प्राणियो तक से इतने गहरे जुडता है कि जड पदार्थ भी प्राणमय हो जाते हैं चीजों के प्रति, लोक के प्रति एक गहरी सपृक्ति इस कवि मे है। मनुष्य से प्रेम करना उनका सबसे बडा धर्म बन जाता है–

आदमी हम ऐसे हो

कि जिनके बीच रहते है।

वे भी हमे आदमी कहें

और यो ही सदा जानता रहे। (तुम्हे सौंपता हू पृष्ठ –७३)

''''''''''''''

अध्याय-3 , खण्ड- 5

शमशेर ,नागार्जुन और त्रिलोचन की समाजिकता का तुलनात्मक अध्ययन

नागार्जुन की कविता मे जनवादी सवेदना का एक विल्कुल भिन्न पहलू सामने आता है । त्रिलोचन जहा अपनी रचनाओ मे एक मेहनतकश व्यक्ति की धैर्यपूर्ण एव सुरक्षात्मक सहन शक्ति को लक्षित करते हैं वहा नागार्जुन इस तबके के लोगो के उन्मुक्त उत्साहो और निर्बाध आवेशों को तथा निरन्तर घटित होने वाली राजनीतिक घटनाओ की ओर उनकी सजग सामूहिक प्रतिक्रियाओ को व्यक्त करती हैं। राजनीतिक सामाजिक फलक पर जो कुछ भी घटित होता है, चाहे वह किसी व्यक्ति विशेष का प्रधानमंत्री बनना हो या किसी विदेशी राजनीतिक नेता की भारत यात्रा, आम चुनाव में हो या जय प्रकाश नारायण द्वारा चलाया जाने वाला 'सम्पूर्ण क्राति' के लिए अभियान, कोई जल्सा जुलूस हो या हरिजनों पर की जाने वाली अमानवीय हिसा की घटना इससे मेहनतकश लोगो के अंदर जो सनसनी फैलती है और इसकी ओर स्वत स्फूर्त रूप मे उनकी जो सामूहिक प्रतिक्रिया उभर कर सामने आती है, उसे सामूहिक प्रतिक्रिया उभर कर सामने आती है उसे नागार्जुन पूरी तन्मयता और सजगता के साथ व्यक्त करते है। जिस प्रकार साधारण जनसमुदाय पग–पग पर चकित, मुदित अथवा स्तंभित होता रहता है और जिस प्रकार गुस्से मे आकर वह किसी को भी आड़े हाथों लेने लगता है जल्दी ही उत्तेजित और फिर जल्दी ही शांत हो जाता है उसी प्रकार नागार्जुन का कवि भी इन सामूहिक प्रतिक्रियाओं को एक ऐसी –ऐसी काव्य भाषा में व्यक्त करता है जो मूलत जनभाषा जनमुहावरे पर आधारित है। चितन में नागार्जुन स्पष्ट रूप से वामपथी है और उन्हें पूर्ण विश्वास है कि देश में खुशहारी तभी आ सकेगी। जब किसान मजदूर एक जुट होकर इंजारेदार पूंजीपतियों और भूस्वामियों के शोषक उत्पीडक गठबंधन को तोड देंगे। किन्तु अपनी कविता मे नागार्जुन ऐसे निष्कर्षों पर तार्किक विश्लेषण के आधार पर नहीं पहुंचते। भावात्मक रूप से वे मेहनतकश लोगों के साथ पूरी तरह जुडे हुये है। और उनके दिल की धड़कन को तुरन्त महसूस करते है। उनका रुझान बड़े स्वाभाविक ढंग से समुदाय के हितों की पुष्टि होती हो। इसके लिये उन्हें कोई सचेष्ट प्रयास नही करना पड़ता। लोगों की भाषा में उनकी अपनी ही बांत को अनायास ही कहते जाना नागार्जुन जैसे जनकवि के लिए बडी मामूली बात है। परन्तु क्यों कि साधारण मेहनतकश लोगों की सामूहिक प्रतिक्रियाओं में कई बार कुछ भ्रान्तियां और अतर्विरोध बने रहते हैं तथा घटनाओं के चूक के साथ साथ उनकी प्रतिक्रियाए भी काफी कुछ बदलती रहती है नागार्जुन की रचनाओ मे भी हम ऐसे बदलावे बहुत बार आते है।

नागार्जुन की समय–समय पर बदलती रहने वाली स्थापनाओ को लेकर कुछ पाठक काफी विचलित भी हो जाते हैं और उनकी कविता के जनवादी चरित्र को ठीक से पहचानने मे दिक्कत महसूस करते है। किन्तु नागार्जुन की सभी प्रतिक्रियाओ मे यह बात एकदन स्पष्ट बनी रहती है कि वे अपनी स्थापनाओ को निजी अवसरवादिता के कारण नही, बल्कि बहुजन समुदाय के साथ अपने भावात्मक लगाव के कारण बदलते रहते है। वैसे सार रूप मे उनकी प्रतिक्रियाए कही अधिक गलत होती भी नही और उनकी पक्षधरता पर उनके दिशाभ्रमो से कोई विशेष आच नही आती। मेहनतकश जनता की सामूहिक भाव–मुद्राओ का ऐसा स्पंदन शील वाहक हिन्दी कविता मे कोई दूसरा कवि मुश्किल से ही मिलेगा। नागार्जुन को हम जनमानस की बदलती हुई दशाओ और प्रतिक्रियाओ का बैरोमीटर कह सकते हैं।

हिन्दी क्षेत्र मे जनवादी आदोलनो ने ज्यो –ज्यो जोर पकडा है त्यो–त्यो नागार्जुन की रचनाओ का जनवादी तेवर भी निखरता चला गाय है वैसे आजादी के बाद के तीस सालों की समूची राजनीति के जनविरोधी स्वरूप को नागार्जुन लगभग आरभ से ही प्रखरता के साथ महसूस करते रहे है और उस राजनीतिक छद्‌म को उजागर करने के लिए वे तीखे व्यंग्य का सहारा लेते रहे हैं । उधरजब से बुर्जआ राजनीति के तहत तानाशाही आतंक जोर पकडने लगा है, नागार्जुन अपनी रचनाओं मे बडे कारगर ढग से इसका विरोध करने लगे है। शोषक शासक वर्गों कीओर से बहुसंख्यक जनता पर होने वाले प्रहारों का नागार्जुन विशेष रूप से रेखाकित करते रहे हैं सही जनतांत्रिक मूल्यो और हनारी परम्परागत संस्कृति के स्वस्थ पहलुओ को नागार्जुन के पास ऐसी गहरी पकड है कि उनकी मदद सेवे आज के समाज में जो कुछ भी छद्‌म है उसे बड़े प्रभावशाली को आधार बनाने के लिए साथ–साथ वे अपनी कविता में अनेक ऐसे बिबों मिथको और आख्यायिकाओ को बडे कारगर ढग से प्रयोग में लाते हैं, जो जनमानस की सहज उपज होते हैऔर जन–स्मृति में अंकुठ पक्ष धरता भी सिद्ध करती है।

प्रतिपक्ष उनके लिए विचार–संज्ञा ही नहीं है, एक समर्थ, संगठित काव्यात्मक रूपविधि भी है । अभ्यस्त मार्ग को छोडकर सोचने और रचने का एक कारगर उपाय है। त्रिलोचन के काव्यात्मक यथार्थवाद की प्रेरणा और दिशा यही अनिवार्य प्रतिपक्ष है– प्रतिपक्ष जो प्रतीक्षा का पर्याय है, नकार का नही। काव्यात्मक यथार्थवाद त्रिलोचन की कविताओं मे एक रचनात्मक दृष्टि और काव्यात्मक संगठन के हिस्से के रूप में सामने आता है। वह उनके कविता का हिस्सा बनता है। उसे खपाता भर नहीं बल्कि उसे एक जीवित काव्यात्मक परिप्रेक्ष्य भी देता है । अनुभव की अद्वितीयता और शब्दों की गरिमा के बहुप्रचारित दावों के सामान्तर त्रिलोचन ने व्यवहार वादी रूझान से कवि वर्ग की नयी

संभावनाओ को जोड कर देखा और दिनचर्या मे शरीर साधारण चीजो को अचानक कविता की भाषा मे उपलब्ध कर नये काव्यात्मक सबध का साक्ष्य रचने की कोशिश की। पर त्रिलोचन की कविता को समग्रता से जानने के लिए दिन चार्या के यथार्थ को ऐतिहासिक जिदगी के तनाव मे देखना चाहिए। इस काव्य संसार मे हर समय कुछ नया घटित होता रहता है।

त्रिलोचन की कविता उदाहरण है कि उन्होने जीवन की पाठ शाला से ही काव्यदीक्षा ग्रहण की है। इसी रास्ते चलकर वे कविता को जाग्रत मन और जीवित समाज की अभिव्यक्ति का रूप दे सके है। प्रगति का अर्थ उनके लिए जीवन मे ही निहित है। जीवन के बाहर प्रगति के दावे निरर्थक है– अवास्तविक–

" जीवन मे ही प्रगति भरी है अलग नही है।
जो बाहर है वस्तु तत्व से दूर कही है।"

शास्त्रवाद के विरुद्ध त्रिलोचन जैसे अपने को सचेत करते है। " साधरणी करण कथनी की बात नहीं है। करनी में आये तो आये।"

इसी सावधानी के चलते त्रिलोचन जनता को स्वार्थी जनो से बचाने की सलाह देते है– " जाओ पेड रूख से अपना दुख गा आओ।"

साथ ही जनता को सडी व्यवस्था के विरुद्ध ललकारते हैं– नेतृत्व आकांक्षा से नही–उन्हीं मे से एक होकर संघर्ष बढाने और तेज करने के लिए–

" बीज क्राति के बेता हू मैं, अक्षर दाने
है, घर, बाहर जन समाज को नये सिरे से
रच देने की रुचि देता हूं।"

मुख्य बात यह है कि त्रिलोचन सामाजिक परिवर्तन के पक्ष में है–

" मुझको दुनिया
नापसंद है जो रहने के लिए मिली है।
मेरे संतोषी की सारी नींव हिली है।"

असल में असंतुष्ट होकर ही इस दुनिया को बेहतर बनाया जा सकता हैं । क्यों कि संतुष्टि का कोई कारण यह दुनिया दे नहीं पा रही इसी लिए वह परिवर्तन चाहते है। परिवर्तन नये जीवन का आधार है बल्कि अपने आप में नया जीवन ही है। इसीलिए त्रिलोचन के जीवन धर्मी काव्य विवेक में ही परिवर्तन और प्रगति की सार्थकता छिपी है। इसीलिए उनकी अस्वीकृत और असहमति के गहन निहितार्थ है। इसरूप में त्रिलोचन की कवितायें हमारे समय के मानवीय सघर्ष की शोषण तथा

अन्याय के प्रतिरोध की कवितायें है। साथ ही वे गहरे अर्थ मे मानवीय लगाव की कवितायें है। उनकी प्रतिरोधात्मक इस रूप में ज्यादा महत्वपूर्ण इस लिए है क्यो कि कविता को वह यथा स्थिति तोडने या उसे विचलित करने का जरूरी साधन समझते है। कविता से समाज बदले या न बदले, उसे थोडा बहुत बदलने की इच्छा से वह असपृक्त नही है, लेकिन वह निषेध कारी कवि नही है बल्कि जीवन की स्वीकृति के कवि है वे जीवन को उसकी तमाम बदरंग वास्तविकताओं जटिल अर्न्तविरोधो, कठोर चुनौतियो के साथ स्वीकार करते है।

स्पष्ट वह सभ्यता के उजाले और अधेरे दोनों का सकट जानते है और यह भी जानते है किइस उत्तरोत्तर गहराते सकट काल में कविता क्या कर सकती है। इतिहास और वर्तमान के प्रश्नत्रिलोचन की कविता में मडराते रहते है। इसी कारण वह कह सके–

" कब स्वतंत्र होगी यह जनता टूटी हारी"

वह जानते हैं कि वास्तविक स्वतत्रता अभी तक प्राप्त नहीं हुई है। वह जानते हैं कि एक लम्बा रास्ता तय करके ही इसे पूरा किया जा सकता है। इसी कारण उनका आहवान आगे बढकर बिना विश्रांति लक्ष्य पाने की ओर है–

"सूनापन दो
या निर्जन
पथ पुकारता है,
गत स्वनः हो,
पथिक
चरण ध्वनि से
दो उत्तर
पथ पर
चलते रहाहै निरन्तर

वह निराश नहीं है क्यों कि –

"अंधकार में देख रहा हूं
जीवन की बनती रेखायें
आये बाधायें सब आये
पर न मिटेगी किसी काल में
यें बनने वाली रेखाये।"

ठेठ भारतीय कविता के वर्णन गुण से युक्त, अपनी जातीय काव्य परम्परा को पहचानने–समझने की कोशिश मे लगी त्रिलोचन की कविता अपने समय की सामाजिक चिन्ताओ पर केन्द्रित वह बोध प्रदान करती है जो सही अर्थो में मुक्ति के प्रयत्नो को रास्ता दिखाती है।

शमशेर की कविता की पक्तियो को थोडा रुककर, ठहरकर पढना होता है। उसे बहुत रफ्तार से नही पढा जा सकता।

कविता मे आये हुए वाक्यो का यह विराम सिर्फ वाक्य को विराम नही देता हैं। वह आपको ठहरने के लिए विवश करता हैं । आप नही ठहर सकेंगे तो आपके हाथ से कुछ या बहुत कुछ फिसल जायेगा। कुछ ऐसा छूट जायेगा कि आप कविता के मर्म को नही पकड सकते। शमशेर विचार को तथ्य में, बिम्ब मे डिजाल्ब कर देते है। विचार उनके यहा एक वकतब्य की तरह नही आता बल्कि कविता में अन्तरलीन हो जाता है। इसलिए उनकी कविता अतिरिक्त सतर्कता की माग भी करती है। शिल्प और अतर्वस्तु को ऐसे महीन अनुपातिक रिश्तासतुलन के कारण उनके यहां आये हुए प्रत्येक शब्द पूरे स्पेस के साथ सामने आता है। यह शब्द के पूरे पूरे व्यक्तित्व का प्रकटीकरण है।

शमशेर मे अनुभव से ज्यादा आवजर्वेशन महत्वपूर्ण हैं । वे चीजो को उनके पूरे परिप्रेक्ष्य मे रखकर नये अर्थों को अन्वेषित करते है। इसका अर्थ यह नही कि बदलती हुयी दुनिया, उसकी हिसा और अमानवीयता को उसने दरकिनार कर दिया है। उनकी कविता इस विकट अमानवीय परिस्थिति के बीच एक साधारण मनुष्य के जीवन के जटिलतम होते जाने को ज्यादा महत्वपूर्ण समझने का प्रयास करती है। क्यों कि वह वास्तविकता के विभिन्न संस्कारो में एक साथ धसते हुए उसे एक साथ आपरेट करने की कोशिश करती है। इसीलिए उनकी कविता थोडी जटिल और उलझी हुई सी लगती है।

इसीलिए शमशेर की भाषा मे वैसी गति की तीव्रता नहीं जो हमारे सोचने को निरस्त कर देती है। यह सोचने समझने और विश्लेषित करने की गति का पद्य हैं वह समाज में बदलते दृश्य का अनुगमन नहीं करता है। वह उसे समझने की कोशिश करता है। चीजो और सबंधों को माया मे बचाने की कोशिश।

शमशेर की कविता श्वेत-श्याम मे बटी नहीं है। जड और नीरस हो रहे जीवन मे, वहां उससे बाहर निकलने की इच्छाये वहा है। जीवन के ठूठ को फिर से हरियाने की इच्छा और उम्मीद बची है। समझौतों के बीच खत्म होते विद्रोह का, विद्रोही रोमान का, एक रेशा शेष है। पुराना स्वाद और लीक तोडने की इच्छा अभी शेष है।

शमशेर के यहां शब्द सक्रिय हैं। शब्दो की यह सक्रियता सिर्फ भाषा का मामला इसलिए नही है कि वे सिर्फ कुछ भाषिक निर्मितिया हैं, बल्कि उनमे अनुभूति का अक्सर उभरती है। उनके यहा शब्दो की क्रियाये बची हैं, उन क्रियाओ के कारण बचे हैं, उन कारणों में विश्वास बचा है और शब्द तथाकथित उत्तर–आधुनिक समय मे हम उसे देखते सुनते हैं शब्दो को सक्रिय रखने की इस कोशिश मे स्मृति , यथार्थ और कल्पना मिलकर कविता का एक विशाल फ़लक बनाते है।

शमशेर किसी तरह की काव्यरुढ़ि का शिकार नहीं है। यहा तक कि खुद अपनी भी काव्यरुढि शमशेर नहीं बनने देते । उनके यहां सामाजिक यथार्थ का आंदोलनात्मक स्तर आघात मुखर है तथा सामान्तर रूप से सौन्दर्य को, मानवीय प्रेम को निजी अंतरगता में शुद्ध कविता के कलेवर मे मय और उदास अभिव्यक्ति देने की विकलत भी साथ–साथ लसित की जा सकती हैं।

०० शमशेर एक साथ ही अतर्मुखी और बहिर्मुखी रहे हैं| वह समाज सत्य के मर्म को अपने में और अपने को उसमे पाना चाहते हैं। यह आत्मपरकता और वस्तु परकता साफ–साफ उनकी कविता मे दिखायी पडती है। एक ओर वे प्रणव के कोमल चित्र प्रस्तुत करते है, तो दूसरी ओर मध्यवर्गीय किसान मजदूरो के जीवन चित्र। एक ओर उनमें सौंदर्यवादी रूपवादी रुझान है तो दूसरी ओर उन पर मार्क्सवादी प्रगतिवादी प्रभाव। एक ओर उनमे प्रेमाकुलता, निराशा और अवसाद है तो दूसरी ओर मामूली आदमी के प्रति सहानुभूति। एक ओर व्यक्ति निष्ठता है तो दूसरी ओर सामाजिक दायित्व की भावना। ये दोनो विरोधी प्रवृत्तियाँ शमशेर के काव्य में साथ–साथ दिखायी पडती है।[1] (समकालीन हिन्दी कविता– विश्वनाथ प्रसाद तिवारी पृष्ठ ३०) बावजूद इसके शमशेर के काव्य की व्यक्तित्व सम्पन्नता अंसदिग्ध है।

०– ये मेरी पंक्तियां हैं– " १६४१ में शमशेर ने एक गजल लिखी–

नवाए–असगरो इकबाल पर फिदा था दिल
नया था दर्द मेरा शाइराना मस्ताना
सुना है मैंने निराला है सरमदी आहंग
कलाये पंत अजब राहिबाना मस्ताना
सुने है दर्द–भरे गीत मैंने बच्चन के
सुना है मैंने सुमन का तराना मस्ताना
सुनी है मैने तडपती हुयी नरेन्द्र की नज्म
विसालों हिज्र का रंगी फसाना मस्ताना।"

इसी के साथ १९६६ मे लिखी 'उदिता' की भूमिका मे (सीधे अपने पाठक से) कवि ने पाउण्ड , एलियर, कमिग्ज एज्थि सिरवेल, आडेन , डायलाशमस जैसे पाश्चात्य आधुनिकतावादियो और चितको का नाम लिया था। फिर किताब से उपर्युक्त भूमिका से ही यह भी पता चलता है कि शमशेर साहब अव्वल तो शागिर्द निराला के है। वह (उनकी कविता) असल मे निराला और पत के ही टेकनीक का जरा खास ढग से ' निखारा' और आगे बढाया हुआ रूप है। हा और कुछ अग्रेजी मे भी खोशाचीसी हो गयी है। वस्तुगत प्रयोग और रूपगत प्रयोग दोनो जो कि हर अच्छी रचना मे अन्योन्याश्रित रूप से ही सफल होते हैं के यथा सम्भव निर्दोष शिल्प के उच्चतम स्तर पर आज भी मेरा उतना ही कठोरता से आग्रह हैं ।" (उदित पृष्ठ ३ पेज ३८)

००– शमशेर का काव्य इस शताब्दी हिन्दी कवियो को देखते हुए इस मामले मे विशिष्ट ही नहीं, अद्वितीय भी ठहरता है कि उसमें मध्यवर्गीय सौंदर्यभिरुचि और समाज वादी यथार्थवाद का गहरा द्वन्द्व और तनाव लगातार महसूस किया गया है। शमशेर रचे बसे रहते है। उनका लहजा अक्सर एक ऐसे फक्कड गायक का–सा होता है जो सभी निजी जिम्मेदरियों से मुक्त होता है और जनमानसको उद्वेलित करने वाली जहा कही कोई घटना हो जाती है। उसे सीधे–सीधे ग्रहण करने के लिए पहुंच जाता है।

स्पष्ट है कि सामाजिकता के आग्रह तीनों के यहा है जरूर पर उनकी ध्वनियों के आग्रह जुदा जुदा है।

''''''''''''

अध्याय ४ - २५०३ - क

लोक–संस्कृति की अवधारणा

'सस्कृति' शब्द का मूल अर्थ साफ करना या परिष्कृत करना है। नृ`विज्ञान के अनुसार सस्कृति समस्त सीखे हुए व्यवहार अथवा उस व्यवहार का नाम है, जो सामाजिक परम्परा से प्राप्त होता है। इस अर्थ में सस्कृति को सामाजिक प्रथा का पर्याय भी कहा जाता हैं सस्कृति मानवीय आन्तरिकता का विकास है। इस प्रकार सस्कृति का विकास अंत एवं बाह्य स्तर पर होता हैं ।अतः संस्कृति किसी जाति समुदाय, समाज और राष्ट्र की आत्मा होती है। इस प्रकार मनुष्य के क्रिया कलाप, सास्कृतिक चेतना के मूल बिन्दु हैं वस्तुतः सृष्टि चक्र में मनुष्य ही सास्कृतिक ऐतिहासिक प्रक्रियाओ का मूल आधार है।

हर्ष काबिट्स के अनुसार '' 'सस्कृति मनुष्य का सीखा हुआ व्यवहार है, अर्थात वे चीजे जो मनुष्य के पास हैं वे चीजे जो वे करते हे। और वह सब जो सोचते हैं, सस्कृति हैं । सस्कृति की सार्थकता इसमें है कि वह पदार्थ को मानवीय व्यक्तित्व के गुणों से सम्पन्न करती हैं इसलिए इसकी पहचान मानवीय है। मानवीय जीवन मूल्यो एवं क्रिया कलापो के फलस्वरूप इसकी चेतना रोमाटिक है। डा.वासुदेव शरणअग्रवाल का कथन है " संस्कृति मनुष्य के भूत, वर्तमान और भावी जीवन का सर्वांगपूर्ण प्रकार है । हमारे जीवन का ढंग हमारी संस्कृति है। संस्कृति हवा में नही रहती है, उसका मूर्तमान रूप होता है। जीवन के नानाविध रूपों का समुदाय ही संस्कृति है।" –१

डा. हजारी प्रसाद द्विवेदी का कथन है कि "संस्कृति मनुष्य की विविध साधनाओं की सर्वोत्तम परिणति है। धर्म के समान वह भी अविरोधी वस्तु है। वह समस्त दृश्यमान विरोधों में सामजस्य स्थापित करती है।" – २

इसी संदर्भ मेंपुनः डा. द्विवेदी का कथन है, "मनुष्य की श्रेष्ठ समाधनाए संस्कृति है। जहॉ तक लोक संस्कृति का प्रश्न है यह जन संस्कृति की वहिका है, जिसमें हम जन्म लेते है। संस्कृत की 'लोकदर्शने' धातु से काव्य प्रत्यक्ष काटने पर 'लोक' शब्द बनता है। लोक शब्द की व्यत्पत्ति कई तरह से की जाती है। लोकनेत जनः अस्मिन इति लोकः। इस व्युत्पत्ति के आधार पर लोक शब्द के मूल अर्थ में यद्यपि विवाद है फिर भी प्रयोगतः इसका प्रथम अर्थ 'स्थान' मिलता है। इस अर्थ मे यह ऋग्वेद में प्रयुक्त हुआ । जैसे स्थान दो के लिए ' दहिलोकम्' बाद में तीन लोक, चौदह लोक आदि

---

१ – डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय सं० निबन्ध नवनीत पृ० – १६५

२ – ग्रन्थावली भागनव पृ० – २६३

अर्थ मिलते है।" – १

यह 'जन' अथवा साधरण जनता के लिए व्यवहृत किया गया है। लोक शब्द ऋग्वेद के अलावा अथर्ववेद ब्राहम्ण ग्रथ, वृहदारण्यक , गीता आदि सभी मे प्राप्य है। खासकर भगवत गीता में 'लोक' तथा लोकसग्रह शब्दो का व्यवहार अनेक स्थानो परमिलता है। यहा लोकसग्रह का तात्पर्य साधारण जनता का आचरण व्यवहार तथा आदर्श है।

साहित्य मे लोक जीवन के आदि सरक्षको का नाम कदाचित दुर्लभ है उसका मूल कारण यह है कि यह केवल लेखनी पर ही आश्रित नहीं रहा बल्कि इसको ऐसे ही महान गायक मिलते रहे हैं जिन्हें 'समष्टि' की चिता रही हैं।

वास्तव में यह अनुभवजन्य है कि लोक जीवन का तल स्पर्शी परिचय मात्र गति अथवा पुस्तक से ही नहीं प्राप्त होता, इसके लिए अकथ उद्योग की आवश्यकता होती है। लोक जीवन की प्रतिष्ठा काव्य और लोक तत्व से है। लोक जीवन के दोनो नाटकहैं। इनके सतुलन से ही लोक जीवन गंगा प्रवाहित रहती हैं । भारतीय शास्त्र का मूल स्वर लोक जीवन से सबधित है।

जहां एक ओर 'लोक' मनुष्य समाज का वह वर्ग है जो अभिभाज्य की चेतना के अहकार से मुक्त है और जो एक परम्परा के प्रवाह में जीवित रहता है। ऐसे लोक की अभिव्यक्ति मे जो तत्व मिलते हैं वे लोकतत्व कहलाते है। (हिन्दी साहित्य कोश, ज्ञानमण्डल पृष्ठ ६८५–८६) वस्तुत. लोक में आने वाला साधारण जन ग्राम्य या जनपदीय अर्थ से ही नही है बल्कि इसके अलावा जंगल पहाड, आदि के मध्य बसे हुये उस समाज से भी है जो किसी न किसी रूप में अपने जीवन के इर्द गिर्द छाये तमाम दिखावों, प्रथाओं रीतिरिवाजो के प्रति आस्थावान रहकर अपने लोकाचारो को जीवन देता रहा है , भले ही वह नागरिकों शिक्षितो, की दृष्टि में अनपढ और अर्धसभ्य माना जाता है। यह वर्ग अपनी मौलिक परम्परा के माध्यम से अपनी चिरसंचित ज्ञान राशि को सुरक्षित रख सका है और उसके उपयोग में अपनी पैतृक सम्पत्ति जैसी आस्था सिद्ध कर सका है। हमारे सर्वांगीण सभ्यता को पहचान हमारे जीवन की बहुरगी गतिविधियो में ही अंकित है। जिन कार्यकलापों में हमारे देश की जनता की आत्मा मुखरित होती हो जिनमें हमाराजीवन धर्म, कला, विश्वास, गति रिवाज एवं हमारे संस्कारों को वाणी मिलती है। उसे गंवारू एवं असंस्कृत कह कर कभी भी टाला नहीं जा सकता।

इस तरह लोक शब्द से तात्पर्य ऐसे विषयों से लगाया गया है जिनमें अनेक भावरत्न अपने रूप में अंतर्निहित रहते है जिनका प्रकाशन साहित्य की अनेक विधाओं गीत, वार्ता, कथा, संगीतादि

---

१ – (लोकायन और लोक सस्कृति, श्री भोलानाथ तिवारी सम्मेलन पत्रिका)

से होता है। इनका विषय मानव की आदिम परम्पराये हैं, मानव की दृढ आस्थाए और आदर्श हैं। जनता का साहित्य ही लोकाभिव्यक्ति है। यह इतिहास मे सम्यक ज्ञान, उसकी टूटी श्रृखलाओ की सुसम्बद्धता मनुष्य की शुद्ध मानवीय सस्कृति की अप्रतिहत धाराका स्वरूप और उसके विकास की पूर्णता है। आचार्य शुक्ल ने कहा है " भारतीय जनता का सामान्य स्वरूप पहचानने के लिये पुराने परिचित ग्राम गीतो की ओर भी ध्यान देने की आवश्यकता है केवल पण्डितो द्वारा प्रवर्तित काव्य परम्परा का अनुशीलन ही नही है।" – १

और जब–जब शिक्षण का काव्य पण्डितो द्वारा बंधकर निष्चेष्ट और सकुचित होगा, तब–तब उसे सजीव चेतना प्रसार देश की सामान्य जनता के बीच स्वच्छंद बहती हुयी प्राकृतिक भाव धारा से जीवन तत्व ग्रहण करने से ही प्राप्त होगा।" – २

क्यो कि यह एक अनिवार्य तथ्य है कि लोकतत्व के महत्व से साहित्य के लिये यह एक अपरिहार्य तत्व है। इन दोनो का तादात्म्य सबंध है यदि लोक साहित्य को मन की सूक्ष्मतम अनुभूतियो का इद्रधनुषी प्रतिबिब कहें तो उसमे लोक तत्व को उसकी सूक्ष्मतम अतरंग आभा का मूल माना जाना चाहिये।

---

१ – रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० – ६००)

२ – (वही)

****

शमशेर की लोकसंवेदना

शमशेर बहुत सामाजिक हैं, क्यो कि शमशेर के पास दृष्टि की तलाश और बोध का धारातल है और यही बात उनकी कविताओ मे व्यक्त अनुभव लोक को मूर्त और सार्थक बनाती हैं। कवि की चिंतायें ज्यादा बडी है। और उनकी जडे दूर तक फैली है। मनुष्य के ही अस्तित्व पर प्रश्न चिन्ह लगाता बीसवी सदी का यह आखिरी दशक सिर्फ कविता ही नही बल्कि " तमाम रचनात्मक आग्रहो, यहा तक कि मनुष्य की सहज जीवनी-शक्ति की सासो को भी रूद्ध करता हुआ-सा दिख रहा है। तीव्र औद्योगिकी करण और महानगरीय जीवन के फैलाव का जो दुख आजादी के बाद की भारतीय पीढियो ने झेला, उसी का अगला विस्तार उपभोक्तावादी सस्कृति है। निरतर कम्प्यूटरों की फ्लापी का हिस्सा बनती सूचनायें और वातानुकूलित कमरो के प्रदूषणों से लेकर सामाजिक प्रदूषणो की गंध ढोती रही सवेदनायें और इन सबको देखता बेचैन होता और इस भीड का हिस्सा होने से बचने की कोशिश करता बचा हुआ विवेक। इसी बचे खुचे विवेक की ही सार्थक परिणतियां, इस बहुत बुरे वक्त लिखी जा रही कविताये है, जो अपने लोक और मानस की विरासत को सभालने की पुरज़ोर कोशिश कर रही है और इस रूप में मानवीय आस्थाओ के लिए जीने का संबल और ईंधन जुटा रही हैं शमशेर की कवितायें जीवन के इसी गहरे लगाव से लिखी जाने वाली कविताये हैं, जो बहुत मानवीय होने के साथ-साथ बहुत आलोचनात्मक भी है।

शायद इसका उलटा भी उतना ही सही हैं दरअसल यही इस कविता की कठिनाई और सफलता दोनों है। कठिनाई इस अर्थ मे कि इसके चलते कविता अपना सारा रहस्य एक साथ खोलने को बेताब नहीं दीखती, और सफलता यह कि यह कविता कुछेक अपवादों को छोडकर जीवन से गहरा आलोचनात्मक लगाव दिखाती है। जो कि वह कही भावुक रूप मे भी सामने आता है। वास्तव में शमशेर की कविताये इस कदर हमारे जीवन के बारे में है कि उसका कोई बहुत आसान और सरल और चित्र नही देती। एक गहरा आवेग इन्हें नियंत्रित करता है जो जीवन की वैज्ञानिक और सर्जनात्मक समझ का परिणाम है। इसीलिए इन कविताओं में "कला की ऊँचाई" जितनी है, उतनी ही जीवन के धरातलों का इस्तेमाल भी है। कवि कम और जरूरी शब्दों का प्रयोग करते हुए भी न ज्यादा कह जाने के भय से पीडित हैं, न कम कहने की चतुरता से आतंकित । कवि को अगर किसी चीज की सबसे ज्यादा परवाह है तो वह है विषय और दृष्टि से गहरे आन्तरिक तादात्मय की। यहां समाज और जीवन तो है लेकिन लोकात्मता का वह सीधा उन्मेष नहीं, जिसे स्थानीयता की संज्ञा दी जा सके। लेकिन लोक, की समाज की चिन्ता वहां बराबर है। वह लोक की

पहचान सामाजिक विनिमयो मे ही देखते है। लोक सत्ता की यह चिता शमशेर की लोकात्मक अभिव्यक्तियो का आधार बनती हैं।

यही कारण है कि सदैव ही अपने आस–पास जिन्दगी मे दिलचस्पी लेते हुए कला को उन्होने समाज और जिन्दगी से अलग नही किया। वह कहते हैं– " कला का सघर्ष समाज के सघर्षो से एकदम कोई अलग चीज नही हो सकती और इतिहास आज इन सघर्षो का साथ दे रहा है। सभी देशो के बेशक यहां भी, दरअसल आज की कला का असली भेद और गुण उन लोक–कलाकारों के पास है, जो जन–आंदोलनो मे हिस्सा ले रहे है। टूटते हुए मध्यवर्ग के मुझ जैसे कवि उस भेद को जहां वह है, वही से पा सकते हैं, वे उसको पाने की कोशिश मे लगे हुए हैं।" – १

स्पष्ट है कि शमशेर कला और समाज के सघर्ष को एक ही सघर्ष मानते है। साथ ही कला के असली भेद और गुण को लोक–कलाकारो के पास स्वीकार करते है। कवि लोक जीवन के विस्तृत क्षेत्र में गहरी पैठ रखता है। वह मजदूरो और किसानो के स्वर को भलीभाति पहचानकर रुढिवादिता को खंडित करता है । कवि सडे और पुराने अर्थहीन गीतों की जगह नूतन भावो को प्रस्तुत करना चाहता है। यथा–

काट बूर्जवा भावों की गुमठी को–
गाओ अति उन्मुक्त नवीन प्राण स्वर कठिन हठी
कवि है उसमें अपना हृदय मिलाओ।

हमारे बोध की एकाकायी होती दुनियां में कवि साधारण व्यक्तियों और साधारण चीजो की भीतरी अर्थवत्ता को उभारना चाहता है। उनके यहां एक बेहद नजदीक की दुनियां की आत्मीय उपस्थिति है। इस दुनियां में घर हैं, कुछ लोग हैं, मित्र हैं, छोटी–छोटी इच्छायें हैं बहुत कुछ सुन्दर, मानवीय और जीवन की ऊष्मा से भरी हुई । ऐसा कुछ जिसे इस विघटन और बेहद क्रूरता से भरे दौर में बचाया और सेहेजा जाना चाहिए। सहज–जीवन की यह दुनियां कई कारणों से बहुत महत्वपूर्ण हो उठी है।

यहां जीवन की निरछलता है, प्रेम का सलोना पन है, कुछ बतकही है और स्वय इस रूप मे स्वयं को यहां की खारी संस्कृति से जुडने की ललक–

निंदिया सतावे मोहें संझहीं से सजनी

---

१ – (दूसरा सप्तक पृष्ठ ८४–८५)

संजही से सजनी।

प्रेम बतकही

तनक हू न भावे

संजही से सजनी

निदिया सतावे मोहे

छलिया रैन

कजर ढरकावै

संजही से सजनी

निदिया सतावें " — १

इसमे एक औसत भारतीय मन का संस्कारबोध ढूंढा जा सकता है,। हमारे जातीयबोध के सारे रूप आज भी इसी आम आदमी के आम जीवन के फ्रेमवर्क के भीतर ही बनते है।औसत आदमी के जीवन मे जो सघर्ष है, जो प्रतिकूलता है वह बडे फलक पर दूसरी चीजो और वर्गो के साथ किसी प्रकार अंतर्सबंध बना रही है, किस तरह वह एक वर्ग के अनुभवो के रूप मे व्यक्त हो रही है, इसकी खोज शमशेर की कविता मे उनकी सामाजिक समझ का ढाचा गढती हैं । दिलचस्प बात यह है कि कला मे इस राजनीतिक सामाजिक चेतना को महज " समझ" के एकेडेमिक रूप से उपलब्ध नही किया जा सकता। यह चेतना एक गहरे नैतिक बोध से चालित होती है। यह अनेक स्तरों पर अपने को प्रकट करना चाहती है शमशेर की कविता में इसीलिए अनेक प्रवृत्तियो के कुछ कठिन युग्म बनती हैं वहा धैर्य भी है और बेचैनी भी। तर्क है और तीव्र आवेगात्मकता भी। कभी कभी यह आवेग उनछवास बनता है पर यह अराजकता की ओर नहीं जाता । उनकी कविता उस लोक से अपने पद और शब्द पाने की कोशिश करती है जो लोक स्वयं प्रकृति से अभिन्न है। जसने अपने जीवन व्यवहार मे ही उस प्रकृति की तमाम क्रियाओं अंतः क्रियाओ के लिए शब्द और पद रचे है।जीवन की बोली से लिए गये पद और शब्द का बहुत संतुलित उपयोग उनकी कविता में है। इस तरह वह असंप्रेषणीय हो नही सकती । हां, वह हमारी कविता की भाषा को थोडा और विस्तृत समर्थ और सघन जरूर बनाती है।

शमशेर के यहां जीवन–स्थितियां अपनी न्यूनतम वर्णनात्मकता और विवरणो में आती है। वे

---

१ — (शमशेर — कुछ और कवितायें पृष्ठ ८१)

शब्द बहुल कवि नही है उनके यहा कविता बहती है– "एक स्वच्छ निर्मल कविता यहा बह रही है।" – १

उनके यहा मानवीय लगाव और गहरी सलग्नता की रूमानियत, ऐन्द्रियकता, उद्‌घोषित व्यक्तिनिष्ठता का फैलाव बेहद सघन है। स्पष्ट है यह उनके अनुभवो से ही जुडकर आता हैं। शमशेर एक ऐसे कवि हैं जिनके यहां लोक सवेदना, जातीय स्मृतियो के साथ उसकी सम्पूर्ण ऐन्द्रिकता मे घुलकर अपने वस्तुजगत का निर्माण करती है। वह लोक की आखों को देखती है। उससे अभिभूत होती है। उन्हे वह सिरजना चाहती है। बेखटके देखते हुए उन्हे वह ओझल नहीं होने देना चाहती।

इन आखो से हम सब अपनी उम्मीदो की आखे सेक रहे हैं
ये आखे हमारे दिल मे रौशन और हमारी पूजा का फूल है
ये आखे हमरे कानून का सही चमकता हुआ मतलब
ये आखे हमारे इतिहास की वाणी
और हमारी कला का सच्चा सपना हैं
ये आखे हमारा अपना नूर और पवित्रता है
इनको देख पाना ही अपने–आपको देख पाना है, समझ पाना है।" – २

उनकी कविता पढने पर सम्पूर्ण प्रभाव के रूप मे हमारे मन पर जो चीज अंकित होती है वह है उनका अपनी जमीन और परिवेश की नानाविध जानकारियों और क्रिया–कलापों से गहन लगाव। चीजों को अपने ढंग से पहचानने की बेचैनी महज कला की दुनियां का प्रश्न नही, बल्कि वह इस उलझे हुए समय में अपने मनुष्य होने की एक प्रामाणिकता भी है। शमशेर की कवितायें हमारी जडो को पकडती है। हमारे सामूहिक सवदेना और जातीय स्मृतियो की लय के साथ एकाकार होती हैं जिसमे हमारे समस्त जीवन क्रिया व्यापार हर्ष विषाद, चेतन विषाद, चेतन उप चेतन के असंख्य पहलू एक दूसरे से गुंथे होते हैं। भौतिक जीवन मे इन चीजों की शिनाख्त करने की यह रचनात्मक पहल है। उस ताने बाने को खोलना विशुद्ध जीवन रोमांस है। इस ताने बाने को खोलते, शमशेर जीवन से रोमांस करते हैं। संसार के औसत वस्तुबोध से भिडते हुए वह कविता के केन्द्रीय भाव मे इसे

---

१ – (इतने पास अपने पृष्ठ ५५)

२ – (अमन का राग)

खोजते, जानते पहचानते, परखने का चरनात्मक कार्य करते है।

" भावशीलता का एक रूप वह होता हैजहा रचनाकार स्वय तो ओट मे हो जाता है पर इस" भावशीतलता की आच मे मामूली दिखते सैकडों कार्य व्यापारो, घटनाओ, प्रसगो, हरकतो, का अंकन करता चलता है। शमशेर की रचनाधर्मिता का यह केन्द्रीय मुहावरा है। जो उनकी लोक संवेदना का निर्माण करती है।

शमशेर बहादुर सिंह की कविता मे वस्तुयें अनुभूति मे जैसे नहाकर तरोताजा रूप मे आती है । उनका अक्स कवि के ऐन्द्रिजालिक अनुभव–सवेदन मे अपनी सात्विक अंत - दीप्ति के साथ भरता है और उनके चित्रण में कवि की स्वनिर्भर वस्तुगत विषय-निष्ठता किन्हीं औपचारिक आग्रहों को सक्रिय या प्रभावी होने का मौका नहीं देती। परिणामत वस्तु जगत के बारे में पाठक इस विस्मयजनक अनुभव से गुजरता है कि चीजो का भी अपना एक स्वतंत्र चरित्र होता है और यह कि वह मानवीय होता हैं । शमशेर की कविता का सरोकार वस्तुओं की सत्ता से ही नही, आगे और गहरे उनकी अस्मिता से हैं । वस्तुओ की सत्ता से लेकर अस्मिता तक की यह यात्रा उनके चरित्र की खोज और उद्‌घाटन की प्रक्रिया से पूरी होती है। वास्तव मे कवि ने चीजो को उनके असली रूपों मे देखा और पहचाना है, तभी उनके चरित्र का अंतः प्रसार दर्शाना संभव हो सका है। जहां छोटी से छोटी चीज अपनी सतही क्षुद्रता को विसर्जित कर एक अजब गरिमा से दमक उठती है। कवि दृष्टि इस उपभोक्ता संस्कृति की व्यवसायिक चकाचौंध से चीजों के सतही उपयोग वलयों के तात्रिक सम्मोहन को नाकाम करती हुयी उनका भेदन व अतिक्रमण करती है। तथा चीजो के चिरत्र को उरेहती हुयी उनकी व्यवसायातीत सत्ता की शुद्धता को खोज निकालती है। " हमारे इस कुंठित और सिनिक किस्म के दौर में वे चीजों के अंधेरे के बजाय उनके उजाले को पकडते थे और उसे अंधेरे की काट के रूप में सामने रखते थे । मनुष्य और प्रकृति की सम्पूर्णता सौंदर्य और अच्छाई में इतना विश्वास करने वाला कवि आधुनिक हिन्दी मे कोई और नही हुआ जो कह सके कि लौट आ ओ फूल की पंखडी। फिर फूल पर लग जा।" – १

सघन ऐन्द्रिकता शमशेर के यहां है। ऐसा सभी कहते हैं बावजूद इसके कि शमशेर मात्र ऐन्द्रिक अनुभव की कविता ही नहीं लिखते बल्कि वह जीवन की ऐसी कविता है जिसमें ऐन्द्रिकता मानवीय लालसाओ और जीवन की सारी विडम्बनाओ को प्रकट करने का माध्यम होती है। उनके यहां शब्दों के बहुत हल्के और मध्यम स्वरों की फुसफुसाहट मौजूद है लेकिन ध्यान रखना होगा कि सबसे अधिक महीन आवाजों को नहीं सुन पाने की असमर्थता या कमजोरी या अनसुना कर जाने की

---

१ – (प्रयाग शुक्ल– पल प्रतिपल संयुक्तांक २३–२ जनवरी जून १९९३)

प्रवृत्ति एक दिन एक सबसे विस्फोटक आवाज को भी, एक चीख को भी अनसुना कर देगी। शमशेर मध्यम आवाज को सुनते ही नहीं, दर्ज भीकरते हैं शब्द इस रूप मे उनके यहा अहसास है। यह ऐन्द्रियता भी उनके यहां इसी प्रकार की है। शायद मनुष्य को जानने समझने पढने प्यार करने उसके अहसासो तक पहुचने, उसे अपने तक लाने और खुद को महाविस्तार देने और प्रसार का वह मानो माध्यम हैं जीवन्तता और जगत केप्रति जैसे यह कवि के द्वारा पारित धन्यवाद प्रस्ताव है। ऐन्द्रियनुभव और इंद्रियबोध के सहारे मनुष्य को अपने भीतर उतारने का एक बहाना है। इसीलिए उनकी कविता रूप स्पर्श से लेकर मनुष्य के अस्तित्व के तमाम प्रमाणो को अपनी कविता मे जीवित रखती है। हर रोज कुछ और भोंथरे होते जाते समय में शमशेर की कविता चीजो की दुनिया, उसकी ऐन्द्रिय मौजूदगी उनका धडकना अहसास कराने वाली कविता भी है। शमशेर का न होना, या कम से कम होना इस अनेक तरह के होने के विराट विपुल अनुभव अपना सत्यापन पाता है। शमशेर के यहा चीजे दिखती है, बोलती हैं, चुप रहती हैं, घेरती हैं, शायद ही किसी और हिन्दी कवि मे दूसरे कला माध्यम इतने घुले मिले हो। उनकी कविता को मिटे काव्य सस्कार से पूरी तरह पकड पाना मुश्किल है। वह इतनी बार चित्रलिखित हैं उनमे इतनी बार स्पेस का विभाजन सतुलन है, आकारों का खेल है,गूजों अनुगूजो का सम्पुजन है कि शमशेरियत की सघनता, इसका संश्लेष और भी दुस्साहस हो जाते है।" – १

" खुश हूं कि अकेला हूं
कोई पास नहीं है.........
बुजुज एक सुराही के
बुजुज एक चटाई के
बुजुज एक जरा से आकाश के
जो मेरा पडोसी है मेरी छत पर

मुक्तिबोध को शमशेर की दुनिया की पवित्रता में दाखिल होते डर लगता था । यह पवित्रता यह निष्कलुषता शमशेर में सहज भाव से पूरी जिंदगी बनी रही। मिलावट समझौते, खरीद फरोख्त घुसपैठ की समकालीन दुनिया शमशेर के लिए अनजान नहीं थी। नफरत, दैर असैर षडयंत्र के माहौल से वे नावाकिफ नहीं थे। पर उन्होने सुन्दरता और प्रेम का अपना काव्य संसार इस सबके बरक्स बनाया, एक प्रतिसंसार की तरह। उनकी कविता अब भी बची रह गयी संभावना , की अजेय

---

१ – (अशोक बाजपेयी –कविता का गल्प पृष्ठ ६६)

इन्नोंसेस की कविता है।" – १

आज जबकि जीवन की सफलता का एक मात्र मापदण्ड आदमी की अपनी तरक्की है, एकमात्र लक्ष्य पूजी है और आत्मा का लगातार सरे बाजार बेचना ही रह गया है, जहा ऊपर–ऊपर से देखने पर जीवन पूनों की चाद सा प्रकाशित दिखता है और मानवीय पक्ष माढे काले अंधेरे से घिरा है, जहां तथा कथित सफलता मनुष्य और पशु मे जो भेद नहीं करती वहा शमशेर की सादगी पर सिर्फ मोहित हुआ जा सकता है। शमशेर सिर्फ एक सुराही, एक चटाइ और नरा से आकाश के साथ अकेले और खुश होसकते थे, घरों मुहल्लों और दिलो दिमागो को चीजो के अटालों से भरने वाली मानसिकता के चलते यह सादगी हास्यास्पद लग सकती है। "शमशेर को यो भी अपने कुछ भी न होने का बहुत गहरा और मार्मिक अहसास थ पर वह सादगी उस अरालेपन गोदाभियत का प्रतिरोध है। यह प्रतिसमय है। (वही अशोक बाजपेयी कविता का गल्प पृष्ठ ६६) यह सिर्फ अकेलापन का अहसास भर नहीं है यह मानवीय दुनिया में एक भले व्यक्ति के अकेले रहने का अहसास है।

शमशेर की कविता में इसीलिए एक बेचैनी है। मनुष्यता के लक्षण जिस तरह एक–एक करके कम होते जा रहे हैं वहा उनकी मनुष्यता के जीवन संदर्भ बहुत स्पष्ट और मूर्त हैं वे ईमान, अमय बुद्धि और हृदय के रचनाकार हैं और उनका ईमान और अभय मनुष्य जीवन मे आकार पाता है। वह केवल उपदेशकों और नीतिज्ञों का अभय और ईमान नहीं है जो सबका होकर भी किसी का नहीं होता। और इस तरह "शमशेर कविता के माध्यम से अपने को एक बेहती स्वतंत्र अकेला इसान बनाते हैं ।" – २

कहना न होगा कि यही उनकी कविता का लोकपक्ष है जो बहुत सश्लिष्ट तरीके से उभरता है। जिसे वे जन की ऊषमा उसकी प्रेरणा के स्त्रोत सक्रिय वेदना की छटपटाहट महत सम्भावनाओ की उज्जवल रेखा आदि ने जाने कितने तरीकों से पहचानते है। ऐसे प्रसगो का महत्व इस बात मे भी है कि जब जब ऐसे स्थल आते हैं तब–तब वे संरचनात्मक दृष्टि से भी उतने ही सहज हो जाते हैं तथा यहां उनके दुर्बोधता की अनेक उलझने समाप्त हो जाती है।शमशेर की कविता में व्यक्तित्व के विभिन्न स्तरों को जोडने वाली जन–ऊष्मा का बखान अनेक रूपों में हुआ है, जिसमें उनकी कविता को भी पूरा अर्थ विस्तार प्राप्त होता है।

---

१ – (अशोक बाजपेयी –कविता का गल्प पृष्ठ ६६)

२ – (टूटी हुई बिखरी हुई एक प्रतिक्रिया रघुवीर सहांय , मलयज और सर्वेश्वर द्वारा संपादित पुस्तक 'शमशेर' में)

लगता है शमशेर के विश्लेषण की ही यह प्रक्रिया है कि वे पहले एक अश की पवित्रता या सुरुचि को अपने मन मे स्पष्ट होते हुए महसूस करते हैं, उसके बाद ही उन्हे अधेरे मे चमकती हुयी जुगुनओ की दूसरी आभा भी सोचने को विवश कर देती है" .... और अचानक उनके मन मे एक विस्मयकारी सत्य 'गीता' के एक विराट पु ˉ की तरह उभरने लगता है। आखे उस विराट के राग–रूप और व्यक्तित्व का खुद मे अभाव महसूस करते हैं। शायद निजी उपलब्धि मे शमशेर की आत्मीय खोज एक विराट सत्य का साक्षात्कार ही है। " – १

उसी के माध्यम से वह आज के समाज और मनुष्य के सामने फैले हुए अंधेरे की उलझनो को स्पष्ट करते हैं। इस काम को परिणति तक पहुंचाने मे वे दुरुह हो सकते है। वे जन कलारूप अपनाने के स्थान पर उन्ही परिष्कृत कलारूपो का सहारा लेते हैं जिन्हे कि कविता के सस्कार वाला मध्यवर्गीय पाठक मान्यता देता हैं। इसके बावजूद लोक हृदय की धडकनो का ऊंचा स्वर रहा है।

भीतर अपनी रचना–स्थिति से वाकिफ है वे देशकाल से बधे जीवन की अमरता के लिए संदर्भों से कटी–छटी नाम–रूप रहित शाश्वतता को स्थापित करने वाले नही। इसलिए वे जिन लोगो के साथ अपनी पटरी बिछाते हैं वे इसी देश और काल से लडते सघर्ष करते, प्यार करते और क्रोध करने वाले प्राणी है। वे केवल प्रकाश फैलाने और प्यार करने की दिखावटी एवं ऊपरी – ऊपरी बातें ही नही करते वरन् उन वर्गों के प्रति घृणा भी पैदा करते हैं जो अपने निकम्मे षडयंत्रकारी जीवन को मूल्यवान बनाकर समाज के सामने प्रस्तुत कर रहे हैं।

"बल्कि यह माना जा सकता है कि वे अपने में सबके होने का अर्थ तलाशते हैं और एक बेहतर समाज–व्यवस्था की बात करते हैं।" अपने एकालाप नें भी शमशेर का यह सरोकार हमेशा बेचैन करता है और बुलंद हौंसले से साहस देता है।" – २

तुझसे होड है मेरी, अपराजित तू
तुझमे अपराजित मैं वास करूं।
इसी लिए तेर हृदय मे समा रहा हूं।"

इसका मतलब यह नहीं कि शमशेर समय की विकटता और स्वार्थरता तक आकर अपनी रचना–यात्रा समाप्त कर देते है।उनके रचनाकार की विशेषता यह है कि उन आधुनिकतावादी रचनाकारों से आगे

---

१ – (विष्णु चन्द्र शर्मा अभिन्न, विराट् सत्य का साक्षात्कार पृ० – १४३)

२ – (ज्योतिष जोशी –शमशेर की कविता का यथार्थ पल प्रतिपल संयुक्तांक २५–२६ पेज – ३ जुलाई दिसम्बर १६६६)

निकल जाते है। जिन्हे इस ससार मे चारो ओर सडाध उठती दिखाई देती हैं। चूकि शमशेर को जीवन के लोकपक्ष की कर्मण्यशीलता तथा लगाव के ठिकानो का सारा अता–पता मालूम है, इसलिए वे हमारे समाज की वर्ग संरचना को सम्पूर्ण में चित्रित करते है। जिस वर्ग सनाज से उनकी नही बनती है उसकी सरचना एव स्थिति की वास्तविकता का विस्तार से उद्घाटन करते हुए भी उन लोगो से अपनी सम्बद्धता व्यक्त करते हैं और बराबरी के सिद्धांत पर सारी दुनिया को खाने की शक्ति रखते है। शमशेर ने पूरे हिन्दूस्तान के बीच अपनी चेहरे की पहचान की हैं। कहना न होगा कि शमशेर ऐसी शक्तियो के पक्षधर नही है जो अमानवीय जीवन जीते हुए सामाजिक महत्व प्राप्त कर रहे है।

जीवन मे जो कुछ सुदर है, मधुर है उसे देखकर शमशेर का कवि उत्फुल्ल होता है। सौंदर्य के प्रति गहरी ललक कोमल और मधुर के प्रति गहरी आसक्ति के बीच ही वह समाज से जुडा है शमशेर मे शिल्प के अमूर्तन के सभी तत्व विद्यमान हैं फिर भी उनकी प्रतिबद्धता उसे अमूर्त होने से बचाती है।" –१

वस्तुतः व्यापक जनजीवन से तादात्म्य स्थापित करके ही सच्चे रचना कार सौन्दर्य की लोग सृष्टि कर सकते है।यह काम आसान नहीं है। अपने ही सीमित अनुभवों से जीवन के प्रति दृष्टिकोण बना लेने के जो खतरे होते है, वे हिन्दी की अनेक समकालीन कविताओ में स्पष्ट दिखाई देते हैं । अपने वर्गीय अनुभवों से न केवल सौन्दर्यसृष्टि संकुचित होती जाती है बल्कि वह व्यापकत्व की अनुभूति के लक्ष्य से हट भी जाती है। इसीलिए बडे रचनाकारो ने हमेशा अपने अनुभव –ससार का अतिक्रमण किया है। इस सन्दर्भ मे कवि के हृदय को सिन्धु कहा गया है। हृदय का सिन्धुत्व एक रचनाकार का वैशिष्ट्य है, जिसे दूसरे शब्दों में लोक हृदय की पहचान कहा गया। प्रसिद्ध आलोचक तमाम अहसहमति के बाजवूद शायद यही कारण है कि डा. शिव कुमार मिश्र यह कहने से स्वयं को नही रोक पाये कि " शमशेर में मनुष्य, समाज, राष्ट्र और उनके भविष्य को लेकर गहरी चिता का भाव है, वे तमाम मानव विरोधी शक्तियों के आजीवन खिलाफ रहे, वे सेक्यूलर मांइन्डेड हयूमन थे, सामान्य जन के बारे में उसके सुख दुख के बारे में, निर्धन जनता के बारे में मध्यवर्ग की आर्थिक बदहाली के बारे में उन्हें चिंताये थीं। "(एक साक्षात्कार में)

कविता की चरित्र–परम्परा मे शमशेर की अपनी गंध है। उनका व्यक्तित्व इस परम्परा को नयी आभा देता है। यद्यपि शमशेर ने "कुछ और कविताएं" की भूमिका में यह लिखा है कि " मेरे कवि ने किसी फार्म, शैली या विषय का सीमा बंधन स्वीकार नहीं किया। फैशन किन विषयों पर

---

१ – (रमाकान्त श्रीवास्तव पारदर्शी धूप के परे सापेक्ष पृष्ठ ३३०)

लिखने का है, कौन सी शैली चल रही है, किस "वाद" का युग आ गया है मैंने कभी इ परवाह नही की।" – १

यात्राओ के बीच गुजरते बनते जीवन जीवनानुभवो से वे अपनी धरती के भूगोल को रूप दते जीवन के सधान मे लीन दिखाई पडते है। जीवन के सच्चे सौन्दर्य ने उनकी कविता को भी कितना सहज और सुन्दर बना दिया है:–

दिखी मालव–गीत की वह सुघर गोरी
बाजरे का खेत, शुभ्र मचान, धुनषाकार गोपा
गोफने में भरे मालव गीत, गा
सुग्गे उडाती।"

शमशेर की सवेदनशीलता और कला धरातल पर कविता की अग्रगामिता का आरेखन एक विस्मयकारी अनुभव है। उससे कविता –समय का पथ प्रशस्त हुआ है, इसलिए वे प्रगतिशीलो मे अग्रमण्य रहे। उनकी कविता हमारे वर्तमान की वास्तविकता का एक विराट पृष्ठ है। सामाजिक व्यक्ति का अन्तर्मन कही–कहीं आवश्यकता से अधिक विश्रृंखलित होने की वजह से अर्थ की सम्बद्ध–सूत्रता का क्षरण भी हुआ है। देखने की बात यह है कि उस समय का शमशेर अपने अनुभव संसार में रचना के जिन प्रदेशो तक नहीं पहुच पाया था, उन तक नागार्जुन केदार और त्रिलोचन अपनी–अपनी बना रहे थे। शमशेर जहा अस्मिता की पहचान और बुनियादी क्रियाशील वर्ग से उसकी विलय–प्रक्रिया के प्रश्नों में सलग्न थे और इस रूप मे वे मध्यवर्ग की मानसिकता तथा उसकी सामाजिक आवश्यकता के निरूपण तक सीमित थे, वहां नागार्जुन, केदार और त्रिलोचन समय की अभिव्यक्त क्रियाशीलता को रूप दे रहे थे।

पिछले २५–३० वर्षों की यात्रा मे अब यह तय हो चुका है कि आज की कविता का मुख्य परिदृश्य प्रगतिशील कला–सन्दर्भों से सम्बद्ध–सूत्रता का है। अज्ञेय–परम्परा की चमत्कृति तथा जीवन विसंगता से उत्पन्न निर्जीव शब्द–कला को वह और अधिक ढोने के लिए तैयार नहीं। उसने यह अच्छी तरह देख लिया है कि जीवन्त होने और रहने की शर्ते क्या है। वह अपनी पिछली भूलों से भी सीख ले रहा है। कविता को एक और गठरी की तरह बांधते और दूसरी ओर उसे खोल कर फैला देने की कोशिश काल प्रवाह मे स्पष्ट दिखाई देती है। दरअसल बात यह नहीं है कि " कविता जीवन से जुडे"। आज का मुख्य प्रश्न है कि वह " किस जीवन से जुडे"। यह सवाल इसलिए पैदा

---

१ – (शमशेर – कुछ और कवितायें भूमिका)

होता, क्यों कि सम्पूर्ण जीवन इकसार नही है। वह विविध सोपानीय है। इसलिए मात्र जीवन से

जुडने की बात से वास्तविकता तक नही पहुचा जा सकता। आज तक हुई मनुष्य यात्रा के अनेक पडाव है। जिसमे उसके सस्कार कुछ इस तरह बना दिये गये हैं कि वह परम्परागत रूढियो के रूप मे प्राप्त सांस्कारिक आग्रहो की प्रबलता, निबद्धता और सही एव वैज्ञानिक समझ की दुर्बलता के कारण प्रगति के अर्थ की वास्तविकता तक नही पहुच पाता। शमशेर की शक्ति यही है कि उन्होने व्यवस्था से उत्पन्न जडता और उसके कारणों की पहचान अत्यन्त विस्तार एव गहराई में जाकर की है और उसका मूलस्वर सामाजिक रहा है। और यह शक्ति सामान्यीकृत सूत्रो मेव्यक्त न होकर जीवन–दृश्यो की तलस्पर्शी वैचारिकता में प्रकट हुई है।

शमशेर की भाति अन्य कोई नहीं ठहरता है। मुक्तिबोध, नागार्जुन आदि भी अलग किस्म के हैं। नागार्जुन समय की अभिव्यक्ति क्रियाशीलता को रूप दे रहे थे। मुक्तिबोध उसके एक दूसरे पहल की आपूर्ति में संलग्न थे। इसलिए प्रगतिशील कविता के उस दौर का पूरा चित्र तभी बनता है जब हम शमशेर की कविता के साथ नागार्जुन,केदार और त्रिलोचन और मुक्तिबोध की काव्य प्रवत्तियों की रेखाए भी खींचते है। इन कवियो की यह सामान्य विशेषता है कि ये रचना का सम्पूर्ण विधान वैचारिकता के साथ जीवन दृश्यो की क्रियाशीलता में करते है।

****

अध्याय - ४ - २४०५ - १
नागार्जुन की लोकानुभूति

नागार्जुन की कविताये समकालीन यथार्थ के ऐसे सर्वसुलभ सामान्य स्वरूप को लेकर आगे आती हैं जिससे हमारी रोजमर्रे की देखा देखी व पहचान हैं, और इसलिए जिसके बारे मे सोचने समझने की हम ज़हमत नही उठाते, जो अति परिचय के कारण प्राय: हमारी अवज्ञा या उदासीनता का भाजन बन जाता है किन्तु वास्तव मे जिसके बावत हम कुछ खास नही जानते होते और सब कुछ जानते होने का भ्रम का शिकार होते हैं । ऐसे यथार्थ को नागार्जुन हमारे सामने रखते हैं। यह यथार्थ ' हुआ कुछ इस तरह' के बयान में उदाहरण या दृष्टात की तरह प्रस्तुत किया जाता है लेकिन इसका यह मतलब नही कि ये कविताये तटस्थतावाद की पूर्ति करती है बल्कि इनमे घटनाओं और विवरणो को लेकर गहरी अत्मीयता और मनुष्य के लिए गहरी सच्चिछाये विद्यमान हैं सताप को अपना माध्यम चुनने के कारण इन्हे किसी भूमिका की या केन्द्रीय दिशा की भी सीख जरूर नही दिखती लेकिन यू ही बातचीत करते हुए ये बहुत सहजता से आपकी आत्मीय हो जायेगी । कहा जा सकता है कि नागार्जुन की कविता साधारण की असाधारण और संवेदनात्मक अभिव्यक्ति है। ऐसी कविता आम आदमी की जिन्दगी को, जिदगी की शर्तों को तथा जीवनदर्शो को सुन्दर, सरल और सहज बनाती है। ऐसी कविता ही लोक की कविता बनती है यहजिदगी के व्यापक सघर्ष मे हिस्सेदारी से निर्मित कविता है जिसमे मनुष्य की तमाम सबलता, दुर्बलता अंतर्विरोध और अंत: सबधों को साधा गया है। नागार्जुन की कविता इसी अर्थ और संदर्भ में स्थायीभाव और स्थायी महत्ता की कविता है।

नागार्जुन की कविताओं में लोक का रंग अपनी पूरी चित्रमयता के साथ आया हैं । ये कवितायें गांव घर देश और देशज की भाव भूमि मे पगी है और इस कारण सहजता इनका स्वाभाविक गुण धर्म हैं । इस सरलता और सादगी को नागार्जुन ने बडी मशक्कत से पाया और कमाया है। जितना सादा और सहज उनकी कविता का रूप है उतनी ही गहरी और संश्लिष्ट उसकी व्यंजनायें है। बडी कठोर साधनाका सुफल बनकर उनकीकविता में यह सामग्री आयी है।" – १

" नागार्जुन बडी प्रशस्त और समृद्ध मुनष्यता के स्वामी है। दूसरो को ही नही, स्वत: अपने को भी बराबर अपने गहरे निरीक्षण, आत्मालोचन का पात्र बनते रहे हैं। उनकी जन संयुक्त उनकी मनुष्यता को निरंतर विकसित करती रही है उन्हें वह निरवन हृदय देती रही हैजो मनुष्यता का एक

---

१ – (शिव कुमार का पषिद पत्रिका अप्रैल ६८ से मार्च ६६ अंक ४ नागार्जुन बहुआयमी पेज ६३)

बहुत ऊचा सोपान है। " – १

प्रतिबद्ध हूं आरुद्ध हूं, सम्बद्ध हू। कविता मे अपनी प्रतिबद्धता को उन्होने इस प्रकार व्यवस्थित किया है–

> प्रतिबद्ध हूं
>
> जीहां प्रतिबद्ध हू
>
> सकुचित 'स्व' की आपाधापी के निषेधार्थ
>
> (प्रतिनिधि कविताये पृष्ठ १५)

प्रतिबद्धता की गुहार - वाला सिर्फ जन का ही कवि हो सकता है, उनके लिए लिख सकता है। मालदार चारा खाने वाले जुर्राबे पहनने वाले काला चश्मा चढाने वाले उनके लिखे को उनकी पक्षधरता को कहा पढ समझ सकते है–

> जी हां लिख रहा हू
>
> बहुत कुछ! बहोत,–बहोत।
>
> ढेर–ढेर –सा लिख रहा हू!
>
> मगर आप उसे पढ नही
>
> पाओगे.... ..देख नहीं सकोगे
>
> उसे आप!

इसी लिए ऐसे संभ्रांत लेकिन विभ्रांत लोगों के लिए पलायन वादी मध्यवर्ग को ललकार कर पूछते है–

> पूरी कचीड में है ट्रम
>
> खाती है दचके में दचका
>
> सहता है बदन से बदन
>
> पसीने से लथपथ
>
> सच सच बतलाओं
>
> घिन तो नहीं आती है?
>
> जी तो नहीं कढ़ता है?

नागार्जुन की कविताओं का ताना बाना 'देसी' है सम्पूर्ण रूप से देसी कई बार कबीर की त– अनपढ। जब आधुनिकता के नाम पर रचना के शहरीकरण के खतरे हों तब नागार्जुन के रचना

---

१ – (शिव कुमार मिश्र)

ससार का देसी परिवेश चलन से आदमी पहिचान बताता है। सामान्यजन यहा वक्तव्य के माध्यम से नही सवदेन के स्तर पर उपस्थित है। जैसा उन्होने अपने आचलिक उपन्यासो मे किया है– लगभग ग्राफिक चित्र।

उनमे रचना कर्मद्वैत नही है, इसलिए उनकी रचनायें मुखौटा लगाकर नही आती। उनकी प्रमाणिकताहमे आश्वस्त करती है । लोक उनके यहा प्रामाणिक है यही कारण है कि लोक जीवन की संपृक्ति ने नागार्जुन की कविताओं में लोक उत्पादनोंका प्रवेश है। सामान्य जन से अपने कथ्य की सामग्री प्राप्त करना, और इस प्रकार अपनी प्रतिबद्धता को व्यापक संदर्भो से जोडना हैं। (नागार्जुन की प्रतिबद्धता प्रगतिवादी विचारधारा से है और वे सामान्यत इसी के परिप्रेक्ष्य मे अन्य मानवीय सरोकारो अभिप्रायो का निर्धारण करते है। वे प्रकृति, प्रेम , जीवन मूल्य तथा भिन्न ज्ञान क्षेत्रो के आशयो और अभिप्रायो को इसी दृष्टि से अपनी रचनात्मकता में स्थान देते है। नागार्जुन के जनवादी और प्रगतिशील आयाम की यही दृष्टि हैं। उनकी राजनैतिक कविताओं को यदि इस दृष्टि से देखा जाय तो साफ नजर आयेगा कि वे व्यवस्था या तत्र का विरोध (अन्तर्विरोध भी) मात्र विरोध के लिए नहीं करते है, वरन जन चेतना विरोधी सत्ता या व्यवस्था का खुलकर विरोध करते है। कवि की यह पक्षधरता अडिग है। और हत्यारी सत्ता के प्रति विक्षोभ और क्रोध–

कहां न जनता क्षुब्ध –क्रुद्ध है
कहां न जनता दात पीसती हत्यारो पर
इस पवित्र पावक को
बापू! मैं प्रज्वलित रखूंगा
ठंडा पानी सीच न पाएंगी।
इस पर सरकार!

(युगधारा , पृष्ठ ६३)

जन –चेतना का वाहक 'जनकवि' और 'जनमानस' होता है और इसी से, नागार्जुन जनकवि को विशेष महत्व देतेहैं जिसका एक गहरा संबंध देश की 'माटी' से होता है, तभी तो कवि जन कवि के दायित्व को उस प्रकार प्रस्तुत करता है–

यही मृतिका जनकवि मे प्राण भरेगी
देखो जनकवि भाग न जाओ
तुम्हे कसम है इस माटी की । (ऐसे भी हम क्या, पृष्ठ २१)

ससार का देसी परिवेश चलन से आदमी पहिचान बताता है। सामान्यजन यहा वक्तव्य के माध्यम से नही संवदेन के स्तर पर उपस्थित है। जैसा उन्होने अपने आचलिक उपन्यासो मे किया है– लगभग ग्राफिक चित्र।

उनमे रचना कर्म द्वेत नही है, इसलिए उनकी रचनाये मुखौटा लगाकर नहीं आती। उनकी प्रमाणिकता मे आश्वस्त करती है और अभिव्यक्ति विश्वसनीय। लोक उनके यहा प्रामाणिक है यही कारण है कि लोक जीवन की संतृप्त ने नागार्जुन की कविताओ में लोक उत्पादनो प्रवेश करता है सामान्य जन से अपने कथ्य की सामग्री प्राप्त करना, और इस प्रकार अपनी प्रतिबद्धता के व्यापक संदर्भों से जोडना हैं नागार्जुन की प्रतिबद्धता प्रगतिवादी विचारधारा से है और वे सामान्यत इसी के परिप्रेक्ष्य में अन्य मानवीय सरोगारों अभिप्रायो का निर्धारण करते है। वे प्रकृति, प्रेम , जीवन मूल्य तथा भिन्न ज्ञान क्षेत्रो के आशयो और अभिप्रायो को इसी दृष्टि से अपनी रचनात्मकता मे स्थान देते है। मे नागार्जुन के जनवादी और प्रगतिशील आयाम के इसी दृष्टि से लेता हू उनकी राजनैतिक कविताओ को यदि इस दृष्टि से देखा जाय तो साफ नजर आयेगा कि वे व्यवस्था या तत्र का विरोध (अन्तर्विरोध भी) मात्र विरोध के लिए नही करते है, वरन जन चेतना विरोधी सत्ता या व्यवस्था का खुलकर विरोध करते है। कवि की यह पक्षधरता अडिग है। और हत्यारी सत्ता के प्रति विक्षोभ और क्रोध–

कहा न जनता क्षुब्ध –क्रुद्ध है
कहां न जनता दांत पीसती हत्यारो पर
इस पवित्र पावक को
बापू! मैं प्रज्वलित रखूंगा
ठंडा पानी सींच न पाएंगी।
इस पर सरकार!

(युगधारा , पृष्ठ ६३)

जन –चेतना का वाहक 'जनकवि' और 'जनमानस' होता है और इसी से, नागार्जुन जनकवि को विशेष महत्व देतेहैं जिसका एक गहरा सबंध देश की 'माटी' से होता है, तभी तो कवि जन कवि के दायित्व को उस प्रकार प्रस्तुत करता है–

यही मृतिका जनकवि मे प्राण भरेगी
देखो जनकवि भाग न जाओ
तुम्हे कसम है इस माटी की । (ऐसे भी हम क्या, पृष्ठ २१)

नागार्जुन की रचनाओ मे 'जनकवि' की यह पक्षधरता कही पर भी धूमिल नही होती है , और यह पक्षधरता एक ऐसे सबंध को उजागर करती है जो रचनाकार (बुद्धिजीवी) और तत्र (राजतंत्र,प्रजातत्र, सामतवाद) के रिश्ते को भी व्यक्त करती है। मैनहीम ने इनका जो विष्लेषण प्रस्तुत किया है, उसे यहा देना चाहूगा क्योकि इससे रचनाकार की भूमिका का एक ऐतिहासिक सदर्भ स्पष्ट होता हैं। सामान्यत राजतत्र एवं सामतवाद मे बुद्धिजीवी की स्थिति ऊर्ध्वगामी (वर्टिकल) होती है और उसका अभिजातीकरण होने से 'जनमानस' से सीधे सबधित न होकर, एक उच्च्च दशा मे ऊर्ध्वगामी स्थिति में रहता है इसके अपवाद भी हो सकते हैं। लेकिन प्रजातत्र से सबधित या प्रभावित रचनाकार इसी ऊर्ध्वगामी दशा मे रहते हैं । इसके विपरीत जनतत्र या प्रजातत्र मे रचनाकार की स्थिति ऊर्ध्वगामी न होकर सामान्यत सामातर होती है, इसी प्रजातत्र मे रचनाकार और जानमानस का सामान्तर संबंध रहता है– दोनो एक दूसरे को प्रभावित ही नही करते है, वरन् एक दूसरे से प्रेरणा भी लेते है। दूसरे शब्दो मे यहा पर कवि और जन का क्रिया प्रतिक्रियात्मक सबध होता है, वह जन के पक्ष में खड़ा होता है क्यो कि वह अक्सर उसी वर्ग आता हैं । जन और ' इलीट' का यह संबंध प्रजातंत्र में अपना विशेष महत्व रखता है क्यों कि लीबिस, टी.एस इलियट आदि विचारको का मत है कि 'इलीट' जन शक्ति से ही प्रेरणा लेता है। दूसरी ओर जहां पर भी 'इलीट' समूह या 'जन' से कट जाता है, वहां जनवादी चेतना का स्वस्थ विकास संभव नहीं है। यहा पर मशीन या यंत्र ने भी अपना योगदान दिया। यही कारण है कि जनवादी संस्कृति के विकास में समूह, इलीट, व्यक्ति और कामगर (श्रमिक) सबका एक सामूहिक योगदान है। इसी से , जनवादी दृष्टि या दर्शन 'जन' की आकांक्षाओं का दर्शन है और रचनाकार इस अर्थ में जन संस्कृति के विचार से लगातार टकरा रहा है। असल में, इस जन संस्कृति मे व्यक्ति की अस्मिता को सुरक्षित रखना भी लाजिमी है,लेकिन अस्मिता के नाम पर व्यक्ति की अहमन्यता और आतंक को स्थान देना, मेरे विचार से जन–संस्कृति की भावना के प्रतिकूल है।

यहां पर मैने 'इलीट' और जन–संस्कृति के संबंध की जो बात की है, उसका कारण यह है कि इसके द्वारा हम नागार्जुन के जन काव्य को अधिक गहराई से समझ सकते हैं। नागार्जुन एक ऐसे 'इलीट' हैं जो 'जन' की आकांक्षाओं को संघर्षों को वाणी ही नहीं देते है, वरन अपनी यायावरी प्रवृत्ति और साधारणता के कारण वे 'जन' से तादात्मय स्थापित कर स्वय 'जनमय' हो जाते है। यहां तुलसी ' सियाराम मय सब जग जानी' की बात करते हैं, वहीं नागार्जुन " जनमय सब जग जानी" के सत्य को उद्‌घाटित करते है। दोनों में 'तादात्म्यी करण ' का स्वरूप प्राप्त होता है, लेकिन उनकी प्रकृति एवं क्षेत्र में अंतर है, तुलसी का तादात्म्य राम से है जबकि नागार्जुन का तादाम्य 'जन'

से है, तुलसी मे भक्ति का रागात्मक रूप है जबकि नागार्जुन मे विक्षोभ और प्रतिहिसा की क्रियात्मकता है।   ; इस विचार–दर्शन मे अनुभव की तीव्र स्थितियां है और यथार्थ के प्रति एक गहरी समझ। इसी समझ का एक पक्ष है राजनीति अन्यपक्ष है मिथक, प्रकृति, प्रेम,काल, इतिहास और जनवादी या मार्क्सवादी सरोकार, ये सभी पक्ष नागार्जुन काव्य सारी सरचनाको एक परिदृश्य देते हैं जिनका विमोचन यथास्थान किया जायेगा । जहा यहा पर मैं उनके राजनैतिक बोध को ही ले रहा हू और इस सरोकार के भिन्न रूपो का संकेत ऊपर किया जा चुका है, फिर समाज और राजनीति के अन्य पक्षों या सरोकारो को लेना इसलिए जरूरी है कि इनके द्वारा हम नागार्जुन की सृजन चेतना के उस क्रियात्मक रूप को हृदयगम कर सकेगे जो उनके विचार और कर्म की सघर्ष मूलक चेतना को स्पष्ट करते है।

नागार्जुन की संघर्ष चेतना 'जन' की पक्षधर है और इस पक्षधर है और इस पक्षधरता में वे किसी प्रकार का भीसमझौता नही करते है यही कारण है कि उनकी काव्य चेतना एक स्पष्ट 'स्टैण्ड' लेती है। नागार्जुन के इस ' स्टैण्ड' में दो तत्व प्रमुख हैं एक प्रेम और दूसरा क्रोध । उनका स्वय का यह कथन है (दूरदर्शन द्वारा प्रस्तुत एक साक्षात्कार से) कि " मैं उसे कवि ही नही मानता हू जो 'क्रोध' न कर सके और 'प्रेम' न कर सके"।

यह क्रोध का मनोभाव विरोध क्रांति और प्रतिहिंसा को जन्म देता है जो शोषण, अनाचार और भूख के प्रतिपक्ष मे होता है जनमानस को खडा करता है। साहित्य का एक महत्वपूर्ण कार्य इसी चेतना को गति देना है, एक ऐसी जमीन तैयार करना है जो जन आकाक्षाओं की पूर्ति कर सके। यह कार्य साहित्य तथा विचार–दर्शनों ने किया है जो एक ऐतिहासिक सत्य है, यह बात दूसरी है कि यह सफल हुई है, तो कही असफल इसका यह अर्थ नहीं कि रचनाकार ऐसा न करे क्यों कि विचारक और रचनाकार लम्बे समय से विपरीत स्थितियों के बावजूद, जन संस्कृति के सरोकारो को किसी न किसी रूप में अजाम देते रहे हैं । संघर्ष शील चेतना की यह मांग है कि वह आगे की ओर देखती है और वर्तमान के प्रति पूरा सजग होती है। यह सजगता और क्रोध (प्रतिहिंसा) नागार्जुन की राजनैतिक कविताओं को एक ऐसी भावस्त्ता प्रदान करती है। आधुनिक हिन्दी काव्य परम्परा की ही अपनी पहचान है और इस पहचान को अर्थ दिया है नागार्जुन ने। इससे पूर्व कबीर और निराला ने यही कार्य किया था जिसे नागार्जुन, त्रिलोचन, मुक्तिबोध केदारनाथ सिंह, राजेश जोशी आदि कवियो ने आगे ही नहीं बढाया है, पर संघर्ष चेतना को एक गति और दिशा दी है। नागार्जुन में प्रतिहिंसा और प्रतिशोध का एक लक्ष्य के लिए है वह मात्र प्रतिहिंसा के लिए नहीं है जो मूल्यहीन होती हैं ।

इसी से कवि क्षमा के उस रूप को नकारता है जो निष्क्रियता, निर्बलता को प्रश्रय देती रहे और प्रतिशोध की अग्नि को ठडा करती रहे, ऐसी 'बुद्धि' और 'मन' के प्रति कवि का तीब्र विक्षोभ है–

नही ले पाए प्रतिशोध

क्षमा ही क्षमा करता चला जाए

ऐसी भी बुद्धि क्या ?

ऐसा भी मन क्या ?–१

इसी प्रकार का विक्षोभ कवि को उस 'देश के प्रति है जहा आदमी का पेट नही भरता है, ऐसा देश नरक तुल्य है:–

जहा न भरता पेट

देश वह कैसा भी हो, महानरक है।–२

यही विक्षोभ हमे कांति की उस दृष्टि मे प्राप्त होता है जो काति को 'बैठे–ठाले' दिवास्प्न अथवा योगी –ज्योतिषी के 'चमत्कार' के समान वायाबी धारणा मानते है परतु दूसरी काति को कवि एक ' अग्निधर्मी संकल्प' और 'कठोर अनुशासन' का रूप मानता है जिसका अभाव भारतीय समाज ही नही ,वरन तीसरी दुनिया के सभी देशों में न्यूनाधिक रूप में दृष्टव्य है। यह क्राति किसके लिये है? इसका प्रत्यक्ष और सीधा उत्तर स्वय कवि के शब्दो मे–

कठोर अनुशासन

अपरिसीम साहस

यही तो कुछ एक तत्व है

यही पहुंचा देते हैं क्रांति की तलहटियो तक

शोषित–निपीडित–सघर्षशील मानव सनुदाय को– ३

क्रांति की अवधारणा मे एक निश्चित दिशा होती है, उसमे 'परिवर्तन' की अदम्य आकाक्षा होती है और साथ ही , यथा स्थिति को तोडने की एक ललक। यही कारण है कि नागार्जुन की कुछ कविताओं मे 'यथास्थिति' और ' गतानुगतिकता' के प्रति एक नकारात्मक दृष्टिकोण है क्यो कि–

---

१ – (ऐसे भी हम क्या, ऐसे भी तुन क्या, पृष्ठ १२)

२ – (युगधारा, पृष्ठ २३)

३ – (खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृष्ठ ३४)

बडा ही मादक होता है, 'यथास्थिति' का शहद

बडी ही मीठी होती है ' गतानुगतिकता' की सजीवनी।–१

यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि व्यवस्था और तत्र (राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक सारे) और अस्तित्व के लिये ' यथास्थिति और गतानुगतिकता' को किसी भी मूल्य पर बनाये रखना चाहते है, और जनचेतना और संगठित विरोध (क्रांति) उसे तोडने का प्रयत्न करते है। इस कार्य मे 'विचार' और 'कर्म' का अपना विशिष्ट स्थान रहता है क्यो कि विचार धारा अथवा विचार–दर्शन वह खाद प्रस्तुत करते हैं जो 'परिवर्तन' को जनोन्मुख बिनाती है। जो विचार–दर्शन इस जनोन्मुखी प्रवृत्ति को गति न देकर व्यवस्था के हाथ, मजबूत करती है, वह तरफ से जनवादी चेतना का प्रतिरोध करती है। इस दृष्टि से नागार्जुन की कविता यथास्थिति को तोडती ही नहीं है।वरन_क्राति की वह खाद प्रस्तुत करती है जो शोषित–पीडित वर्ग के पक्ष मे है, नागार्जुन की यह पक्षधरता अध पक्षधरता नही है क्यो कि वे जनवाद, मार्क्सवाद, क्राति, व्यवस्था सभी के अन्तर्विरोधो को बिना किसी पूर्वाग्रह के सकेतित करते हैं। वे स्पष्ट शब्दो में क्राति के अंदर बहनेवाली ' भ्रांति के प्रति सचेत हैं (खिचडी विप्लव देखा हमने पृ. २२) तो दूसरी ओर वे रूस की दमनकारी नीति का विरोध करते है और केमलिन, मार्क्स, लेनिन तथा स्तालिन के ताला–चाबी को प्रणाम करते है :–

धन्य क्रेमलिन, धन्य क्रेमलिन

लेकिन यह तो अन्य क्रेमलिन।

शरणागत का बाधिक क्रेमलिन

क्रूर अधिक से अधिक क्रेमलिन।

मार्क्स और लेनिन–स्तालिन के

ताला–चाबी तुम्हें मुबारक।–२

दूसरे स्तर पर नागार्जुन की अनेक ऐसी कविताए है जिसमें उपनिवेशी दासता, कामनवेल्थीय प्रभुता, अमरीकी साम्राज्यवाद, नेहरू, इन्दिरा गांधी और राष्ट्रपति भवन आदि के माध्यम से उन्होंने जहां एक ओर जनवादी चेतना को उत्तेजित करने का प्रयत्न किया हैं, वहीं अभिजन और बुर्जुआ मानसिकता को भी व्यक्त किया है। यही कारण है कि नागार्जुन अभिजन और श्रमिक –शोषित वर्ग दोनों के लिये समान रूप से उत्तेजक है, अभिजन के प्रति उनकी चेतना नकारात्मक एवं व्यंग्यात्मक है जबकि 'जन' के प्रति उनकी उत्तेजना सकारात्मक एवं कारुणिक है। यह करुणा का भाव दया का

---

१ – (खिचड़ी विप्लव, पृष्ठ १०६)

२ – (पुरानी जूतियों का कोरस, पृष्ठ ८०)

न होकर उन्हे उत्तेजित एवं क्रियात्मक करने के लिए हैं । कामरेड छेदी जगन, लेनिन, साथी गणपति पटनायक आदि पर उनकी कविताए समसामयिक महत्व की होती हुई भी अपने महत्व मे वही तक सीमित नही है, इसका कारण, मेरे विचार से वह मूल्यगत क्रियात्मकता हं जो जनवादी चेतना केसाथ गहरी जुडी हुई है। ब तक जनवाद (व्यापक अर्थ मे) संघर्षशील हैं और गतव्य की ओर अग्रसर रहेगा, तब तक नागार्जुन की ये कविताएं दिशा सकेत करती रहेगी। 'छंदी जगन' कविता के भ्रष्ट व्यवस्था आदि पर प्रहार करते हैं, वही वे मार्क्सवादी, वामपंथी और रक्षणपथी खेमो के स्वार्थो और अन्तर्विरोधों पर भी प्रहार करते है। इन्दिरा, नेहरू, संसद, राष्ट्रपति ये मात्र सज्ञाए न होकर नागार्जुन काव्य मे प्रतीक या विचार के प्रेरक स्रोत हैं और यही कारण है कि कवि इन 'सज्ञाओ' के द्वारा आज की पूरी व्यवस्था पर प्रहार कर 'यथास्थिति' को तोडना चाहता है।

नागार्जुन काव्य में व्यग्य ओर आक्रामकता उनकी सृजनात्मकता को गति देते हैं और यही बात उनके परोक्ष कथनों में भी देखी जा सकती है यहा वे पुरानी जूतियो का कोरस, 'नदिया बदला लेगी' ' प्रतिहिसा का महरुद्र' आदि कविताओं में जन विद्रोह, प्रतिहिसा और विस्फोटक तत्वों का आह्वान करते है। इस क्षेत्र में नागार्जुन की सृजन ऊर्जा अधिक गतिशील रही है। " पुरानी जूतियो का कोरस" में पुरानी जूतियां दलित शोषित वर्ग का प्रतीक है जो समष्टि रूप से (यहां पर अनेक प्रकार की जूतियों का संकेत है जैसे देहाती जोडा, टायर चप्पल जूता सलीमसाही आदि) 'अनमोल धूल' होते हुए भी बासों पर टंगे हुए है जो इनकी नियति है, लेकिन अंत में कवि उस नियति के मारक विद्रोह में बदल देता है :–

> आओ, हम सब चले, राष्ट्रपति भवन पधारें
> महामहिम के जूतों की आरती उतारेअहजित्
> ब्रत लेते है, दुखियारों का दैन्य हरेंगे
> है अनमोल हमारी धूल, धूल हमरी धूल।

इसी संदर्भ में नागार्जुन की एक कविता ' छोटी मछली–बडी मछली' है जो शोषण की प्रक्रिया को माइक्रो एवं मैक्रो (लघु और विराट) स्तर पर एक साथ घटित करती है। किस प्रकार का शोषक बडी मछली पहले तो शोषित (छोटी मछली) को अपनी ओर रिझाकर उदरस्थ करती है और फिर, उदरस्थ को प्रशिक्षित कर अपने ही समान शोषक का रूप प्रदान करती है जहां शोषित भी सत्ता और अधिकार प्राप्त कर शोषक का रूप ग्रहण लेता है, यह हमें विश्व का इतिहास बताता है। इस पूरी प्रक्रिया को कवि निम्न क्रमिक सोपानों से पाठकों के समक्ष रखता है :–

आओ मेरी बच्ची। वाह मेरी मुन्नी।

अभी तो आ जा मेरे मुह मे

देखना, यहा अदर क्या नही है

संवेदना को गहराना और देशी मुहावरे मे अपनी बात कहना। "लोकधुनो का उपयोग करते हुए वे कविता की अभिजात्य सीमाओ को तोडते हैं, कबीर की तरह क्या हुआ आप को ? किसकी है जनवरी, किसका अगस्त है? आई कई कविताओ मे लोक गीतो की शैली का उपयोग किया गया है और नागार्जुन का कवि पाठक के साथ–साथ श्रोता की हलारा करता भी दिखायी देता है, बिना अपने आशय का अवमूल्यन किये हुए।"–१

नागार्जुन एक जगह ~~ठहरने~~ वाले कवि नही है उनका झोला झण्डा उठा रहता है, इस मायावटी ने उनके अनुभव को समृद्ध किया है। उनका कारण लोक विस्तृत हुआ है, उनकी कविता एक तान नही है, वैविहया से परिपूर्ण है, उन्होने कविता को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए विभिन्न काव्य रूपो का प्रयोग किया ताकि वह पाठको को सहज सप्रेसित हो सके। "उनका लोक अत्यन्त उर्वर है, नागार्जुन को पढते हुए लगातार एक लोक कवि की उपस्थिति का आभास होता है। जैसे हम जानते हैं कि लोककवि आडम्बरों से काफी दूर औघडी प्रवृत्ति का जीव होता है, उसकी कविताये देर तक याद रहने वाली कविताये।"–२

यह स्पष्ट है कि नागार्जुन जनता के कवि नहीं, जनता के द्वारा स्वीकृत कवि है। वे निरतर इस प्रयत्न मे लगे रहते हैं कि कविता को जनता तक पहुचाया जाय, इसलिए काव्य रूपो को लेकर वे निरंतर प्रयोग करते रहे। आज जबकि स्वयं शब्द ही खतरे में है, नागार्जुन का काव्य प्रयोगो के तमाम जोखिम उठाकर भी शब्द की सत्ता को अक्षुण्ण बनाये हुए हैं। लोक की सत्ता का यह पुजारी लोकानुभव को लोकात्मक भाषा मे ही प्रस्तुत करते हुए असल में कविता का पारंपरिक विधान से बिलगाते हुये एक पतिससार जो बेहद ऊर्जामय तेजोनय है कि सृष्टि करता है। नागार्जुन की कविता दरअसल तद्‌भ्‌व लोक जीवन में तत्सम के आधिपत्य के अस्वीकार की कविता है। " इसलिए उनकी कविता मे नाषिक संरचना का जंजाल जाल बुनने का उपक्रम नहीं मिलता। भाषा बिल्कुल सरल, आम फहम और बोलचाल की तथा शिल्प भाषा की ही तरह सहज, आडम्बर रहित और प्रवाहपूर्ण ।

---

१ – (प्रेमशकर पेज– १७२ नागार्जुन सपा –सुरेश चन्द्र त्यागी)

२ – (स्वप्निल श्रीवास्तव कल के लिए – १९९९ पेज ३०)

भाषा और शिल्प की सह सहजता नागार्जुन में शुरू से मिलती है।''–१

और यह 'निस्सहाय नकारात्मकता' तथा जडी भूत सौंदर्यभिरुचि' वाले दौर मे भी यथावत बनी रही। शायद लंबे समय तक उनकी उपेक्षा का यही कारण था। कविता ? जब शब्दो, बिम्बो, प्रतीको और गोलमटोल वाक्यो से गढने की कोशिशे की जा रही हो जो सहज और बोधगम्य को अपना आधार स्वीकार करने वाले कवि कौन मानेगा। समकालीन काव्य पदृश्य मे आज भी जो लोग सन्नाटा, स्मृिता सयंम व ठहराव देखते हैं, करबद्ध निवेदन है कि वे नागार्जुन की कविता एक बार देख जरूर ले। शायद उन्हे कुछ शऊर आ जाये। इन कविताओ मे भाषा के पूरे यग को झोक देते हैं। ये शब्द साधारण समाज के रोजमर्रा अनुभव से उपजे हैं जो बातचीत सबोधन व्यंग्य के लहजे मे बदल जाते है। वे बातचीत के लहजे मे तुकद्विट था निराला की तरह ही आक्रामण्यता और सपाट बयान कहते हैं उसे देखना हो तो नागार्जुन की कविता अपनी इन अदाओ के लिए बेहद लोकप्रिय है–

" टूटे सींगों वाले सांढो का यह कैसा टक्कर था
उधर दुधारू गाय अडी थी
इधर सकरसी चक्कर था
समझ न पाओगे वर्षो तक
जाने कैसा चक्कर था
तुम जनकवि हो तुम्ही बता दो
खेल नहीं था टक्कर था''–२

नागार्जुन ऐसी भाषा अर्जित करने के लिए ठेठ देहात से लेकर कस्बो, शहरों की राजनीति, धर्म, व्यापार, जालसाजी गुण्डागर्दी जेबकतरी, जरयम पेशा, आर्थिक गुलामी की दुनिया के अनुभवो से अपनी भाषा अर्जित करते है। ऐसा करते हुए उन्हें कोई शब्द कविता की दुनिया से बाहर का नहीं दिखाई देता । वे सच्चे अर्थों में जनता के जनता की भाषा में लिखने वाले मूर्ति मंजक क्रांतिकारी और औघड़ शब्द साधक कवि है।नामवर सिंह ने यदि नागार्जुन को व्यंग्य की विदग्घता के लिए कबीर के बाद हिन्दी का सबसे बडा व्यंग्यकार कहा तो इसलिए कि उनके पास हमारी शताब्दी के चौतरफा फैले यथार्थ को करने के लिए एक समर्थ, व्यंजक , जो कहीं–कहीं शिष्ट हास्य भी पैदा करती है, भाषा हैं उनकी भाषा का पाट उनकी कविता की तरह विविध और विलक्षण है, तभी तो वे

१ – (श्री नारायण समीर पल प्रतिपल पेज २०२ जनवरी जून १९९४)

२ – (खिचडी बिपलव देखा हमने)

प्रकृति राग से लेकर मानवीय राग की सजल कवितायें रचपाते हैं। गौर करे तों उनके व्यंग्य मिश्रित भाषा के भीतर दुख और सन्ताप रिसता रहता हैं।"–१

देखिये इस कविता को–

> शबास!
>
> यह अभिनय तो/कमाल का रहा आपका
>
> दुख था ऐसा मचन
>
> दर्शक समुदाय
>
> पहली बार देख रहा था
>
> भाव विमुग्ध गूगे बेचारे
>
> श्रद्धालु सरल सामान्य जन
>
> होली के दिन उमग में
>
> गुलाब का टीका लगाने गये थे
>
> वे आपको
>
> आपने कहा
>
> मेरा दिल दुखी है
>
> आसाम का दुख देखा नहीं जाता
>
> मैं नहीं दूख सकूगी
>
> (शाबास अभिनेत्री)

देखा जाय तो नागार्जुन ने काव्य भाषा का वही रास्ता चुना जो निराला का पाथेय था। उन्होने कविता के लिए परम्परा से अर्जित भाव के साथ ही साथ जनता की भाषा का इस्तेमाल किया जिसका उद्‌गम स्त्रोत बोलियां है। नागार्जुन ने जनपदीय बोलियों के मिश्रण ऐ एक खास तरह की समावेशी जन काव्य भाषा विजय की। भाषाई विविधता के साथ सादगी का ऐसा सौन्दर्य लोक नागार्जुन रचते हैं कि पाठक सहज ही आकृष्ट हो उठता है। नागार्जुन की लोकात्पता को सबसे सही तरीके से उनकी भाषा के विन्यास में ही खोजा सकता हौ। जो बेहद जीवन्त औरप्राण वान है।

भाषा की इसी मंशिमा के साथ वह कविता की ओर अग्रसर होते है। और जो कवि को अपने समय की चुनौतियो का सामना करने मे सक्षम बनाती है। वे इस माने में विलक्षण कवि हैं कि वे भाषा को कविता मे उसी तरह लाते हैं जैसे मौसम में अचानक बारिश आती है। यह भाषा में बतकही

---

१ – (अरविन्द त्रिपाठी–देखना सत्य का मिहिरद्वार शताब्दी कविता वर्तमान साहित्य – पेज ३८०)

का लहजा हैं।

बतियाते बतियाते अपनी बात कहते है जिसमे आम आदमी का दुख दर्द तकलीफें सभी कुछ आ जाते हैं स्वय नागार्जुन की स्वीकारोक्ति है कि वे जनकवि है। । उन्हें जानकारी होने और जन कवि की भूमिका निर्वाह करने का पूर्ण अहसास है''–१

जनता मुझसे पूछ रही है, क्या बतलाऊ?

जनकवि हूं, मैं साफ कहूगा क्यो हककाऊ।

जनकवि हूं, मै, क्यों चाटूं मैं थूक तुम्हारी

श्रमिको पर क्यो चलने दूं बन्दूक तुम्हारी

'' भारतेन्दु के बाद हिन्दी कविता को जनता के बीच खडी करने की कोशिश मैने की।''

अग्रेज गोर्की की सौवी वर्षगाठ पर वे लिखते है–

करता है भारतीय जनकवि तुमको प्रणम।

''उन्होने '' जन कवि हूं मैं'' कहकर आत्मबोध को वाणी दी है और इस वाणी को व्यक्त करन के लिए उन्होंने कलम और रचना को ही माध्यम बनाया हो , ऐसा नही है। उन्होने जनसंघर्षों में स्वयं हिस्सा लिया है, सहभागिता निभाई है । आम जनता तक जिसे विजय बहादुर सिंह–

बौद्धिक स्तर पर दर्जा चार तक पढी हुयी जनता से हैं।

(जो) आर्थिक स्तर पर जो हो जून की रोटी खा लेती हो।''–२

पहुंचने की पूरी–पूरी कोशिश की है– जनता को भाषा ने अपनी रचनाओं द्वारा नुक्कड सभाओं द्वारा उनके ही शब्दों मं सत्ता प्रतिष्ठानो की दुर्नीतियों के विरोध में एक जनयुद्ध चल रहा है, जिसमे मेरी हिस्सेदारी सिर्फ वाणी की ही नहीं, कर्म की हो, इसीलिए मैं आज अनशन पर हू, कल जेल भी जा सकता हूं। (यह वाक्य १९७४ में अप्रैल में जे.पी.आंदोलन में शामिल होने के दिन प्रतीक अनशन के तुरन्त बाद का है)

अपनी 'जनकवि' शीर्षक कविता में वे कहते हैं–

'' समझ गया हूं

जीवन ने इस धरा धाम का क्या महत्व है।

समझ गया हूं ....

---

१ – (नामवर सिंह – आलोचना)

२ – (नागार्जुन का रचना संसार पृ० १७३)

कैसे जनकवि जमीदार के उन अमलों के मार भागता हो बास की हरी–हरी वह लाठी लेकर। अपनी कविताओं के माध्यम से वे जनकवि का उत्तरदायित्व पूर्णत निभाते रहे है।वे शपथपूर्वक प्रतिज्ञा लेते हैं –

अपने को बेचूंगा नहीं, चाहे दु:ख झेलूं अकथ।

इतना ही नही, अपनी जनकवि की भूमिका का निर्वाह करते हुए वे घरघुसना कवियो– अपनी कवि विरादरी के बुद्धिजीवियो – को स्नेह पूर्वक सचेत करते हैं कि यदि लिखना है तो पहले बाहर निकाल, घूम फिर कर स्थितियों को देखो, तब यथार्थ लिखो घर–बैठे बैठे का लेखन वास्तविक नही हो सकता। ''आ तेरे को सैर कराऊं, घर मे घुसकर क्या लिखता है'' नागार्जुन की लोक चेतना सामान्य जनता के साथ किस घनिष्टता से जुडी है, इसे उनकी 'हरिजनगाथा' मत्र छोटी मछली बडी मछली जैसी अनेकानेक कविताओं में बखूबी देखा जा सकता है। डा अजय तिवारी का अभिमत है कि 'हरिजनगाथा' और छोटी मछली बडी मछली जैसी कविताओ की रचनाकरके नागार्जुन ने न केवल अपने आपको वरन् प्रगतिशील कविता को, हिन्दी साहित्य को मूल्यवान अवदान किया है। उत्तरोत्तर अपने प्रखर यथार्थवादी और हद भौतिकवादी उन्मेष के कारण नागार्जुन हिन्दी साहित्य में निराला के बाद सबसे महत्वपूर्ण पद के हकदार हुए हैं। स्पष्ट है कि नागार्जुन जन कवि हैं, लोक के कवि हैं किसान और मजदूरों के कवि हैं और इसलिए उन्हे यदि वामपथी विचार धारा सर्वहारा केखिलाफ भी जाना पडे तो उन्हें कोई गुरज नहीं। क्यो कि उनके लिए सिद्धांत महत्वपूर्ण नहीं रोटी महत्वपूर्ण है। किसानों की मजदूरों की रोटी। इसके बीच आने वाले किसी का भी वह विरोध कर सकते है। भारत भूमि में समजावादी क्रांति की व्यग्रभाव से प्रतीक्षा करने वाले नागार्जुन 'कार्लमार्क्स की दाढी में जूं डालते है। ' द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद तुम्हारा तुम्हे मुबारक कहते हैं, इसलिए कि वे यह जानते हैं कि –

" क्या है द्क्षिण क्या है दाम
जनता को रोटी से काम।"

उंनके काव्य का एक बहुत बडा हिस्सा पिछले ५० वर्षों में हुए सैकडों अतर्क्य और बर्बर गोलीकाण्ड से प्रेरित है। किसानों मजदूरों पर अत्याचार, छात्रों नागरिकों पर गोलीकाण्ड प्रहार, देश विदेश की कोई धरना जिसमें शांति के लिए संघर्षरत मानव–समाज आहत हो, नागार्जुन के कवि की मानसिक बेचैनी बढ़ा देती है और जब तक वे उस धरना पर अपनी प्रतिक्रिया, अपना आक्रोश व्यक्त नहीं कर देते, उन्हें शांति नहीं मिलती, उनकी बेचैनी बनी ही रहती है। जमींदारो द्वारा छोटी

जातियों के साथ किये गये अमानुसिक व्यवहार का कवि नागार्जुन द्वारा किया गया यह चित्रण कितना मार्मिक एवं संवेदित करने वाला है–

" ऐसा तो कभी नहीं हुआ था कि
हरिजन मातायें अपने भ्रूणों के जनकों का
खो चुकी हों– पैशाचिक दुष्काण्ड में
एक नहीं दो नहीं, तीन नहीं.................
तेरह के तेरह अभागे
अकिंचन मनुपुत्र
जिंदा झोंक दिये गये हों
प्रचण्ड अग्नि की विकराल लपटों में
साधन सम्पन्न ऊंची जातियों वाले
सौ–सौ मनुपुत्रों द्वारा"

(हरिजन गाथा)

सच तो यह है कि " जनता के पक्ष में कवितायें लिखने वाले और भी हैं पर जनता को अपने में आत्मसात कर कविता लिखने वालों में नागार्जुन अपने ढंग के अकेले कवि है। जनता के जीवन में हर दिन हर क्षण घटने वाला यथार्थ नागार्जुन की कविता का यथार्थ है।"–१

उनकी कविताओं में हथियार द्वंद्व क्रांतिकारी कभी नायक नहीं रहा। वे जब जब क्रांति का चित्र खींचते हैं, २६ हमेशा उसमें जनता की भूमिका को सर्वोच्च प्राथमिकता देते है। उनकी कविता है– लो देखो अपना चमत्कार – इसका प्रमाण है–

"गोबर महगू, बलचनमा और चतुरी चमार
सब छीन ले रहे स्वाधिकार
आगे बढ़कर सब जूझ रहे
हरनुमा ठन गये लाखों के
अपना त्रिशंकुपन छोड़ इन्हीं का साथ दे रहा मध्य वर्ग

स्पष्ट है कि प्रेमचंद, स्वयं फिर नागार्जुन तथा निराला के चरित्र नायक नागार्जुन की निगाह में लाखों के रहनुमा है और निश्चित रूप से जैसा कि नागार्जुन मानते हैं क्रांति न तो संसदीय पूंजीवादी तरीके से होगी और न आतंकवादी तरीके से जब भी होगी क्रांति जनवादी तरीके से होगी उसे गरीब,

---

१ – (डा. परमानन्द श्रीवास्तव समकालीन कविता का यथार्थ पृष्ठ ३३)

निरन्न, विपन्न, मेहनतकश मजदूर किसान करेंगे, जिन्हे उसकी आवयकता है।''

यह थोथा आशावाद नही, भविष्य का वह सच हैं जिसे नागार्जुन की स्वप्निल आखो ने देखा था।

****

त्रिलोचन की लोक सवेदना

आवेगो की सयमित अभिब्यक्ति वाले त्रिलोचन की कविताई का तेवर और समकालीन बोध की खनक ठेठ भाषा की ठोस भाव भूमि से जुडा है उनकी कविताओ के पीछे एक भरापूरा अतीत है जिससे उनका गहरा और उनमुक्त लगाव है । जिजीविषा , सैलानीजीवन ,अद्भुत जीवन ज्ञान , सायास भटकाव एवं प्रतिभापूर्ण काब्य की गुणात्मकता से इनका रचना ससार परिपूर्ण है। अपनी जीवन की आकृति और उसके कपन्न को कविता मे तब्दील कर देना त्रिलोचन की ऐसी विशेषता है जो उन्हे अपने समकालीनी से अलग कर देती है। आज की हिन्दी कविता पर यह आरोप है कि उसका स्थापत्य सर्वदेशीय या विश्वब्यापी (कोस्मापालिटन) हो गया हैऔर उसमे उसकी अपनी जमीन की पहचान गायब हो गयी है इस प्रकार का आरोप लगानें वालो को त्रिलोचन की कवितायें देखनी चाहियें जिसमे अपनी जमीन और मिट्टी का पूरा स्वाद है। इस धरती के लिये वह कृतज्ञ है। वह इसकी सोधी गन्ध को महसूसते हुए इसे अपने अन्दर तक समोये हुए हैं। वह कहते भी हैं । "
"चिर कृतज्ञ हूँ , चिर कृतज्ञ हूँ , चिर कृतज्ञ हूँ , महीयसी भू ने काया का दान भी दिया है अन्न जल दिया, फूल फल दिया "– १

त्रिलोचन की कविता में एक प्रेम करनें वाले हृदय की उपस्थिति बराबर महसूस की जा सकती है। एक मुलायम स्नेह की दुनिया ,कोमल सम्बन्धो की दुनिया, उनकी कविताओं में बराबर मौजूद रहती है इस दुनिया के साथ एक सहज अपनापन के लिए त्रिलोचन की कवितायें बार–बार आकर्षण एक नास्टेल्जिया या आत्मरति जैसा लगता है। लेकिन यह लगाव ही है जो आज के औद्योगिक यांत्रिक जीवन में दुर्लभ होता जा रहा है। इसी लगाव के चलते वह मनुष्य के सपनो को अद्भुत नजदीकी से पहचानता है। कोई भी हो – त्रिलोचन उनके सपनों का रंग जानते हैं। वे व्यक्ति की और समूह की भी मन: स्थिति को उसके परे विन्यास में पकडते हैं। जिस तरह वे "कुछ नही " से भी कविता निकाल लेते हैं उसी तरह अपनें अभिव्यक्ति कौशल से उसमें प्रभाव भी पैदा कर लेते हैं ।

कभी शब्दों और वाक्यों को दुहराकर कभी वाक्यों में लोच देकर, कभी सज्ञाओं के पीछे कई – कई विशेषण लगाकर वे कविता सृजित करते हैं। वहां तुकों का समुन्दर संयोजन तो है ही, अनुभव स्थितियों की लय को भी पकडते हैं। कुछ खास किस्म की अँदाजिबयां है – मसलन सानेट

---

१ – (उस जनपद का कवि हूँ पृ० १०१)

जिनमें खास ही नयापन है –

" बढ रही क्षण – क्षण शिखायें

दमकते से अब पडे – पल्लव

उठ पडा देखो विहग – रव

गये सोते जाग

बादलों मे लग गयी है आग दिन था।"

अथवा " मैं अपनें एकाकीपन से ऊब गया था,

अब गया था, उब गया था। आखिर भागा,

अगले क्षण जीवन – सागर में डूब गया था।"

त्रिलोचन की कविताओ को पढते वक्त निश्छल और भावुक हुआ जा सकता है, एक तरह के उन्माद, स्फूर्ति और इच्छा के प्रभाव मे आकर हमइन कविताओ के सहारे बचपन की व्याख्या रहित सक्रियता और कैशौर्य की खेल – परक नाटकीयता की व्यजना पाते हैं । इसी आरोह अवरोह से वह कविता स्वयम को और हमको वयस्क भी बनाती है। उस कविता मे यह वयस्कता, दिन चर्या की सामान्य गतिविधयों और रोज मर्रा के बहुत मामूली से दिखनें वाले अनुभवो के सहारे, अपनी पहचान बनाती है। एक संयत पहचान जो लोगों से प्रीति करके ही बनती है।

प्रीति जिसके मूल मे जीवन है कुछ खारिज न की जा सकने वाली गतिविधिया हैं, कुछ बहुत आत्मीयता , कुछ झगडे और मनुहार हैं– जो मध्यवर्गीय शहराती मानसिकता की नकली नफासत औपचारिकता के विपरीत मनुष्य के अच्छेपन को जिलाये रखती है, असल मे नयी कविता का आधुनिकतावाद अनुभव के स्तर पर शहरी मध्यवर्ग की जिन्दगी के छद्म से जुडा और विचारों के पश्चिम के समान धर्मी कवियों–आलोचकों की नकली मान्यताओ का अनुगामी था।

वास्तव मे " त्रिलोचन की कविता का व्यक्तित्व ऐसा है कि वह आधुनिकतावादियों को पसंद नही आ सकता। उन्होने आज तक अपनी कविता को लगातार आधुनिकतावादी फैशनो और प्रवृत्तियों से बचाया है। नयी कविता के ब्यापक प्रभाव के दौर मे भी वे दृढतापूर्वक अपनी कविता के स्वतंत्र ब्यक्तित्व की रक्षा करते रहे।इस कारण त्रिलोचन की कविता मे नयी कविता का कही कोई प्रभाव नही है। ब्यक्तित्ववाद , रहस्यवाद आदि की छाया नही है। उनकी कविता नयी कविता के समानान्तर उसके विरोध मे खडी दिखायी देती है।" – १

त्रिलोचन की कविता की दुनिया एकदम दूसरी है । उसमे गाँव की जिन्दगी की वास्तविकताएं और

१ – (मैनेजर पाण्डे आलोचना ८२)

आकाक्षाए हैजन जीवन के चित्र है और गॉव की बोली–ठोली , लाग लपेट, टेक , भाषा , मुहावरा ,इगित आदि हैं। किसान जीवन और जातीय मन का काब्य नयी कविता के आधुनिकतावाद का प्रतिपक्षी और प्रतिरोध है। आधुनिकतावादी वातावरण मे त्रिलोचन की कविता महानगर मे बसे बचे गॉव की तरह है। यह आपकी मानसिकता पर निर्भर है कि उसे पिछडेपन की निशानी माने या रेगिस्तान में नखलिस्तान। त्रिलोचन के यहॉ विचारोत्तेजन का प्रत्यक्ष ऊहापोह इतना नही जितना कि भाव प्रगति से उत्पन्न सौंदर्य सृजन का लेकिन इसका मतलब यह नही कि वहॉ भाव प्रगति से सम्बद्ध ज्ञानात्मक स्तर का अपना पिष्ट प्रेषण हैं विकास नही। " वास्तविकता यह है कि त्रिलोचन की कविता , परम्परा की सम्बद्धता मे नयी है। वह कवि दिमाग की कोरी उपज या आसमान से टपकी कविता नहीं। यही वजह है कि वे अपने किसी भाव या विचार का आरोहण करने के बजाय उसे परिस्थिति मे रूपायति होता हुआ दिखाते हैं। भाव या विचार का आरोहरण कितना सरल है यह समकालीन कविता में स्पष्ट देखा जा सकता है। शिलोचन के भाव विचार और कला परिस्थिति जन्य हैं। आरोपित नही।" – १

इस संदर्भ में आचार्य रामचद्र शुक्ल नें अपनी रस मिमासा में कहा है। जहां तथ्य केवल आयोजित या सभावित रहते है– जहा तथ्य केवल आरोपित या सभावित रहते है। वहां वे अलकार रूप में ही रहते है। पर जिन तत्यों का अभ्यास हमें पशु पक्षियो के रूप मे व्यापार या परिस्थिति मे ही मिलता है वे हमारे भावो के विषय वास्तव मे हो सकते है। (रसमीयासा) त्रिलोचन किसी भी तथ्य अनुभूति या विचार को रूप व्यापार या परिस्थिति में दिखाने की कला मे प्रवीण है जिसे साधने मे अच्छे अच्छो को हिचकियां आने लगती है। त्रिलोचन की कविता दुनिया में रहने की कविता है। उसे दुनिया की परवाह ज्यादा है, दुनियादारों की नहीं। इसलिए यह मानवीय संकट का तीखा अहसास कराने वाली कविता है मानवीय संकट इसमे रचे बसे होने का प्रमाण है, जिसके बारे में त्रिलोचन अलग से हल्ला नहीं मचाते त्रिलोचन का यथार्थवाद अन्य कवियो के यथार्थवाद से कुछ अलग है । उसमें न झूठा आशावाद न काल्पनिक सघर्ष के लिए आवाहन है, मुक्ति आंदोलन के गीत भी है, लेकिन यह चेतावनी है कि सोच समझकर चलना होगा। उपदेश और आह्वान 'धरती' की कविताओ मे अधिक है, बाद में संग्रहों में कम। उनकी कविता का मुख्य स्वर यह है————

भाव उन्ही का सबका है जो थे अभावमय,

पर अभाव से दबे नहीं, जागे स्वाभावमय।

---

१ – (जीवन सिंह: कविता की लोकप्रवृत्ति पृष्ठ ११८)

वे किसान जीवन के वास्तविक सुख–दुख, आशा निराशा और सघर्षो की कविता लिखते हैं। जो लोग जन–जीवन की कविता में केवल आशा और उल्लास देखना चाहते है, उनको लक्ष्य करके त्रिलोचन ने लिखा है–

अगर न हो हरियाली
कहा दिखा सकता हूँ? फिर आंखों पर मेरी
चश्मा हटा नहीं है। यह नवीन ऐयारी
मुझे पसद नही है। जो इसकी तैयारी
करते हो वे करें। अगर कोठरी अंधेरी
है तो उसे अंधेरी समझने कहने का
मुझको है अधिकार।

वे मानते है कि अगर जनता के जीवन में संघर्ष और दुख है तो उस वास्तविकता को झुठलाना गलत है। लेकिन वे ये भी जानते है कि दुःख के तम मे जीवन–ज्योति जला करती है। वे किसान–जीवन की करुण कहानी नहीं करते, उसके स्वाभिमान की रक्षा को महत्व देते है। उनका किसान अभाव में जीता है, लेकिन अभाव में दबता नहीं। उनकी कविता में किसान जीवन का यथार्थ सच्चे और खरे रूप में है। न वह भावुकता के उच्छवास मे डूबा, न विचार धारा के आग्रह से ढका है। " – १ " उनके किसान के जीवन के विभिन्न पक्षों के चित्र है वे चित्र अलग–अलग है, फिर भी उनमें संबंध है और उस संबंध से किसान–जीवन की लय उभरती है। त्रिलोचन पहले किसान को किसान के रूप में, जीवन के लिए प्रकृति से लडते हुए किसान के रूप में चित्रित करते है–

" है धूप कठिन सिर ऊपर
थम गयी हवा है जैसे
दोनों दूबों के ऊपर
रख पैर खींचते पानी
उस मलिन हरी धरती पर
मिलकर वे दोनों प्रानी
दे रहे खेत मे पानी।"

ऐसा चित्र केवल सुनी–सुनायी बातों मे आधार पर कल्पना के सहारे चित्रित नहीं किया जा

---

१ – (मैनेजर पाण्डेयजीवन की लय में मुक्ति का राग– आलोचना ८२– जुलाई सित ८७ पृ०– २२)

सकता। इसके लिए चाहिए सहृदयता लेकिन वह काफी नही है, उस जीवन से गहरा परिचय चाहिए।'' – १

आम जनजीवन के दुख दर्द को पीकर उसकी ऊर्जा से जो काव्य सृजन होता, वह अलग तरह का होता है। वह विचतन नही व्यक्तित्व को दृढता देता है। स्पष्ट है उनकी मूल्य दृढता का आधार उनके पुराने पन और पारम्परिकता से बना है। यह आकस्मिक नहीं कि उनकी आखो मे तुलसी और निरासा सदैव बने रहते है। तुलसी के एक साग रूपक से चौपाई को सॉनेट मे उद्‌धृत कर एक ओर त्रिलोचन यह बतलाते है कि सभ्यता के आर्थिक रूप परिवर्तन हो जाने के बावजूद मूल्य स्तर पर अनेक बातें ऐसी शेष रह जाती है जो नही बदलती दूसरी ओर वे अपनी काव्य परम्परा के किस बिन्दु से जुडकर उसका विकास करना है यह बतलाते है। यह कोई त्रिलोचन से सीख सकता है। कि परंपरा से एक रचनाकार का संबंध किस सीमा तक और किस रूप मे होना चाहिये। जैसे वे परपरा का सब कुछ स्वीकार नहीं करते, उसी तरह त्याज्य भी नही मानते।'' २

अपने एक सॉनेट मे वे अपने समय के उन आधुनिकता वादी प्रयोगवादी और नयी कविता के व्यक्तिवादी व्यक्तियो कवियों से स्वयं को अलग दिखलाते हैं जो अपने उडन घोडे पर बैठकर उड रहे थे। जिनमें संबंध हिन्दी जाति की सामान्य क्रिया शीलता जनता से न होकर उस अभिजात, उच्चवर्ग से थे जो सामान्य जन की निकटता को असभ्यता अपमान एवं लज्जाजनक मसला है।

मित्रों मैने साथ तुम्हारा जब छोडा था

तब मै हारा–थक नहीं था, लेकिन मेरा

तन भूखा था, मन भूखा था, तुमने देरा

उत्तर मैने दिया नहीं तुमकों, घोडा था,

तेज तुम्हारा, तुम्हें ले उडा, मैं पैदल था

विश्वासी था सौरज धीरज तेहि रप चाका

जिंससे विजय श्री मिलती है और पताका

ऊंचे फहराती है।

---

१ – (मैनेजर पाण्डेय 'िवन की लय में मुक्ति का राग– आलोचना ८२– जुलाई ितत ८७ पृ० –२३)

२ – (जीवनसिंह सापेक्ष त्रिलोचन अंक १८३)

यह त्रिलोचन की लोक सम्बद्धता की सुचितित उद्घोषणा है, जिसका व्यवहारिक प्रमाण उनके सम्पूर्ण आचरण लोक व्यवहार और काव्यासर्जना मे प्राप्त होता है। परम्परा से सम्बद्धत की चीख पुकार मचाए और कुछ संदर्भित वाक्यो शब्दो से वे बात को कितनी गहराई तक ले जाते है, यह जानकारी उनकी कविता मे गहरी पैठ करने से ही सभव है।

त्रिलोचन किसानो को जीते-जागते मानव-समुदाय के रूप मे देखते है। त्रिलोचन की कविता मे गरीबी, शोषण और उत्पीडन के शिकार किसानहै। उनकी कविता मे सबसे अधिक खेतिहर मजदूर आते है। और उन खेतिहर मजदूरो मे भी स्त्रियो की जीवन दशा पर उनका ध्यान अधिक जाता है। उनकी कविताओ मे कुछ चरित्र है। वे सब ग्रामीण कारीगर, खेत-मजदूर और स्त्रियां है। नगई गहरा, मोरई केवट, मगल, निहू, भिखरिया, अतवरिया, चम्पा, सोना और सुकनी आदि ऐसे ऐसे ही चरित्र है। इन चरित्रो के माध्यम से गाव मे सबसे कठिन जिन्दगी जीने वाले लोगों के ठोस अनुभवो की एक दुनियां साकार रूप में हमारे सामने आती है।

इन चित्रों मे वे चरित्रो के रूप-रग आकार-प्रकार और नाक-लक्श पर नही बल्कि उनके कामकाज व्यवहार, स्वभाव और शील पर ध्यान देते हैं अवध के दर्पण मे उन्होने ठेठ ग्रामीण भारत के दर्शन किये और कराये हैं।" – १

महाकुभ मे जन-समुद्र का विराट दर्शन करते हुए उन्होने अनुभव किया- " मानचित्र था भारत का रेखांकित अनन"। उनका प्रगतिशील राजनीतिक 'स्व','धरती' में ही सुनाई पडने लगता है। उनका प्यार उन्हें 'जगत जीवन का प्रेमी बना रहा है।' इसीलिए अपने मुक्ति कामना लेकर लडने वाली जनता के पैरों में मेरा हृदय धडकताहै।' स्वाधीनता के बाद ' जब से निरहू भाई ने घर-बार संभाला' तब से उनका राजनीतिक स्वर व्यंग्यमय होता गया जिसका परम विकास महाकुंभ वो सॉनेटो में दिखायी देता है। महाकुंभ वाले सॉनेटों को पटना-गोलीकाण्ड पर लिखी नागार्जुन की "खून और शोले" वाली कविताओ के साथ मिलाकर पढिये इन दोनों व्यक्तियों का मिजाज और अंदाज काफी कुछ उजागर हो जायेगा। त्रिलोचन अपने आस-पास के बिखरे सूत्रो से अंतर्वस्तु को बुनते हैं यह उनके खुली आंखों से निरखने का तरीका है तभी वह कहते हैं-

मैने उनके लिए लिखा है जिन्हें जानता हूं
जीवन के लिए लगाकर अपनी बाजी जूझ रहे हैं
जो फेंके टुकडों पर राजी कभी नहीं हो सकते है।
मैं उन्हें मानता हू आगामी मुनष्यताओं का निर्माता

---

१ – (अवधेश प्रधान-जन संस्कृति अंक –१० – अप्रैल जून १९८८)

नये युग के उद्गाता वे है

जो है निपट निरक्षर (दिगन्त पृष्ठ २३)

जन में ऐसा - - - विश्वास करने वाला कवि ही कह सकता है। आस्था में बडा बल है। त्रिलोचन के कर्ता ने कहा था मनुष्यता तुझसे नवीन जीवन पायेगी। घोर पराजय में भी गान विजय के गा तू। यह परिहास नहीं था, सच था खरा सच। मानवता की विजय के गहरे विश्वास से भरे त्रिलोचन स्वीकार करते हैं कि वे उस जनपद के कवि हैं जो भूखा रहा है ,नंगा है, अनजान है, कला नहीं जानता हैं वह कैसी होती है, क्या कला? वह नही मानता कि कविता भी कुछ दे सकती है। इस जनपद में आधुनिक ससार किसी जादूगर की तरह इसके अनजाने ही इसके जीवन के तमाम पहलुओं और विचारों को निस्सार कर गया है और इस तरह इस जनपद को दुख में डुबो गया है। लेकिन आधुनिक संसार की कविता का इसमें प्रवेश नहीं हो सका। उसे आधुनिक कला चेष्टाओं की खबर तक नहीं है। वह अपने दुख और अपनी रामायण में ही इतना रमा हुआ है कि उसे किसी और बात की फुर्सत ही नहीं है। लेकिन जैसा कि ध्यान से पढने पर हम यह स्पष्ट देख सकते हैं कि यहां ऐसे जनपद के लिए व्यग्य का भाव नही है बल्कि एक पारदर्शी करूणा अवश्य हैं ।'' – १

लेकिन ऐसा होते हुये भी त्रिलोचन अपने को जन से सबद्ध कर उस नंगे भूखे जनपद से अपने को संबद्ध करने में गर्व का अनुभव करते है। क्यों कि वह जानते हैं कि इस भयाजकता से तभी त्राण है जब इस जन की वास्तवकि मुक्ति होगी। वह समझौता परस्त नहीं है। आगे तभी वह कहते है–

इस ऊबडखाबड़ दुनिया से मैं समझौता
नहीं कर सका हूं, यह मेरी कमजोरी है,
समझौता कर पाता तो कुछ न कुछ अगौता
ही कर लेता, पर स्वभावकी जो डोरी है
जाय यह नहीं जाने वाली है, किसी तरह
वैसे मुझे अनुभवी लोगों ने उपाय तो
एक नहीं दो चार बताये, किन्तु गई रह
बात मूल की संचित, अहंकार जो थोथा

---

१ – (कविता का जनपद (सं. अशोक बाजपेयी) में प्रकाशित उदयन बाजपेयी का आलेख त्रिलोचन का जनपद पृष्ठ १०६)

है वह मुझको सत्य नही है, मानव असली

मुझको प्रिय है,– खडा खेत मेहै जो मोदा

मैं उसको उखाड डालूंगा। (उस जनपद का कवि हू पेज ६३)

मानव का सकट और उससे मुक्ति की वस्तुगत परिकल्पना के विषय मे त्रिलोचन ने अनुभव और विचार से जो निष्कर्ष निकाले हैं वे उनके व्यक्तित्व की सहजता सरलता के साथी है। मुक्ति के विकल्प की इनकी दिशा वस्तुगत है इसलिए इसकी तस्वीर बहुत साफ है। इसका कारण भी जीवन–क्रम की द्वद्वात्मक तथा समग्र पहचान है। यह मनुष्य क आकांक्षा और क्रिया शीलता की वेशमयी रचना है। समानबुद्धि और संवेदना है जिसे उन्होने कही सामान्य सत्य रूप में और कहीं व्यापारजन्य रूप मे कहा है–

कही जाय कोई

दिशा नहीं खोई

जीवन से जीवन की बात कहो (कुछ ढंग का कहो)

उन्हें अपनी कविता की सामर्थ्य पर पूरा भरोसा हैं इसलिए वे–

करता हू आक्रमण धर्म के दृढ दुर्गों पर

कवि हू नया मनुष्य मुझे यदि अपनायेगा

उन गानों में अपने विषय गान पायेगा

जिनको मैंने गाया है

" अपनी रचनाओं के प्रति ऐसा आत्म विश्वास कम कवियो में दिखायी पडता है।" इस आत्मविश्वास का आधार है जीवन के प्रति आस्था। दृष्टिकोण के अंतर से आज कवि और आलोचक अलग–अलग तत्वों को कविता की शक्ति मानते है। लेकिन त्रिलोचन की कविताओ की शक्ति वास्तव में जीवन के प्रति आस्थायी है।" – १

त्रिलोचन सिर्फ कवि नहीं एक संस्कृति का नाम भी है। जिसके पीछे ठेठ भारतीयता और देशी मूल्यों की परम्परा है। यह परम्परा जिस अर्थ में प्राचनीता का द्योतक है, त्रिलोचन के लिए उसीं अर्थ में आधुनिकता का भी। इसीलिए कुछ त्रिलोचन में परम्परा और आधुनिकता की वह ऊर्जाचित धारा देखते है। जिसमें जीवन के अवसाद भी हैं तो उसकी अपरिमित सभावनाओं के सुख भी। थके हारे की पीड़ा का संसार है तो अक्रामक आवेगोंसे भरा संकल्प भी।

दीन–हीन होकर टूटे हुए मनुष्य की करूणा है तो समाज की सड चुकी व्यवस्था को तोडने

---

१ – (खगेन्द्र ठाकुर कविता का वर्तमान पृष्ठ ११८)

की चेतना भी यानी त्रिलोचन मे सम्पूर्ण भारतीय लोक मानस का रग रूप और अनुभव है। यह देशी माटी की ताकतहै जिससे वह निर्मित हुए और जिससे उन्होने ताकत ग्रहण की। त्रिलोचन स्वय ही कहते है कि उनमे जीवन की लय जागी है और ये अपनी धरती के अनुरागी है–

मुझमें जीवन की लय जागी

मैं धरती का हूं अनुरागी

जडी भूत करती थी मुझको

वह सम्पूर्ण निराशा त्यागी।

कवि मे जीवन की लय का जगना और अपनी मिट्टी के प्रति अनुरागी होना वस्तुत उसके प्रखर विश्वास का द्योतक है। यह विश्वास ही उसे आपने मार्ग पर दृढ किये हुए है। वह निराशा को त्याग चुका है जो उसे जडीभूत करती थी। वह अब प्रतिबद्ध है तो सिर्फ अपनी मिट्टी के प्रति, क्यों कि यह प्रतिबद्धता ही उसके जीवन की वास्तविकत है, जीवन का दृष्टिकोण है– समग्रत जीवन दर्शन है। इसी प्रतिबद्धता के कारण कवि स्वय को कोसने लगता है, जब वह पाता है कि उससे कुछ नहीं हो पा रहा–

पथ पर धूल उडा करती है

वह भी आखिर कुछ करती है

पर मैं मेरे मन, तुम बोलो क्या करता हूं

और नही तो तत्व मुक्त है

वे विराट में प्रभायुक्त है।

मेरे पांचों तत्व लजाओ मैं करता हूं

क्या मेरा जीवन–जीवन है।

हमारे जीवन–दर्शन के प्रति यह नैतिकता शायद ही कहीं मिल सके। आत्मालोचन और स्वय को ही कटघरे में शामिल करने की प्रवृत्ति तो अन्यत्र दुर्लभ ही है। यह त्रिलोचन की निजी विशेषता है जिसमें शास्त्रीयता के साथ गद्य का बारीक सयोजन दिखायी देता है। इसे ही मुक्तिबोध त्रिलोचन के प्रसंग में प्राच्य क्लासिकल स्ट्रेन और पाश्चात्य प्रोज टेक्नीक का समन्वय कहते है। मन के आवेगों को शब्दों में बांधते हुए भी त्रिलोचन का कवि उसे केवल संदेश या उपदेश का विषय नहीं बनाता है वरन् अपनी आत्मोलोचन का, बेबसी का विषय बनाता है जिसमें वह अपने को सफाई से खाले सके, तौल सके और एक बेहतर लक्ष्य की ओर अपने साथ–साथ को भी लगा सके।

इस आत्मालोचन और विनय भाव की परम्परा हिन्दी कविता मे बहुत पुरानी है, वह इसका सदर्भ यहां बिल्कुल ताजा तरीन है, एक आधुनिक धरती के कवि के लिए जिसकी मुक्ति समाज की सम्पन्नता है और जिसकी भक्ति धरती के प्रति अनन्यत है। त्रिलोचन के काव्य मे एक अन्य वर्ग को उन सवेदनात्मक चित्रो तथा दृश्यो का है जिनका सबध प्रकृति के जब और अजय गत से है त्रिलोचन के काव्य मे जहा परम्परा बोध जातीय रूप को अर्थ देता है वहीं प्रकृति के प्रति इनका रागात्मक रिश्ता है। प्रकृति प्रेम, आचार्य शुक्ल के अनुसार एक आदिम प्रवृत्ति है। मनोविश्लेषण की भाषा में यह मानव मन क एक ऐसा 'आधरूप' है जो मानव के बार–बार हाट राता है उसने जीवनी शक्ति प्रदान करता है। यदि गहराई से देखा जाय तो पूंजीवाद तथा उपभोक्तावाद का जो नया इजारेदारी रूप विकसित हो रहा है, वह हमारी सवेदना को हमारे जीवन ऊर्जा को तथा हमारे जातीय चरित्र को कुठित कर रहा है। (प्रकृति, परिवार तथा प्रेम की सवेदना क्रमशः हमारे मनस् से दूर हो रही है। यही कारण है कि आज की कविता इन क्षेत्रो को नये तरीके से अर्थ दे रही है। यही कारण है कि समकालीन कविता में संवेदना के ये क्षेत्र पुन रचनात्मक अर्थ कला प्राप्त कर रहे है। इस दृष्टि से त्रिलोचन की अनेक कविताये महत्वपूर्ण हैं।" – १

त्रिलोचन का किसान मन प्रकृति मे खूब रसता है। उनके यहां प्रकृति किसान–जीवन के अंग के रूप में है और उससे स्वतंत्र भी, उसका आकर्षक सौन्दर्य है और विस्मयकारी रूप भी, सावन की बरसात का संगीत है और भादी का प्रचण्ड मेध गर्जन भी, प्रकृति से सहज आत्मीयता है और कठिन संघर्ष भी। प्रकृति से किसान जीवन का ऐसा ही नाता है।

ऋतुओ के बदलने के साथ किसान का जीवन क्रम बदलता है। त्रिलोचन ने विभिन्न ऋतुओं में बदलते किसान–जीवन का चित्रण किया है। उन्हें वर्षा और बसंत विशेष प्रिय है। एक से किसानों को जीवन मिलता है और दूसरे से जीवन्तता मिलती है। उनकी कविता में वर्षा के अनेकरूपो के चित्र है। एक है भादो की रात मे यह वर्षा–

" भारी रात भादो की ....पथ..... ... . वह कौधा
दीप्ति भर उठी आंखों में इतनी, फिर हम तुम,
कुछ भी पकड़ सके न डीठ से, छाया चौथा।
तड तड तड़त्त डडा धाड़. धु ड़् धू हुम्
रिमझिम रिमझिम———— छक् छक् छक् छक्, सर् सर् सर् सर्
चम चम चमक———— धमाके घन के, उत्सव निशिमद।

---

१ – (डा० वीरेन्द्र सिंह काव्य संवेदना का आतरिक पक्ष त्रिलोचन पर सापेक्ष अंक पृष्ठ १७५)

और इससे एकदम भिन्न वर्षा के सगीत और चित्र इससे है–

आठ पहर की टिप टिप्

सडक भीग गयी है

पेडो के पत्ती से बूंदे

गिरती है टप् टप्

हवा सरसराती है

चिड़ियां पख समैटे यहा वहा बैठी है। (ताप के ताए हुए दिन)

वर्षा के ये दोनो चित्र एक दूसरे से भिन्न है। दोनो मे गति और ध्वनि को मूर्त करने वाली शब्द योजना और भाषिक सरचना भी अलग–अलग है। इन चित्रो से साबित होता है कि त्रिलोचन रूप नही गति और ध्वनि के भी चित्रकार है। यह उनकी यथार्थवादी कला एक और नमूना है। त्रिलोचन प्रकृति के रूप मे प्रभाव दोनों का ध्यान रखते है। इसलिए उनकी प्रकृति की कविताए कही भी मानवीय संदर्भ से कटी नही है। ऐसी कविताओ मे जातीय जीवन के प्राकृतिक परिवेश का उनका बोध प्रकट होता है।

उनके यहां बादलो के ढेर सारे दृश्य है। उडते हैं पारावत जमी हुयी बदली के नीचे–नीचे लगता है जैस बादल के छोटे–छोटे टुकडे खगाकरये चलके अपनी चाल दिखाते हैं । उधर आकाश झुका है। भ्रमर कली के ऊपर का लगता है बादल । कवि कल्पना उत्प्रेक्षओ के सहारे उड चली–

भरा उजाला छलके

जैसे रिकू छोरों से कलश गगन का ढलाके

घन ये घूंघट से लगते हैं किसी भली के।

इसके साथ कहीं कपोती बादल हैं वहीं सिलेटी रंग के। कही बूंदा–बादी है तो कही फैल फैलकर मूंदा बदली ने नभ नील नयन को। उधर तिरे हैं बादल के ऊपर बादल चहुं ओर फिरे हैं नाना रूपों रेखाओं में जैसे खूंदा खूंदी बंधे अश्व करते हैं या ' सुन्दर फूंदा किरणों से निकला,

जिसने धन सांध्य चिरे हैं

कभी–कभी त्रिलोचन आसमान मे मेधों के बनते–मिटते चित्रों को तल्लीनता त्त देखते हैं और कभी कभी उन्हे मन में साधकर शब्दों में भी उतारते हैं–

संध्या ने मेघो के कितने चित्र बनाये

हाथी, घोड़ा, पेड, आदमी, जंगल क्या–क्या

नही रच दिया और कभी रगो से क्रीडा की,

आकृतिया नही बनायी। कभी चलाये झीने

से बादल जिनमे चटकीली लाली उभर

उठी थी, जाते–जाते क्षितिज परी पर

सूरज ने सोना बरसाया। छाया काली

बढने लगी, रंग धीरे–धीरे फिर बदले,

पेंसिल के रेखा चित्रो से बादल छाये।

बादलों का इतनी प्रकार इतने तरह से त्रिलोचन वर्णित करते हैं कि वे असल मे बहुत दूर आकाश की सम्पत्ति न रहकर हम तक तिरती पतंग के मानिन्द हमारी हथेलियों तक आ जाते हैं– संवेदना के इस आशय के साथ कि हम उन्हे ढेर सारे रंग बिरगे बादलों के महसूस करते है।

बादलों के साथ उनके यहां जो धूप खिलती है

वहीं धूप जो मेरे हाथो को बालो को

छू छूकर इतनी गरनाई ला देती हैं

सूरज की खेती है

लहराती है

वही धूप पेडो के पत्तों की हरियाली

ओप रही है कितने रग निखार रही है

रग रंग के फूलों में उडती चिडियां के

रोये डैने चमकाती है। जो खुशहाली

चापायों में है उठकर ललकार रही है

सुस्ती को (शब्द पृष्ठी २६)

त्रिलोचन के काव्य में प्रकृति दृश्य वैविध्य के साथ तो आये ही हैं उनमें अनुभूति और विचार की द्वंद्वात्मकता लक्षित की जा सकती है। उनमें लघु और विराट को एक साथ समायोजित करने की उत्कण्ठा है।

महाकाश का कलश सुनील पारदर्शी है

इसमें अपनी पृथ्वी स्थित है, धूम रहीहै

एक ओर तो प्रखर ज्योति की धार बही है

सूरज की दूसरी ओर तम सुस्पर्शी है

उपस्थिति मे स्थिति जीवन स्वय रोमहर्षी है–

ऋतुओं मे बसत त्रिलोचन का समप्राण है। उनके प्रकृतिदृश्यो मे एक गन्धोन्माद है प्राण वायु के झकोरे हैं जगनीकीअनंतता हैं धारायें अनुकूल प्रतिकूल है। प्रकृति का असीम जैसे विनाश के बडे से बडे आयोजन को चुनौती दे रहा हो घायलत्रिलोचन उस मोहन आनद के चित्र से हैं त्रिलोचन के प्रवृत्ति चित्र अक्सर राजस्व सौदर्य के निर्देशान हैं इसमें सचारित मधु का धीर समीप अनंक सुगध सजोये यदा कदा ऊद्यमी भी हो चला है । इसमे गुलाब है तो बुल–बुल भी पर ज्योति और अधकार के झिलमिल झकोरे अतीन्द्रिय है।" – १

त्रिलोचन की कविताए उनकी आत्मा की बैचेन हरकते हैं जो अपनी बनावट मे पूरी तरह स्वदेशी है। किसानी चेतना से लैस महानगर इसे निगल पाने में कामयाब नहीं हुए है। त्रिलोचनके काव्यतत्व की मूल चेतना उनके गाव की स्मृति हैं उनका गांव भूख गरीबी और फलेहाली और मुफलिसी मे पल रहा गाव है। वहा जो लोग है। वह उसे भी जर्जर अवस्था मे है। यानी एक लोक तत्र अपने तत्र का इस्तेमाल कर लोक को आम आदमी को कैसे बेजार कर सकता है इसकी पूरी तस्वीर हमारे कस्बे और गांव देते है। त्रिलोचन इस कस्बे और गाव से जुडे है। वह व्यवस्था के अन्याय औरतंत्र की गजालतों का नंगा नाच देख रहे है। उनकी नैतिकतायें उन्हीं के साथ जुडी है। इसी लिए वह ज्यादा सुकून इस बात में पाते हैं कि आम आदमी जिसमे किसान भी है मजदूर भी है जो प्रभु वर्गों के चोचलों से दूर अपनी मशक्कत में जी रहा उसके साथ कैसे जीया जाय–

उन लहरों पर हूं जिनके तल में भाषाये
कितनी बैंठ चुकी है, कितनें सुन्दर सपने
बिला चुके है पानी बनकर, सत्य कभी का
असत् हो चुका है।

जो सत्य उसके असत् हो जने पर जो मंगलकारी हो सकता था उसके अमगल की हद तक पहुंचने पर ही स्थितियों के बिला जाने के अलावा और कुछ रह नहीं जाता । त्रिलोचन की कविता यथार्थ के इसी भयावह सच के गैप को भरत है यह ही उनकी काव्यात्मक नैतिकता का आगाज है।

---

१ – (डा. रेवती रमण कविता का समकाल पृष्ठ १२५– १२६)

****

शमशेर , नागार्जुन व त्रिलोचन की लोकसवेदना की तुलना

त्रिलोचन उन प्रगतिशीलो मे नही है जो वैचारिक झण्डे के जोश मे नारा और कविता का फर्क भूलते ही या फिर विचार के लिए अनुभव के लिए अनुशासन को बलाए ताक करते हों। " वे इस धारणा के कायल है कि कवि को काव्य रचना का क्षेत्र चुनते हुए अपने स्वभाव और सामर्थ्य की जांच परख तो कर ही लेनी चाहिए। कवि केवल रचयिता या सर्जक ही नही होता । संवेदनशील पाठक और जिम्मेदार आवश्यक भी होता है। अपने पुरखो और समकालीनों के कलाकर्म को समझता और उन पर रीझता है। किन्तु यह सब जितना सहज और श्लाध्य है, उतना ही आवंछित यह है कि उनका ही अंधानुकरण करने लग जाए, किन्तु उस ओर उसकी उन्मुखता का कारण सिर्फ व्यक्तिगत रीझ नही होनी चाहिए। अगर वह उनमें कुछ जोड सकता है या कलात्मक ताजगी पैदा कर सकता है, तभी उसे यह प्रवृत्ति शोभा देगी । कलाकार का अपनी अभिलाषा का ही नहीं अपनी क्षमता का भी ज्ञान होना चाहिए। उन तमाम बातो के साथ वह यह मानते है कि हम प्रदर्शन का तत्व प्रायः घातक होता है। कलाकार की महत्ता सादगी की गहराई में निहित है न कि प्रदर्शन के पाखण्ड में। उसका असली धर्म जीवन के साथ रचनात्मक सहयोग है। "कलाकार जिस समाज में रहता है, उस समाज के स्वाद और स्वप्नो से जुडा रहता है। समाज की चिन्ताओ से वाकिफ और उनमे भागीदार की हैसियत से वह भाषा के जरिए अपनी भूमिका निवाहता है।" – १

'शब्द' और शब्द का अन्योन्याक्षित भाव वह जीवन है जहां प्रत्येक ध्वनि सिर्फ आकार ही ग्रहण नहीं करती। अर्थ की छविया धारण कर लेती है। " त्रिलोचन क काव्य–व्यक्तित्व का रहस्य उनके तुलसी से सबंधित सानेट्स में मिलता हैं। तुलसी उनके आदर्श भी है और प्रतिमान भी। यानि कि तुलसी जैसी जनोन्मुखता और लोक–परायणता तथा उन्हीं जैसी भाषा सिद्धि" तुलसी बाबा, भाषा मैने तुमसे सीखी। मेरी सजग चेतना में तुम रमे हुए हो। कह कह सकते थे तुम सब कड़वी,मीठी, तीखी। प्रखर काल की धारा पर तुम थमे हुए हो। और वृक्ष गिर जाए मगरतुम थमे हुए हो।" – २

" तुलसी और त्रिलोचन में अंतर जो झलके। वे कालांतर के कारण है। देश वही है । और त्रिलोचन के सदर्भो का पहनावा । युग ही समझे, तुलसी को भी नहीं सजेगा (ताप के ताये हुए दिन

---

१ – (विजय बहादुर सिह – त्रिलोचन का काव्य संसार– निष्कर्ष १ जनवरी १९८३ पृष्ठ – ६)

२ – (दिगन्त पृष्ठ ५६)

पृष्ठ ४६) विजय बहादुर सिह त्रिलोचन का काव्य संसार पृष्ठ

त्रिलोचन विषय मे ही नही, भाषा मे भी यथार्थ का अनुसरण करते है। शमशेर के यथार्थ और

शमशेर की भाषा का रिश्ता बहुत सीधा की बारीक मे बारीक छननी से अपने यथार्थ को छानते हैं कि वह आटा नही मैदा बन जाता है। उनकी काव्य सरचनाउस रासायनिक प्रक्रिया की देन है जिसे आयुर्वेद मे शोधन कहते है। त्रिलोचन इस जटिल और कठिन व्यापार वाले पचडे से हटकर उन शब्दों को वाक्यो मे मूंथते हैं जिसकी अहमियत काव्य क्षेत्र से बाहर लोक क्षेत्र मे भी बनी रहती है। त्रिलोचन लोक से लेकिन यही से त्रिलोचन के काव्य व्यक्तिव पर 'लेकिनवादी' व्याख्या शुरू हो जाती है जैसा कि डा. परमानद श्रीवास्तव ने इस बात को बहुत दिलचस्प तरीके से अपनी पुस्तक समकालीन कविता का यथार्थ मे उठाया है" धरती (१९४६) के कवि त्रिलोचन मे कुछ ऐसा जरूर है कि प्रगतिशील यथार्थवादी काव्यधारा का विश्लेषण करने वाले डा राम विलास शर्मा जैसे प्रगतिशील आलोचकों को भी उन्हें स्वीकार करने मे कठिनाई होती है और अज्ञेय तथा रामस्वरूप चतुर्वेदी जैसे काव्य चिन्तकों को भी जो कविता के सौन्दर्य सगठन के बारे मे सर्वथा भिन्न रुचि के पोषक या पक्षधर है।हस में (जुलाई १९४६) प्रकाशित समीक्षा मे तुक्तिबोध ने जरूर लक्ष्य किया था कि जीवन के विस्तृत दायरे के विभिन्न भागों का काव्यात्मक आकलन करने की क्षमता त्रिलोचन में है। मुक्तिबोध ने यह कहना भी जरूरी समझा कि धरती के कवि की प्रगतिशीलता अट्टाहसपूर्ण आंतरित क्षति पूर्ति के रूप में नहीं आयी है। वरन् कवि के अपने जीवन संघर्ष से मजकर धसकर तैयार हुयी है। बेचैनी और विहृवलता की जगह तटस्थता को कविता का स्वभाव बनाने वाले त्रिलोचन के मूल्यांकन में क्या कठिनाई आ सकती हैं इसका आभास भी मुक्तिबोध को थ। " हिन्दी की उत्तेजना प्रिय रुचि को कदाचित यह अच्छा न लगे, परन्तु जरा ध्यान से पढने पर अभिव्यक्ति के पीछे किसी गहराई का अंदाजा हो जाताहै। " त्रिलोचन की तटस्थता अज्ञेय की तटस्थता से भिन्न चीज है यह बताने की जरूरत नहीं। इस तटस्थता के पीछे जीवन की हलचल भी है जिंसके लिए त्रिलोचन के शब्द है–

भाषा की लहरों में जीवन की हलचल है ध्वनि में क्रिया भरी है और क्रिया मे बल हैं । " – १

शब्द भर नहीं उठाते, अर्थ भी उठाते हैं। इसलिए उनकी कविता लोकभाषा के ही निकट

---

१ – (डा०परमानंद श्रीवास्तव पृष्ठ १०, १० समकालीन कविता का यथार्थ)

नही, लोकनुभव की भी समीपी है। ' अपना ही दर' सानेट (ता केत. हुए दि- पृष्ठ ५१) मे वे लिखते है– मैने शब्दों का महल तैयार कने की जो इच्छा चुनी है, यद्यपि वह ठीक ठीक नही किसी तरह पूरी हुई है, यद्यपि वह ठीक ठीक नही किसी तरह पूरी हुई हैं, यद्यपि वह ठीक ठीक नही किसी तह पूरी हुई है, तथापि सबकी बोली–ठोली, लाग लपेट, टेक, भाषा, मुहावरा, भाव, आचरण, इगित,

इतिहास विश्व क स्वर की धारा, आवारा गृही, इतिहास विश्व का स्वर की धारा, आवारा, गृही, सभ्य असभ्य मनुष्य शहशती और देहाती, सबका अपना घर है उनकी कविता । पण्डित और अपढ, संस्कृत और निपट देहाती प्रकृति और उसकी विकास मान सत्ता सब उनकी कविता के सहयोगी भी है और घटक भी । वे वस्तुत. उस पूर्ण जीवन की कविता लिखना चाहत है जिसका कोई अर्थ इकलौता नही हुआ करता। मनुष्य की सौन्दर्यी सजगता, उसकी विकास प्रियता, परिवर्तनोन्मुखता और सामाजिकता सबको उनकी कविता, अपने दायरे मे लेती है और इस रूप में कोई वाद या सम्प्रदाय नही कर पाता। उनकी कविता उतनी ही खुली व सहज है जितने कि वे स्वय हैं उसकी प्रकार निसर्ग प्रवाहित जिस प्रकार की कवि का जीवन है। वस्तुतः उनकी कविता आज के मनुष्य की वाजिब माप है। चाहे भाव के क्षण हों या विचार के, उनकी वह अपने कथन क स्वाभाविक अंदाज को कहीं भी नहीं छोडती । इसलिए हमारे समय की तीव्र कुंठाएं प्रचण्ड चीत्कार और दंभपूर्ण जोशीले वादनों गर्वोक्तियां और अहम्मन्यताओं की प्रतिध्वनियां त्रिलोचन की कविता में नहीं सुनाई देतीं। त्रिलोचन के पास जो भी अन्य समकालीनो जैसा अगाध पाण्डित्य और प्रभूत सूचनाएं हैं, काव्य और कला के आधुनिक फैशनों और प्रवाहों की विस्तृत जानकारी है, किन्तु वे यहा से भी कुछ भी न ग्रहण करना ही मुनासिब समझते है।

ठेठ कविता से त्रिलोचन का तात्पर्य उस कविता से है जिससे यह सवाल पूछना बहुत आसान नहीं होता कि वह आधुनिक है या अनाधुनिक प्रगतिशील है या प्रतिक्रियावादी। त्रिलोचन आधुनिक जीवन की अनुकरण धर्मिता, कठमुल्लेपन और नयी रूढियों की जहा आलोचना करते हैं, वहीं पारम्परिक जीवन के जीवंत और सक्रिय मूल्यों के प्रति भी अपनी निगाह रखते है।

कवि का काम जीवन के मधुमय गानों का तो सचय करना है ही. साथ ही उनके कडुवे कषैले, तीखे और चरपर अनुभवों को भी शब्दबद्ध करना है जो जीवन को कई दृष्टियो से पूर्णता देते है। अगर 'जगदीश जी का कुत्ता जैसा सानेट समकालीन जीवन के जहर को प्रकट करता है तो 'रोटी' जैसे सांनेट उस पारम्परिक ढोंग और शोषण में हमें उदबुद्ध करते हैं जो घिनौना और अश्लील है। त्रिलोचन के व्यंग्य का तीसरा क्षेत्र साहित्यिक समाज है जो समकालीनों, साथी लेखकों और

कवियो का अपनी परिधि मे समेटकर है। कवि त्रिलोचन खुद भी कही–कही इस व्यग्य की चपेटमे है। औरों की ही नहीं, हंसी मैने अपनी भी खूब उडाई है। पृष्ठ ८६ अनेक व्यग्य न तो परसाई जैसे जितने हिसक और क्रूर है, न नागार्जुन जैसे विडम्बना धर्मी और दांव पेच वाले। त्रिलोचन के व्यग्यझूठे दश, छल–द्वेष घृणा के काले यथार्थ को सामने लाने वाले , अपने समकालीन साहित्यिको की समझ पर भी मीठा बार करने के लिए व्यंग्य का इस्तेमाल करते हैं व्यग्य उनके यहा कूटोक्ति भी है और फब्ती भी। सामाजिक विरपता का तीब्र आलोचना भी और असहमति की मुद्रा भी। उस जनपद का कवि हूं के आाखिरी सानेटों मे त्रिलोचनने साहित्यिक व्यग्यो की रचना की है और उनमे वह स्वयं ही उनके केन्द्र में हैं।

नागार्जुन लोक जीवन के कवि है। जन कवि हैं । उनकी भाषा बोलचाल की भाषा है इससे लोक जीवन की शब्दावली बहुत है। गाव के परिवेश की चीजो के नाम उनकी कविता मे बहुत मिलेगे। कही पेडो के नाम। कही मछलियों के नाम। नागार्जुन को अपनी धरती का मोह बार–बार उमडता है। अपने गांव से बिछुडने की पीडा उन्हे सालती रहती है। उनकी कई कविताओ में इस पीडा और इस मोह को अभिव्यक्ति मिली है। सिन्दूर–तिलकित भाल शीर्षक कविता मे नागार्जुन को अपने स्वजनों की स्नेह भरी आखों याद आंती हैं उनका तरउनी गांव याद आता है। मिथिला का वह भूभाग याद आता है कुमुदिनी है, तालमखान है। 'ऋतुसन्धि' शीर्षक कविता मे कवि को अपने गाव की बरसात याद आती है। वाग्मती की धारा और पोखरों के कुमुद पद्य मखान याद आते है। एक मित्र के पत्र शीर्षक कविता में कवि याद करता है कि वाग्मती कमलाऔर गण्डक कोसी अंचलों मे मकई–महुअ, साम–कावन, धान गम्हडी, आदि की बुवाई हो रही होगी। ' बहुत दिनो के बाद' शीर्षक कविता में कवि लिखता है–

बहुत दिनो के बाद
अब की मैं जी भर छू पाया
अपनी गंवई पगडण्डी की चन्दवणी धूल
बहुत दिनों के बाद

बहुत दिनों के बाद
अब की मैने जी भर तालमखामा खाया
बहुतदिनों के बाद।

धरती को नागार्जुन ने मां कहा है। भारतीय ऋषियों, कवियो चिन्तकों ने बहुत प्राचीन काल से धरती की मां के रूप में देखा है। वह आधार है। वहीं जन्म देती है, वही पालन कती है। नागार्जुन

ने इस धरती को विनाशक वैज्ञानिक अस्त्रो से बचाने की इच्छा व्यक्त की है, युद्धो का विरोध करते हुए वे लिखते हैं–

पौधो या पेडों मे कभी नी फैली हैं छुरिया

कन्द की जड से कभी नही निकला है

विस्फोटक बम

चर कर घास गाय ने दूध के बदले नही दिया हलाहल सोख कर धरती का रस जहर नही बसा कभी भी बादल निछावर हम इस पर–

तुम्हारी नहीं, हमारी है धरती

सुनो है व्रजपाणि युद्धव्यसनी दानव

सुनी है अशोभन अमगल अघायु

तुम्हारा अपावन स्पर्श नही चाहती

अहल्या कल्याणी चिरकुमारी धरती

के प्रति यह पूज्य भाव नागार्जुन की कविता को महान बनाता है। नागार्जुन की कविता की शक्ति भारतीय निम्नमध्य वर्गीय जीवन को पूर्ण सहानुभूति के साथ चित्रित करने मेंहै। नागार्जुन ने राजनीतिक कविताएं भी बहुत लिखे हैं परन्तु ये कविताए उनकी असफल कविताए है। इनकी असफलता का कारण नागार्जुन की राजनीति समझ है। वे समय–समय पर अपनी राजनीतिक विचारधारा बदलते रहे हैं इसलिए उनकी कविताएं तात्कालीन राजनीतिक समझ से लिखी गयी है। इसके उदाहरण में उनकी अब तो बंद करो है देवी यह चुनाव का प्रहसन शीर्षक कविता तथा 'पहल –८' में प्रकाशित कुछ कविताओं को साथ–साथ रखकर पढा जा सकता है। उनकी कुछ और कविताओं का इन्हीं के साथ जोडकर देंखे तो पायेंगे कि उन्होंने कभी छापामार समर्थन किया, कभी सम्पूर्ण क्रांति का और अब 'सम्पूर्ण क्रांति' को ' भ्रान्ति विकास' घोषित करते है। कहना न होगा कि यह शांति नागार्जुन की राजनीतिक भ्रान्ति ही है। नागार्जुन ने जहां कहीं राजनीतिक अत्याचार का तानाशाही का या अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर युद्धों का विरोध किया है वहां तो उनकी कविताए अपना अर्थ रखती हैं लेकिन जहां नागार्जुन अपनी कविता को कुछ राजनीतिक व्यक्तियों से जोड़ देते हैं वहां वे राजनीतिक अवसरवाद से ग्रस्त होकर अपना व्यापक अर्थ खो देती है। नागार्जुन का व्यक्तित्व एक विवादास्पद व्यक्तित्व रहा है। 'प्रतिक्रियावादी' भी और 'अवसरवादी' भी। दरअसल यह अंतर्विरोध नागार्जुन में है भी। वे कालिदास तुलसीदास और विद्यापति के भी प्रेमी है तथा अपने के कम्युनिस्टों से भी जोडते है रोमैण्टिक कविताएं भी लिखी हैं उन्होंने और नारेबाजी वाले राजनीतिक कविताएं

भी। बयान भी बदले है बार–बार उन्होने । लेकिन इस सन्दर्भ में एक बात स्पष्ट रनही चाहिए कि नागार्जुन अपनी कविता में 'दल' के साथ तो नही मगर 'जन' के साथ बराबर बधे रहे है। लोक जीवन और लोकमनको जितनी आत्मीयता से नागार्जुन ने व्यक्त किया है, किसी दूसरे आधुनिक हिन्दी कवि ने नही। कारण सिर्फ यह है कि वे स्वय लोक के विभिन्न स्तरो से गुजरे हुए कवि है। देखा और भोगा है। उन्होने उन स्थितियो को उस समूचे जीवन और भाषा परिवेश को इसलिए उनकीकविता अपने पूरे विन्यास में छंद, लय ?, तुक हर दृष्थि में लोकजीवन की सच्ची कविता है। छद, लय, तुक आदि के क्षेत्र में उन्होने अनेक नये प्रयोग भी किये है। वे भारतीय मिट्टी से जुडे जनता के कवि है। उनके पास भाषा की अद्भुत शक्ति है। व्यंग्य करने मे उनका मुकाबला कम कवि कर सकेगे। भ्रष्ट व्यवस्था, पाखण्ड शोषण, अधविश्वास अदि पर तिलमिलाने वाला व्यंग्य नागार्जुन करते है। व्यग्य की यह शक्ति नागार्जुन में कबीर जैसी ही है। नागार्जुन को जो जीवत भाषा मिली है वह जनता के बीच से ही मिल सकती है। कबीर को भी इसी तरह मिली थी निराला को भी और प्रेमचन्द्र को भी।

शमशेर की कल समस्या यह है कि उनके शब्द यथार्थ और अथथार्थ के किसी एक लोक को समर्पित होने या अभिव्यक्ति देने के बजाय न केवल उनके बीच की खाई को अनुभव करे वरन वह उनके बीच एक पुल बन जाय। एक ऐसा पुल जो लचीला और जीवंत हो। शमशेर जब शब्द के माध्यम का ऐसा उपयोग करते हैं तो शब्दों की विशिष्टता पहचान कर ही। एक रचनाकार इस संसार मे सामान्यजन से हिलने मिलने और जूझने के बाद ही शब्द की ओर पुन· लौटकर एक सार्थक अर्थ प्रदान करता है। जाहिर है यह मेल मिलाप उनकी अनुभूतियो को जन्म देते है। जाहिर है शमशेर के लिए रचना शब्द विलास मात्र या शब्दो की क्रीडा भूमि नहीं ह। वे शब्दों के उस रूपाकार को पहचानते है जिसकी जड़ें कला के भव्य आलीशान शिखरों तक फैली होने के बावजूद अपने समय और लोक के प्रति कही न कही।

'दूसरा सप्तक' में शमशेर बहादुर सिंह के समावेश को डा. नामवर सिह ने अज्ञेय की भूल सुधार कहा है। निश्चय·ही इस टिप्पणी का आधार शमशेर की प्रगतिशील चेतना और सच्चे कलाकार की आत्मा की पहचान कराने वाली उनकी भव्य दृश्य कविताओं की है भावभूमि छायावादोत्तर हिन्दी कविता के इतिहास मे शमशेर लोकात्मक का नाम एक खास वजह से चर्चित रहा है। उनकी कविताओ में अलग–अलग मन. स्थितियां रेखाकित है। वे· एक ओर प्रयोगशील है तो दूसरी अेर प्रगतिशील जहा सौन्दर्य के उपासक हैं वहां यथार्थ के चितेरे कलाकार भी। शमशेर की रचनाओं मे इन्द्रजाली सम्मोहन क्षमता, जीवन की सचाई और सघर्ष की खुरदुरी जमीन अपने पाठकों का ध्यान

आकर्षित किये बिना नहीं रहती। शमशेर जीवन की नीलिमा को शब्दो मे उतार कर उसे उजाले मे परिवर्तित करने की कोशिश करते रहे है। ऐसा वही कर सकता है जिम्मेदार की भावभूमि विस्तृत और सवेदना का दायरा बढा हो।

अक्सर उनकी कविताए आखो के सामने जीती जागती पेटिंग्स के रूप मे साकार होने लगती है। इसलिए शमशेर की कविताओ को आसानी से भव्य दृश्य कविताओं की सज्ञा से अभिहित किया जा सकता है। मजा इस बात का और भी अधिक है कि शमशेर की रचनाओ मे अनायास भव्य दृश्य बन जाता है और दृश्य श्रव्य । हीरे नीलम की विजलियां और हरियाली पानी के स्पष्ट मधुर बोल में डूब जाती है और मेघ का गरजना हरियाली मे। विभिन्न सवेदन मिलकर रचना की सुवेदना मे लय हो जाते हैं, भाषा मे अर्थ उससे अलग नही रह जाता। इसी को कवि ने नाम दिया है– 'राग' । पानी और आसमान वे नये–नये रूप प्रस्तुतकरते है। एक नीला आईना बेठोस कविता चांदनी का वर्णन नही है, वरन उसका विशिष्ट अनुभव है, जिसे कवि ने शब्दब्द्ध किया है। उसी प्रकार 'ऊषा' 'एक पीली शाम' सीग और नाखून 'शिला का खून पीती थी' आदि कविताए दरअसल अपने आप में विम्बो का अवतरण है जिनमें कविता और चित्रकला आपस मे घुलमिल गई हैं,

शमशेर की कविताएं सही मायने मे रूप,रस, गंघ और स्पर्श के शब्दचित्र है। ये शब्द चित्र कभी रोमानी भावबोध और कभी यथार्थबोध को हमारी आंखो के सामने लाकर खडा क देती है। उनकी कतिपय रचनाएं प्रणय जीवन के भाव प्रसंग है तो कुछ कविताएं सूक्ष्म संग्रहो मे बिखरे हुए बिम्बों को एकत्र करना शुरू करे तो निश्चय ही उसका अत नहीं मिलेगा। ' एक दरिया उमडकर पीले गुलाबों को चुनत हे बादलों के झिलमिलाते स्वप्न जैसे कवि गरीब के हृदय रगे हुए मोह मौन गगन लोक में बिछल रही मै खुले आकाश के मस्तिष्क में हू ' ऊषा के जल मे सूर्य का स्तम्भ हिल रहा ' तथा ' खून जला है हवा मे' जैसे अनेकानेक बिम्ब निषेध की प्रक्रिया मे संतुलित है।

" सच पूछिढ तो कविता ही शमशेर का घर था और यह घर उन्होंने स्वंय बनाया था। अपने लिए। बडे जतन से । वेदरौ-दीवार का एक घर । गालिब की तरह। और तभी मुझे शमशेर की वह 'बैल' शीर्षक कविता याद आई: " मैं वह गुदुल काली कूबवाला बैलू हूं। शमशेर और बैल ? औरं बैल भी ऐसा वैसा नहीं। गुदुल काली कूबवाला। हिन्दी में सौदर्योपासकों की कमी नहीं है। उनकी दृष्टि में शमशेर शुद्ध सौन्दर्य के कवि है। उनके सौन्दर्यबोधको कवि की इस छवि से निश्चय ही चोट पहुंचेगी। " कैसा है यह बैल : ठेले पर ऊपर तक लदा हुआ माल खीच कर ले जाते हुए । अकेला। चुपचाप धीरे–धीरे आंखे बाहर को निकली हुई। त्यौरी चढी हुई। कांधे जोर लगाते हुए । राने भरी हुई गर्म पसीने की तरह, मगर जोर लगाती हुई। नथुने फूले हुए। ठेले को लगातार, सारी आंतो और

नसो के तनावो से खीचते हुए। और अत मे, अतत से निरुल कर अदर तक दहला देने वाली आवाज —
' बां . ... बा........ .. . .बां....... ....'

एक आदमी दो पहाडो की कुहनियो से ठेलता' तो बहुतो को नजर आया, लेकिन ठेले लगातार सारी आतो और नसो से खीचता हुआ बैल' कम लोगो की ही दृष्टि की पकड सका। शायद इसीलिए कि यह कोई 'बिब' नहीं बल्कि एक नगा सच है— आंखों से घूमता हुआ। उन्हे यह सुनकर हैरानी होगी कि कविता के जिस नामवर सिह जनसत्ता २३ मई १९९३ परिशिष्ट घर की सदुरता पर वे मुग्ध होते है। उसके पीछे इस बैल का ही श्रम है। काव्य रसिक जिसे 'साधना' कहते हैं, शमशेर की नजर मे वह ठेठ श्रम है बैल का सा श्रम।

इस संदर्भ मे 'जनसत्ता' के २३ मई १९९३ के रविवारी सस्करण में डा नामवर सिंह अपने विचार करते हुए कहते हैं कि और वह घर भी शब्दो का महल नहीं है। उसमें भी इसी धरती का गारा, चूना, ईट–पत्थर वगैरह लगा है। इसी धरती के नाते शमशेर अपने आपको त्रिलोचन के अत्यत निकट पाते है। 'सारनाथ की एक शाम' (त्रिलोचन के लिए) कविता में एक टुकडा है· ' तू धरती के दोनों अेर से। थामे हुए और । आंख मीचे हुए ऐसे ही रूंध रहा है उसे । जाने कब से। तुझे केवल मैं जनता हूं उसकी । ऋतुओं की पलकों सा बिछा हुआ मैं। उसकी ऊष्मा में सुलग रहा हूं। शांति के लिए।

यह धरती किसी की जागीर नही सब के लिए सुलभ है, फिर भी तथ्य यही है कि हर धरती पुत्र कवि इसे नए सिरे से अर्जित करता है। दी हुई धरती से संतोष कर लेने वाले कवि और होगे। शमशेर को उस धरती की तलश है जिसे वे खुद अपनी आख से देख रहे है, अपनी अंगुलियों से छूते हैं अपने नासपुरें से सूंघते है और शायद जिसे उन्होने अपनी जीभ पर रखकर चसा है। उन्हीं दिनों सारनाथ में लिखी यह टीप है पत्तियां बारीक पत्तियां तिरछी। बरखा की बूदो की तरह गिरती हैं हवा के लख के संकत.. ....एक झक प्रकृत की। धीरे–धीरे खुलती चेतना नई ऋतु की। गंध और रज और आकाश और वायु के के लिकलाप। जिनमें चिडियों की गूंज–गुजार जैसे रह–रहकर उभर उड़ती भीड। बच्चों के खेल. जब तक किलकारियां । गये दह सब तमाशा देख रहा है : क्या वह मेरी खिडकी के बाहर का केवल यह समां देख रहा है क्या एक–एक पत्ती पर उसकी आंख गड़ी है? एक–एक पत्ती पर उसकी आख गड़ी है? एक–एक कोंयल पर ? महज इसलिए कि उन पर धूप नाच रही है? क्या हमे अपने एक एक रोम के रोमांचित होने की अनुभूति होती है जब हम रोमांचित होते है।

****

अध्याय - 5 - २४०५ - ५

विचारधारा

साहित्य और उसकी रचना - प्रक्रिया का मानव समाज की इस हार्दिकता और मानसिकता के स्तर यानी जागरूकता (Consciousness) से बहुत गहरा सम्बन्ध है । हार्दिकता के द्वारा उन्नत स्तर द्वारा साहित्य में सम्प्रेषणीयता आती है और मानसिकता का उन्नत स्तर साहित्य को विश्वसनीय बनाने में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है । मार्क्सवादी विचारधारा चुंकि मानवसमाज की हार्दिकता और मानसिकता पर चाहते-न-चाहते अपना प्रभाव डाल रही है, उसे परिवर्तित करती जा रही है। अतः यदि रचनाकार को जन-मानस या मानव समाज की हार्दिकता और मानसिकता से अपना संवाद बनाए रखना है तो उसे भी लगभग उसी अनुपात से अपनी हार्दिकता और मानसिकता को विकसित करना होगा। वरना निरन्तर जागरूक होते हुए मानव-समाज और अपने में सीमित रहने वाले आत्ममुग्ध रचनाकार के बीच संवाद-हीनता की स्थिति उत्पन्न हो जाएगी। हिन्दी की नई कविता के साथ यही हुआ। वह हमारे परिवेश, प्रतिवेश, और परिप्रेक्ष्य से कट कर चंद कवियों और उनके प्रशंसकों तक सीमित हो कर रह गई। क्योंकि अज्ञेय, जगदीश गुप्त, धर्मवीर भारती और श्रीकान्त वर्मा आदि रचनाकारों की हार्दिकता तथा मानसिकता और हमारे जन-मानस की बदलती हुई हार्दिकता और मानसिकता के बीच की खांई चोड़ी होती गई। लेकिन, दूसरी ओर नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल और त्रिलोचन आदि रचनाकारों की कविताए हमारे जन-मानस के साथ सीधे संवाद स्थापित कर पाने में सफल रही हैं। जहाँ तक मुक्तिबोध और शमशेर जैसे कवियों का सवाल है, इनकी रचनाएं भी जन-मानस से सीधे संवाद कर पाने में सक्षम हैं। 'अन्धेरे में' और 'अमन का राग' या 'अंगोला' जैसी कविताएं यदि थोड़ी-सी व्याख्या के साथ जन-मानस को समझादी जाएं तो उसके बाद वे जन-मानस से संवाद कायम कर लेंगी। रामचरितमानस की भी व्याख्या कथावाचक लोग सैकड़ों वर्षों से करते आ रहे हैं तभी जन-मानस और 'रामचरितमानस' के बीच संवाद बना रहा है तो फिर मजदूरों और किसानों तथा अन्य जनों के बीच 'अन्धेरे में' जैसी कवतिओं की भी व्याख्या की जा सकती है। जबकि 'हरिजन गाथा' (नागार्जुन) जैसी कविताएं उस व्याख्या की भी अपेक्षा नहीं रखती। लेकिन अज्ञेय, जगदीश गुप्त या श्रीकांत वर्मा जैसे कवियों की सरल व जटिल रचनाओं को लाख-लाख व्याख्याओं द्वारा भी जन-मानस तक सम्प्रेषित नहीं किया जा सकता। 'असाध्य वीणा' या 'माया दर्पण' जैसी कविताएं प्रयत्न करने के बाद भी जन-मानस से संवाद स्थापित नहीं कर पायेंगी। क्योंकि सवाल यहां भाषाई जटिलता का उतना नहीं होता जितना रचनाकारों की हार्दिकता और मानसिकता के स्तर का होता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि ऐसे रचनाकारों की हार्दिकता और मानसिकता का स्तर जन-साधारण की हार्दिकता और मानसिकता के स्तर की तुलना में काफी पिछड़ापन लिए होता है। कोई भी रचना अपने युग की विकसित विचारधारा को आत्मसात न कर पाने के कारण अथवा उक्त विचारधारा के प्रति नकारात्मक रवैया अपनाने के कारण कलात्मक उत्कर्ष का प्रतिमान नहीं बन पाती, फिर चाहे वह क्षतिपूर्ति के नाम पर वाग्जाल या चमत्कारपूर्ण कलाबाजी का नमूना भले ही हो जाए। प्रेमचन्द, निराला, मुक्तिबोध, नागार्जुन, केदार आदि जैसे कलाकार अपने युग की विकसित विचारधारा के प्रति सकारात्मक रवैया अपनाने

लेकिन इसका यह आशय कदापि नहीं है कि कोई भी रचनाकार मात्र विचारधारा के बलबूते पर अपनी रचना-प्रक्रिया में सफल हो सकता है।

केवल विचारधारात्मक तैयारी के आधार पर कलात्मक रचना खडी नहीं की जा सकती। ऐसे उदाहरण भी हैं कि जहां जीवन सम्बन्ध अनुभवों/आब्जर्वेशनों सतह के छिछली होने के कारण अमुक प्रगतिशील कवि की रचना कमजोर हो गई है हालांकि उस रचनाकार का विचारधारात्मक बोध काफी विकसित और उन्नत रहा था। इसी तरह अभिव्यक्ति कौशल सधा न होने के कारण अमुक प्रगतिशील रचनाकार अच्छी पारदर्शी रचनाएं नही दे पाया है। लेकिन ऐसे उदाहरणों की भी कमी नहीं है जहां जीवन सम्बंधी अनुभवों/आब्जर्वेशनों के मर्मज्ञ और अभिव्यक्ति कौशल के विशेषज्ञ होते हुए भी अनेकानेक रचनाकार श्रेष्ठ साहित्य की रचना करने में निर्णायक रूप से असफल है। शायद इसका कारण यही रहा है कि उनका विचारधारात्मक बोध अपने युग और समाज के विकसित, उन्नत और वैज्ञानिक विचारधारात्मक बोध की तुलना में पिछड़ा हुआ है। अथवा यह भी कि वे अपने युग और समाज की सर्वाधिक विकसित और उन्नत और वैज्ञानिक विचारधारा के प्रति नकारात्मक रूख अपनाते रहे हैं। हमारे युग की सर्वाधिक विकसित, उन्नत और वैज्ञानिक विचारधारा मार्क्सवाद है। इसके प्रति नकारात्मक रवैया अपनाकर मेहनतकश किन्तु पीड़ित और अभावग्रस्त जनता की आकांक्षाओं उनके अनुभवों और स्वप्नों की परिकल्पना करना और उनसे सहानुभूति रख पाना लगभग असम्भव हो जाता है। जबकि साहित्य रचना, चाहे वह किसी भी युग में की गई हो यातनाग्रस्त मानव समुदाय के दुःख दर्दों के प्रति तटस्थ नहीं रह सकती। और वर्तमान युग के साहित्य के लिए गरीबों या पीड़ितों के प्रति महज सहानुभूति रख पाना ही पर्याप्त नहीं है। उसे सामाजिक परिवर्तन या सामाजिक क्रान्ति के लिए एक सांस्कृतिक भूमिका का निर्वाह करना है। यह कार्य वही रचनाकार कर सकता है जिसके पास सामाजिक क्रान्ति लाने वाला विचारधारात्मक बोध हो। आज सवाल जनमानस की हार्दिकता और मानसिकता के साथ केवल संवाद सीपित कर लेने का ही नही है, उसे और आगे तेजी के साथ विकसित और गुणांतरित कर पाने का है। जाहिर है कि यह कार्य बल्कि यू कहें कि यह महाकार्य उन साहित्यकारों के बूते का नहीं है जो विचारधारा मात्र से परहेज करते हुए अपनी कायरता को तटस्थता नामक तथाकथित 'कलात्मक प्रतिमान' के रूप में महिमामंडित करते हैं। यह महाकार्य उन रचनाकारों के बस का भी नहीं है जो पुरानी, दकियानूसी, अविकसित और अवैज्ञानिक विचारधाराओं के हामी है। यह महाकार्य तो केवल वही रचनाकार कर पायेंगे जो अपने जीवन सम्बंधी गहरे और व्यापक अनुभवों/आब्जर्वेशनों को तथा साधना द्वारा अर्जित अभिव्यक्ति कौशल को शोषण-मुक्त वर्गहीन समाज की स्थापना करने वाले विचारधारात्मक बोध द्वारा पुष्ट और अर्थवान बना सकेंगे।

....

शमशेर : वैचारिक सवेदना

शमशेर बहादुर सिह की कविताओं में हम ऐसे एक आधुनिक मानस को देख पाते हैं जो बौद्धिक और रागात्मक अनुभूतियों से संतुष्ट होकर अपने लिये सुरक्षित संसार की सृष्टि नही कर लेता है, बल्कि उसमे विचारशीलता की वह गुनगुनी ऊष्मा है जो राहत देती है .. सकून। कविता के लिए इस बेहद कठिन और चुनौती भरे समय मे उनकी कविता अपने गहरे मानवीय अर्थ में आज हिन्दी की सम्भवत : सबसे ऐन्द्रिक कविता है । पर यह अद्‌भुत पारदर्शी ऐन्द्रिकता किसी तरह के सरलीकरण से नहीं पायी गयी है। २०वी शताब्दी के भयावह वैचारिक टकराव से यह कविता गहरे स्तर पर जुडी है और उसमे वह अपनी पूरी शक्ति के साथ शामिल है । हमारे समय के सच की भयानकता, अमानवीय ता और जटिलता के बीच व स्वयं को रेखांकित करती है और इस कम में हमे बहुत जानी पहचानी वस्तुओं के माध्यम से मानव विरोधीशक्तियों के स्वरूप, उनकी कल्पनाशीलता और साहस का आत्मीय सस्पर्श कराती हैं।

शमशेर की कविता वैचारिक ऊर्जा से संचालित है। यह कविता दुनिया को बनाने का जो सपना देखती है उससे कहीं अधिक सपने की दुनिया बनाने के लिए सकिय रहती है। सकियता और गतिशीलता का यह गुण शमशेर की तमाम कविताओं मे कुछ इस तरह है जैसे दुनिया में हरे पत्ते का होना । यह देखना खासा दिलचस्प है कि शमशेर की कविताए चुपशान्त नहीं बैठती, उनके विचार और शिल्प दोनों में एक अन्तर्निहित बेचैनी और गति है ।

शमशेर मात्र अनुभूति के नहीं, विचार के भी कवि हैं। उनके यहाँ अनुभूति परकता और विचारशीलता, अहसास और समझ, एक दूसरे घुले-मिले हैं और उनकी कविता केवल भावात्मक स्तर पर नहीं बल्कि बौद्धिक स्तर पर भी सकिय होती है। शमशेर की कविता व्यक्तिवादी नहीं, वैयक्तिक काव्यानुभूति में पैदा होती है। तीखी राजनीतिक चेतना और गहरे समय बोध से युक्त इस कविता मे स्वस्थ सामाजिकता के आयाम के लिए किसी नाटकीय मुद्रा की जरूरत नहीं पड़ती । स्पष्ट है वह समाज की पीडा को समझने वाले कवि हैं। पीडा को पहंचानने की कोशिश इस प्रकार करते हैं कि उसी वक्त पीड़ा का सामाजिक अर्थ भी प्रकट हो जाय।

शमशेर दुनिया की विभिन्न संस्कृतियों और भाषाओं के बहुत सजग और संवेदनशील पाठक थे लेकिन उनकी धुर आस्था मार्क्सवादी जीवन-दर्शन में लगातार रही । उन्होंने कम्युनिष्ट पार्टी सदस्य की हैसियत से काम भी किया और अलग भी हुये. लेकिन वह यह भी मानते रहे कि उनकी विश्वदृष्टि का आधार मार्क्सवाद ही रहा था। एक पूरी सामाजिक पक्षधरता उनके यहाँ

बीज रूप मे इसीलिए विद्यमान है। इसीलिए वह पृथ्वी के लिए चिन्तित रहने वाले कवि है। इस पृथ्वी पर रहने वाले मनुष्य के लिए चिन्तित होते हैं। इसीलिए चिन्तायें उन्हे विकल बनाती हैं। इस विकलता में वे कही बहुत अकेले रह जाते हैं। क्योकि दरअसल यह दुनिया तो व्यवहारिक लोगो द्वारा बसायी गयी दुनिया है। उनके छल हृदय से दूर शमशेर का यह अकेलापन–

"मेरी दुनिया सहज ही इनसे दूर पार कही दूर हो गयी है।

वहॉ अभी बस्तियॉ नहीं बसायी गयी।

वहॉ झुलसा देने वाला दिव्य प्रकाश अभी नही उजाला गया,

और लोग वहॉ वर्णो के वर्णो के प्रवर्णो में,

सवर्णित घूर्णित नही हुये अभी–अभी नही हुये।

ऐसी स्थिति में अगर शमशेर जैसा इस धरती और इसको बनाने–और सवारने वाले तमाम मेहनतकश लोगों से बेइंतिहा प्यार करने वाला संवेदनशील कवि खुद पूजीवादी समाज व्यवस्था मे एकदम अकेला महसूस करे तो कोई आश्चर्य नहीं हैं। उनका अकेलापन "अटामिक विस्फोटक' के खतरो से झूलती हुई पृथ्वी पर एक अर्धसामंती और पूंजीवादी समाज का पूर्ण निषेध करने वाले लेकिन फिर भी उसी समाज व्यवस्था के भीतर जाने पर विवश कलाकार का अकेलापन है। शमशेर और उनकी पृथ्वी दोनों ही इस अर्थ में अकेलेपन के शिकार हैं। 'हमारी जमीन' शीर्षक कविता में वे कहते हैं ....उफ : कितने असहाय और अकेले.......मैं और मेरी जमीन, इस विश्व मे।" इस जमीन के किसी 'अटामिक विस्फोटक' से नष्ट हो जाने की कल्पना मात्र से वे दहल जाते हैं और इस आशंका से सिहर कर सोंचते हैं–

'मैं तो खैर ......

मेरी जमीन भी किया

एक दिन

एक दिन.... .

खैर ।

इस कविता में यह "खैर" बहुत महत्वपूर्ण है। यह एक शब्द मात्र नहीं है। यह शमशेर के समूचे आस्था और विश्वास का प्रतीक है। यह "खैर" उनके जीवन दर्शन से प्राप्त उनका सबसे बडा संबल है, ऐसा मानने का आधार कि दुनिया को नष्ट करने के तमाम प्रयासों के बावजूद यह दुनिया अपने लोगों और मासूम प्यारे–प्यारे बच्चों के साथ सदा कायम रहेगी। और इस जमीन की गति का हर चक्कर इतिहास के सुदीर्घ पथ पर उसे थोड़ा आगे, कुछ और बेहतरी की तरफ ले जायेगा।" –१

१ – (श्याम कश्यप आलोचना–जनवरी मार्च अप्रैल जून पृष्ठ ५६,८१/४३)

इसलिए जब शमशेर कहते हैं मैंने हमेशा जीवन के शुद्धतर मूल्यो को ही अपनाया, दुनियावी मूल्यो को नहीं तो वह उस प्रतिबद्धता के प्रति प्रतिश्रुत होते हैं। इसीलिए शमशेर बावजूद अपनी आशंकाओ और अकेलेपन की असहाय भावनाओं के कभी पूरी तरह से निराश और पस्त नही होते। इसी कविता की अंतिम पक्तियो मे वे कहते हैं कि 'जो नियम है वह नियम है। जो नियम है यह है।' ''ऐसे अटूट विश्वास और अटल आस्था वाले लोगो को ही तथाकथित 'समझदार' और अवसरवादी 'दुनियादार' लोग जुनूनी या 'मूरख' कहते हैं। ऐसे 'मूरख' लोग ही अपनी धरती और उसके लोगों तथा जीवन के समूचे सौन्दर्य से अथाह प्रेम करते हैं और ऐसे मानव–मूल्यो के उत्कट प्रेमी ही उनकी रक्षा के लिए जुझारू सघर्ष भी करते हैं।'' – १ और अवसरवादी 'दुनियादार' लोग जुनूनी या 'मूरख' कहते हैं। ऐसे 'मूरख' लोग ही अपनी धरती और उसके लोगो तथा जीवन के समूचे सौंदर्य से अथाह प्रेम करते हैं और ऐसे मानव मूल्यों के उत्कट प्रेमी ही उनकी रक्षा के लिए जुझारू संघर्षभी करते हैं।'' – २

शमशेर अपनी कविता के यथार्थ में जिस छवि के साथ आते हैं उसमे हम अपनापा पाते हैं– अपने दुख का तलबगार, अपना हित चिंतक, अपना अग्रज, अपना कोई बहुत गहरा नजदीकी। शमशेर इस नजदीकी को हम पर लुटाते है, कुर्बान करते हैं। अपनी सारी संवेदनाओं के साथ हमारी आत्मा में रचते–बसते हैं–

''जो है
उसे ही क्यों न संजोया?
उसी के क्यों न होना
जो कि है।''

शमशेर की कविताये विरल कविताएं हैं ऐसा नहीं कि अपने निर्माण मे यह खुरदुरे स्थापत्य के कारण विरल हैं यह सारी निर्मितियॉ सुगठित नहीं, यह विरल इसलिए हैं क्योकि इनमे कविता की बारीक, सूक्ष्म अर्थछवियॉ होती हैं – मनुष्य के गड्ड–मड्ड दुखों की तरह है–इसलिए वे मनुष्य के दुखवाद को प्रवर करने वाली कवितायें हैं। जो गहरी व्यंजना गहन चिन्तनात्मकता से संयुक्त हैं इस स्तर पर वे बिल्कुल अकेले कवि हैं हिन्दी में जिनकी कविता का एक भी शब्द फिजूल नहीं होता और कविता की पंक्तियॉ अन्विती मे होते हुये भी अर्थो के बहुकोणीय विधान को खोलती हैं। इसमें मेरा यह आशय है कि शमशेर कविता कहीं–कहीं रुक सी जाती है इस

१ – (वही–शमशेर की कविता–श्याम कश्यप–आलोचना जनवरी मार्च–अप्रैल जून ८१/५६)

२ – (वही–शमशेर की कविता–श्याम कश्यप आलोचना जनवरी मार्च–अप्रैल–जून ८१/५६)

स्थगन को समझना जटिल होता है और इसके अर्थस्तर तक जाना दुश्वार। यह कविता मे ऐसे जरूरी पक्ष का प्रमाण है जिसे कविता की आलोचना की भाषा शमशेर अपनी कविता के यथार्थ मे जिस छवि के साथ आते हैं उसमे हम अपनापा पाते हैं– अपने दुख का तलबगार, अपना हित चितक, अपना अग्रज, अपना कोई बहुत गहरा नजदीकी। शमशेर इस नजदीकी को हम पर लुटाते है, कुर्बान करते हैं। अपनी सारी सवेदनाओं के साथ हमारी आत्मा में रचते–बसते हैं–

' ''जो है

उसे ही क्यों न संजोया?

उसी के क्यो न होना

जो कि है।''

'शमशेर की कवितायें विरल कविताए हैं ऐसा नहीं कि अपने निर्माण में यह खुरदुरे स्थापत्य के कारण विरल हैं यह सारी निर्मितियॉ सुगठित नहीं, यह विरल इसलिए हैं क्योकि इनमें कविता की बारीक, सूक्ष्म अर्थछवियॉ होती हैं – मनुष्य के गड्ड–मड्ड दुखों की तरह है–इसलिए वे मनुष्य के दुखवाद को प्रवर करने वाली कवितायें हैं। जो गहरी व्यंजना गहन चिन्तनात्मकता से संयुक्त हैं इस स्तर पर वे बिल्कुल अकेले कवि हैं हिन्दी में जिनकी कविता का एक भी शब्द फिजूल नहीं होता और कविता की पंक्तियॉ अन्वित म ों होते हुये भी अर्थो के बहुकोणीय विधान को खोलती हैं। इसमें मेरा यह आशय है कि शमशेर कविता कहीं–कहीं रुक सी जाती है इस इस स्थगन को समझना जटिल होता है और इसके अर्थस्तर तक जाना दुश्वार। यह कविता में ऐसे जरूरी पक्ष का प्रमाण है जिसे कविता की आलोचना की भाषामें 'अनिवार्य काठिन्य' कहा जाता है। यह शमशेर की सर्जना और उनके तनाव के तीब्रता के कारण होता है। " – १

'हवा से एकदम पतली–

कि आर–पार देख लो–किन्तु

इस्पाती दिवार,'

यह कविता के स्थापत्य का बिल्कुल अछूता रूप है, एकदम नया–जिसमें तराशी हुयी नक्काशी नहीं है फिर भी जहाँ अर्थ की सम्भावनायें हिलोर मारती रहती हैं। इसीलिए शमशेर हिन्दी ही नहीं समूची भारती कविता के कृती कवियों में हैं। क्योंकि उनके यहाँ कविता जीवन के अनुभवों से–साधी गयी हैं। नामवर सिंह ने ठीक ही लिखा है–''यह कोई चिर परिचित गीत नहीं । गद्य है। बोलचाल की गद्य का लय। रुक–रुक कर बढ़ता हुआ बिलम्बित विपर्यस्त। फिर भी कविता।'' और

---

१ – (ज्योतिष जोशी–शमशेर की कविता का यथार्थ–पल–प्रतिपल जुलाई, दिसम्बर–६३)

यही शमशेर को समझने की शुरूआत है।शमशेर की कविता की कई रगते हैं और उन रगतो मे गहरी पर्तो के बीच कवि का हूकार–टंकार है और उसकी निजी वेदनाओ का मार्मिक प्रसार भी। कवि का यथार्थ जीवन का यथार्थ है, समाज का, परिवार का,देश का, तथा मनुष्यता का यथार्थ है। कुछ प्रेम, कुछ पीडा, कुछ गीत, कुछ गान, कुछ खीज, कुछ आक्रोश और सबमे शमशेर लिप्त, ऐसे कि जैसे जिया हो हर पल, हर क्षण को कवि ने –

"लौट आ ओ धार

टूट मत ओ साँझ के पत्थर

हृदय पर।"

इस तरह जीते हुये वे बेचैन रहते हैं सत्य को प्राप्त करने के लिए। शायद निजी उपलब्धि में शमशेर की आत्मीय खोज एक विराट सत्य का साक्षात्कार ही है। शमशेर के लिए सत्य यथार्थ सापेक्ष है, व्यक्ति आपेक्ष और गतिशील हैं। इसलिए वे इस जटिल जीवन में चोट पहुंचाने वाले सत्यों या हाथो से परिचित हैं। अपनी कृश म्लान देह से, और बाबू लोगो के घुटते हृदय भावो से और निठल्ले युवक की स्फूर्त–मन–ललक से भी ये परिचित हैं। आज की आर्थिक वास्तविकता का दाव भी वे झेल रहे हैं। इसके बावजूद भी वे आत्मनिष्ठ हैं। एक सुन्दर मौन को उपलब्ध कर, उसे हृदय में भरकर गाते हैं और सरसता का उनका आकाश उनकी खिडकी से कटकर, जिन रूपो मे रचता है, व उन रूपों को प्यार करते हैं। वे अपनी सांसो को गाते हैं, लेकिन इन सांसो की रक्षा कैसे होती आयी है, इसका उत्तर सिवाय खुद से उदासीन रहने के,और उनके पास नही है उनमें कहीं छिपा हुआ बहता पानी बोल रहा है, अपने स्पष्ट, मधुर प्रवाहित बोल।

वही बोल उनकी कविता हैं । अपने सारे आघातों के विरूद्ध अपना कठोर हृदय उन्होंने फंसा दिया है। और उस कठिन हृदय में अनगिन सूराख हैं। फिर भी वे गाते हैं:–जहाँ में अब तो कितने रोज, अपना जीना होना है: तुम्हारी चोटें होती हैं– हमारा सीना होता है।" – १

शमशेर के लिए 'सत्य' क्या है इस कवि ने बहुत ही सीधे, पर अर्थगर्भित रूप मे अपनी प्रसिद्ध कविता 'बात बोलेगी' में सत्य के बारे में एक जैविक दृष्टि का परिचय प्राप्त होता है–

सत्य का रुख

समय का रुख है

अभय जनता को

सत्य ही सुख है

---

१ – (अभिन्न विष्णु चन्द्र शर्मा पेज १४३–१४४)

सत्य ही सुख है।

यहाँ पर सत्य 'समय' सापेक्ष है और उसका सम्बन्ध 'जनता' से है। यहाँ पर सत्य यथार्थ सापेक्ष भी है और जन–सापेक्ष। यदि गहराई से देखा जाय तो कवि यहाँ जनवादी चेतना को एक आयाम देता है। जो नितान्त उसकी निजी दृष्टि है। यही कारण है कि शमशेर के लिए 'सत्य' जनतात्रिक मूल्यो से प्राप्त होने वाला तत्व है वह एक खोज की 'प्रक्रिया' है और अपने को गतिशील करने का प्रत्यय– १

अभी सत्य की खोज बाकी ही थी

X X X X

वह इतिहास की अनुभूतियाँ हैं

मैंने सोवयत यूसुफ के सीने पर कान रखकर सुना।

'अमन का राग' कविता 'सत्य' के एक ऐसे रूप को सामने रखती है जो सृजन प्रक्रिया का भी एक अंग है जिसमें सभी प्रभाव प्रेरणा के स्रोत बन जाते हैं 'सत्य' देशीय न होकर एक सर्ववादी 'दृष्टि' का परिचायक हो जाता है।

शमशेर की कविताओं में प्रगतिशील चेतना क्रातिशील चेतना है जो गांधीवाद की प्रगति चेतना से अलग–थलग है। उनकी अनेक कविताये वामपथ, मार्क्सवाद, जनवाद तथा मजदूर क्रांति से संबधित हैं जिसे 'हासिए' पर कहकर टाला नहीं जा सकता है। विजयदेव नारायण शाही ने शमशेर के इस काव्य पक्ष के कविता के 'हासिए' पर माना है जो एक प्रकार से उनकी काव्यानुभूति के बाहर की वस्तु है। वस्तुतः शमशेर के लिए कोई भी विचार–दर्शन (चाहे वह प्रगतिवाद हो या साम्यवाद) मात्र वह नहीं है जो वह मूलतः है। पर तथ्य तो यह है कि जो कुछ भी उनकी सर्जना में है, वह उनकी आवश्यकता है; उनकी काव्य–दृष्टि का अभिन्न अंग है इस दृष्टि से कोई भी विचार–दर्शन उनके लिए अभिनय नहीं है, उनकी अनुभूति पर आरोपित नहीं है पर वह उनके लिए एक वास्तविकता है– उनकी संवेदनात्मक ऊर्जा का स्रोत है। इस संदर्भ में शमशेर की यह युक्ति विचार योग्य है–"जहां तक वह (प्रगतिवाद) मेरी निजी उपलब्धि है, वहीं तक मैं उन्हें, दूसरों के लिए भी मूल्यवान समझता हूँ।" शमशेर का मार्क्सवाद आरम्भ से ही इस 'जहा तक, वही तक' की सीमा में आबद्ध रहा है, वह कभी भी उन पर हावी नहीं हुआ है। यह सब इतना प्रच्छन्न और बारीक है कि उनकी व्यक्ति प्रधान कवितायें (क्रांतिकारियों पर) भी इससे अछूती नहीं हैं। शमशेर की काव्य–यात्रा

---

१ – अभिन्न विष्णु चन्द्र शर्मा पृ०–१४३–१४४

(दूसरे सप्तक से 'बात बोलेगी' सग्रह १९८१ तक) को यदि गहराई से देखा जाय तो प्रगतिवादी चेतना का क्रमिक विकास उनकी कविताओ मे प्राप्त होगा और 'बात बोलेगी' की अधिकाश कविताये (जिनमे से कुछ कविताये उनके पूर्व प्रकाशित सग्रहो मे भी मिलती हैं) इसी 'चेतना' से अनुप्रेरित है।

प्रगतिशील चेतना के संदर्भ में एक महत्वपूर्ण बात की ओर ध्यान आकर्षित करना आवश्यक है। कुछ आलोचको का मत है कि शमशेर के रचना–संसार मे द्वद्व और सघर्ष का स्वरूप प्राप्त नही होता है जो हमें आज की कविता में दृष्टव्य होता है। यह बात पूर्णरूप से सत्य नहीं है। 'बात बोलेगी' की कुछ कविताओ में तथा अन्य संग्रहों की कुछ कविताओ मे 'सघर्ष का' यथार्थ रूप प्राप्त होता है, पर वह वाह्य मात्र न होकर संवेदना और आंतरिकता के धरातल पर अधिक व्यजित हुआ है। भाषिक स्तर पर उनकी शैली आक्रामक मुद्रा की नहीं है और यही कारण है कि सघर्ष, द्वद्व और टकराव की जो भी स्थितियां उनके काव्य में प्राप्त होती हैं, वे परोक्ष हैं व्यंजनात्मक हैं और आतरिक संवेदना के धरातल पर ही अधिक गतिशील हैं इसका प्रमाण उनकी वे पंक्तियां हैं जो सघर्ष और विरोध की मनोदशा को एक व्यंजनात्मक रूप प्रदान करती है –

शरीर लडे जा रहा है, लडे जा रहा है।

हृदय होम हो रहा है

धरती के मनुष्य सा......

निरन्तर निरन्तर ॥

कवि इस होम होने की प्रक्रिया को अर्थवत्ता उस समय देता है जब इसके द्वारा चतुर्दिक उजाला का विस्तार होता है –

वह नींद

जो मीठी सुबह का

उजाला लाए।

चतुर्दिक

समानरूप

उजाला

'बात बोलेगी' की अनेक कविताओं में यह संघर्ष, विद्रोह और क्रान्ति की अनेक व्यजनात्मक भंगिमाएं प्राप्त होती हैं जो जनवादी चेतना को एक ऐसा स्वरूप प्रदान करती हैं जो कवि की रचनात्मकता का एक स्वतंत्र आयाम है। जिसका हल्का आरम्भ पूर्ववर्ती संग्रहों में यदा–कदा प्राप्त होता है। 'कुछ और कविताएं' संग्रह में 'वाम' कविता और कुछ अन्य कविताए जहों एक ओर उन्हे

वामपन्त या साम्यवाद से जोडती हैं, वही वे कविताएं वामपन्ती या साम्यवादी मात्र नही हैं, पर वे उनकी रचनात्मक ऊर्जा की अग हैं। यह वाम के प्रति उनका आग्रह एकागी नहीं है क्योकि जनवादी या प्रगतिवादी चेतना के विकास मे यह कविता उन्हें एक ऐसी दृष्टि देती है जो 'बात बोलेगी' की जनवादी, क्रान्तिवादी और प्रगतिवादी कविताओ मे 'भारतीय सदर्भ' को उजागर करती है। 'पथ प्रदर्शिका मसाल' और 'मुक्ति का धनजय' जैसे शब्दों के द्वारा कवि वाम–दर्शन को 'कामकर की मुट्ठी' मे केन्द्रित मानता है, और उसे पक्षवादी भी कहता है यह पूरी कविता कवि के सामने वाली रूझान को सांकेतिक रूप से रखती है और साथ ही, एक 'रचना–दृष्टि' को भी सामने रखती है वास्तव मे यह रचना दृष्टि (जो प्रगतिवादी चेतना से युक्त है)

वस्तुपरकता का मर्म है क्योकि शमशेर वस्तुपरकता के मर्म को अभ्यांतरीकृत कर उसे एक नया संदर्भ देते हैं। 'हमारे दिल सुलगते हैं' नामक कविता में जो अलजीरियायी वीरों को समर्पित है, उसमे कवि की यह पंक्ति "जब भूख लगती है हमे, तब इंकलाब आता है" और जब हमारे नेता हमे भूल जाते हैं, और जमाना उन्हें भूल जाता है तब इंकलाब आता है उनके दौर को गुम करने'–जैसी पंक्तियों के द्वारा कवि की 'रचनात्मक दृष्टि' का परिचय प्राप्त होता है।

इस संदर्भ में एक महत्वपूर्ण कविता 'कला'की ओर संकेत आवश्यक है जो कवि की रचना दृष्टि की और साथ ही सघर्ष, संगीत और समाज के सापेक्ष सम्बन्ध को सांकेतिक रूप से व्यजित करती है। कला, मानव की आत्मा का एक बडा संघर्ष और प्रेम की विशालता उस सघर्ष को नये अर्थ सन्दर्भों मे रूपान्तरित करती है। ये नये अर्थ सौन्दर्य आत्मा के संघर्ष से ही जन्म लेते हैं–

कला सबसे बडा संघर्ष बन जाती है–

मनुष्य की आत्मा का

प्रेम का कम्बल कितना विशाल हो जाता है

आकाश जितना

और केवल उसी के दूसरे अर्थ सौन्दर्य हो जाते हैं

मनुष्य की आत्मा में।

सायस एक धडकन हो जाती है ज्ञान स्वरूप,

और मनुष्य का समाज एक हो जाता है

संगीत से। " – १

" यदि गहराई से देखा जाय तो कवि की ये पक्तियाँ सामाजिक सत्य को संगीत (राग तत्व) से

१ – (इतनें पास अपनें पृ० ४४ – ४५)

जोडकर, एक प्रकार से राग तत्व और ज्ञान तत्व को समाज सापेक्ष बनाकर एक सूक्ष्म प्रगति चेतना की ओर इशारा करती है। यही कारण है कि शमशेर को मात्र किसी 'कठघरे' मे बाधा नहीं जा सकता है। मेरे विचार से 'प्रगतिशील चेतना' कठघरे की चेतना नही है, वह पूरे युग के विचार–दर्शन का, युग के सघर्ष का और युग के राग तत्व का एक ऐसा 'घोल'है जो रचनात्मक दृष्टि का 'एक आवश्यक एव अभिन्न अग माना जा सकता है। ''–१

कवि की प्रगतिशील संवेदना का स्वरूप एक व्यापक परिप्रेक्ष्य को प्रस्तुत करता है। वह जनवादी विचार एव कर्म से इतना ओत–प्रोत है कि अनेक कविताओं मे जन,मजदूर और क्रान्तिकारियों के प्रति उनके उद्‌गार केवल उद्‌गार मात्र नहीं हैं, पर उनके पीछे उनकी 'रचनात्मक दृष्टि' और 'विचार दृष्टि' का एक संयोजन एवं समन्वय प्राप्त होता है। आज का कवि उसी समय सही अर्थ में जनवादी या प्रगतिवादी चेतना से युक्त होगा जब वह 'बुर्जुवा' भावो को काट सकेगा–

काट बुर्जुवा भावों की गुमठी को–
गाओ!
अति उन्मुक्त नवीन प्राण स्वर कठिन हठी ।
कवि हे, उनमें अपना हृदय मिलाओ।

इस प्रगतिवादी चेतना को गतिशील करने में जहाँ एक ओर बुर्जुवा मनोभावो से मुक्ति आवश्यक है, वहीं दूसरी ओर फासिस्ट से लोहा लेना आवश्यक है। कवि शमशेर की पंक्तियाँ है–

''जब जन–जन का सागर
दहाड़ कर उठेगा
करता विचूर्ण फासिस्ट हाड़ !''

यह फासिस्ट 'हाड' एक ऐसी शक्ति है जो सदैव से जनवादी आन्दोलनों और क्रान्तियों के मार्ग में बाधाएं उपस्थित करती रही हैं, पर जनवादी शक्तियों ने इतिहास के पृष्ठों पर सदैव से इसका किसी न किसी रूप में सामना किया है। शहीदों और क्रान्तिकारियों के बलिदान इस जन–चेतना को आंदोलित ही नहीं करते हैं, पर 'जूझने की शक्ति भी प्रदान करते हैं। ऐसी अनेक कवितायें इस संग्रह में प्राप्त होती हैं। उदाहरण के तौर पर कामरेड रूद्रदत्त भारद्वाज और शहीद 'नागेन्द्र' सकलानी' की सहादत पर लिखी उनकी कविताएं जनवादी कांति–चेतना को स्वर देती है।
'रूद्रदत्त या नागेन्द्र' तो केवल माध्यम है, पर ये माध्यम कांति और बलिदान के स्रोत है जिस पर संघर्ष और क्रांति का भवन निर्मित होता है।

---

१ – बिंबो से झाकता कवि शमशेर–बीरेन्द्र सिंह–पृ० ६३ ।

एक उदाहरण प्रस्तुत है–

देखता है मौन अक्षयवट

क्राति का एक वृहद् कुभ।

चमकती असिधार–सी है, धार गंगा की

हरहराकर उठ रहा

नव

जनमहासागर। – १

भारतीय राष्ट्रीय संघर्ष में इन अनाम बलिदानों की एक अपनी कहानी है जिसे कवि बार–बार याद करता है क्योंकि यह हमारे स्वतंत्रता संग्राम की एक बहुत बडी विडम्बना है कि इन क्रांतिकारियों के देय को हम उस दृष्टि से नहीं मूल्यांकित कर रहे हैं, जिस दृष्टि से हम अहिंसक काग्रेसी देय को जो 'नेता' के नाम से पुकारे जा रहे हैं। असल में 'नेता' के नाम पुकारे जा रहे हैं । असल में 'नेता' शब्द का अवमूल्यन हमारे राष्ट्रीय सघर्ष का फल भी कहा जा सकता है।

यह कहानी

जो अजब इतिहास है संघर्ष का अपने

ओ नौजवान ।

तू वहीं कुछ है। –२

कवि के अनुसार यह 'नौजवान' मार्क्सवादी और साम्यवादी युग का एक ऐसा 'तारा' है जो 'भविष्यत् लोक युग' का एक 'सजीव' सपना' है। कवि की इस प्रकार की कविताएं स्वतत्रता–प्राप्ति के बाद उन शहीदों और नौजवानों को सबोधित है जो जनवादी या प्रगतिवादी चेतना के अभिन्न अंग है। शमशेर की जनवादी चेतना का एक अन्य पक्ष उनकी उन कविताओं में प्राप्त होता है जो सज्जाद जहीर और काजी नजरूल इस्लाम के प्रति लिखी गयी है। इन दोनों कविताओं का अपना विशेष महत्व है क्योंकि इनके द्वारा कवि जन–चेतना (अतर्राष्ट्रीय (तीसरी दुनिया भी) धरातल पर) की एक व्यापक तस्वीर पेश करता है कवि का एक अंतर्राष्ट्रीय रूप लें–

अलग अलग भाषाओं के एशियाई–

अफ्रीकी शायरों के

दूर और पास

---

१ – बात बोलेगी – पृ० ११

२ – बात बोलेगी – पृ० ६६

बिखरे हुए हलके. ... .

जैसे इन्कलाबियो की

देश देश, की

नई पुरानी

भाषाएं

गलबहिया सी डाले

बढती चली जाएं. ..– १

इसी चेतना को जो नया अर्थ और सदर्भ कवि ने दिया है, वह एक प्रकार से 'हमारा नया सम्मिलित अहं' ही है जो जनवादी चेतना का एक ऐसा फलक है जो 'अह' और समष्टि' का एकीकृत रूप है। यदि गहराई से देखा जाए तो जिसे हम प्रगति या जनवादी चेतना कहते हैं, वह इसी 'सम्मिलित अहं' की एक 'इकाई' है जिसकी अन्तदृष्टि मार्क्सवाद, साम्यवाद और वाम पच के मंथन से ही प्राप्त हो सकी है। इस सदर्भ से एक और महत्वपूर्ण कविता का सकेत आवश्यक है जो कवि की प्रगतिशील एवं विद्रोही–चेतना को परोक्ष रूप से प्रस्तुत करती है। यह कविता नजरूल इस्लाम के निधन पर लिखी गयी थी जिसका शीर्षक 'अकाशे दामामा बाजे' है जो नजरूल इस्लाम की एक विद्रोही एवं क्रातिदर्शी चेतना स संबंधित काव्य पंक्ति। यह पूरी कविता एकप्रकार से एशिया और तीसरी दुनिया के विद्रोह को रचनात्मक स्तर पर रेखांकित करती है, तो दूसरी ओर नजरूल के देय को अर्थवत्ता प्रदान करती है। कविता का आरंभ नजरूल के उस रूप को प्रकट करता है जो तीन देशो (बंगला देश भारत और पाकिस्तान) की मानसिक एवं सांस्कृतिक एकता का प्रतीक है–

तीन देशों की विप्लवी

एकता में

कहीं चित्त बसाएं

..........हमारे लिये तीन

जो तुम्हारे लिये एक

नजरूल की कविता एक उद्देशीय नही है, वह अन्तर्देशीय है क्योंकि उसमे 'कास्मिक विरोध' की प्राण शक्ति है–

जाने क्या अवलोकन करते

कौन सी–कविता लिखते,

---

१ – बात बोलेगी – पृ० १०५

किस नए कास्मिक विद्रोह और

निर्माण की।

यह विद्रोह और क्रांति की चेतना तीसरी दुनिया को भी जगा चुकी है। अफ्रीका, चीन, वियतनाम और अरब दनिया की जागृत चेतना मानव इतिहास मे व्याप्त हो चुकी है और 'हम अपनी सांस मे इन सबको जीते है' और,उनसे प्रेरणा ग्रहण करते हैं। कवि को लगता है कि अपने ''सुदूर, विद्रोही अवचेतन मे, कौन से महाकाब्य की मूक रचना करते रहे, नजरूल'' जैसी पंक्तियो के द्वारा 'धरती की चेतना' को उर्वर बनाने का आवाहन कवि की आंतरिक आकाक्षा है। इस विद्रोही और

क्रान्तिदर्शी चेतना को कवि ने पूरी कविता मे अन्तर्भूत कर दिया है और 'सूर्ख गुलाब' के विम्ब के द्वारा उसकी गतिशीलता को इस प्रकार प्रस्तुत किया है–

देशो देशो के

अक्षांशो को

अपनी सुगंध से मस्त बनाए हुए

सुर्ख गुलाबों के शिशु–मुख

उल्लास से तमतमाए हुए

ऊर्जाओं की

हारमनी से संगीतमय

मानों

अपने नृत्य–दोल से

प्यारी मासूम

धरती को

उद्वेलित किए हुए

दूर तक गुलाबो का

एक ओर छोरहीन दरिया।

यदि गहराई से देखा जाय तो सुर्ख गुलाब का छोरहीन दरिया क्रांति–चेतना की अन्तर्भूत धारा की गतिशीलता को व्यंजित करता है जो इतिहास की द्वन्द्वात्मकता में साकार होता है। शमशेर ने इतिहास की इसी गत्यात्मकता को पकड़ने का प्रयत्न अपनी इस लम्बी और अर्थपूर्ण कविता में किया

है। इस लम्बी और अर्थपूर्ण कविता में किया है। इस गतिशीलता मे नजरूल एक प्रतीक है और उसकी बात जहॉ से भी शुरू होगी, वह 'शोनार' और 'शोणित' से शुरू होगी जो 'प्राणो का अमर विद्रोही' और विश्वशाति का अमर समायोजक का प्रतिरूप है। हमारी सास और उसकी सांस एक निरन्तर और नित्य प्रक्रिया है क्योकि–

उसकी सास

हमारी सास मे

इतिहास बनती हुयी

चल रही है।

वस्तुत. "शमशेर के कवि के लिए वस्तु सत्य की अर्थपूर्णता तभी सिद्ध हुयी मानते हैं, जब वह उसकी अपने अंदर की सज्ञा या चेतना की पकड मे पाकर निजी सवेदना का अग बने सके। मुक्तिोध के शब्दों मेइसी को वाह्य का आभ्यंतरीकरण' कह सकते हैं। शमशेर का प्रगतिवाद मात्र इतने से संतुष्ट शब्दो मेंइसी को वाह्य का आभ्यंतरीकरण' कह सकते हैं। शमशेर का प्रगतिवाद मात्र इतने से संतुष्ट नही है ताकि यथार्थ के नाम पर वस्तु सत्य को अभिव्यक्त भर कर दिया जाये। ऐसा प्रगतिवाद तो एक सामान्य ढांचा मात्र बनकर रह जाता है। जिसमे कविता ढाली तो जा सकती है लेकिन रची नहीं जा सकती। एक सच्ची कविता रची जाती है तब, जब इधर – उधर तैर रहे अनुभवकण छवि की अनुभूति में थिराते हैं, स्थिर होते हैं, इस स्थिरता की गति के विरोध में रखकर देखने के अभ्यस्त चितको को शमशेर के प्रगतिवाद में किसी किस्म का विरोधाभास नजर आये तो आता रहे।"–१

---

१. डा० राजेन्द्र कुमार–शमशेर बनाम प्रगतिवाद 'कल के लिए' – मार्च १९९४ – पृ०–४०

****

अध्याय - ५ - २००३ - ०४

नागार्जुन की वैचारिक संवेदना

हिन्दी के आधुनिक कवियों में नागार्जुन ने ही कदाचित् सबसे ज्यादा राजनीतिक कविताएँ लिखी हैं— ऐसी राजनीतिक कविताएँ जो अपने समय के जनान्दोलनों का अनुसरण करती है। मार्क्सवादी विचारधारा से अनुप्राणित इस कवि की काव्य—चेतना राजनीति के आंचलिक स्वरूप को जिस सफाई से आत्मसात करती है, उसी सफ़ाई से उसके विश्व—परिदृश्य को भी समझा जाता है कि एक कवि के लिए वास्तविक राजनीतिक कविता लिखना क्रान्तिकारी जीवन जीने से ज्यादा कठिन कर्म है। नागार्जुन को हिन्दी का सबसे बड़ा राजनीतिक कवि माना जाता है तो इसलिए कि वे कवि के साथ—साथ एक समझदार राजनीतिज्ञ भी हैं। उन्होंने पहले के कवियों के जीवनानुभवों से लाभ उठाया है और प्रायः हर तरह की कविजनोचित भावुकता से बचे हैं। उन्हें जैसी सर्वमान्य प्रतिष्ठा मिली है, वैसी जीवन—काल में अन्य कवियों को नहीं मिली। पिछले पॉच—छह दशकों से लगातार नागार्जुन की कविता का दबाव महसूस किया गया है अर्थात इस बीच हिन्दी कविता के परिदृश्य में उन्हें कभी नेपथ्य—गमन करते नहीं देखा गया।

समकालीन काव्य—परिदृश्य के भी केन्द्र में उनकी प्रतिष्ठा का कारण है— क्रान्ति—प्रक्रिया से उनका सतत जुड़े रहना। नागार्जुन घूम— घूमकर जन—आन्दोलनों के छोटे—बडे स्वरूप की खबर लेते रहते हैं और कई बार खुद भी इसमें सकिय हो जाते है पर जब कभी मोह भंग हो जाता है, प्रतिक्रियावादियों से अलग पुनः वे जिन प्रवाह में बहते दिखाई पडते है। इससे उनकी क्रान्तिकारी सक्रियता किसी दलगत राजनीति की संकीर्णता से हमेशा ही मुक्त और ताजा बनी रहती है।

एक सच्चे क्रान्तिकारी कवि की पहचान यह होती है कि यथास्थिति को जीवन और कविता दोनों में वह समान रूप से तोड़ता है। उसके पास उज्ज्वल मानवता के, बेहतर भविष्य के सपने होते हैं और राजनीतिक—सांस्कृतिक पराधीनता से मुक्ति की संभावना उसकी कविता में हमेशा ही जीवन्त बनी रहती है। नागार्जुन की एक अत्यन्त लोकप्रिय कविता है— 'नदियाँ बदला ले ही लेंगी'। इसमें एक जगह वे लिखते है—

" होली में भूमिहीन की किस्मत का भुट्टा सिंकता है
खेतों में बन्दूकें उगती टके सेर तो बम बिकता है
क्रान्ति दूर है, सच—सच बतला, बुद्धू तुझको क्या दिखता है?
आ, तेरे को सैर करा दूँ ए घर में घुसके क्या लिखता है ?"

(इस गुब्बारे की छाया मे)

क्रान्ति दूर है या निकट–यह कोई खास बात नही है। खास बात है इस कविता में जनकवि की क्रान्ति में आस्था । नागार्जुन घर मे घुसकर लिखने वाले कवि यह नही हैं। उन्होने समूचे देश। मे घूम–घूमकर कविताएँ लिखी हैं। इसीलिए उनकी जनचेतना किताबी मार्क्सवाद के लिए कई बार विभ्रम पैदा करती है। जनसाधारण का जैसा उग्र शोषण हमारे जनकवि ने देखा है, उसमें वर्ग–घृणा उनके लिए अत्यत स्वाभाविक है। हिसा के विरोध में प्रतिहिंसा स्वयं–नागार्जुन के मत से उनकी कविता का स्थायी भाव है। उनकी एक कविता का शीर्षक ही है– **'प्रतिहिसा ही स्थायी भाव है'** ।

"नफरत की अपनी भट्टी मे

तुम्हे गलाने की कोशिश ही

मेरे अन्दर बार–बार ताकत भरती है

प्रतिहिंसा ही स्थायी भाव है अपने ऋषि का"

"नव दुर्वासा, शबर–पुत्र मैं,शबर–पितामह

सभी रसों को गला–गलाकर अभिनव द्रव तैयार करूँगा

महासिद्ध मैं, मैं नागार्जुन

अष्टधतुओं के चूरे की छाई से, मैं फूँक' भरूँगा"

— — — — — — — —

"हिसा मुझसे थर्रायेगी

प्रतिहिंसा ही स्थायी भाव है मेरे कवि का

जन–जन में जो उर्जा भर दे, उद्‌गाता हूँ उस रवि का"

हिंसा के विरोध में प्रबल प्रतिहिंसा का स्वर नागार्जुन के काव्य की ऐसी विशेषता है जो अन्य कवियों में इसी रूप में नहीं मिलती। इसका सबसे बडा कारण है, जिन शोषितों के पक्ष मे नागार्जुन की कविता डटकर खडी जान पडती हैं, स्वयं कवि भी उन्हीं में से एक है। एक मित्र को पत्र कविता में नागार्जुन लिखते है–

"धरा है पट, सिन्धु है मसि–पात्र

तुच्छ से भी तुच्छ

जन की जीवनी पर हम लिख करते

कहानी,काव्य,रूपक, गीत

क्योंकि हमको स्वय भी तो तुच्छता का भेद है मालूम

थक हम पर सीधे पडी है गरीबी की मार

सुविधा–प्राप्त लोगों ने सदा

समझा हमे भू–भार" – १

सुविधा–प्राप्त, जो स्वयं भू–भार है– उल्टे जन साधारण को ही भू–भार समझते हैं। नागार्जुन की जनसम्बद्धता का रहस्य उनकी दरिद्रता मे ढूँढा जा सकता है। रामेश्वर करुण के बाद समूचे प्रगतिशील काव्यान्दोलन मे गरीबी की ऐसी सीधी मार शायद अकेले नागार्जुन ने ही झेली है। उन्होने बडी स्पष्टता से, दो टूक शब्दों में स्वीकार किया है–

बन्धु, मेरे पास भी

यदि बाप दादों की उपार्जित भूमि होती

धान होता बखारों मे

आम– कटहल– लीचीयों के बाग होते

पोखरा होता मछलियों से भरा

फिर क्या न मैं भी

याद कर प्रथमा, द्वितीया या तृतीया (प्रियसी) को

सात छेदों की रूपहली बॉसुरी मे फूँक भरता

वष्णौवों की बिरहणी बृषभानुजाके नाम पर ही सही

फिर भी फूँक भरता ।" – २

हिन्दी भाषी जनता के प्यारे कवि नागार्जुन अत्यंत दरिद्र परिवार में जन्में, अर्थाभाव में जिये, पर कवित्व की नैसर्गिक प्रतिभा ने शुरू से ही उन्हें शोषण के विरूद्ध सक्रिय रखा। नागार्जुन दलितो केबन्धु, सखा बनकर प्रगतिशील जीवन दृष्टि के विकास में
लगे अतः उनकी पक्षधरता एक तरह से स्वयं की पक्षधरता है, अपने जैसों की पक्षधरता है। 'पक्षधर' शीर्षक कविता में नागार्जुन लिखते हैं–

इतर साधारण जनों से अलहदा होकर रहो मत

कलाधर या रचयिता होना नही पर्याप्त है

---

१ – (चुनी हुई कविताएँ–भाग–२, पृष्ठ–६७.)

२ – (चुनी हुई रचनायें, पृष्ठ ६७)

पक्षधर की भूमिका धारण करो।" – १

प्रगति काव्यान्दोलन की यह निजी उपलब्धि है– पक्षधर की भूनिका। "इसके पहले कलाधर या रचयिता होना प्र्याप्त माना जाता था। पहले विजयिनी जनवाहिनी की अवधारणा स्पष्ट नहीं थी। नागार्जुन ने सबसे पहले हिन्दी कविता में इसे स्पष्ट किया। उन्हें जन कवि कहने का वास्तविक कारण उनकी कविता का सुस्पष्ट जनाधार है। यह सबको समझ में आने वाली कविता है मध्यवर्गीय तमाम अर्न्तविरोधों से मुक्त होकर ही नागार्जुन कविता को नया जीवन दे सके हैं। " – २

नागार्जुन की कविता में शोषित , पीड़ित, अभावग्रस्त मामूली जन का स्पष्ट चित्रांकन हुआ है, साधारण जनता के इस कवि की भूमिका अत्याचार अन्याय, असंवेदनशीलता के विरुद्ध नागार्जुन की दुनियां ग्रामीण सच्चे भोले–भाले, दांवपेंच से मुक्त निश्छल लोगों की दुनिया है जिसमें उनके अधूरे सपने है, अभाव है, दुःख और संघर्ष है और है शोषकों द्वारा उनके श्रम के शोषण की पराकष्ठा वह जानते हैं कि भूख की तडफडाहत क्या होती है–

" आँत की मरोड़ छुडा न पायी
बरगद की फलियॉं
खडा है नई पौध
पीपल के नीचे खाद की खोज में
देख रहा ऊपर
कि फलियॉं गिरेगी
पेट भरेगा
और फिर जाकर
सो रहेगा चुपचाप झोपडे के अन्दर
भूखीं मॉं के पेट से सटकर।"

स्पष्ट है नार्जुन की कविता कृषकों, दलितो, शोषितों के सपनों और उनकी वस्तुस्थिति को शब्दबद्ध करने वाली कविता है। सामाजिक विषमता मनुष्य और मनुष्य में भेद– इन सबके प्रति कवि की कविताओं में तीखा आक्रोश भाव है। समाज में हुई गहरी खाई के लिए यह कवि सामाजिक व्यवस्था को दोषी ठहराता है इसीलिए वह कहता हैं – "जनता मुझसे पूँछ रही है क्या बतलाउँ? हूँ

---

१ – (वही, पृ० ८०)

२ – (डा० रेवती रमण– 'कविता का समकाल' पृ०–८३)

मैं साफ कहूँगा क्यो हकलाऊ"। नागार्जुन यह इस लिए कह सके क्योकि वह व्यवस्था के पोषको मे नही हैं उन्होने जो महसूस किया वह कहा इसलिए कविता सपनीलीं दुनिया उनके यहाँ नहीं है। वह चट्टानी यथार्थ से हमें दो–चार कराते हैं। और इस रूप में अनुभव के उस सवेदना से रूबरू कराते हैं जो जीवन के दुःखों के बारे में हमे बता सके । अपनी कविताओ मे वह चुनौती प्रस्तुत करते है –

"हाँ बाबू, निष्ठापूर्वक मैं शपथ आज लेता हूँ

हिटलर के ये पुत्र–पौत्र जब तक निर्मूल न होगे

तब तक मैं इनके खिलाफ लिखता जाउँगा

लौह लेखनी कभी विराम न लेगी।"

"स्वाभवत यह उनकी क्रांतिकारी चेतना का सकारात्मक पक्ष है– नागार्जुन की वाणी मे हकलाहट कभी नहीं थी। अन्तर केवल यह आया है कि उन्होने अपने रोष और जनता की स्थिति को सगत ढंग से समझा है। इसीलिए वे अपने रोष को काव्यात्मक ढंग से प्रस्तुत करके जन–जन मे उर्जा भर देने के लिए उद्यत हुये हैं।" – १

नागार्जुन जन चेतना के कवि है अपनी जडो से कटे लोगों की जीवन पद्धति इस कवि के संस्कारों के विपरीत है। मनुष्य की नियति को संचालित करने वाली राजनीति नागार्जुन की कविताओं की रीढ है। अपने समय में होने वाली राजनीतिक हलचलों और युग के सच को कवि की कविताओ मे देखा जा सकता है। इमरजेंसी के समय में भी बडी निर्भीकता से उस समय की भयावह आंतकग्रस्त स्थिति को इस कवि ने शब्दबद्ध किया है –

'जी हॉ, सत्य को लकवा मार गया है

उसे इमरजेंसी का शाक लगा है

लगता है,अब वह किसी काम का न रहा

जी हॉ, सत्य अब पड़ा रहेगा

लोथ की तरह , स्पंदन शून्य मांसल देह की तरह।"

स्वतंत्रता के बाद की जनता के संघर्ष को इस कवि की राजनीतिक चेतना से युक्त कविताओं में लक्ष्य किया जा सकता है। नागार्जुन का राजनैतिक दृष्टिकोण विल्कुल स्पष्ट है। कवि की पक्षधरता

---

१ – (अजय तिवारी— 'नागार्जुन की कविता', पृ०–४८–४६)

उस विशाल जन–समुदाय के साथ है, जो आजादी के कई वर्ष बीत जाने के बाद भी भूखे, नगे, बेघर, शोषित, पीडित ,विवश लोगो का हैं। नागार्जुन की कविता की मूल ताकत जनशक्ति मे निहित है। जनता भूखी, नंगी, पीडित तो है लेकिन डरी हुई, हतोत्साहित नही। यह जनता जागरूक है। अपने छीने गये अधिकारों के लिए यह क्रान्ति करने की इच्छुक है। कवि की सवेदना का क्षितिज अपने देश की सीमा तक सीमित नही है। दुनिया के किसी भी कोने मे अपने अधिकारो के लिए संघर्ष करती हुई जनता को यह कवि अपनी सहानुभूति से शक्ति प्रदान करता है। चाहे वियतनामी जनता का मुक्ति–युद्ध हो या नेपाली जनता का संघर्ष या नीग्रो–सघर्ष—सबके साथ कवि अपने को खडा करता है। क्रान्ति की लडाई मे अपना महत्वपूर्ण योगदान देने वाले इस कवि का सृजन जीवन के अपने अनुभवों पर आधृत है। कवि ने बिहार के किसानो के संघर्ष की लडाई लडी है, जेल भी गया है, मीसा की मार झेली है।

नागार्जुन मानते हैं कि जब देश में दो प्रतिशत लोग भी सुखी नहीं है तो वह शान्ति पर कविता कैसे लिखें ?

"मैं दरिद्र हूँ। पुश्त–पुश्त की यह दरिद्रता
कटहल के छिलके जैसी जीभ से
मेरा लहू चाटती आई
मैं न अकेला
मुझ जैसे तो लाख–लाख हैं, कोटि–कोटि हैं
सभी दुखी हैं। दो प्रतिशत लोग भी सुखी नहीं हैं
कैसे लिखूँ शान्ति पर कविता ?"

"नागार्जुन की ऑखों ने कभी भी वह नहीं देखा जिसे शास्त्रों के प्रेताचार्यो ने दिखाना चाहा। लोकरीतियों और कुप्रथाओं के चालू रंग–ढ़ंग से बचती – बचाती वह उन ठिकानों तक पहुँचती रही, जहाँ उकस–मुकस बेचैनी, अस्त व्यस्तता और हलचल थी। उनमें कुछ ऐसा घटता रहता था जिससे अति संभ्रान्त और कथित तौर पर मर्यादित जीवन की मक्कारियॉ उघड़ सकती थी। वे अक्सर ऐसे असुरक्षित और खतरनाक इलाकों में पहुँच अपनी टुनटुनिया डुगडुगी और करताल बजाहने लगतीं। अपनी खुरपी, हॅसिया और गडॉसा तेज करने लगतीं। जिन्दगी भर जिसकी आदत मोर्चे पर डटकर मरने–मारने की रही हो, वह क्या कोई ऐसा घोड़ा होगा जिसे सचमुच नीलामी किया जा सकता हो।" – १

---

१ – (विजय बहादुर सिंह——कथा अंक–१०, फरवरी २०००, पृष्ठ ६)

"यह वह आदमी है जिसे कोई तत्र खरीद नही सकता, कोई मोह बेच नही सकता। जिसकी कलम की नोक पर उसकी मरजी के बगैर मक्खी भी नही बैठ सकी। अपनी अलग धूनी रमाए, अपना अलग चिमटा फटकारता। पार्टी बॉसेज को ललकारता और अपने समय के राजनीतिक दिग्गजो की ऐसी–तैसी करता' ओ अष्टधातुओ के ईटो के भट्ठे। ओ महामहिम महामहो, उल्लू के पट्ठे। इसके पास क्रोध का एक ऐसा स्पृहणीय रूप है जिसकी कामना कोई भी अन्याय पीडित, किन्तु सचेत और जागृत समाज हमेशा करता आया है। आखिर आचार्य शुक्ल ने कुछ सोच समझ कर ही कहा होगा–कोध एक सामाजिक सम्पत्ति है। नागार्जुन इसके महासागर थे। अपने को अगर वे नव–दुर्वासा कहते रहे तो शायद इसीलिए।" – १

नागार्जुन असिद्ध प्रतिपक्षी रहे विरोध इसी वजह से उनकी कविता की मुख्य भावभूमि बना प्रतिपक्षी की भूमिका निभाते हुये वह उन लोगों का लगातार विरोध करते हैं जो व्यवस्था के पोषक सत्ता के दलाल और चिकनी–चुपडी खाने वाले हैं लेकिन नागार्जुन के अन्दर का कवि उनको भी नहीं छोडता जो तथाकथित बुद्धिजीवी सम्प्रदाय से सम्बद्ध है ऐसे लोगो के लिये जिनके मन में अपनी जनता के लिए कोई प्यार न हो उनके लिए नागार्जुन की कविता की सदाशयता प्राप्त नहीं हो सकती। 'तो फिर क्या हुआ' शीषर्क कविता मे वे ऐसी ही बुद्धिजीवियों पर व्यंग करते हैं। 'कवि' शीर्षक कविता में नागार्जुन उन कवियों पर व्यंग करते हैं जिनका गला मीठा है, जो रेडियों के लिए गीत लिखते हैं, एजरा पाउण्ड और इलियट पढते हैं और बाकी सबको ईडियट समझते हैं। इसीलिए दोस्त और दुश्मन का विवेक गवाएँ बिना, मन में किसी प्रकार की गॉठ बनाएँ बिना, नागार्जुन ने तीखी राजनीतिक कविताये रचीं। दुर्भाग्य से नागार्जुन के राजनीतिक विचारों की छानबीन के जितने भी प्रयास इधर आयें हैं उनमें या तो उनकी राजनीति को लेकर प्रतिकियावादी खेमा चुप रहता है या उनके भटकाव को ही उनकी महत्ता घोषित करता है। लेकिन यह दोनों ही प्रकार के विचार नागार्जुन की राजनीतिक कविताओं के संदर्भ में एक भ्रम की स्थिति ही पैदा करते है। इतिहास गवाह है कि रचना वही कालजयी होती है जो इतिहास प्रकिया में जीवित रहती है। कालजयी होनी की पहली शर्त यह है कि वह कालजीवी भी हो। जो लोग केवल शाश्वत विषयों पर केवल शाश्वत कविताएँ लिखकर बडें होने का भ्रम पालते हैं लेकिन समाज की इतिहास प्रकिया से कटे होते हैं उन्हें इतिहास भी अपने कूडेदान मे डाल देता है। नागार्जुन इसी अर्थ मे बडे हैं क्योंकि उनकी कविता का ऐतिहासिक प्रकिया से गहरा रिश्ता है। लेकिन वे अतीतजीवी और अतीतमोह की कविताएँ नहीं हैं। समाज के द्वन्द्वात्मक विकास की कडी के रूप में इनकी अभिव्यक्ति के द्वारा वह

---

१ – (विजय बहादुर सिंह——कथा——अंक–१०, फरवरी २०००, पृष्ठ–२६)

समाज की पडताल करते है। मनुष्य की केन्द्रीय स्थिति के बारे मे वह चिंतित होते हैं, साम्राज्यवादी बाजारवादी वृत्तियों की सडाध को सरे चौराहे दिखाते हैं और वह यह सब इसलिये कर पाते है क्योकि वह आयातित इतिहास को नहीं जन इतिहास को पकडते हैं। उनकी पक्षधरता इसी इतिहास बोध से निर्मित होती है वह प्रतिबद्ध होते है तो सिर्फ जन के लिए। इसीलिए समाज की कुचालक प्रवृत्तियों के गदे षडयंत्र को बेनकाब कर पाते हैं। जीवनधर्मी अहसास से युक्त उनकी कविता जीवन से लगाव को अपनी पहली काव्यात्मक शर्त बनाती है। इसीलिये नागार्जुन साफ–साफ देख पाते हैं कि कौन किस पाले में खडा है, किसकी राजनीति किसके साथ है और शायद थोडा भी प्रतिक्रियावादी मिले उसकी खिचाई भी वे उसी भदेसपन के साथ करते हैं।

निश्चय ही किसी कवि का यह अडिग विश्वास जनता के साथ उसके अविच्छेद्य सबंध पर निर्भर है। नागार्जुन की कविताओं मे अगर हमें जनता की भावनाओं–आकांक्षओं का सुंसबद्ध इतिहास देखने को मिलता है तो इससे पता चलता है कि 'यात्री' नागार्जुन अपनी तमाम यायावरी के बावजूद अपने विशाल पाठकवर्ग से असपृक्त नही, बल्कि संवेदनात्मक रूप में दृढ़तापूर्वक संपृक्त है और यही उनकी 'तात्कालिक' लगने वाली कविताओ की कलात्मक सफलता का रहस्य है। इससे यह न समझना चाहिए कि जिसे कलात्मक मूल्य समझा जाता है, वह इन कविताओं में नहीं है। बात दरअसल यह है कि नागार्जुन की कला सौंदर्यशास्त्र के स्वीकृत विधानके लिए बहुत बडी चुनौती है और इसलिए सौंदर्यशास्त्र के स्वीकृत मापदण्डों पर विचार करने को बाध्य करती है।

नागार्जुन की कविता यदि मूल्यभ्रंश के वि अपने को खडा कर सकी है तो इसलिए कि उसमें समय और मनुष्य के यथार्थ के एकांगी व्यौरो को इकट्ठा कर, अपने कर्म की इति मान लेने की नासमझी नहीं है और न ही दुनिया को पूरी तरह से व्यर्थ मानकर रद्द करने की विचारहीनता। यही कारण है कि मिथिला के ठेठ गॉवों की मिट्टी से लिपटा यह 'यात्री' देश–देशान्तरों के अनुभवों और दृश्यों से इतना सम्पृक्त हो उठा है कि सामाजिक चेतना उसकी सरस्वती मे शतधा स्थापित हो उठी– कहीं व्यग्य की तिक्त बौछार, तो कही करूणा के मार्मिक उत्स कहीं गॅवई प्रकृति के यथार्थ चित्र, तो कहीं गहरी ढोंग का उद्घाटन। भाषा भी तदनुरुप, कहीं प्रांजलता तो कहीं ठेठ बोलचाल।" – १

यह जुझारू कविता अपनी उर्जा में विलक्षण और सृजनात्मकता में अद्भुत है जहॉ दृश्यमान सामाजिक स्थितियॉ बुनियादी तब्दीलियों के लिए बेचैन हैं। राजनीतिक संघर्षो की क्रान्तिकारी सरगर्मी इसकी मूलवर्ती धारा है जो गुरिल्ला छापामारों की तरह हम तक आती है,और आकर झिझोरती हैं यह आज के समाज को जगाने का उपक्रम है।नागार्जुन की कविता यही करती है।

---

१ – (नामवार सिंह)

त्रिलोचन की वैचारिक संवेदना

त्रिलोचन के काव्य संसार से गुजरते हुए हम अनुभव कर सकते हैं कि उनके यहा कोई आश्चर्य लोक नही है परिचित, अपरिचित के तनाव से कविता मे जो आश्चर्य जन्म लेता है, वह महज चमत्कार नहीं होता । कई बार उस तनाव से ही महत्वपूर्ण अथवा बडी कविता पैदा होती है। जो कि त्रिलोचन के जीवन दर्शन और काव्य दर्शन के आधार पर कहा जा सकता है कि त्रिलोचन की कविता महानता की अवधारणा से इकार करती है, महानता के मिथ के तोडती है और साधारणता में ही अपनी सार्थकता सिद्ध करती है। उनकी दृष्टि साफ है। उनकी पक्षधरता उन्हे वह दष्टि देती है, जो समाज को, व्यवस्था को और इन सब के बीच मनुष्य की स्थिति को बहुत स्पष्ट नजरिये से विश्लेषित करती है।

रस जीवन का, जीवन से खींचा,
दिये हृदय के भाव, उपेक्षित थी जो भाषा,
उसको आदर दिया।

" कहना न होगा कि " उपेक्षित भाषा" उन्हीं लोगों की हैं, जो सभ्यता की जीवन धारा में उपेक्षित है। स्पष्ट है कि जहां से भाषा आ रही है, वहीं से जीवन का रस और दृश्य के भाव भी आ रहे हैं । समृद्धि को आदर देने में खास बात नहीं है। वह तो सब करते ही है। त्रिलोचन यहा अलग इसलिए है क्यों कि वे " उपेक्षित भाषा" के आदर देते है। इसी तरह सींचे हुये को सीचने वाले तो संसार में अनेक हैं लेकिन उपेक्षित, परित्यक्त मरूस्थल को सींचने वाले कितने है। त्रिलोचन उसी मरूस्थल को जीवन से प्राप्त जीवन रस से सींचते हैं। उपेक्षितो और पत्यिक्तों के जीवन को कविता का जीवन बनाने का काम आसान नहीं है। त्रिलोचन अपनी कविता में इसी कठिन कार्य करते है। किन्तु त्रिलोचन इस बात में उनसे भिन्न हैं कि वे समाज के वह भी सबसे निचले स्तर पर रहने वाले समाज के स्तर पर रहकर इस कार्य को करते है। वे अपनी समृद्ध काव्य परम्परा के उदात्त स्वरूप से विमुख नहीं हैं, किन्तु उस आधुनिकतावाद की गिरफ्त से मुक्त हैं, जो गगन बिहारी हैं।"– १

---

१ – (जीवन सिंह सापेक्ष, महावीर अग्रवाल त्रिलोचन अंक–पृ० ४८)

वे उस धरती के कवि हैं कि जो गर्जन तर्जन वाली नही है। त्रिलोचन अपनी पीढी मे सबसे शांत प्रकृति के कवि है। लेकिन अपने शब्दों की मर्यादा में उत्पन्न दृढ। उनमें इतिहस का बोध जन की पक्षधरता का अटूट संकल्प है।

" त्रिलोचन मार्क्सवादी चेतना से सम्पन्न कवि है। लेकिन इस चेतना के उपयोग का उनका अपना ढंग है। प्रकट रूपमें इनकी कविताएं विचारधारा का स्पष्टीकरण नही करती। त्रिलोचन के अदर विचारों को लेकर कोई बडबोलापन नहीं है। वे अपनी बात धीमे–धीमे स्वाभाविक ढंग से कहते है। क्यो कि उन्हें भरोसा है कि "हांथों के दिन आयेंगे"। उन्हें उस जनता पर विश्वास है जो परिवर्तन में क्रांतिकारी भूमिका का निर्वाह करेगी उन्हें देश की जनता के चरित्र की पहचान है। इसलिये उनके यहां दीन हीन रूप से आने वाला मनुष्य भी केवल संघर्ष में विश्वास करता हैं इसलिए त्रिलोचन की कविता में आने वाले चरित्र और क्रांति का स्वप्न देखने वाले बुद्धिजीवियों के बीच के अंतर को त्रिलोचन के कवि रूप पर विचार करते समय जरूर ध्यान में रखना चाहए। प्रमाणिकता कहां है, जानना कठिन नहीं होगा। स्वप्निल श्रीवास्तव, आलोचना जुलाई सितम्बर ८७ पेज ३७

त्रिलोचन ने जन जीवन की क्रियाशीलता और जीवन व्यवहार का चित्रण करते हुए उसके भीतर सामान्य समाज सत्य को रखा है। जैसे हिन्दी जाति का किसान रखता है।

त्रिलोचन गंवई कवि की इसी सहज संवदेना के द्वारा प्रकृति को, जीवन को, मानवीय संघर्ष को जितनी आत्मीयता से अपनाते है। सहज बतकही करने वाली कविताए कब जीवन के बारेमें कोई संदेश दे जायेगी, कहना कठिनहै। कविताई उनके लिये लोक जीवन से विमुखता का बहाना नहीं बनी। उसमे डूबकर ही त्रिलोचन का कवि कर्म सार्थकता पा सका है। लोक जीवन मे रचा बसा कवि ही लिख सकता है–

यह रहस्य गढा किस ओर से
हृदय की लिपि वायु तरंग में
लिख उठी छबि की अरधान सी
नयन देख जिसे चुप हो गये

हिन्दी जाति के किसान स्त्री पुरुषों ने अपने लोक साहित्य में कथा, गीता एवं गाथाओं के माध्यम से अपने जीवन के सामान्य सत्यों की अभिव्यक्ति की हैं कुछ–कुछ वैसा ही त्रिलोचन भी अपनी कविता को रखते है। इसी अर्थ अपने समकालीनों में भी त्रिलोचन का मिजाज अलग है। एक

---

१ – (स्वप्निल श्रीवास्तव, आलोचना जुलाई सितम्बर ८७ पेज ३७)

अर्थ में विशिष्ट उनके पास कविता की अभिजात्य भाषा नहीं न ही महानगरीय चेतना का जादू हैं । इस वजह से उनकी कविता, के आधुनिक प्रवाह से दूर छिटकी हुई सी प्रतीत होती है। आधुनिक सभ्यता के नागरिको को अपने देश का किसान भी तो ऐसा ही लगता है। आज जो सभ्यता मे जितनाअग्रणी दिखायी देता है, संस्कृति में उतना ही पिछडा हुआ है। त्रिलोचन इस उल्टीरीति के सच को जानते हुए जन संस्कृति के पक्ष मे खडे होते है। वह अपनी कविता को रूपवान नहीं बनाते उनका प्रयास उसे अपना हृदय देने का रहता है।

" हृदय चाहते हो तो दे दूं इसमें कोई
द्विधा नहीं है और हृदय ही तो जीवन
का मूल श्रोत है, उसे सौंप कर तुम्हें
किनका भय मन से दूर हो जोयगा।"–१

वर्ग विभाजित समाज को विश्लेषित करते हुए त्रिलोचन समाज के लोकतत्व से उसकी ऐतिहासिक परंपरा को ग्रहण करते है। यानी कि लोकात्मक वृत्तियों के अनकहे साहित्य के अनकहे लोगो को अपनी काव्य यात्रा वह ऐंतिहसिक चरित्रों का निर्माण न करके चरित्रों मे सामाजिक इतिहास का पूरा आकलन करते है।

क्यों कि वह जानते हैं कि जनभाषा पर कुछ भी कहने के पहले यह भी ध्यान रखना चाहिये कि वह बहता नीर है । केवल सामाजिक संबंधों से ही उसे काव्य का समर्थ माध्यम बनाया जा सकता है। इसके लिए कोई खास नियम या विधान नहीं है। वैयक्तिक विवेक या शक्ति ही इसका निर्णायक तत्व है। कहना न होगा त्रिलोचन के पास यह वैयक्तिक विवेक है। जिसके चलते उनकीप्रखर वैचारिकता का भाषिक उन्मेष जन के पक्ष में हुआ है।

वह इतिहास बोध स्कूल ऐतिहासिकता से आगे बढ़कर सामाजिक विनिमयों में छिटका दिखायी देता है। त्रिलोचन उसे इसलिए जीवन से ग्रहण करते है। वह इतिहास के उस कालखण्डों को भी पहचानते हैं जिनसे होकर ही मुक्ति की मशाल जलायी जा सकती है इसलिए त्रिलोचन का इतिहास बोध जन की आकांक्षा और मुक्ति बोध से जुडा हुआ हैं।

" तुम्हे पुकार रहा है कोई
अभी तुम्हारी शक्ति शेष है

---

१ – (अनकहनी भी कुछ कहनी है पृ० २६)

मत अलसाओ, मत चुप बैठे

तुम्हे पुकार रहा है कोई।"–१

ऐसा लगता है, त्रिलोचन द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद को संवेदनात्मक ज्ञान की तरह ट्रीट करते हैं, इसीलिए उनकी कवताओ में मसीहाइ या क्रांतिकारी तेवर अनुपलब्ध हैं वे बहुत छोटे–छोटे हर्ष विषाद का और जद्दो जहद की कवितायें है। थोडा लिखा बहुत समझना के सदेश के साथ लेकिन उनमे छोटा या मामूली होने की न तो भंगिमा है और न लज्जा - पश्चाताप, बल्कि अधिकतर कविताओ में वे स्वयं को उघाडकर निहत्था रख देते है। छोटी छोटी चीजो इसानी गीमती के असली महसूस किये हुए चित्रो में वे आदमी और आदमी के बीच के रिश्तों को स्पष्ट करते है। त्रिलोचन की कवितायें इन्सानी रिश्तों में गहरी रूचि लेती है ।

समग्रता में विचार करते हुये जो सबसे 'स्टाइकिंग' सूचना मिलती है वह यह है कि शीतयुद्ध की छाया में, व्यक्ति और समाज, रूप और अंतर्वस्तु यानी दक्षिण और वाम के नाम पर बने परंपरागत खेमे शीतयुद्ध के अंत के साथ ही अप्रासंगिक हो गये है। पुराने नारो और मुहावरो मे आज की कविता को समझा नहीं जा सकता। शीत युद्ध में समाजवादी कैंप के पराभव और एक ध्रुवीय नयी विश्व व्यवस्था के आगमन ने हमारी दुनिया को वस्तुगत तौर पर बदल डाला है। हमारे साहित्य में अभी उस दौर का दखल होने की वजह यह है कि पराजय के शोक से उबर कर हम अभी नई लामबंदी की कार्यनीति सूत्रबद्ध नहीं कर सके है। लेकिन कवि को विश्वास है कि हम अपने शोक को शक्ति में बदलने में सफल होंगे–

" ताप कठिनतम खाते–खाते पके हुए हैं। फिर भी अभी

और पकना है नये तौर भी। अभी सीखने हैं,

जीवन के लिए कौर भी। हाथों में लेना है।

जन–जीवन के प्रति उनकी इसी प्रतिबद्धता को देखकर ही शायद 'रेणु' ने कहा था कि कविता मेरे लिए समझने बूझने या समझाने का विषय नहीं है, जीने का विषय है; कवि नहीं हो सका, यह कसक सदा कलेजे को सालती है। और अगर कहीं कवि हो जाता तो , त्रिलोचन नहीं हो पाने का मलाल जीवन भर रहता।"–२

---

१ – (तुम्हे सोंचता हूं – पृ० ३३)

२ – (फणीश्वर नाथ रेणु – चुनी हुयी रचनायें भाग– २)

शीत युद्धोत्तर परिघटना के असर मे हमारे साहित्य मे एक–दूसरे से उल्टी दो नयी प्रवृत्तियां भी सामने आयी है। एक वह है जिसने सच्चाई को कबूल करने के नाम पर पराजयवादी मानसिकता का निर्माण किया है और नये शासको के तर्कों को वामपथी शब्दावली मे पेश करके उनकी सेवा करनेकी राह चुनी है। कट्टर वर्गीय दृष्टिकोण की वकालत की आड मे यह न केवल भारतीय समाज की असलियत पर पर्दा डालती है बल्कि वर्ग सहयोग के अपने रवैये को भी छिपाने की कोशिश करती हैं दूसरी प्रवृत्ति ने अपने समय की चुनौतियों से मुठभेड करने की रचनात्मक इच्छा शक्ति का परिचय दिया हैं पहली ने अगर वाम औरदक्षिण का घोलमेल करके धुध और कुहासा फैलाने की कोशिश की तो दूसरी ने इस को एक विकसित चरण में पहुंचाने का प्रयास किया; सूत्र में कहे तो पहली प्रवृत्ति ने थीसिस और एंटी थीसिस का घोल बनाया जबकिदूसरे ने सिंथीसिस को हासिल करने की जद्दो-जहद की। त्रिलोचन की कवितायें इसी दूसरी प्रवृत्ति का प्रतिनिधित्व करती है। तय हैं उनकी कविताये घाल मेल करने की व्यवहारिकता पर विश्वास न करके मनुष्यता के संघर्ष को एक कदम आगे ले जाने के अपने संकल्प को ब्यक्त करती है—

"निर्भय मानव पक्ति आज तैयार खड़ी है
लाली फैल चली है सम्मुख सूर्योदय है
नयी प्रतिज्ञा मानव भाषा छ्हराती है
आशा भीतर बाहर चारो ओी लड़ी है।"

कवि की विशेषता है उसका वर्गीय दृष्टिकोण। यह उसकी प्रमाणिकता की ही तलाश का नतीजा है। कोई दुराव छिपाव नही, कोई आडंबर नही अपने वर्ग के सामर्थ्य और उसकी सीमाओं के प्रति सचेत यह कवि , गहरे आत्मविश्लेषण मे जाता है। और सुंदर यात्राओं से हमारे लिये कीमती चीजे इकट्ठी करके लाता है।वह मध्यमवर्ग के दुलमुलपनऔर असरवार से पूरी तरह परिचित है। वह जानता है कि इस वर्ग की समझौता परस्ती के चलते ही यह वर्ग नेतृत्वकारी भूमिका खो चुका है और आज इसे एक विशाल उपभोक्ता बाजार मे बदलकर पूरी दुनिया के सामने निष्कवच छोड़ दिया गया है। इस प्रक्रिया में इसका विघटन भी शुरू हो गया है। कवि इसीलिए इस मध्यवर्ग के सुविधा परस्ती के सामूहिक आत्मघाती प्रवृत्ति से विलग आम आदमी–किसान, और मजदूरों की शक्ति में विश्वास करता है। टूटे हुए विश्वास को रचनात्मक संबल देता है। क्यों कि वह स्वयं

हारना नहीं जानता। स्वयं न हार कर ही वह दूसरो को भी हार न मानने का आत्म विश्वास प्रदान करता है–

" नद नदी ने पांव धोए

पुष्प पादप ने चढाये

मेघ ने सित छत्र ताना

वायु ने चामर हिलाये

इन्द्र धनु नत सूर्य ने दी

चंद्र ने दीपावली की

तुम न हारे देख तुम को दूसरे जन भी न हारे "–१

त्रिलोचन की कविता यथार्थ में एक जीवन है, उत्पादक वर्ग के सपने और स्वाभिमान से इसका सीधा संबंध है। उनके सौदर्य को प्रतिष्ठा देने का रचनात्मक सकल्प इस कविता को हमारे लिए और ज्यादा अर्थपूर्ण और प्रासांगिक बना देता है। वर्ग विभाजित समाज में विजयिनी जनवाहिनी की पक्ष धरता से इसकी प्रयोजन धर्मिता स्पष्ट होती हैं। स्वांतः सुखाय नहीं,बेहतर दुनिया बनाने के प्रयास में सक्रिय जुझारूपन के साथ होनेका अहसास ही त्रिलोचनकी कविता कीअसली ताकत हैं और इसके बीच वह उन तमाम कारणों का विरोध करती है जो इसके विपरीत पड़ता हैं और इसके बीच वह उन तमाम कारणो का विरोध करती है जो इसके विपरीत पडता है; अस्वीकृतऔर असहकति इसलिए इसकी शक्ति बनते है। उत्तेजनाओं से अलग त्रिलोचन की कविता मनुष्य के केन्द्रीय प्रश्नों से जुडी हुई है। जिसमें भूख और रोटी के प्रश्न पूरी शिद्दत से उठाये गये हैं यह समकालीन वास्तविकताओं का साक्षात्कार करने वाली कविता है,जिसका संसार ठोस और जीवित प्रासंगिक संसार है। इसीलिए वह कह सके–

"धन की उतनी नहीं मुझे जन की परवाह है।" –२

जन की परवाह करने वाला कवि निश्चित रूप से जीवन को समझने वाला ही होगा। संसार से जुडने और जीवन से प्यार करने की प्रक्रिया मे ही त्रिलोचन कई बार आपद् धर्म की तरह वर्ग युद्ध को अनिवार्य मानते हैं और उन्हे पता है कि राज्य आमतौर पर एक रूढि होती हैं। और

१ – (सबका अपना आकाश – पृ० ३१)

२ – (अनकहनी भी कुछ कहनी है – पृ० १७)

कविता उसके सार्थक विकल्प की तलाश अत राज्य सत्ता जब पूजीवादी हो तो वर्ग विहीन समाज की स्थापना का प्रयास एक सार्थक कवि कर्म हो सकता है। त्रिलोचन के काव्य ससार मे ये बाते इतनी सहज हो गयी है कि अलग से इनका उल्लेखा करना अनावश्यक लगता है। इस कवि जीवन की खास बात है। " सर्वहारा सस्कृति के निर्माण के लिए किया गया संघर्ष" इस सघर्ष मे वह इस उपेक्षित समाज के सारे रोग, व्याधि अपने ऊपर लेना चाहते हैं एक सुन्दर सुखद भविष्य के लिए–

" तेरे रोग दोष मैं ले लूं, आ तू आ तो,
झिझक न मेरी छाती सब संभाल सकती है,
तेरे दुख की ताब नही है।मेरे अपने,
अपनों से भी अपने, खुले कंठ से गा तो
नए गीत जीवन के मनसा कब थकती है।
गीतों से आंखों में नये जगा तू सपने।"

त्रिलोचन की कुछ कवितायें इसीलिए लबी हुई क्यो कि यह विवरण के विस्तार में, कलात्मक निष्पत्ति भी एक सुनियोजित सांस्कृतिक रणनीति है। कभी निराला ने 'चतुर चमार' और 'बिल्लेसुर बकरिहा ' लिखकर गद्य मे जिस सर्वहारा कला का प्रस्ताव दिया था, नागार्जुन की हरिजन गाथा ओर त्रिलोचन की 'नगई महरा' कविताये उनका अनुमादन थी ।

त्रिलोचन की ये लम्बी कवितायें और उनकी छोटी कवितायें भी एक सम्पूर्ण आख्यान हाने के साथ भरतीय समाज के ढॉचे मे जो सर्वहारा कहे जा सकते हैं, उनकी प्रभावशाली चारित्रिक अभिव्यंजना है। स्पष्ट है उनकी ये कवितायें संवेदनात्मक ज्ञान के नपे तुले आकार मे शिल्प रूढि का अतिक्रमण है, बिंब के विचार मे प्रासगिक पर्यवसान जो कुल जमा मानवीय सुख–दुख से सम्बन्धित हैं। ताजगी और नयापन लिये इन कविताओं की विशेषता है इनकी संवेदनात्मक ज्ञान निर्भर सरचना का विचारों मे स्तब्धकारी पर्यवसान तय है कि इन कविताओ का बिंब विचार का अनुपूरक और 'निश्चय कथन' तार्किक संगीत से निर्मित है। कृषक , श्रमिक जीवन, सामान्य जन और उनके चरित्रों को उभारने वाली ये कवितायें इस सारे जीवन से वहन आंतरिक संलग्नता प्रकट करती है और जन जीवन से अपनी अंकुठ सिधरता भी सिद्ध करती है।

" मैने उनके लिये लिखा है, जिन्हे जानता हू,

जीवन के लिए लगा कर बाजी जूझ रहे हैं,

जो फेके टुकडो पर राजी कभी नही हो सकते हैं,

मै उन्हे मानता हूं , आगामी मनुष्यताओ का निर्माता ।"

त्रिलोचन इसीलिए विश्वास करने योग्य कवि हैं। त्रिलोचन लिखते और कहते हैं, उन्होने वैसा ही आम आदमी का जीवन जिया है। उनकी कथनी और करनी मे भेद नही है।

त्रिलोचन ने अपने को जनतांत्रिक बनाया और बेहद जनतांत्रिक होना इनकी प्रगतिशीलता का मुख्य आधार है। जनता की अज्ञानता को पहचानने के बाद भी त्रिलोचन गर्व से कहते हैं – " मै उस जनपद का कवि हूँ , जो नंगा , भूखा और दूखा है। " जनता को प्यार करने वाले , उसका सम्मान करने वाले और उनकी संघर्षशीलता मे साथ देने वाले कवि त्रिलोचन मानते हैं कि जनता कभी पराजित नही होगी । संघर्षों के बीच जूझती जिन्दगी को भीतर से प्यार करने वाले त्रिलोचन अद्वितीय है।

" वह उन कवियों की याद दिलाते हैं जो जनता के बीच रहते थे , एक बस्ती पहुँचकर उसे अपनी कविता सुनाते थे ,चावति सिद्धान्त था पालन करते थे, जब उनकी मुक्त दार्शनिक चेतना को पुरोहित वर्ग के धर्मशास्त्र ने दबोच न लिया था , जब भू–स्वामी वर्ग ने उनकी प्रतिमा खरीदकर उन्हे अपना चाटुकार न बना लिया था। जिस ज्ञानाग्नि से मय दुगध हुआ, वह दार्शनिक कवियों की देन है, शर्मशास्त्रियों की देन नही है । यात्रा , पथ , पथिक , मंजिला इन सब पर बहुत कवियों ने लिखा है, त्रिलोचन की कविता मे यं अलंकारो की तरह नही हे, प्रतीक नही है। वे चलने के भौतिक श्रम से सम्बद्ध हैं"– १

" राह बहुत लम्बी हो जाती हे जब चलते

चलते दोनो पैर भर उठे और उठाना

उनको भारी लगने लगे । "–२

" त्रिलोचन की कवितायें पढते समय जो बाते सबसे ज्यादा हम पर प्रभाव छोडती है वे हैं गति (चाहे वह मनुष्य की हो या प्रकृति के किसी अश की) पर उनकी निष्ठा, मोह और दलित जन से और ऊपर उठने के जीवट से उनका लगाव । इसी कारण ऊपर–ऊपर सहज और शान्त दिखने

---

१ – (रामबिलास शर्मा – सप्तरग और प्रगतिशील कविता की वैचारिक पृष्ठभूमि)

२ – (फूल नाम है एक पृ० ६६)

वाली उनकी पंक्तियां अपने अन्तर्वस्तु मे गहरी हलचल और बेकली से भरी होती हैं। उनकी सवेदना घटना के , हृदय के , मनोजगत् के , चाहे जितने छोटे टुकडे को हमारे सामने रखे , अपने बोध की ब्याप्ति से वह उस टुकडे से सम्बद्ध सभी दूसरे मनस्तत्व , सच्चाइयॉ और अवधारणाये हमारे मन मे उद्‌भाषित करने मे सफल हो जाती हैं। अपनी प्रगति को कलात्मक (कलावादी अर्थो मे नही), रूपाकारो (रूपवादी अर्थों मे नही) मे , सक्रिय गतिमान भावार्थों मे ढालने और उसमे व्यापक सामाजिक आशय समोने की यह अद्वितीय प्रतिभा त्रिलोचन जी मे बहुत पहले आ गयी थी– जब वे वासुदेव सिंह थे – धरती की कविताओ के मर्मस्थ ढोते समय ही–"१

त्रिलोचन की कविताओ का अपना एक जीवन्त सम्पूर्ण संसार है और वह बेशक त्रिलोचन का तैयार किया गया ससार है। वे इसमे प्रवेश करते हैं और हमे उसके बारे मे बताते हैं। इसे तामीर करने मे निश्चित रूप से एक लम्बा समय उन्होने गुजारा हैं। इस तरह से वह उनकी पहचान बन चुका है। यहां एकदम जानी–पहचानी वस्तु से लेकर नितात नयी चीज को वे अपनी कविता से जोड़ते हैं , इस तरह कोई मामूली और इस्तेमाल मे आ चुका प्रतीक उनके यहां उनके अपने मुहावरे मे ढलकर नया होता है। ऐसा इसलिये भी हुआ है , कि अपनी भाषा , अपने आस–पास की भाषा अपने पात्रों की भाषा की गहरी पहचान उनके यहां दिखती है और तब कविताओं के बारे मे उल्लेाित यह तथ्य और सचहोता जान पड़ता है कि अपनी प्रतिबद्ध चेतना की जडता की तरफ न ले जाते हुये त्रिलोचन उसे अपने समय के कलात्मक मूल्यों से जोड देते हैं। वह जो अनुभव करते हैं– वह जो उनके अंतस् मे समाया रहता है– कविता की शक्ल मे ढलने के बाद नितोत निजी नही रह जाता । तमाम निजत्व के बावजूद क्योंकि वह एक साझे अनुभव के आधार पर लिखते हैं –

" बाधाओं के सममुख थक कर बैठ न जाना
तुम मनुष्य हो , मनुष्यता का यह बाना
करते ही जायेंगे उसको जो ठाना है। अंतिम क्षण तक।"–२

यह साझा अनुभव जीवन और उससे जुडे तमाम प्रश्नो के उत्तर की तरह लिखा गया होता है। स्पष्ट है कि त्रिलोचन के यहॉ के आत्म का बर्हि से सीधा संघर्ष – जीवनवादी दृष्टि के चलते

(सोमदत्त – त्रिलोचन – पूर्वग्रह ३६–४०)

(अनकहनी भी कुछ कहनी है – पृ० ३६)

नही है। यदि यहाँ संघर्ष है भी तो पृथ्वी को बचाये रखने की कोशिश मे हैं।

वर्तमान मे अमानवीय व्यवस्था एवं स्थितियो मे उनका बिल्कुल विश्वास नही है। " सडी व्यवस्था के विरूद्ध विद्रोह के लिये मै ललकार रहा हूँ उस सोई जनता कों ।"–१

त्रिलोचन अपनी कविताओं मे जिस राजनैतिक संवेदना और इस रूप में समाज की राजनीतिक विडम्बना का चित्रण करते हैं । यह विडम्बना अपनी पूरी विद्रूपता के कारण लोक गाथा बन जाती है। त्रिलोचन की रचना प्रक्रिया को समझने के लिये यदि कुम्हार और उसकी चाक के निर्माण प्रक्रिया को जानना जरूरी हैं , तो उतना ही जरूरी प्रकृति के रचना ब्यापार को भी समझना होगा । धान की मंजरियां , सरसों के फल , गेहूँ के पौधे और दूब की प्रकृति को भी जानना जरूरी है क्योंकि इनको जानना मनुष्य जीवन की गरिमामय रचनात्मकता को भी जानना है। इसीलिये त्रिलोचन की कवितायें हमारे लिये लोक–शिक्षण का माश्यम भी हैं।

यह लोक समाज अपनी मान्यताओं मे पिछडा और जड़–अभिजात्य समाज द्वारा उपेक्षित और नागर समाज द्वारा नकारा गया समाज है। इसी लोक की उपेक्षा के कारण हम तथा कथित आधुनिक और शहराती होते हुये अपनी परंपराओं से कटते जा रहे हैं।

लोक और नागर का यह द्वन्द त्रिलोचन की कविता मे बहुत बेबाक तरीके से ब्यक्त हुआ है। कवि की चेतनो मे यह सब कुछ छूटता नही है। इसी कारण वह अपने देश और काल को याद रखते हैं। तुलसी , निराला , नागार्जुन को याद करते हैं, अपने जनपद अपनी भाषा को याद रखते हैं और वह सब कुछ जो स्मरणीय है उसे अपने साथ स्मृति मे रखते हैं।

केदारनाथ सिंह कविता के जिस आन्तरिक लय की बात करते हैं, वह त्रिलाचन की कविताओ मे साथ–साथ देखी जा सकती है। उनकी कविता की यह लयात्मकता भारतीय जनता की आन्तरिक चेतना और प्रकृति की लयात्मकता का ही नया उन्मेष है। इसीलिये त्रिलोचन की काब्य बिंब , ऐन्द्रिक संवेदन का एक जरूरी और पूर्ण हिस्सा बनने की हद तक सफल है। आश्चर्य तो यह है कि कवि ऐसे बिंबो की पूरी श्रंखला को रचकर उन्हे यथार्थ के ब्यापक चरित्र वाली दुनिया मे संगत कर देता है। अपनी काब्य अनुभूति की संभावना से यह कविता को बड़ बनाते हैं।

इस प्रकार वर्ग प्रसारण के लिये किये गये त्रिलोचन के इस सृजनशील आत्मसंघर्ष का महत्व ऐतिहासिक है। प्रगतिवादी दौर के मध्यवर्गीय कविताओं का अधिकांश इस आत्मसंघर्ष से नही गुजरा था।

१– (अनकहनी भी कुछ कहनी है पृ० ८७)

उसने स्वयं का व्यक्तित्वोंतरण नही किया था। फलत· जिस शोषित जनता को य कविता सम्बोधित थी , उन्हे भी यह कवितायें सतही ढंग से स्पर्श कर सकी । यही कारण है कि ऐसी कवितायें , शोषित जनता के पक्ष मे लिखी गई कविताये अवश्य थी पर शोषितजनो की कविता नही थी । कवियों द्वारा यह सम्भवत· वर्गीय सस्कारों की सीमाओ के कारण होता था कि सर्वहारा की दयनीयता का चित्रण कई बार इस उद्देश्य से किया जाता था कि पाठकों के प्रति सिर्फ दया उत्पन्न की जा सके। लेकिन त्रिलोचन सिर्फ यह नही कहते इससे आगे बढ़ कर वह उस जीवन मे सहभागिता करते हैं और इस प्रकार एक ठोसजमीन का पुष्ठ धरातल वंचितो के लिये तैयार करते हैं। स्पष्ट है यह खामख्याली वाली नारेबाजी, और धत तेरे की करने वाली कविता न होकर अपनी पक्षधर भूमिका को खूब समझने वाली कविता हैं।

" हमने बढकर उन लोगो की रोटी छीनी
जा चुपचाप खा रहे थे , जनता के हामी
बनते थे । केवल इनको उनको उकसाया
अपना काम बन गया । बडे जतन से बीनी
है जाली हमने जालों की । अब आगामी
भय समाप्त है, स्वर्ग नरक तक अपनी माया।"–१

त्रिलोचन की कविता व्यापक सहानुभूति मे परिणत सशक्त मानवीय संकल्प की कविता है जिसमे चतुराई का कौशल नही बल्कि जबर्दस्त नैतिक मूल्यानुभूति है।वे इसलिये भी महत्वपूर्ण हैं क्योकि ये सामान्य जन की सामान्य समझ की असामान्य कविता है जिसमे " कवि की अभिव्यक्ति बिना बौद्धिकता के मुलम्मो के ही खरा सोना बनकर चमक उठा है। उसकी अनुभूति की वास्तविकता की चोट से उत्पन्न होने वाले विचारस्फुलिंगो मे दग्ध करने की शक्ति है। उसकी पंक्तियों मे बाहरी जगत्की खरोचों से बुलबुला उठने वाले मन की संवेदना की तीव्रता है।"–२ स्पष्ट है त्रिलोचन की कविताओं मे कहीं बौद्धिक जुगालीपन नही है। वह सहज है और सहज रहकर भी , इस अत्याधुनिक संसार मे अपनी राह के राही हैं–अलमस्त , निर्द्वन्द। उन्हे कोई

---

१ – (फूल नाम है एक –पृ०–२२)

२ – (हरिनारायण व्यास – 'दिगन्त'–समीक्षा के संदर्भ मे–विवेक के रंग–संपा०–देवीशकर अवस्थी पृ० १७४–१७५)

रोक नही सकता। उन पर कोई हँसता है तो हँसे। ''डर नही है। हँसा जाऊगा।'' बडे ही विदग्धतापूर्ण तरीके से इस पूरे प्रसंग को राधावल्लभ त्रिपाठी ने बड़ी विदग्धता से इसे बताया है। इसीलिये '' स्मृति मति और प्रज्ञा की जाग्रत अन्विति के कारण त्रिलोचन कविता के 'ऊचाए हॉथ'। से ऊँचाइयॉ नापते हैं, जो सहजगम्य नही हैं। स्मृति के कारण त्रिलोचन मे परम्परा के प्रति कृतज्ञता का भाव है, वे सस्कृत कवियो की उस परम्परा को लेकर चलते हैं, जहॉ कवि अपने से पहले के उन बड़े कवियों को प्रणाम करके ही रचना मे प्रवृत्त होता था । कालिदास और तुलसीदास दोनो के प्रति कृतज्ञता त्रिलोचन ने ज्ञापित की है—कही शिप्रावात को अपने मे समो लेने की बात कहकर तो कही 'तुलसी बाबा भाषा मैने तुमसे सीखी' कहकर ।

****

तुलना (विचारधारा)

शमशेर की कविता में यथार्थ के छोर स्मृति और कल्पना मे बंधे हुए हैं। वह स्वप्न देखती हुई कविता है। १८५५ मे प्रकाशित कहीं बहुत दूर से सुन रहा हूँ, उनकी कविता के संग्रह में ढेर सारी ऐसी कविताए जो उनके तमाम जानी पहचानी आहटों का सग्रह है। ये आहटे कैसी थीं और भले ही इसके बारे मे शमशेर चुपचुप से हो पर उस इच्छित और सम्भावित यथार्थ का स्वप्न हमेशा बचा रहा। उनकी कविताओ में प्रेम के तकाजे है तो क्रांतिकारी आकांक्षा के गठजोड भीहैं। जीवन के अन्तर्विरोध ा है तो कुछ पाने की जद्दोजहद भी: एक बड़ी उथल-पुथल के बीच लिखी गयीं इन कविताओं में यह उथल-पुथल इसलिए है क्योंकि वह एक जिम्मेदार कविता स्वप्न देखने की भूमिका है। इसलिए शमशेर की कविता में सहज ही यहां काव्यात्मक संवेदना के अभ्यास प्राप्त होते ही हैं।

सम्भवतः यही कारण है कि अति प्रचलित और अनाधुनिक माने जाने के बावजूद शमशेर बहादुर सिंह रेहटरिक कविता को इसका एक मुलभूत गुण मानते है। वही 'रेहटरिक' जिस पर मुक्तिबोध सरीखे कवि की ज्यादातर कविताओं का विचलित करता हुआ स्थापत्य निर्मित होता है। एकालाप ''रेहटरिक'' का स्वभाव है इसलिए हम देखते है कि मुक्तिबोध से लेकर कहीं कहीं धूमिल राजेश जोशी और पंकज सिंह तक एकालाप का यह स्वर- कहीं पूरे समाज और सभ्यता को, तो कही एक पूरी पीढ़ी को क्रंदन की तरह ऊंचा उठाता जाता है। मुक्तिबोध के बारे में आलोचकों ने प्रायः

कहा है कि वे जीवन भर एक ही कविता लिखते रहे। शायद यह धारणा उनकी रचनाओं में निहित एकालाप के कारण वनी होगी। शमशेर की कवितायें पढ़ते हुए भी ऐसा लग सकता है कि उनमें एक यातना बार-बार याद की जाती है। एक दुख बार-बार बजता है, एक स्वप्न बार-बार देखा जाता है लेकिन यह एक संरचनात्मक अवस्थिति है शब्दों की सतह पर शमशेर की कवितायें मानों इस वात की गवाही हैं कि शब्द जितना कहते हैं उससे अधिक अनकहा रह जाता है। शब्दों के पास ही खामोशी हमेशा घुटनों के वल बैठी रहती है। जो अकथ रह गया, उसका बयान संभव नहीं। कविता में केवल उस अकथ के चारों ओर के 'स्पेस' को रचा जा सकता है। शमशेर कविता में किस रहस्य को घेरना चाहते हैं? वे किस अकथ की गवाही देने को आतुर हैं? शायद उसकी जो हमारे जाने बूझे और तयशुदा सच के बाहर खड़ा है या वह जो हमारी बनी बनायी चाहतों का अतिक्रमण करना चाहता है। वह जो इस दुनिया की तमाम-तमाम साधारण वस्तुओं की सत्ता के भीतर और उनके.इर्द-गिर्द पसरा हुआ है। पहली दृष्टि में यह बात किसी अमूर्त रहस्यवादी कवि की लगती है पर ऐसा है नहीं। शमशेर इसी ठोस दुनिया के कवि हैं। उनकी कविता रोजमर्रा की दुनिया की इन्हीं साधारण वस्तुओं को साहचर्य की लंबी श्रृंखलाओं में इस तरह एक-दूसरे के साथ रख देती है कि उनका अनछुआपन और उनकी कोमलता यकायक मायावी हो उठती हैं, हर अलग-अलग पर्डा वस्तु जैसे दूसरी वस्तु को पुकारती सी लगती है।

स्मृतियाँ कामनाये, पीड़ा और तड़प इन साधारण वस्तुओं के गुह्यतम इलाकों का आलोकित कर देती है। इस बेहद सकट मे भी जीने और खाने की सबसे बुनियादी बातों की तरफ वह खड़े दिखायी देते हैं। निर्वासन अकेलेपन और थकान से जूझते हुये उन्हें हमेशा यह लगता रहा कि कवि किसी भी आततायी से ज्यादा शक्तिशाली है क्योंकि वह रच सकता है। निरंतरता और सातत्य की कामना शमशेर कविताओं का स्थायी भाव है। प्रतिरोध की सम्भावनायें जब सीमित मान ली जाती हैं तब आंतरिक स्त्रोत कैसे मनुष्य को झुक जाने और समर्पण कर देने से रोकता है शमशेर की कवितायें इसका बयान हैं। इनमें विस्थापन, टूटन और हताशा के समझ-हिस्सेदारी मूलभूत-करुणा और मनुष्य की नियति का एक जिद्‌दी आशावाद दिखाई देता है।

जबकि नागार्जुन शुरू से चुनौती स्वीकार करने वाले और चुनौती देने वाले कवि रहे हैं। इन दोनों पक्षों में मैं ज्यादा महत्वपूर्ण चुनौती स्वीकार करने वाली स्थिति को मानता हूँ। नागार्जुन ने कविता के भीतर और बाहर दोनों जगह की चुनौतियाँ स्वीकार की। समाज में गरीबी, शोषण, सत्ता, तंत्र का आतंक और अत्याचार समाज के सबसे गरीब लोगों के उत्पीड़न की दिशा, इस दिशा-दशा से लड़ने के लिए उभरने वाली शक्तियाँ, गाँव का जीवन, गाँव का सौन्दर्य, समाज में फैली रूढ़ियाँ व अन्धविश्वास, फसलों का सुनहला संसार, नयी पीढ़ी की शक्ति की पहचान, नई पीढ़ी से हमेशा रू-बरू होने की कोशिश आदि आदि नागार्जुन की कविता के भीतर है। उन्होंने लोक-जीवन और सामान्य जीवन के व्यापक स्तर पर फैली उन तमाम वस्तु गत चुनौतियों को स्वीकार किया जिन्हें उठाने में उनके कई समकालीन विचलित हो जाते थे। उन्होंने पश्चिम को छोड़ कर, कहना चाहिए कि एक तरह से उनकी उपेक्षा करते हुए व्यापक भारतीय जनता के जीवन और उसकी समस्याओं पर अपने को केन्द्रित रखा।

उन्होंने अपनी विशाल जनता के जीवन को ही जिया और उसके बीच रहे। उन्होंने जनता की तरफ कभी पीठ नहीं की। काव्य की इस भीतरी चुनौती को उन्होंने हर स्तर पर पूरी तरह स्वीकार किया और यह अकारण नहीं है कि उनकी कविता आम जनता तक सीधे प्रवेश पाती है, उसका एक व्यापक जनाधार हैं।

उनकी कवितायें जनता के क्रान्तिकारी तेवर को केन्द्रित करते हुए समाज परिवर्तन की कविता है- "कोर्ट की दीवार पर। चुपचाप जो पोस्टर चिपका गया। वह कौन था? ....।" जमींदारों के हृदय में घुस गया है बाघ। बस चले तो बेच कर वह भूमि-धन-पशु दास-दासी बाग पोखर चौर-चाचार। भाग जाये फारमूसा।" नागार्जुन किस तरह समय व राजनीति के परिवर्तन पर ध्यान रखते है और उसमें विश्वास जाहिर करते है साथ ही उनका यह विश्वास और परिवर्तन की इस आहट को आम आदमी भी किस तरह पकड़ता है तथा उसकी जरूरत समझता है वह आदमी इस बात को समझता है। जो एक तरह से अनपढ़ है पर जिसके मन में समाज परिवर्तन की एक आकांक्षा हिलोरे ले रही हैं। नागार्जुन आम जनता की इस आकांक्षा को पकड़ते है, राजनीति की इस परिवर्तन को पकड़ते है और एक रचनाकार की सामाजिक भूमिका में खड़े होकर इस कविता की रचना करते है। अनेकानेक तत्सम शब्दों के होते हुए भी यह कविता अपने निहितार्थ आम जनता तक ले जाती है। यानि नागार्जुन के सामने हमेशा व्यापक जनता-तथा सुखद समाज परिवर्तन की आकांक्षा और रचनाकार की भूमिका स्पष्ट रही। नागार्जुन ने हमेशा

सत्ता के प्रति एक आलोचनात्मक रुख रखा है। उनका पूरा काव्य इस रुख से भरा हुआ है। शायद हिन्दी के वह अकेले कवि है जो ''कवि-सम्मेलनी'' न होकर भी अपनी कवितायें सबसे ज्यादा जनता को सुनाई है, चाहे वह कोई मीटिंग हो, सभा हो, नुक्कड़ सभा या नुक्कड़ काव्य पाठ हो। कविता के उनके पाठ और प्रस्तुतिकरण में हमेशा एक व्यापक क्षोभ तथा व्यंग्य-विद्रूप दिखाई देता है। इस दृष्टि से उनकी कवितायें:-

१. नाजियों के बाप। जी हां, आप गोलियां चलवा चुके हैं अब नेहरू का रुख रहे है नाप....। अजी सुनिये, रक्त रंजित क्रान्ति की पदचाप (नाजियों के बाप) ।

२. बाहर निभा रहे हो अपने पंचशील दसशील । ठोक रहे हो तरूणों के सीने पर कील। अजी, तुम्हारे दिल दिमाग की खूबी कौन बताये। हे अद्‌भुत नटराज, तुम्हारी माया कहीं न जाय।''(नेहरू)

अपने हास्य-व्यंग्य, नाटकीयता या गम्भीरता के साथ वे सत्ता पक्ष पर प्रहार करते है और उसकी जन विरोधी, निजी सुख-चैन की दुनिया बनाने के षडयंत्र को स्पष्ट करते है। इस दृष्टि में उनकी अधिसंख्य कवितायें राजनीतिक है, यही वैचारिकता का संबल है जो प्रहरी की तरह हम तक पहुंचता है।

त्रिलोचन - किसी भी आंदोलन के यहां तक की प्रगतिशील आंदोलन के केन्द्र में भी कभी नही रहे। चौथे या पांचवे दशक के प्रमुख प्रगतिशील कवियों में उसके समानध-र्मा कुछ अन्य कवियों का जिक्र तो बार बार किया जाता था, पर त्रिलोचन का बहुत कम। 'ताप के ताये हुए दिन' की कविताओं को पढ़ने के बाद यह बात साफ हो जाती

है कि ऐसा क्यो है ? असल में त्रिलोचन एक ज्यादा गहरे अर्थ में प्रगतिशील है और अक्सर उनकी प्रगतिशीलता सतह पर दिखाई भी नही पड़ती। उनकी कविता एक शान्त, गम्भीर मैदानी नदी की तरह है, जिसमें उद्वेलन हमेशा कहीं बहुत गहरे होता है। सतह की खामोशी से पाठक कई बार धोखा खा जाता है उनकी 'झाथस' कविता इस तरह शुरू होती है-"आठ पहर की टिप्-टिप्। सड़क भीग गयी है। पेड़ों के पत्तों से बूदें। गिरती है टप्-टप्। हवा सरसराती है। चिड़िया समेटे पंख यहां-वहां बैठी है। बारिश के इन स्थिर और स्थानिक चित्रों के बाद कविता में अचानक एक मोड़ आता है-"बादलों ने हलकी अगड़ाई ली। एक ओर चमक जरा बढ़ गयी। हवा नये आशुओं से यों ही बतियाती है। उनका सिर हिलता है। फूल खिल-खिलाते हैं।

इस कविता में आये विशेषणों पर ध्यान दे तो बादल की अगड़ायी 'हल्की' है और उससे पैदा होने वाली चमक भी 'जरा-सी',। कविता का शीर्षक भी 'झापस' (लगातार होने वाली हल्की बारिश) है,झंझावात या मुसलाधार बारिश नहीं है। पर सतह के नीचे झाक कर देखने पर वस्तुओं के सम्बन्ध में कई बारीक स्तर खुलते दिखाई पड़ेगे। और हम पायेगे कि पूरी कविता धीरे-धीरे एक खास दिशा की ओर बढ़ रही है। वस्तुओं के संबंध के भीतर से उभरने वाली इस दिशा का त्रिलोचन की जीवन दृष्टि से गहरा संबंध है। उन्होंने इस दृष्टि को अपने और अपने समय के जटिल संघर्षो के भीतर से अर्जित किया है। यह मार्क्सवाद तक पहुंचने का त्रिलोचन का अपना बनाया हुआ रास्ता है, जिस पर वे निहायत सधे हुए कदमों से धीरे-धीरे मगर पूरे विश्वास के साथ आगे बढ़ते है। त्रिलोचन के लिए मार्क्सवाद कोई अमूर्त

विचार-दर्शन नहीं बल्कि एक सच्चे कवि की छटपटाहट और यातना है, जिसे उनकी अनेक कविताओं-खास तौर से सॉनेटों और लम्बी कविताओं में देखा जा सकता है।

'नगई महरा' त्रिलोचन की एक ऐसी कविता है, जिसकी हिन्दी में पर्याप्त चर्चा हुयी है। यह एक लम्बी और वर्णानात्मक वाहयतः इस कविता के मंच पर कुछ भी नाटकीय या महत्वपूर्ण घटित होता हुआ नहीं दिखाई पड़ता पर सीधे-सपाट शब्दों के पीछे एक समूची दुनिया है जहॉ बिना किसी घोषणा के चुपचाप एक पूरा युद्ध लड़ा जा रहा है । बहुत कुछ होरी के जीवन युद्ध की तरह। विलोचन की कविता में भाषा के विविध धरातल मिलते हैं पर नगई महरा की जमीन पर आते ही जैसे उनकी भाषा अपने घर में आ जाती है फिर भाषा का सारा वाह्य रचाव यहॉ तक की शब्दों का मुखर संगीत आवेश और तनाव भी. ...... अपने......... आप खत्म हो जाता है।

नगई खांची फॉदे बैठा था। हॉथों में वही काम। ऑखे उन हाथों को । हथवट चिताती हुयी। खॉची में लगी एक ऑख मुझे भी देखा। और कहा वैठो उस पीढ़े पर। . ...अच्छा बॉच लेते हो रामायन। तुम्हारे वावू कहते थे। अब कोई क्या कहेगा । उनकी भीतर की ऑख खुली थी। सुर भी क्या कंट से निकलता था। जैसे असाढ़ के मेघ की गरज ।

त्रिलोचन के शिल्प की खास बात यह है कि किसी भी वस्तु का प्रतीकवत् प्रयोग नहीं करते । अपनी कविता में, वे अपनी सारी काव्यात्मक जिम्मेदारी के गद्य उसे 'वस्तु' ही बने रहने देते हैं। वस्तुंतः इसका सम्वन्ध भारतीय साहित्य की रूप सम्बन्धी अवधारणा एक विशिष्ट परम्परा से है, जिसके व्यवहारिक उदाहरण हमें अपनी लोक- कविता और

क्लासिकी कविता में एक साथ मिल सकते हैं। यह परम्परा एक खास ढंग से प्रेमचन्द के कथा साहित्य में भी जीवित है। वहाँ भी वर्णन के क्रम में आने वाली वस्तुओं के प्रतीकों में बदल डालने की जल्दी कहीं नहीं दिखाई पड़ती। 'नये पत्ते' और 'बेला' की कुछ कविताओं में निराला ने इसी तथ्य पर कला का प्रयोग किया है। 'नगई-महरा' में त्रिलोचन में, कविता के सारे प्रलोभनो को एक तरफ रखकर और पूरी तरह अकाव्यात्मक हो जाने का खतरा उठाते हुये भी, इस पद्धति का अत्यन्त सधा हुआ इस्तेमाल किया है। वे गाँव-गवंईके ऊपर कथा वाचक की तरह एक-एक दृश्य और घटना को सामने लाते जाते हैं और एक अद्‌भुत धैर्य के साथ मानव इस बात का इन्तजार करते हैं कि तथ्यात्मक तफसीलों और ऊपर से तनाव युक्त दिखने वाला यह सारा वर्णन धीरे-धीरे परस्पर गुम्फित होकर एक अर्थपूर्ण रूपक में बदल जाय। 'नगई- महरा' की कला का यही रहस्य है और वेसक कवि की यथार्थ दृष्टि से उसका कोई न कोई रिस्ता होना चाहिए । एक तरह से त्रिलोचन के लगभग पूरे काब्यों में-फिर वह गीतात्मक हो चाहे वर्णनात्मक-उनकी कला का यह बुनियादी सांचा किसी न किसी रूप में हमेशा मौजूद रहता है। संग्रह की पहली कविता 'नदीःकामधेनु' से लेकर अन्तिम कविता 'छोटू' तक इस ठेठ वर्णनात्मक तकनीक के कई रंग देखे जा सकते हैं । एक ऐसे युग में जब कला, अपने सिकुड़ते हुये पाठक वर्ग की रूचि के अनुरूप निरन्तर सूक्ष्म और विशेषीकृत होती जा रहा हो, त्रिलोचन जैसे कवि का वर्णनात्मकता की सामान्य और लोक

परक पद्धति को अपनी काब्य कला का बुनियादी सांचा बनाना एक जोखिम का काम है और कवि को लम्बे समय तक समकालीन कविता की पृष्ठ भूमि में रहकर उसकी कीमत भी चुकानी पड़ी है। वस्तुतः उनकी कवितायें एक संघर्षरत कवि के अनुभव के ताप से तायी हुयी कविताये हैं।

असल में जनपक्षधरता की लम्वी राह में त्रिलोचन अकेले नहीं हैं। सुविधा भोगी व्यवस्था के प्रचलित जिन सांचों को वह अस्वीकार करते हैं उनके साथ नागार्जुन भी उन्हें अस्वीकार करते हैं । जीवन यात्रा में जैसे धरती आकाश उनके साथ हैं, वैसे ही तुलसी, निराला और नागार्जुन भी उनके साथ हैं।

यह सही है कि त्रिलोचन ने कलागीत नहीं लिखे हैं जैसे महादेवी वर्मा आदि ने लिखे हैं लेकिन देखना यह है कि उनकी क्षमता कलागीत लिखकर प्रमाणित तो होती, प्रयोजन धर्मी होने से रह जाती । एक बड़े उद्देश्य की सिद्धि के लिए प्रतिभाशाली कवि जब स्वान्तः-सुखाय न रचकर लोकहित को प्राथमिक महत्व देता है, तब वैसा ही लिखता है, जैसा त्रिलोचन ने लिख है।

तत्समनिष्ठ लेकिन निरलंकृत प्रतीक और आयास विम्वविधान का भी निषेध करने में समर्थ त्रिलोचन के गीतों की भाषा वर्णनात्मक काव्य के उपयुक्त होने पर भी बेजान नहीं है। उन्होंने कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तलम् से भाव ग्रहण करते हुये एक गीत लिखा हैः-

''कल्पना रूप धरकर आयी ।

रूप में मोहनी भर लायी ।

भाव स्थिर जननान्तर सौहृद।

वाणी निर्जन में लहर गयी।

रमणीय रूप मधु गीत लहर।

पर्युत्सुक मन में गये ठहर।''

प्रकृति गीतों के अतिरिक्त त्रिलोचन ने ऋतु गीतों की भी रचना की है। उनके ये ऋतु गीत बसन्त और पावस वर्णनों के क्रम में रचे गये हैं। वसन्त के प्रति वे आकाक्षा से भरे हैं। स्वागत है, और अपनी भावनाओं का प्रकृति के उपादानों पर प्रक्षेपण करते हुये त्रिलोचन उसे भी ऋतुराज के स्वागत में पलक पांवड़े बिछाये चित्रित करते हैं । -बरखा मेघ मृदंग थाप पर। लहरों से देती है जीव। रिमझिम-रिमझिम नृत्य ताल पर। पवन अथिर आये दादर, मोर,पपीहे बोले, धरती से सोंधे स्वर खोले मौन समीर तरंगित हो लो। (सबका अपना आकाश)

त्रिलोचन के इन गीतों में नवगीत की कृत्रिमता नहीं है। आधुनिकतावादी प्रश्नाकुल मुद्राओं से बचकर स्थिर चित्त से त्रिलोचन नेआत्मा का राग अलापा है। उनकी काव्यभूमि किसान-मजदूर के जीवन से सम्बद्ध रही है, उसकी नैसर्गिक जीवन- चर्चा और परिवेश का त्रिलोचन ने सहज चित्रण किया है यह उन कवियों में से नहीं है, जो शहर में स्थायी रूप से बसते हैं और प्रगतिशीलता की होड़ में यदा-कदा गाँव का स्मरण कर लेते हैं।

वैयक्तिकता

वैयक्तिकता की तलाश कवि के व्यक्तित्व की तलाश है ? क्या कवि का सामान्य जीवन मे दिखने वाला व्यक्तित्व ही उसका रचनात्मक है? क्या वैयक्तिकता का अर्थ कवि की व्यक्तिवादिता है? क्या उसके अह की बनावट और उसकी अभिव्यक्ति स्वरूप को हीएक ग्रथ में खोजा गया है? क्या वैयक्तिकत का अभिप्राय मनोविज्ञान की भाषा में व्यक्ति के उन गुणो को रेखाकित करना है, जो उसे अन्य व्यक्तियो से अलग करते है? वैयक्तिकता एक रचनाकार के सृजन का भावात्मक पक्ष है या हक विवशता? इन सारे प्रश्नों का सीधा और सरल उत्तर देना सभव नही हैं

कवि का भी एक निजी जीवन होता है, जिसमे उसका प्रेम उसके सघर्ष, उसकी पीडाये उसके संकल्प विकल्प आदि होते हैं। पार्थिव जीवन की और शर्ते कवि को भी उसी प्रकार पूरी करनी होती है जैसे समाज के किसी अन्य व्यक्ति को। जीवन के इन अनुभवो और अनुभूतियों से वह अपने रचना कर्म के स्तर पर कितना जुडा होता है और कितना उनसे मुक्त होकर सृजन रत होता है यह निश्चित शब्दो मे बता पाना संभव नहीं है। ऐसे भी कवि है जो अपने रचनात्मक व्यक्तित्व को अपने सामान्य व्यक्तित्व से काफी मुक्त कर सके है। ऐसालगता है कि जब वे सृजन की भूमि पर अवस्थित होते हैं तो अपनी चेतना को एक नये लोक में सक्रमित होकर वे रचते है। परन्तु जितना ऐसा लगता है उतना वे अलग होते नहीं। कहीं न कहीं उनका अपना जीवननुभव उसमें भी छन–छनकर विशिष्ट बिम्बों और प्रतीकों में ध्वनित होता रहता है।

कवि की अभिव्यक्ति का एक धरातल ऐसा भी है जहां वह सीधे अपने प्रेम को, अपने संघर्ष को अपनी पीडा को अपने संकल्प को अपनी रचना में व्यंजित करता है। वह कोई आवरण या वहाना स्वीकार नहीं करता। कवि की आत्माभिव्यक्ति की यक बेचैनी छायावादी कविता से ही साफ दिखाई पडने लगती हैं । इस ग्रंथ में कवि की वैयक्तिकता की एक स्पष्ट पहचान उसकी ऐसी आत्म–परक रचनाओं के माध्यम से की गई हैं।

वैयक्तिकता और व्यक्तिवादिता मे भेद किया गया है । वैयक्तिकता कवि की अपनी छवि को चमकाने कीप्रक्रिया का अग नहीं है न वह मात्र अकेलेपन, अजनवीपन अथवा अपने घोघे में बंद कीड़े का आध्माग्रह ही है। वह तो वह सौरभ है जो प्रत्येक पुष्प को एक दूसरे से अलग करता है। कवि अपनी अनुभूति को ही रूपांतरितकरता हैं अपने माध्मय से ही वाह्य को भी व्यंजित करता है। अपनी अनुभूतिधारा के प्रति असमर्पित रहते हुए वह कवि का सच्चा कर्म कर ही नहीं सकता। इसलिए

तथाकथित जानकारी मान्यता वाले कवि भी अपनी सच्ची और मार्मिक अनुभूतियो को व्यक्त करते समय उतने ही वैयक्तिक प्रतीत होते हैं, जितने अन्य व्यक्तिवादी कहे जाने वाले कवि।

प्रत्येक कवि अपने सस्कार अपनी प्रतिभा और परिवेश से अपने सयोग की पृष्ठभूमि के आधार पर अपनी एक स्वतंत्र रचना–दृष्टि विकसित करता हैं।

कवि की वैयक्तिकता को रेखाकित करने वाले तत्वो का मूल्याकन करने पर जिसमे काव्य सौन्दर्य, बिम्ब–विधान या भाषिक संरचना प्रमुख है ध्यान केन्द्रित करने पर कवि के आत्मत्व के अर्त–सबन्द्ध अनेक कोणों से उजागर हो जाते है। इस प्रक्रिया में कवि से कवि तक और युग से युग तक छायाए बदलती जाती हैं असल मे वैयक्तिक बोध के स्तर पर कवि की रचनात्मकता के समक्ष सबसे तीखी चुनौती लोक एवं व्यक्ति की चेतना के बीच का अन्त सबंध होता है।

कवि अथवा साहित्यकार की रचना उसके वैयक्तिक चिन्तन अनुभूति एव संवेदनाओ का ही व्यक्त रूप होती है। इस दृष्टि से ऐसे साहित्य की विशेषकर काव्य की कल्पना ही नही की जा सकती, जिसमे उसके रचनाकार का व्यक्तिगत पूर्ण रूप के ओत–प्रोत न हो। कहा जा सकता है कि निर्वयक्तिक काव्य का अस्तित्व नही हो सकता।

फिर भी हिन्दी काव्य की लम्बी परम्परा मे वैयक्तिकता के अनेक स्तर और स्वरूप रहे है। कभी–कभी इतिहास के ऐसे कालखण्डों में कविता धारा बही है, जब कवि की अपनी अनुभूति अपनी वैयक्तिक भावनाएं गौण हो जाती है और वह किसी राजपुरुष, किसी नायक, किसी दैवी व्यक्तित्व का यशोगान करना ही अपने काव्यकी चरम उपलब्धि मानने को विवश हो जाता रहा है।

वैयक्तिकता के अतिशय आग्रह के कारण नयी कविता के कवि कविता को आत्माभिव्यक्ति का साधन मानते हैइसलिए उनकी अनुभूति के केन्द्रमें उनका व्यक्तित्व होता है और अभिव्यक्ति के स्तर पर बार–बार कवि अपने मैं को महत्व देते है। नयी कविता के कवि का मै बार–बार अनेक रूपो मे लगभग हर कविता में सामने आता है। कविता में'मैं'की भरमार की यह स्थिति केवल व्यक्तिवादी कवियों के यहां की नहीं है,प्रगतिशील भावधारा के कवियों की कविताओं में भी है। नयी कविता में "मैं" की भरमार को कुछ उदाहरणो से समझा जा सकता है।

मैं अहं का मेघ हूं।" – १

मैं प्रस्तुत हूं

इन कई दिनों के चिन्तन और संघर्ष के बाद वह क्षण जो अब आ पाया है।" – २

---

१ – (नरेश मेहता, दूसरा सप्तक, पृष्ठ १११)

२ – (कीर्ति चौधरी, तीसरा सप्तक पृष्ठ ४७)

यो मैं कवि हू, आधुनिक हू, नया हू

काव्य तत्व की खोज मे कहां नही गया हू" – १

इस अधोमुखी घाटी मे पडा हुआ,

निस्सहायं

मैं एक कुतुबनुमा हू।" – २

इन सबको दो मेरा वह स्नेह,

जिससे मैं वंचित हूं

केवल मुर्दा।" – ३

मैं समाज तो नहीं, न मै कुल

जीवन,

कण समूह मे हू मैं केवल

एक कण: – ४

मैं कनकटा हूं हेठा हूं

शेव्रलेट–डांज के नीचे मैं लेटा हूं

तेलिया–लिबास में पुरजे सुधारता हूं

तुम्हारी आज्ञाएं ढोता हूं।" – ५

नयी कविता में "मैं" की अधिकता के ये थोडे से उदाहरण है। अगर कोई प्रयत्न करे तो ऐसे असंख्य उदाहरण नयी कविता से खोज सकता है। ऊपर के उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि नयी कविता में "मैं" अनेक रूपों में उपस्थित है। व्यक्तिवादी भावधाराके कवियों का "मैं" बाकी दुनियां से अलग रहने में ही अपनी सत्ता की सार्थकता और सुरक्षा समझता है।यहां "मैं" अपनेको 'अहं का बोध' मानता है। (नरेश मेहता) वह क्षण में जीता हैं (कीर्ति चौधरी) वह अपने को नया आधुनिक कवि समझता है और काव्य तत्व की खोज में लीन रहता है।

---

१ (अनाम, नयी कविता, अंक –३)

२ – (मलयज, नयी कविता, अंक – ४, पृष्ठ ६०)

३ – (लक्ष्मीकांत वर्मा, नयी कविता, अंक– पृष्ठ ६२)

४ – (शमशेर कुछ कविताएं, पृष्ठ १७)

५ –(मुक्ति बोध, चांद का मुह टेढा हैं, पृष्ठ १०६)

व्यक्तिवादी धाराके कवियों के विपरीत प्रगतिशील धारा के कवियो मे भी "मैं" उपस्थित है। लेकिन वह सारे जीवन जगत से कटा हुआ निष्सहाय , अकेला और आत्मलीन नहीहै। कही वह विनयपूर्वक अपने को कण समूह में से 'एक कण' मानते हैं। यहां कवि का "मैं" समूह से अपनी सम्बद्धता प्रकट करता है और इतिहास की जीवन्त गति की एक इकाई के रूप अपनी सार्थकता समझता है। मुक्तिबोध की कविता में भी "मै" बार–बार आता है लेकिन हर बार वह खुद को व्यापक जन समुदाय से किसी न किसी रूप में जोड़ने की कोशिश करता हुआ दिखाई देता है। " इन कवियों का रचना संसार वैयक्तिकता तथा सामाजिकता की समन्वित मजूषा है। लेखक अपनें व्यक्तित्व के माध्यम से समाज को साहित्य का रूप प्रदान करता है। साहित्य रचना की भावाकुलता में सर्जक अक्सर सब कुछ भूलजाता है। उसके भीतर प्रसव वेदाना की तरह केवल एक ही अनुभूति उमडती रहती है कि, अपनें को यथासम्भव पूरा का पूरा अभिवक्त कर दे। रचना के समय वह केवल इतना ही सोचता है कि भीतर जो कुछ उमड. रहा है वह सब का सब बाहर आजाये ।" – १

नयी कविता में "मैं" की इस भरमार से छायावादी कविता में "मैं" की स्थिति की तुलना की जा सकती है। इस तुलना का एक कारण यह भी है कि छायावादी कवि भी कविता को स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति मानते थे और अपने व्यक्तित्व की महत्ता के प्रति सजग थे। द्विवेदी युग की कविता की निराकार या अमूर्त सामूहिकता की तुलना में छायावाद का "मैं" अधिक मूर्त जीवन्त सामाजिक और मानवीय दिखाई देता है।

विचार करने की बात यह है कि इस "मै" शैली का मूल स्रोत क्या है? इस स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति मनुष्य या दीन–दुखियों की वेदनाकी आत्मीय अनुभूति हैं। यह आत्मीय अनुभूति कवि को जनता से जोडती है। जनता की जीवन दशा से कवि सच्ची सहानुभूति ही जनता की सद्‌चित वेदना की स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति के लिए कवि को प्रेरित करती है। छायावादी कविता में कवि की सहानुभूति के विस्तार से उसकी स्वानुभूति का भी विस्तार होता है और उसका "मै" भी अधिक व्यापक होता है।

वैयक्तिक अधारणा के इस फलक पर ही यदि आत्मानवेषण की और प्रवृत्ति होता है। यद्यपि नयी कविता मं आत्मान्षण के नाम पर अहं की स्वीकृत अहं की अभिव्यक्ति का आग्रह और अहं काके आस्था की वस्तु के रूप मं स्थापित करने काप्रयास हुआ। लेकिन आत्मान्वेषण के गहरे अमूर्त फुहारने से भरी दुनिया से आगे प्रगतिशील काव्य रूप मे आत्मसंघर्ष थी जो अलग वैयक्तिक मनोभावों की दस्तक प्रस्तुत की गयी उससे कविताएक सार्थक संवाद स्थापित करने में समर्थ हुयी।

१ – (डा० नामवर सिंह – इतिहास और आलोचना पृ० – ५२)

प्रगतिशील भावधाराके कवि वैयक्तिकता को महत्व देते हुए भी उनकी काव्यानुभूति केवल आत्मान्वेषण तक ही सीमित नही कही बल्कि उसमे आत्मसघर्ष गहनता से अनुस्यूतहै। उसका आत्म संघर्ष अपनी चेतना से बाह्य जगत के संबंध का संघर्ष है। अपने व्यक्तित्व की खोज में प्रगतिशील कवि समाज सापेक्ष है समाज निरपेक्ष नहीं। वह अपने आत्म संघर्ष मे भी बराबर व्यापक जीवन जगत से जुडा रहता है। कदाचित् इसी संघर्ष को मुक्तिबोध ने कलाकार का सच्चा सघर्ष माना है। उस संघर्ष मे समाज की उत्पीडनकारी शक्तियो से सघर्ष भी शामिल हैं।

आत्मसंघर्ष का सच्चारूप हमें मुक्तिबोध की कविताओं में मिलता है । अंधेरे में कविता में जो "पद" और 'मैं' के बीच का संघर्ष है वह मुक्तिबोध का आत्मसंघर्ष ही है। उनकी कविताओं मे जो तनाव हैं द्वद्व है वह भी आत्मसंघर्ष का परिणाम है। मुक्तिबोध की कवितायें एक संघर्ष शील कवि की कवितायें हैं । उनका संघर्ष आत्माभिमुख होने के लिए नही, आत्मविस्तार पाने के लिए हैं । उनके संघर्ष मे निरंतर ही उनके सच्चे मित्र शामिल होते हैं । मुक्तिबोध के आत्म संघर्ष में समाज के व्यापकता छोरों का छूने की कोशिश है। उनकी रचनाओं मे अपनी चेतना के तग दायरे से निकालकर संघर्षशील जनता से एकता स्थापित करने वाले व्यक्ति के आत्मसंघर्ष की जटिल प्रक्रिया की प्रमुखशाली अभिव्यक्ति है। और सिर्फ यह मुक्तिबोध तक ही सीमित नहीं, बल्कि मानवीयता को अपना एकीभूत आदर्श मानने वाली समकालीन कवि कार्वैयक्तिक बोध निश्चित रूप से वृहत आवेगों से संयुक्त है। स्पष्ट है भावाग्रह तथा सम्प्रेषणीयता के स्तर पर वर्तमान दौर की कविता पाठक सेआत्मसती करण परजोर देती है।

स्पष्ट है कि भावग्रहण तथा साम्प्रेषणीदता के स्तर पर वर्तमान दौर की कविता पाठक से स्वयं के आत्मासतीकरण पर जोर देती है और काव्यान्वति के साथ–साथ अर्थ के स्तर पर समन्विति पर। वह मनुष्य को एकांगी नहीं बल्कि सर्वांगी नजरिए से देखती है।

****

अध्याय ६ - खण्ड - ख

"शमशेर की कविता मे वैयक्तिक सवेदना"

शमशेर की कवितायें विषय केन्द्रित कवितायें नहीं संवेदना केन्द्रित कविताये है। वे स्मृति के अनुभव से अपनी कविता रचते है। उनकी कविता मे अनुभव सीधे नही आते, बल्कि अनुभव की स्मृति स्वय एक अनुभव हो जाती है। उनकी स्मृतियों मे ढेर सारे दृश्य हैं और कविता इन सबके बीच उस रिश्ते की तलाश है, जो इन सबको अलग–अलग नही रहने देता बल्कि इसे एक "विजुवल" मे बदल देता है। यह चित्रकला की तकनीक है।... .... शमशेर बड़े चित्रकार भी तो थे। यही कारण है कि उनकी कवितायें किसी मामूली से लगने वाले दृश्य को भी इस तरह से खोल देती हैं कि हम चकित हो उठते हैं। **गायें मैली, सफेद, कालीभूरी, पत्थर ढुलके पड़े। पेड स्थित नीख दो पहाड़िया धूम विनिर्मित पावन–१**

यहां शब्द हैं, शब्द में चित्र और है देखने की आंख, जो हमें भी दृश्य दिखाती है। उनकी कविता संवदेना के उस अदृश्य तारों को पकडती हैं जिनके अर्थ और आशय धीरे–धीरे खुलकर हमें आवृत्त कर लेते है। उनके **शब्द** की भंगिमा, संवेदना की तीव्रता, रंगों की गहराई और ख्यालो की लकीरें मिल कर जिस कविता का निर्माण करती हैं उसमे कविता के न सिर्फ वाह्य बल्कि आत्मपक्ष का भी चित्रण हो जाता है।

उनकी कविता वैयक्तिक अनुभूतियों को बेहद सघन तरीके से प्रस्तुत करती है। उनकी कविताओं से गुजरना एक अनुभव होता हैं कवि जैसे अपने मन को उडेल देना चाहता है। जो कुछ भी सामने आता हैं, वह हृदय की गहन आस्था और निष्कलुषता से पोषित एक विशुद्ध आवेग धर्मिता में तमाम चीजों को अपने साथ बहाये ले जाना चाहता है। आस्था सब कुछ को समेट लेना चाहती है। प्रसन्नता और कृतज्ञता तमाम–तमाम चीजों में एक कौतुक एक विस्मय को खोज निकालाना चाहती है। जो वस्तु हृदय से बाहर है। वह हृदय मे आना और उससे एकाकार होना वह दूसरी जगह किसी दूसरी चीच से जुड़ जाना चाहती है। **तुम वह हो। आज मेरे लिए तुम इसकी हद हो। उस बात की हद हो जो मेरे लिए हो–तुम वह मेरी हद हो तुम, तुम मेरे लिए मेरी हद हो, मेरी हद जो तुम मेरे लिए..............–२**

यह अकारण नहीं है कि इन कविताओं में चलने, दौडने उडने बहने की क्रियाओं के असंख्य संदर्भ हैं। यह रचना दृष्टि अधिक से अधिक वस्तुओंको परस्पर "इन्टिग्रेट" करती है। और समग्र दृश्य को

---

१ – प्रतिनिधि कवितायें पृ० ३६ सं० डा० नामवर सिंह

२ – प्रतिनिधि कवितायें पृ० ७८ स० डा० नामवर सिंह

एक अटूट और अखण्ड इकाई के रूप मे प्रस्तुत करना चाहती है।

"अग्रेजी समीक्षा मे कही प्रसंग आता है कि कलाओ का चरम साध्य सगीत की स्थिति को उपलब्ध कर लेना है, यानी रचना में वस्तु और 'रूप' एक दूसरे मे विलीन हो जाये। शमशेर की कविता मे संगीत की मनः स्थिति बाबर चलती रहती है। एक ओर चित्रकला की मूर्तता उभरती रहती है और फिर वह संगीत की अमूर्तता में डूब जाती है। चित्रकला, संगीत और कविता धुलमिल कर उनके यहाँ रचना संभव करते हैं। भाषा में बोलचाल के गद्य का लहजा और लय में संगीत का चरम अमूर्तन इन दोपरस्पर प्रतिरोधी मन· स्थितियों को उनकी कला साधती है।"–१

कविता आंख मूंदकर छूमंतर हो जाने का हृदय नहीं है, वह तो कवि के अपने जीवन दर्शन और स्थापनाओं की अभिव्यक्ति है, कविता, संसार का कल्पित सृजन नहीं बल्कि वास्तविक ससार को रचने की दिशा में उठाये सार्थक कदम की प्रतिध्वनि है। इसीलिए शमशेर कविता और उसके साहित्य को बहुत ही सजगता, व्यक्तिगत जीवन की सुदृढ सुन्दरता और अपार निष्ठा के रूप मे लेते है। यही कारण है कि पृथ्वी और उसकी वस्तुओ को देखने की अनवरत अकुलाहट भीतर से उमडता उल्लास, आस–पास के बुशमार बिम्ब और दृश्य अर्मूत से मूर्त की ओर ले जाने वाली तडप ये सब कुछ उनकी कविता में आता है। ये उने वैयक्तिक अनुभव हैं – लेकिन हैं बहुत मानवीय। एक ईमानदारी है जो शमशेर के रचना संसार मे प्रकट होती है। वह उनका पारदर्शी तेवर हैं जहां सहज दिखने वाली अनुभूतियों की निर्वैयक्तिकता है। जितने कोणों से देखे, यह पारदर्शी क्रिया रचनात्मकता की समीपता और दूरी को एक-सा प्रस्तुत करती चलती है। शमशेर में एक जबरदस्त है जिसके दर्जनों 'शैड्स' हैं।

" शमशेर साक्षात् कवि हैः निजी भाषा, निजी मुहावरे, निजी प्रतीक और निजी बिम्ब खोजते, पाते हुए। अनुभव में डूबे और दूसरों पर अनुभव के ही मानों में व्यक्त होते हुए। वैयक्तिक अनुभूतियों को भाषारूपी सामाजिक माध्यम में ढालने पर झिझकते से और अनुभूतियों की प्रामणिकता अक्षुण रखने को तत्पर। "–२

शमशेर की दुनियां बहुत बडी है। एक बार भी आप वहां नहीं पहुंच सकते। असल में इसके लिए कई पाठक जन्म लेने की आवश्यकता है। शमशेर के कई रंग हैं, कई कोंण। यह जानना काफी उत्तेजक होगा कि शमशेर कैसे किसी पदार्थ, दृश्य या घटना को पूर्ण कविता मे बदल डालते है। इस अन्वितिकों पाने के लिए कवि में प्रबल व्यवस्था और अराजकता दोनों ही होनी चाहिए। साथ ही झंझापूर्ण संवेदना, एक उद्दामता जो अपने अपने पर कवि को कविता के अलावा किसी और चीज के

१ – (डा. राम स्वरूप चतुर्वेदी –हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास –पृ०– २४३)

२ – (अजित कुमार – कविता का जीवित संसार – पृ०– १११)

लिए नहीं छोडती। वास्तव में वे एक विलक्षण रचना–प्रक्रिया के कवि है। इसलिए उनकी रचना–प्रक्रिया का शास्त्र समझने वालो के लिए वे बहुत उर्वर प्रदेश है। यह एक ऐसी रचना–प्रक्रिया है जो कवि के भीतर बाहर निकट और दूर, नियंत्रण और अनियत्रण दोनो मे एक साथ पर काफी कुछ अदृश्य घटित होती है। इस रचना प्रक्रिया को समझना तभी हो सकता है जब हम उनकी कविताओ को उसी सवेदना से पढे। उनकी आत्म परकता इसमे कही आडे आती जरूर है और वह जटिल से दिखायी पडते हैं पर कलात्मक अभिव्यक्ति मे जटिलता तो बहुत स्वाभाविक है। कला सहज हो सकती है पर इस हाहाकारी ब्रह्माड में जब कुछ भी सहज नहीं तो कला भी सहज नहीं हो सकती। शमशेर यदि कठिन हैं तो वह इस कला को कलात्मकता तक ले जाकर ही कठिन है। शमशेर के यहां कवितायें हैं जिनमें विषय नही, विषय वस्तु है। इन कविताओ में अर्थों का एक असंगठित संसार है। **हार–हार समझा मैं तुमको अपने पार। हंसी बन खिली सांझ बुझने को ही।–१**

कवि शब्दों वाक्यों के अर्थ–विशेष को लेकर चिंतित नजर नहीं आता। एक भाषा उसके विन्यास से पाठको की मुठभेड है। जहां शिल्प ही वस्तू है। इसलिए शमशेर की कवितायें अंतर्मुखी है, लेकिन अपने सत्य को परिभाषित करती है। इसलिए शमशेर के यहा, 'शब्द' शब्द मात्र न होकर सम्पूर्ण चरि.त्र है। **अज्ञेय के यहां भी कविता अंततः शब्द थी–२**

शमशेर के लिए भी कविता अंततः शब्द है पर शब्द जो अन्तत' मानवीय स्थिति में है। वह जो लिखते हैं, रचित करते है" वह अनुभव में तात्कालिक ", स्वभाव मे तत्वदर्शी, कथ्य में सबकी आवाज लिए हुए, विन्यास मे नाटकीय चौकन्नापन और असर में धर्म सरीखी है। इसलिए यहां आत्म खोज है, मोह भंग, अस्तित्व की उपस्थिति है, प्रेम है और प्रेमान्तरण है, स्मृतियां, अवसाद, निराशा है, अमूर्तता और सुर्यिलिस्टिक चित्रण का एक संसार है जो अपने अर्थो में एक यात्रा के लिए निमंत्रित करता हैं एक अप्रस्तुत विचलन का शिल्प और भाषा जिसमें नेपथ्य के स्वर हैं– कई कविताओं मे पूर्व कथन है। कोष्ठकों में यह कविताये नये युग धर्म की अग्र प्रस्तुति है। कविता में शब्दों का ऐसा संयोजन और यह वैभव कालिदास के बाद शमशेर के ही काव्य में संभव हो पाया है। "शब्द रंग भी है, रेखा भ और सुर भी –शब्द में निहित इन संभावनाओं की तलाश जैसी शमशेर में है, अन्यत्र विरल है।"–३

---

१ – (प्रतिनिधि कविता में पृ० २८)

२ – (भूमिका दूसरा सप्तक)

३ – (नामवर सिंह–प्रतिनिधि कवितायें भूमिका पृ० ७)

ऐसी भव्य कवितायें शमशेर के अलावां किसी और ने साधी याद नहीं पड़ता।

शमशेर ने एक विशेष सघनता को अपनी कविताओं में स्थापित किया है। वह शब्दों की असीम सम्भावनाओं को पूरी आसानी से सामने लाते है। शमशेर जब मनुष्य, धरती व प्रेम के तत्व बोध को कविता में बदलते है तों कहीं भी लापरवाही नजर नही आती, वहां केवल अनुशासनात्मक संगठन है। कविता में अनुशासन के विन्यास के साथ शमशेर का सच अचानक प्रवेश नहीं करता और न काव्यात्मक अधिकार रेंगते–रेंगते धुसता है। कवि एक लम्बी मुठभेड़ के बाद सब कुछ अर्जित कर लेता है तो कागजपर उतारता हैं यद्यपि उसे न कर पाने की आतुरता भी वहां काफी समय तक ठक–ठक करती है। "शमशेर के यहां अतिकथन बहुत कम है और वे मुख्यतः अल्पकथन के ही कवि है। हिन्दी में इस शताब्दी में कहे और अनकहे के बीच कोई और कवि उतना नहीं ठिठका है जितना शमशेर । इतनी अर्थगर्मी निखार भी शायद ही किसी और कवि के शब्दों के बीच हो जितनी उनके यहां । इस नीरवता व कई बार अधूरे कथन या अर्ध कथन का शमशेर की ऐंन्द्रियता से भी गहरा सम्बन्ध है। प्रेम हो या प्राकृतिक दृश्य शमशेर की भाषा उसका ऐन्द्रिय अधिग्रहण उसके बुनियादी रहस्य को भेदकर नहीं बल्कि उसे चरितार्थ कर करती है। वे उद्घाटन के नहीं अर्ध उन्मीलन के कवि है। कविता में जैसे कि जीवन में भी एन्द्रिकता समूची स्पष्टता से सम्भव नहीं है। उसे अनिवार्यतः स्पष्ट और अस्पष्ट का झिलमिल सा स्पेस चाहिये। शमशेर की कविता यह स्पेस अंत तक बनाये और बचाए रख सकी। "–१

शमशेर की विवेकवान गंभीरता कविता को कविता बनाये रखती है। वे जीवनानुभव के माध्यम से इतिहास की समझ विकसित करने में हमारी सहायता करते है। इसलिए शब्दों के सार्थक हस्तक्षेप को स्वीकार करते है।

शमशेर के यहां भाषा की रोमानियत है। वह इसे छिपाते भी नहीं हैं लेकिन जो महत्वपूर्ण है वह यह कि इस रोमानियत को वह आदमी की नियति से जोड़ते है। चित्रकारी के रंगों में बन स्वयं फैल–फैल मैं गया हूं, कहां–कहां !

कविता

में हूं अब, वह था कल.........

होगी कल –यह दुनिया

मेरे जीवन में।

आओ–ले जाओ

---

१ – (अशोक बाजपेयी – कविता का कल्प पृ० ६३–६४)

मुझसे मेरा

प्रणय का धन

सर्व वह है सब तुम्हारी–

तुम–

वह 'तुम' है। –१

शमशेर की कविता में सुन्दरता खुशबू और गरमाहट के यही ठोस सन्दर्भ है। आंख, कान, नाक, त्वचा आदि संवेदन स्त्रोतों का भरा–पूरा इस्तेमाल हमें उनके यहां मिलता है। मिथक दर्शन आदि मे उन्हें जाने की जरूरत नही हुई क्यो कि वह कविता को क़विता के मूल स्त्रोतों से ही ले आते हैं मानवीय माधुर्य छवियों को वह अपनी ज्ञानात्मक संवेदना युक्त भाषा के माध्यम से ही सामने लाते है। शमशेर की भाषा अन्य कवियों से भिन्न खूबसूरती से सक्रिय है। एक ही वस्तु पर वह चीजो को एक चित्रकार की निगाह से देखते हैं, संगीत पारखी के कान से सुनते है।और भाषा के साथ अपने जीवित रिश्ते को प्रमाणित करते है।

उनकी वैयक्तिक अनुभूतियों को उनके बिम्ब विधान से बिलगाया नहीं जा सकता। शमशेर और बिम्बों का रिश्ता गहरा और पुराना है। वे अक्सर कविता के बिम्बों में ही पूरा कर देते है। " जिसमें कहीं कहीं प्रसाद से अधिक सूक्ष्म विधान और अज्ञेय से अधिक मितकथन देखा जा सकता है। प्रकृति और मानवीय अनुभव की अंतप्रक्रिया उसका मूल स्वर है जिसे वे अपने बहुत से स्पष्ट, और कुछ कलात्मक रीति से अस्पष्ट बिम्बों के सहारे परिचालित करते है। वस्तुतः शमशेर में बिंब से कविता नहीं बनती, वरन् बिंब और कविता एकाकार हो जाते हैं–

एक नीला अइना

बेठोस–सी यह चांदनी

और अंदर चल रह हूं मैं

उसी के महातक के मौन में।

मौत में इतिहास था

कनकिन जीवित, एक, बस।

और कविता का अंत होता है–

रह गया सा एक सीधा बिंब

चल रहा है जो

---

१ – (कवितान्तर –डा. जगदीश गुप्त पृ०– २७)

शात इंगित सा

न जने किधर।

"यहां काव्य अनुभव की शुरुआत और परिणति बिब में ही होती हैं। दोनो मे अंतर यह है कि शुरू का बिब व्याख्यायित हैं जबकि अंत मे एक अज्ञात–अनाम बिब का अनुभव मात्र शेष रह गया है। इसी प्रकार–

अब गिरा वह अटका हुआ आंसू

सांध्य तारक सा

अतक में। "–१

(एक पीली शाम)

"ऐसा नही कि नये बिम्ब साधित व्यवस्था के परिणम है बल्कि एक ही मूल बिम्ब को एक सर्जनात्मक अर्थलय की व्यवस्था में सूक्ष्म व गहन ऐन्द्रिय प्रतिबिम्बो या अनुबिम्बों मे पुनरूपलब्ध करने से है। सामने की कोई भी साधारण सी चीज उठाकर शमशेर उस पर कविता करने लगते है। सबसे पहले उस चीज का अक्स उभरता है। एक बिम्ब जिसमें वह वस्तु अपनी निजी सत्ता व परिवेश के साथ गतिशील या सक्रिय रूप में मौजूद होती है। अब आगे कवि उस वस्तु का चरित्र उरेहता और आविष्कृत करता है, जिसमें उसका सौन्दर्य उसका मानवीय स्वरूप उभर उठता है। इस बिम्ब विधान की प्रक्रिया से बार–बार गुजर कर स्वभावतः वह वस्तु प्रतीक में बदल जाती है। यह प्रतीक प्रक्रिया अनायास इस विस्मय से भरदेती है कि वह वस्तु किसी बदलाव से गुजरकर नहीं बल्कि स्वभावत. प्रतीक थी। दूसरे शब्दों में शमशेर अपने प्रतीक गढतेही नहीं, सुपरिचित जीवन जगत से उठाते है।

शमशेर की सजग ऐन्द्रिक संवेदना केवल बिम्ब नहीं रचती, वह बिम्ब मे विचार मे नया आवेग भी रख जाती है। कुछ एक अत्यंत परिचित अनुभव शमशेर के यहां अनोखा चमत्कार लगने लगेगा, कहनाकठिन है। परिचित दुनिया (जैसे ऋतुओं के अनुभव ,सुख–दुख, संघर्ष यातना) में झांकने के लिए भी एक उद्दाम उत्सुकता शमशेर में बनी रहती है। एक चाक्षुष संवेदन की पकड़ के साथ और भी कुछ है जो शमशेर की कविता को आदिम और समकालीन अनुभवों का ताप देता है। जाहिर है कि वह और भी कुछ केवल क्रांतिकारी संदेश नहीं है यद्यपि वह भी है।

शमशेर की दुनियां में घुलनशीलता है या फिर परस्परता। कोई भी एक चीज एक चीज नहीं है। जो कुछ भी है, समिश्रित हैं, घुलती हुई या धुली हुई। या फिर परस्पर संक्रामक, परस्पर, संक्रांत परस्पर सक्रमणशील उनके शब्द केवल शब्द नहीं चित्र हैं, पत्र हैं, इमारत हैं, मूर्ति है, नाटक है, नृत्यमय है, रिपोतार्ज है, संगीत की सी स्वर लिपिनमा है, मेहराबें हैं (गुंबद नही), वर्तमान को

---

१ – (काव्यभाषा पर तीन निबंध – डा. राम स्वरूप चतुर्वेदी पृष्ठ – १२६)

प्रगैतिहासिक युग तक और प्रगैतिहासिक को भविष्य तक दिगन्त देते हैं और काल को अविभाज्य करके दिक् को काल में घुला देते हैं, गति को चक्राकार कर देते हैं। "वे बोधो के पार तक ही राहें नापते हैं, जहा शब्द और भाषा, चित्र और मूर्तियां, छंद और अछंद, सब नृत्यमान रह जाते हैं ।"–१ केवल आत्मलीनता, निरावृत्त तल्लीनता अद्वैत शम, जिसे यह शमशेर ही सिद्ध कर पाते हैं । आधुनिक हिन्दी में कोई और नही (कम से कम कवि तो कोई नहीं)।

"दरअसल शमशेर की दुनिया मे कोई फाक नहीं है, दरार नही है, वह गहरी और अथाह है, इसलिए वह इकहरी नहीं, श्लिष्ट, तहदार, तरल तीब्र गति मे स्थित जैसी है। शमशेर की दुनिया अचेतन उपचेतन को खोलती भाषाओं के पार चली जाती है।"–२

ऐसा कवि दूसरा इस सदी मे हुआ है, ऐसा जान पडता। नीद और थकान के बीच जन्म लेती यह दुनियां "आदमी की अमरात" है, दैहिक स्तर पर शायद " नर्वस ब्रेकडाउन हो। सरबस देने, देते रहने मे यह होना ही हैं। यह सर्वस्व दान मूल्यों के लिए हैं । वे ही शक्स के आईने हैं, जिसके लिए वे शहीद तक हो जाना चाहते हैं, क्यो कि आइने ही जिन्दगी हैं **(आइनो तुम मुझे मार डालों, आईनों तु मेरी जिन्दगी हों")** पहली पंक्ति मात्र पर ध्यान दें तो मृत्यु संत्रास, पलायनवाद यानी अस्तितत्ववाद और रोमांटिसिज्म हाथ लगेगा लेकिन साथ में दूसरी पंक्ति पर ध्यान दें तब सामने गांधी खडे मिलेगे, भगवान से , अंगार से शरस नजर आयेंगे।

इसीलिए यह दुनियां हमारे संचार माध्यमों के प्रदूषणों से बचती, सारे माध्यमों को शब्द में निचोडती है। भाषा पर इतना बोझ किसी ने नहीं, डाला, अकेले शमशेर पहले कवि हैं, जिन्होंने ऐसे असाध्य को साध्य बनाया। । यह उनकी मौलिकता है। उनके गद्य और काव्य, दोनों में बेहतर लय है और वे न कही टूटती है, न बिखरती है, (" टूटी हुई बिखरी हुई: शीर्षक न शमशेर ने दिया, न जगत शंखधर ने)। उसमें विरामों, कोष्ठकों, टाइप के रूपों, बीच में खाली जगहों, उल्टे पूल्टे या एक ही शब्द के दो टूटे अर्थवान टुकडों की क्षतिपूर्ति करती है।

शमशेर की दुनिया में एक अनुभूति कुण्ड है, जिससे जो शब्दायमान होता हैं, वह एक वाष्पमय धुआंधार रच देता है। "ऐसे क्षणों में संमूर्तन की सहस्त्र धाराएं या पारदर्शी अतल अगाध " न जाने कहां," न जाने किधर" उडा ले जाता हैं , संमूर्तन अन्तत- अमूर्तन का सोपान हो जाता है और शब्द की परिष्कृत दिशा, निरवधि में खींच ले जाती हैं। यह रचना एक विराट "मै" की सृष्टि है, जो " आकाश के मस्तिष्क" में है, आकाश जो स्वय समुद्र है और बादल नौकाएं। यह "मै" कभी–कभी

---

१ – (श्रीराम वर्मा पूर्वग्रह अंक ८३ नवं., दिस. १९८७ पृ० ६)

२ – (वही)

इस संबंध मे डा. रजना अरगडे का कथन है "शमशेर की कविताओ में विम्ब उनकी कविता के अर्थ विकांस मे योग देते है। और इसीलिए उनके विम्ब कई बार वर्गीकरण की सीमा को लाध जाते है। क्यों कि शमशेर की रचना–प्रक्रिया जटिल है और अभिव्यक्ति सकेतात्मक, इसीलिए उनके बिम्ब अधिकतर संकुल होते है। वे ऐन्द्रिय और अतीन्द्रिय दोनो अनुभूतियो को, अपनी रचनाओ में बिम्बों के द्वारा प्रस्तुत करते है।"–२

"बिम्बों का जो संसार शमशेर की रचनाओ मेंप्रकट हुआ है। उनके रचना–ससार का सौन्दर्य व्यक्त होता है। उनके रचना संसार मे शाम, समुद्र, दिवस, सूर्य, आकाश, क्षितिज, नदी धूप, लहरे, किरणों, बादल इत्यादि बिम्बात्मक अभिव्यक्ति पाते है।"–३

उनकी कविता में अनेक रग हैं। " वैसे तो उनकी सारी रंग सृष्टि हल्के रंगो की है, पर एक सावंलपन और गहरापन सतत् रहता हैं हल्की रेखाओं और रंगो से वे ऐसी प्रभाव उत्पन्न करते है। कि पाठक के मन मे उसकी एक छाप अकित हो जाती है।"–४

इसीलिए शमशेर ऐन्द्रिय अहसास के कवि है। ऐसी ऐन्द्रियता शमशेर की लगभग चारित्रिक विशेषता है। लगभग अमूर्त लगते दृश्यालेख को अपनी संवेदना के सहज ताप से मूर्त करना, अनोखा संयम और मितव्ययिता . और अपने आस–पास के प्रति संवदेन शीलता और जो दीखता या महसूस होता है उसे भाषा में सहेज और दिख पाना कठिन काम है, हालांकि यह कविता का एक बुनियादी काम ही है। ऐसी कविताओं की इन दिनों भरमार है। जो बिम्बों और रूपकों के ढेर के बावजूद हमें कुछ साफ–साफ दिखा नहीं पाती। "ऐसे में शमशेर की कवितायें पढ़ना कई मानों मे दृष्टिवती रचनायें पढना है। वह कविता को जैसी उनकी स्वाभाविक दृष्टि वापस देना हैं । भाषा शमशेर के यहां 'बोलती' उतना नहींहे जितनी 'देखती' है और उसके काव्य प्रभाव में हम भी अपने देखने की शक्ति को अधिक एकाग्र और सक्रिय कर पाते है।"–५

शमशेर की खूबी यह है कि उन्होंने हिन्दी और उर्दू की काव्य परपराओं को मिलाकर एक एसो लहजा तैयार किया है जो केवल उनका है। उस लहजे में हिन्दी का संस्कार है और उर्दू की अदा है। उसका बहुत ही रूधा हुआ इस्तेमाल हमें उनकी कविताओं में मिलता है।

---

१ – (श्री राम वर्मा गो नहीं वह मै –पूर्वग्रह नवं०–दिस. १९८७ पृ० ६)

२ – (कवियों का कवि शमशेर–डा. रंजना अरगडे पृ० ४७)

३ – (वही)

४ – (वही)

५ – (अशोक बाजपेयी कुछ पूर्वग्रह पृष्ठ –२१)

मजे की बात यह है कि एक लहजा होते हुए भी हमे " उनकी कविताओ मे काव्य भाषा के कई स्तर मिलते है। उदाहरण के लिए वे यह भी लिखते है कि 'शब्द नीलगूं' और यह भी कि उसमें चमक न थी अभी। एक नीलाहट सी लिए हुए। जैसे कोई आइना हो महज। यहां एक ही भाषा के दो स्तर शमशेर ने कायम किये हैं। दूसरी ओर उनका यह भाषा प्रयोग है—

— न जाने किसने मुझे अतुलित छवि के भयानक अतल से निकाला'......... 'फिर थरथराता रहा जैसे बेत। मेरा काय'.... ....। इन उद्वहरणो में अतुलित छवि यह शब्द योजनाध्यातब्य है। 'अतुलित' और काय दोनों ही हिंदी कविता में प्रयुक्त पुराने शब्द है, जो कि शमशेर के हिन्दी संस्कार का परिचय देते है। लेकिन जो उनके लहजे में मिलकर अर्थ की नयी चमक और और ताजगी से भर उठे हैं । "—१

---

१ – (नंद किशोर नवल – कविता का आठवां दशक पृ० ३३)

****

नागार्जुन की वैयक्तिक संवेदना

नागार्जुन का मूल स्वभाव रागधर्मी है। कोई भी वाद या विचार तब तक उनके काव्य का अंग नही बन सकता जब तक कि वे रागात्मक धरातल पर उससे एकाकार न हो जायें। राग की यह प्रखरता ही उनके काव्य को अधिक रुचिकर और प्रभावकारी बनाती है। छायावादियो मे राग की यह प्रखरता सबसे अधिक निराला मे देखी जा सकती है। बाद के नये कवियो ने इसका इस्तेमाल प्रतीकों और बिम्बो के सदर्भ में किया है। नागार्जुन की रागमयता की तीव्रता का व्यंग्य काव्य के संदर्भ में सर्वाधिक है, यद्यपि वे प्रकृति और श्रमिक जनता वाले काव्य के संदर्भ में उतने ही समृद्ध दिखई देते है–सवाल यह है कि छायावादी आकुलता और प्रगतिवादी भावावेग मे अन्तर क्या है ? क्या दोनो ही समान स्तरीय है? कहना होगा कि छायावादी आवेगो मे सृजनधर्मी व्यक्तित्व का सतरणहै तो प्रगतिवादी आवेगो मे आधारभूत वैचारिक अंकुश काम कर रहे हैं। यही कारण है कि समकालीनता के लिहाज से प्रगतिवादी आवेग अधिक स्वथ्य और स्वीकार्य लग रहा है। छायावादी आवेगों मे सौंदर्यपरकता जिन आधारों पर प्रदर्शित कि गयी है, वे सवेदन–आधार अत्यन्त विशिष्ट और असाधारण हैं। जबकि प्रगतिशीलो की राग भावना सामान्य और साधारण है सवेदनों की अभिव्यक्ति करता है। स्पष्ट ही दोनो ही सौन्दर्य–दृष्टि का बारीक भेद इसमें काम कर रहा है। छायावाद परिष्कृत, पवित्र, मधुरयुक्तदृष्टि को अंगीकार करता है। कह सकते हैं छायावादी सौन्दर्य अधिक सास्कृतिक है जबकि प्रगतिवादी सौन्दर्य मे अनगढता ,लोक सामान्यता और यथार्थोन्मुखता है। 'खुरदुरे पैर' कविता की प्रारम्भिक पंक्तियॉं इस प्रकार हैं—

खूब गये
दूधिया निगाहों में
फटी बिवाइयों वाले खुरदरे पैर
धॅस गए,
कुसुम–कोमल मन में गुट्ठल घट्ठों वाले कुलिस–कठोर पैर'

दूधिया निगाहों के साथ 'खूब' (खुभना) क्रिया का जो प्रयोग किया गया है,कवि के सारे व्यवहार को साफ कर देता है। 'दूधिया निगाहों' की बिरादरी मे 'खुरदरे पैरों' का खुभना केवल नागार्जुन ही देख एवं सह सकते है। इसीलिए एक बार 'पुलकित है अंग–अंग मालिश फिजूल है' जैसी पंक्ति को गुनगुनाते हुये जब नागार्जुन ने शमशेर से पूछा कि,'बताओ यह पक्ति किसकी है ?'

तब शमशेर ने पूरे विश्वास और निश्चय के साथ कहा था–'तुम्हारे अलावा किसी दूसरे की नहीं हो सकती। ऐसी शब्द–योजना कोई दूसरा करता ही नही।' नागार्जुन के सौन्दर्य बोध को समझने के लिए यह उदाहरण एक परम दृष्टात है। क्लासिक और रोमांटिक सौन्दर्य परम्परा के बीच वे नागार्जुनी सौन्दर्य की सृष्टि करते हैं। जहॉ न तो आभिजात्य की कुछ चल पाती है न ही काल्पनिक आदर्शवाद ठहर पाता है। जरूरत पड़ने पर वे दोनो का ही सर्वोत्तम अपने साथ घसीट लाते है।'बादल को घिरते देखा है','कालिदास', सिन्दूर तिलकित भाल' और ढेर सारे ऋतु गीत उनके परम्परा–विजय के प्रमाण हैं। परम्परा का सार्थक और जीवंत उपयोग करने मे वे अतुलनीय है। क्या मिथ, क्या भाषा, और लय, वे सर्वत्र बेरोकटोक निःसंकोच और निर्भय होकर जाते हैं और अधिकारी हर उत्तराधिकारी की भाति उस उजडे और निष्प्राण को काटकर अलग कर देने के बाद शेष को अपने काव्य–मार्ग पर धडल्ले से जाते हैं। ऐसा सौन्दर्य –समारोह ही नागार्जुन की पहचान है। पर कमी–कभी वे 'यह तु थीं', जैसी कविताए 'भी लिखते है जिसमे प्रगतिवादी रोमांस की झलक देखी जा सकती है।'

क्लासिक कवि नागार्जुन कवि नागार्जुन जब 'आंखिन देखा' अनुभव बखानता है तो वे पूरा चित्र पाठक के सामने रखता है। बाल्मीकि, व्यास, तुलसीदास, कबीरदास, निराला और मुक्तिबोध इसी नाते क्लासिक कवि हैं। वह 'दो शिखरों' के अन्तराल वाले जंगल का पूरा, चित्र पाठाक को दिखाकर कहीं यात्री के साथ जंगल में धँसते हैं और कहीं प्राणियों. का करूण क्रंदन सुनकर ठिठक कर उसकी पूरी कथा कहने बैठ जाते हैं।

मैंने देखा' नागार्जुन की कविता ऐसे ही क्लासिक स्थापत्य है। मैनें देखा.../शिखरों पर/दस दस त्रिकूट हैं/यहॉ वहॉ पर चित्रकूट है/दायें–बायें तलहटियों तक फैले इनके जटा–जूट हैं/ सूखे झरनों के निशान है /तीन पथों में बहने वाली/ गंगा के महिमा बखान है/ दस झोपडियॉ दो मकान हैं/ इनकी आभा दमक रही है/ इनका चूना चमक रहा है।'

कविता के जो कथानक का कौशल है, वह पहले की पंक्तियो को ध्यान में रखने पर बाद में उससे नया अर्थ भर उठता है। दो शिखरों के अंतराल वाला जंगल, सामंती व्यवस्था का जंगल है और उसमें 'लगी आग' तबाही और बेराजगारी का महाजनी संकट हैं। ग्रामांचल से भागकर किसान के लडके मैदान में काम तलाशने गये हैं। वह किसान–पुत्र हैं, इस लिए महाजनी युग की 'डॉट–डपट सहते हैं, दफ्तर में भी चुप रहते हैं।' विद्रोह का दबा हुआ यही असंतोष नागार्जुन की क्लासिक कविता को आधुनिक जनवादी कविता बनाता है।

"वस्तुत: नागार्जुन की जीवन दृष्टि क्लासिक और रोमाण्टिक के बीच बनती और संवरती है। जीवन के स्वस्थ और गतिशील पक्ष उसे युगीन और अर्थगर्भ बनाने मे मदद करते हैं। इसलिए उसे हम परिवर्तनकारी यथार्थपरक जीवंत दृष्टि से सम्पन्न सौन्दर्य कह सकते है जिसमे समकालीन जीवन की बिडम्बनाओ की कटु आलोचना और भावी समाज के आदर्शो और वर्तमान सघर्षो का आग्रह साथ–साथ विद्यमान हैं। अपने उपन्यासो मे वे सामतवाद के मृतप्राय अवशेषों, आधुनिक समय की राजनीतिक बदमाशियों तथा श्रमिक जनता के सघर्षो का सुनियोजित चित्रण करते हैं। सामंतवाद के कुछ मूल्य ऐसे भी हैं जिन्हे हमारी सभ्यता भी शिरोधार्य कर सकती है, नयी राजनीतिक प्रणाली के कुछ अंकुर ऐसे हैं जिनसे नया समाज तबाह हो जायेगा। "–१

इसी श्रृखला में वे गॉवो के भाई–चारे और परिचय की रक्षा करना चाहते हैं और महानगरी सभ्यता में उगते–पनपते अजनबीपन का विरोध भी करते हैं। छद्म बुद्धिजीविता, अलगाववाद और स्वार्थपरकता इसी महानगरीयता के अभिशाप हैं। अपनी एक कविता घिन तो नहीं आती है ?' में वे नगर में रहने वाले पोश से पूछते हैं———

सच–सच बतलाओं
दूध सा धुला सादा लिबास है तुम्हारा
निकले हो शायद चौरंगी की हवा खाने
बैठना था पंखे के नीचे, अगले डब्बे में
ये तो बस इसी तरह
लगाऍगे ठहाके, सुरती फांकेंगे
भरे मुँह बातें करेंगे अपने देस–कोस की
सच–सच बतलाओं
अखरती तो नहीं इनकी सोहबत?
जो तो नहीं कुढता है ?
घिन तो नहीं आती है ?

कुली मजदूरों की यह दुनिया जो सोते वक्त सपने में भी धरती की धडकन सुनती रहती है, उसी शहर कलकत्ते की है जिसे लक्ष्य कर कवि ने 'उन्मत प्रदर्शन' 'पैसा चहक रहा है,' 'काली माई', 'धाकचो खोका ओइ जे गांधी महत्ता', विज्ञापन सुन्दरी','चौराहे के उस नुक्कड पर', 'प्लीज एक्सक्यूज मी',करने आए हैं चहल कादमी ' और 'बोला ढाकुरिया का पानी' जैसी

१ – "विजय बहादुर सिंह"——नागार्जुन और उनका रचना–संसार——पृ०. ७४

कविताएँ लिखी है। पटना, कलकत्ता, दिल्ली और इलाहाबाद का नागार्जुन के जीवन मे कितना महत्व है, इसे उनकी कविताओ को देखकर आसानी से समझा जा सकता है। औरों के लिए कलकत्ता भव्य और दिव्य हो सकता है लेकिन नागार्जुन कलकत्ता या तो पूँजीवादी सत्ता की परम अश्लीलता है या फिर श्रमिक आबादी की सीलनपूर्ण कोठरी का हिस्सा जिसका निवास महानगर के बाहर के हिस्सें में है। नेह–छोह परिचय और आत्मीयता की गॉठें वह इन्ही महानगरों के बीच मेहनतकश मजदूरों के मध्य आर्थिक विपन्नताओं से सूझते मजदूरो के बीच खोलते हैं । जिन मूल्यो की तलाश उन्हे है वे चौरंगी और पार्क सर्कस के झड़े –पूँछें आलीशान भवनों मे नहीं बेलियाघाट,मानिकतल्ला की खोलाबाडियो में है। सभ्यता के बाहरी रंगरोगन और चाकचिक्क से विमुगध होकर समाज की नंगी हकीकतों को भूल जाने वाली कविताई उनके पास नहीं है। अत उद्योगों का समर्थन करते हुये भी वे महानगरीयता के आंतक और उसमें खोते जाने वाले आत्मीय प्रसंगो के लिए निरन्तर चिंतित रहने वाले रचनाकार है। इसीलिए उन्हें पढते हुये हम अपनी सभ्यता की विडम्बनाओं से गुजरने को मजबूर है। चीजों, रिश्तों और घटनाओ के बदलते हुये रूपों की शिनाख्त की कोशिश मे नागार्जुन की कविता में गहरी राजनीतिक समझ को पैदा किया है यह राजनीतिक समझ कविता के रेशे–रेशें में गूथी हुयी है और कवि के पूरे नजरियें से छलकती है। उनकी कविता अपने इर्द–गिर्द के दुनियॉ और उसके साथ आदमी के रिश्तों को पहचानकर व्यक्त करती है। लेकिन कलात्मक रूप से निजी और सार्वजनिक जीवन के बीच यानि कवि के व्यक्तिगत अनुभवों और संवेदनाओं और बाहर की दुनियॉ के विराट जटिल यथार्थ के बीच जो संबंध है और जो कई बार आपस में टकराते भी हैं उन्हें समझकर व्यक्त करना नागार्जुन की कविता का एक खास उद्देश्य है। इसीलिए वे आज के सच के गूँगेंपन को समझते हैं–

सत्य को लकवा मार गया है

वह लम्बे काठ की तरह

पडा रहता है सारा दिन,सारी रात

वह फटी–फटी ऑखों से

टुकुर–टुकुर ताकता रहता है सारा दिन, सारी रात –१

लेकिन सच से ऑख मिलाते हुये नागार्जुन जीवन की रूपात्मकताओं से विमुख नहीं हैं और क्यो हो ?

१– नागार्जुन चुनी हुयी रचनायें–२, पृ०–२१५

जब उनकी दृष्टि हर समय, हर जगह जीवन को तलाशती ही रहती है तो उसमे जीवन्तता का अभाव नही हो सकता । एक सश्लिष्ट दृश्यावली लगातार ऑखो के सामने रहती है उनके टटके हुये दृश्यबन्धों को देखकर यह आसानी से समझा जा सकता है। इन दृश्यो मे रस्मअदायगी नहीं है और वैयक्तिक सवेदना को व्यक्त करते हुये भी –'वे अपने रचनाकार की समूची उर्जा के साथ हमसे मुखातिब होते हैं। यह कविताये जनकवि नागार्जुन की निश्छल आत्मीयता तथा स्नेह से सिक्त रचनायें हैं अनुभूति और विचार के गहरे तालमेल मे लिखी गयी कवितायें हैं, एक निहायत आत्मसम्मानित कवि की निश्छल अभिव्यक्तियॉ हैं, और ऐसों को ही सबोध्य हैं जिनसे सही मायनो मे कवि ने कुछ बहुत बहुमूल्य पाया है और संजोया है। "ये उन मूल्यों और निष्ठाओं के प्रति समर्पित कवितायें है जिन्हें नागार्जुन के आदर और स्नेह के पात्र इन व्यक्तियों ने जिया है।"

इनमे रवी बाबू है,कालिदास है ,महात्मा गॉधी हैं, भारतेन्दु और निराला हैं, केदार नाथ अग्रवाल हैं, और बहुत ढेर सारे लोग –वे सारे लोग जिनके और बहुत ढेर सारे लोग –वे सारे लोग जिनके साथ नागार्जुन गलबहियॉ कर सकते थें। वे सभी उनकी वैयक्तिक संवेदना के गृहीता है। – ' कहने का मतलब यह है कि नागार्जुन की ये कवितायें बडे सात्विक मनोभावो में जन्मी कवितायें है। इन कविताओं में कवि की मनः स्थिति अनेक तेवरों में अपने को अभिव्यक्त करती है जिन्हें इनकी भाषा तथा शैलीगत भंगिमाओं में लक्ष्य किया जा सकता है। केदार नागार्जुन के आत्मीय है और उनपे लिखी गयी उनकी कविता अनेक अर्थों में एक विशिष्ट कविता है। अपने समानधर्मा, समवयस्क, समकालीन रचनाकार के प्रति ऐसी निश्छल हार्दिकता कम ही दिखायी देगी । केदार पर लिखते हुये नागार्जुन जैसे स्वयं केदारमय हो गयें हैं और बिना किसी अतिरंजना के उन्होने बुन्देलखण्ड की धरती के इस कवि को उसकी धरती के सारे ऐतिहासिक और भौगोलिक वैशिष्ट्य के साथ उसके अन्तर्वाह्य की समूची वास्तविकता में बडे मनोयोग से प्रस्तुत किया है। कविता लम्बी है परन्तु अपनी आन्तरिक लय मे अटूट और एकतान। नागार्जुन की कल्पना यथार्थ का उनका पर्यवेक्षण अनुभूति और विचार की समरस्ता को सही फलश्रुति तक पहुँचाने वाले उनकी रचना प्रकिया तथा आंकाछित को समूची भास्वरता तथा काव्यात्मक वैशिष्ट्य के साथ प्रस्तुत कर देने वाली उनकी चित्रात्मक भाषा और शैली कितनी प्राभावी है इसका उदाहरण उनकी यह कविता है– केन–कूल की काली मिट्टी वह भी तुम हो.........। –१

---

१ – भूमिका—डॉ० शिवकुमार मिश्र – नागार्जुन चुनी हुयी रचनायें –२, पृ०–१६

कहना नहीं होगा कि नागार्जुन की कविता मे गहरी सवेदना निहित है इसी लिए वह सहज कविता है। यह सहजता बाहरी जीवन के अभिव्यक्ति के साथ–साथ ही उन कविताओ में भी नजर आती है जहाँ कवि विल्कुल निजी प्रसंग उठाता है–

सांध्य नभ में पश्चिमांत समान

लालिमा का जब अरूण आख्यान

सुना करता मैं सुमुखि उस काल

याद आता है तुम्हारा सिन्दूर

तिलकित भाल ।'–१

इतनी मौलिक , इतनी रसप्रवण, इतनी रागरंजित, रसार्द, शालीन गरिमा और उदात्तता से युक्त नागार्जुन की ये पंक्तियाँ गार्हास्थिक प्रेम की अद्भुत अभिव्यक्ति है। सच तो यह है कि प्रेमानुभूतियों को व्यंजित करने वाली यह शीर्ष स्थानीय कविता है। इसमे प्रिया के स्मिृति के समानान्तर ही नागार्जुन का कवि मिथिलाचल की सुखद मादक स्मिृतियो में भी डूब जाता है । आम, लीचियाँ, धान के खेत, कमल, कुमुदिनी, तालमखाना और बुड़ूवन भी उसकी ऑखों में तैर जाते है । नागार्जुन का विरह मात्र विरह नही है उसमें करूणा का गहरा पुट है। इस प्रकार –

तुम नहीं हो पास मैं तो तरसता हूँ

प्यार के दो बोल सुनने के लिए

एक ही दस अगुँलिया नहीं हैं काभी कदाचित

रेशमी परितृप्तियों का जाल बुनने के लिए ।.............

और जब कवि रेशमी परितृप्तियों का जाल बुन लेता है तब जी भर कर गध रूप रस और स्पर्श का भोग भी कर लेता है। इसी कम में कवि की उस मनोदशा को भी विस्मृत नहीं किया जा सकता है जिसके बशीभूत होकर वह सहज अनुराग और सौन्दर्यानुभूति से भरकर प्रभात बेला में अपने पास ही लेटी प्रिया को जगाता हुआ बिहाग गीत गाने का अनुरोध करता है–

पास ही सोई पडी श्लथ कुंतला

प्रेयसी की थप–थपायी पीठ

जग गई तो दिखाकर तारे बचे दो–चार

---

१ – चुनी हुयी रचनायें, पृ०–३०

कहा मैंने पकड उसका हाथ

दो घडी का हमारा इनका रहा है साथ

हो रहे विदा गा दो सुमुख एक विहाग। ....

यह अनुराग है जिसके प्रारंभ विकास और परिणति सभी स्थितियों एक सम है

जो उदात्तता की भूमि पर सामाजिकता के परिप्रेक्ष्य मे जीवनगत अनुभूतियों का बहुत अनुभूतमय चित्रण है। स्पष्ट है कि यह सब कुछ नागार्जुन में एक बडे मानवीय आशय के साथ बडे विस्तार और गहराई के साथ आया है। यह सच है कि परकिया प्रेम काल्पनिक प्रेम तथा प्रेम के प्रचलित समारोहें का आयोजन करने का अवकाश जरूर उन्हें नहीं रहा परन्तु दाम्पात्य प्रेम को जिन थोडी सी कविताओं को उन्होंने अभिव्यक्त दी वे न केवल उनके हृदय के राग को ,बल्कि सात्विक निष्ठा को छलकते छल–छलाते प्यार को व्यंजित करता है। इन कविताओं में एक खास किस्म का जो रूमानी भाव है वह बायबीय रोमांस से पैदा नहीं होता बल्कि हमारी ही दुनियॉ के ठोस संदर्भो से निर्देशित होता है । इस रूप में नागार्जुन की कविता बहुत विश्वसनीय कविता है वह आदमी विश्वास बनाये रखने का कारण बनने वाली कविता है। यह संभावनाओं के प्रति सचेत रहने वाली और इस रूप में हमें सचेत करनी वाली कविता है। लेकिन इस प्रकार का सरलरीकरण उनकी कविताओं में किसी रूपवाद की सृष्टि नहीं करता बल्कि जीवन के पश्ती में जीवंतमस्ती, अवसाद में उल्लास और अंधेरे में प्रकाश के बेसुमार चित्रों की कविता है। इस प्रकार यह सामान्य की विशिष्ट कविता है। जिसने अपनी चारों ओर की दुनियॉ के आपसी रिश्तों को जानने वाली, समझने वाली कविता है। नागार्जुन की सबसे बडी विशेषता उनकी कविता में पारदर्शी तत्वों की प्रमुखता है। उनकी अकाल और उसके बाद नीम टहनियां बहुत दिनों के बाद अन्य पचीसी के दोहे आदि सभी कविताये साफ–साफ बयान करती हैं कि कवि अपने आस–पास के जीवन और उसकी संवदेना के साथ बहुत करीब से जुड़ा हुआ है। दूसरे इन कविताओं में शायद ही कोई स्थल हो जहां स्पष्टता का अभाव हो। इस लिए कहने की आवश्यकता नहीं है कि नागार्जुन इसी विशेषता के चलते अपने समकालीन कवियों में सर्वाधिक लोकप्रिय और जन जीवन के निकट हैं।"–१

यही कारण है कि इन कविताओं में जो कुछ भी वर्णित किया गया । वह बहुत ताजा और मार्मिक साथ ही उद्‌बोधन शील लेकिन लुभावनी कविता छवियों को हमारे सामने लाता है। इन

---

१ – (नागार्जुन रंचना संसार–रामनिहाल गुंजन –नई कहानी अंक १० जुलाई १९८८–पृ० २१७)

लुभावनी कविता छवियों में प्रकृति का अंकन भी है। जो नागार्जुन की वैयक्तिक संवेदना और उनके निजी मनोभावों को बखूबी प्रेषित करता है। इन छवियो में रमने वाला कवि कभी बादल को घिरते देखता है कभी बसत की अगवानी मे नीम की दो टहनियों को हिलते देखता है। उसे काली सप्तमी में चांद और शरद पूर्णिमा के चांद मे अद्भुत दृश्य बंध पाता है। और कभी पहाडों की विशालता पर वह मुग्ध होता है। लगता यूं है जैसे कवि के भीतर का कलाकार पूरी तरह सजग है। तभी कभी–कभी ही सही अपनी उद्‌बुदध चेतना को पीछे ढकेल कर अपनी कलम तूलिका से वाह्य प्रकृति की टटकी छवियों को उतारने के लिए आतुर दिखता है। –

दूर कहीं अमरायी में कोयल बोली परत लगीं चढने झींगुर की सहनाई पर

वृद्ध वनस्पतियों की ठूंठी शाखाओं में पोर–पोर टहनी का लगा धहकने

टेसू निकले मुकुलों के गुच्छे गदराये अलसी के नीचे फूलों का नभ मुस्काया।

धूप के सौन्दर्य को भी नागार्जुन ने आत्मीयता से देखा है। उसमें उसे स्निग्ध करपूर गध मिश्रित ताजगी और उल्लास का सम्बल पाया अपनी यायावरी के चलते नागार्ज्रुन जर्बदस्त भ्रमण शील रहती रहे। उनके चित्रों में प्रकृति के इतने भिन्न रूपों की जो कमनीय छवि हमे लगातार मिलती है वह इसी कारण से है। बादलों की तरह भ्रमण शील नागार्जुन बादलों पर बहुत आशक्त हैं–

" झुक आये कजरारे बादल

कूक उठे मोर

टर्राये मेढक

पहुंच कर धीरज के छोर पर

दम साध लिये धरती ने "– १

यहां सिर्फ धरती ही दमसाधकर नही है बल्कि स्वयं नागार्जुन ही इन कजरारे बादलो को देखकर दमसाधकर उन्हे देख रहे हैं। प्राकृति सौन्दर्य की दृष्टि से वर्षा मंगल कविता अत्यंत महत्वपूर्ण बन पडी है जिसमें कवि ने वर्षा की समस्त विशेषताओं को इस तरह निरूपित किया है जैसे कि वह अभी होने ही वाली है। युग धारा में कवि ने बादल को घिरते देखा और यहा वही कवि शिशु घनों को हिरण की तरह आकाश में चौकडी भरते चित्रित्र कर रहा है। भस्मांकुर खण्ड काव्य मे जो

---

१ – (नागार्जुन चुनी रचनायें दो – पृ० १२४)

प्रसंग वर्णित है, उसमें प्रकृति का योगदान न केवल विशिष्ट है अपितु अविस्मणीय है। बसंत के वैभव के अनगिनित मादक चित्र इस काव्य को कवि रागात्मक चेतना का प्रसाद प्रमाणित करते है। कवि ने शिव और पार्वती के भावी मिलन और उनके प्रेम के बडे मनोवैज्ञानिक शैली मे अभिव्यक्त किया है। इस मिलन की सांकेतिक व्यजना प्रकृति के उपादानो द्वारा करायी गयी है–

शाखायें हो उठी खूब छतनार

रोक ना पाई आलिंगन की चाह

लतिकाओं ने पकड़ी सुख की राह

दीर्घ प्रलंबित थाम लिये भुजदंड

यहा प्रकृति के वर्णन को प्रेम के साथ सम्बद्ध किया गया है। निश्चित रूप से इस पूरी प्रक्रिया में नागार्जुन का कवि संवेदना की मानवीय तह तक अपनी भावनाओं को व्यक्त करने के लिए प्रकृति का आश्रय लेते हुये जाता है। यह जीवन की रागधर्मी भंगिमा कविता के सौष्ठव को न सिर्फ बरकरार रखती है, बल्कि नागार्जुन की कविता पर अत्यधिक तात्कालिक होने का आरोप लगाने वालो के लिए भी यह एक उदाहरण है। तात्काकिता जो आवेग राजनैतिक कविताओं में देखने को मिलता है। रागात्मक बोध की कविताओं में यह तात्कालकिता जैसे कहीं परिदृश्य से गायब हो जाती हैं। और एक शुद्ध मानवीय आवेग_जिसके पोर–पोर मे संवेदनात्मक घनत्व का लाघव अनुस्यूत दिखाई देने लगता है। यह कविता के शुद्ध रूप को उसकी कलात्मक भंगिमा को बचाये रखने के नागार्जुन के प्रयास के रूप में देखा जाना चाहिये। असल में जो कवि जितना ज्यादा राजनीतिक रूप से प्रबुद्ध होगा। मानवीय रागात्मकता की मात्रा उसमें उतनी ही ज्यादा होगी। कहा जा सकता है कि, वह उतना ही रागात्मक होगा। रचना का ऐश्वर्य वहां विद्यमान होगा और एक विशिष्ट किस्म की सर्जनात्मक अनुभूति वहां होगी। यहजीवन के कर्म और अनुभव की भाषा का काव्यात्मक रूपांतरण है।

"समकालीन कविता मे चीजो बचा लेने की मंशा बार–बार दोहरायी गयी है। आज की – विशेषतः नवे दशक की – कविता का यह सर्व प्रियम् प्रत्यय रहा है। ये सारे कवि जीवन की अच्छी–अच्छी और जरूरी चीजों को बचा लेने की चिंता में गहरे उद्विग्न है।"–१

उद्विग्नता के इस दौर में आज के कवियों को बाबा नागार्जुन से प्रेरणा ग्रहण करनी

---

१ – (शम्भुगुप्त वर्तमान साहित्य जुलाई २००१–पृ० १७)

चाहिये। जिनके यहां मनुष्य होने के मूलभूत गुणो को न सिर्फ बचाये रखने के लिए पूरा सलीका है। बल्कि वहा पर किस तरह से इसे सहेजा जाय यह भी बताया गया है। स्पष्ट है कि मानवीय राग विराग की चिताये भी वहा है। कवि के अंदर एक दृण विश्वास है और यह इस लिए है कि उसमें एक ऐसी सामाजिक जन आस्था है कि वह निरतर अपने को उस विशाल समूह उसके मनोविज्ञान उसके क्रियाकलाप सभी से सबंध बनाकर रखे हैं। यही कारण है कि नागार्जुन की कविता भाव बोध के विशाल फलक और विस्तृत परिधि को छूती है।

बाबा में कोई दुराव छिपाव नहीं है– शुद्ध पारदर्शी आत्मा है जैसे हैं वैसे हैं ठेंठ हैं तो हैं जिन मनुष्यों से ऊंची नाक उजले कपडे वाले घिन करते हैं बाबा उन्हे गले लगाते है। जिनके गले में माला डाली जाती है। उन्हें बाबा सेतुवा पिसान ले के खेद लेते है। बाबा को कोई रोक नहीं सकता। न शिल्प का टंटा न सौंदर्य बोध के शास्त्र बाबा किसी हद बंदी चकबंदी नाकाबदी को नही मानते। निराला के टक्कर का वैविध्य है। इसी लिए उनकी कविता में पाये जाने वाले सभी बोध रूपांतरित होते है। बाबा वर्गीय बुद्धिजीवी है। सांस्कृतिक मार्च करते हुए डेढ हड्डी के अलख जगाते जीव। नागार्जुन में संवेदना का दो टूक पन है और इस समझदारी का वर्गीय आधार नागार्जुन उस संवेदना को राजनैतिक बौद्धिक रणनीति का अग्रदूत भी बना लेते है। और इस लिए बाबा राजनीति के रंगे सियारों को दौडा–दौडा कर गरियाते है। उन्होंने एक सतत सवाद एक मुसल्सल रिश्ता भारतीय जनता के साथ चलाया और बनाये रखा मीर के शब्दों में कहा जाय तो – पर मुझे गुफ्त गूं आवाम से है। निराला की भी गुफ्तगू आवाम से है। मीर ने ही दिल की खराबी का ताआलुक दिल्ली की खराबी से जोड़ा था। जाहिर है एक क्षयिष्णु राजसत्ता से ही जनता के दरिद्रीकरण की प्रक्रिया उपजती है। नागार्जुन की कविता की जड़े भारतीय मनुष्य की विपत्तियो और उनके लड़ने की युयुत्सा में है। इसी लिए उनकी कविताएं बेजोड हैं उन्होंने भारतीय जनता कीआकांक्षा और प्रतिरोध उद्विग्नता और स्वप्न के बारे में एक सतत् सजगकता बनाते है। इसलिए कि उन्होंने अपने समय को और भारतीय सम्पूर्णता को राजनीतिक पदावली मे दर्ज किया है। उन्होंने इस जनता के साथ एक अपनापे का व्यवहार रखा हैं । वे उसके साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलने वाले साथी है। भारतीय यथार्थ के तनाव को एक तनावहीन और प्रायः एक लिरिकल उत्तेजना के साथ व्यक्त कियां। इसलिए कि उन्होंने कविता के आचरण और कवि के आचरण में किसी राजनीति या सांस्कृतिक फांक का निषेध किया है। " उन्होने कवि की सार्थक

भूमिका की चुनौती हमारे सामने रखी है। इसलिए कि धुरी ही , राजनीतिक दारिद्रय अपसस्कृति की घोरा सक्रात्मकता और सामाजिक दृष्टि से क्षयुष्णु और पतन शील समय में उन्होंने सबसे कमजोर और सबसे ज्यादा शोषित की चिंता और उसमे उसकी विदग्ध उपस्थिति को केन्द्रीय महत्ता दी है। आभिजात्य को उन्होने एक समर्थ्य फिर भी ठेठ किसानी अंगूठा दिखाया है। इसलिए कि उन्होने अपने पक्ष को पानी की तरह साफ रखा है। इसलिए कि उन्होंने किसी भी कामवादी तटस्थता का निषेध किया है । इसलिए कि बाबा नागार्जुन ने वर्षों की भयावह उपेक्षा के बावजूद अभिजात्य अचेतन ओर अर्मूतता के बरक्स वस्तुवादी सोच की अलख जगाये रखी है।"—१

इसलिए हिन्दी की वस्तुवादी रचना धर्मिता के, और यदि कविता की कोई दूसरी परम्परा है। तो उसके वह प्राण श्रोत है।

---

१ — (देवी प्रसाद मिश्र जन प्रसंग सिंतम्बर १६८६— पृ० ६५)

****

अध्याय-6 खण्ड-घ

त्रिलोचन की वैयक्तिक सवेदना

समकालीन कविता के व्यापक परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रखकर एक तथ्य यह उजागर होता है कि आज की रचनाशीलता में विचार संवेदन के भिन्न आयाम प्राप्त होते हैं, जो यथार्थ के ब्राह्य और आतरित पक्षो के सापेक्ष द्वद्व को रखाकित करते हैं, इनमे राजनीति, इतिहास, समाज आदि के आशय, अपनी अर्थकता प्रकट कर रहे हैं, तो दूसरी ओर ,प्रेम, प्रकृति, पारिवारिक बिंब आदि के आशय और रूपाकार यथार्थ के आंतरिक पक्ष की सवेदना के धरातल पर प्रकट कर हैं। संवेदना के इस जैविक रूप में विचार और बोध के " अन्डर करेन्ट्स" प्रवाहित होता है। इस दृष्टि से त्रिलोचन एक ऐसे कवि हैं, जो "जनपद" और जन के कवि होते हुए भी उनमे संवेदन का वह रूप भी प्राप्त होता है। जो प्रेम, प्रकृति तथा संवेदना के भिन्न सघन और तरल रूपो को "अर्थ" देते है, जो उनकी काव्य संवदेना का एक अभिन्न अंग हैं ।

त्रिलोचन के काव्य मूल्यांकन में इस तथ्य को स्वीकार करना जरूरी है कि उनकी कविता मे जहां बाह्य पदार्थ अपनी पूरी शिद्दत से आता है, वही उनकी काव्य संरचना मे यथार्थ का आतरिक पक्ष भिन्न रंग रूपों मेमं आता है, हमारे मर्म को स्पर्श करता है।

वस्तुतः त्रिलोचन की संवेदना " सभी कुछ " को समटेन का प्रयत्न करती है, जो यथार्थ को संवेदिन कर सके। त्रिलोचन की एक कविता " क्या-क्या नहीं चाहिए" में कवि अपने व्यापक 'तुम' को सम्बोधित करता हुआ कहिता है- 'और यह जान सको, तुमने एक जीवित हृदय का स्पर्श किया है।'

ऐसे हृदय का जो देशकाल के प्रभाव लेता है, बिलकुल जड नहीं है। मेरे हृदय को जान लो, प्यार , घृणा उदासीनता, सहानुभूति मुझे क्या-क्या नही चाहिए। 'अरघा से '

इस यथार्थ मे आंतरिक यथार्थ भी जहां प्यार, घृणा, सहानुभूति, प्रकृति, बिंब की ऐसी भगिमाये है।, जो हमारे अतर को झकझरोते ही नही, बल्कि हमारी अतश्चेतना को उद्वेलित भी करते हैं। इसी प्रकार त्रिलोचन 'पास' नामक कविता में जोकहते हैं वह संक्षिप्त होते हुये भी अव्याख्येय सा लगता है और इसके सौन्दर्य के सिर्फ महसूस किया जा सकता है-

" और थोडा, और आओ पास,
मत कहो, अपना कठिन इतिहास।
मत सुनो अनुरोध बस चुप रहो,
कहेगे सब कुछ तुम्हारे श्वास।।

यहा कठिन इतिहास का न कहना, और दूसरे स्तर पर "सब कुछ तुम्हारे श्वासो का कहना" मे जीवन की 'हल्की' त्रासद दशा जो सकेत हैं, वह एक सूक्ष्म सवेदना का ही रूप है। यही कारण है कि त्रिलोचन के संवेदना के चित्र एक दृश्य चित्र में तब्दील हो, गीतिमयता की सीमा तक पहुच जाते है। यह गीतिमयता लय का ऐसा प्रवाहमय रूप है, जो हमें उनके 'गद्यकाव्य' में भी स्थान प्राप्त होता है।

एक स्थान पर कवि कहता है– **"गीतमयी हो तुम, मैने यह गाते–गाते जान लिया"........। तुमको पथ पर पाते–पाते रह जाता हूं और अधूरी समराधना। प्राणों की पीड़ा बन कर नरीव आंखों से बहने लगती है, तब मंजुल मूर्ति तुम्हारी और निखर उठती है।"–१**

यहां से भी मंजुल का सस्पर्श किसी गहरी पीडा या सवदेना से है। यह एक आंतरिक सत्य का रूप है, जो हमे त्रिलोचन की सृजन प्रक्रिया से प्राप्त होता है।

त्रिलोचन की यह पीडा और संवेदना मात्र व्यक्तिगत नहीं है, वे अपनी वैयक्तिकता को 'परिवेश' मे बिछा ही नहीं देते हैं, बल्कि उसमें 'समो' जाने की दशा तक आ जाते हैं और यह तभी होता है, जब कवि की पीड़ा हद तक बढ जाती है कि –

" और जब भी पीडा
बढ जाती है बेहिसाब,
तब, जाने, अनजाने लोगों के
जाता हूं, उनका जाता, हंसता, हंसाता हूं। "–२

यह " हो जाना ही" जीवन का वह रूप है, जो उसे अर्थ देता है और कवि के अनुसार वह जीवन जो हमें मिला है, उसका मोल–तोल "अकेले कहा नहीं जाता।" दुख–सुख एक भी । अकेले सहा नहीं जाता।"–३

एक समय कविता मे फैशन के रूप में एकाकीपन और अजनबीयत की ढेरसारी चर्चाये हवा में तारीं थी लेकिन त्रिलोचन के यहां एकान्त व्यक्तिवादिता का तिरोभाव है, और व्यक्ति की सार्थकता अकेले में नहीं अनेक ही सापेक्षता में है। तभी तो वह कहते हैं–

" मैं एकाकीपन से ऊब गया था,
ऊब गया था, ऊब गया था, आखिर भागा
अगले क्षण जीवन सागर में डूबगया था । – ४

---

१ – (उस जनपद का कवि हूं)
२ – (अरधान)
३ – (धरती)
४ – (दिगन्त)

यह जीवन का सत्य सवेदना के स्तर पर अर्थ प्राप्त करता है। त्रिलोचन की कविताओं मे यह सहअस्तित्व या सहकारिता का प्रेरक तत्व है'–

कवि मानता है कि, अहम् और 'इदम्' की एकता का सत्य,

जो पा लेता है, वह अकेलापन नहीं अनुभव करता.

सूरज एकाकी है, लेकिन जब आता है

पृथ्वी का कण–कण तब नया गान गाता है। "–१

जो जीवन–सागर से अलग रहेगाा, सत्य से अलग रहेगा, वह अकेला रहेगा ही। त्रिलोचन जैसा कवि तो जीन से इतना जुडा है कि, वह कह सकता है–

"अपनी मुक्ति कामना लेकर लडने वाली

जनता के पैरों की आवाजों मे मेरा

हृदय धडकता है।"– २

कवि की भावना विकसित होकर इतनी उदात्त हो जाती है कि, वह विश्व मानवता से मिल जाती है।

" किसी देश में मानवता को मुक्ति यदि मिली

तो मैने जीवन पाया, जी की कली खली"। –३

"अपने समय के आदमी की अलग–अलग हार त्रिलोचन को परेशान करती है, क्यो कि इस सच्चाई को जानते हैं कि दरअसल अलग–अलग होना ही हारहै। अपनी अनेक कविताओं में वे अनुभव के इस नये और जटिल स्तर को जैसी सीधी और अचूक अभिव्यक्ति देते है, वैसी पंक्तियां केवल निराला के अन्तिम दिनों की कविताओं में मिल सक्ती है।"–४

त्रिलोचन की कविता से सहृदयता रखने के बावजूद कुछ आलोचक यह तय कर पाने में असुविधा महसूस करते हैं कि त्रिलोचन अपने समय, समाज और सच्चाईयों के कवि है। उन्हें उनकी कविता की देशीगंध परेशान करती है। त्रिलोचन को इसकी परवाह नही है। वे अपनी धुन में मग्न ठीक ही कहते है–

" बिस्तर है न चारपाई है।

जिंदगी हमने खूब पायी है।

---

१ – (दिगन्त)

२ – (दिगन्त)

३ – (दिगन्त)

४ – (ताप के ताए त्रिलोचन – केदार नाथ सिंह – मेरे समय के शब्द – पृ०)

ठोक दे दर–बदर की थी, हम थे,

कम नही हमने मुंह की खाई है।"

यह जान निकालने वाली सादगी सच्चाई और सहजता है, यह त्रिलोचन की कविता को ऐसी बुलंदी देती है जिमसे शिल्प के चमत्कार पर मुग्ध होने वाले की पूरी जमात ही बगले झांकने लगती है। यहां कवि की वैयक्तिक ईमानदारी मे सर्व सामान्य की जिदगी देखी जा सकती हैउसके दुख से दो चार हुआ जा सकता है और उसकी उम्मीदों भरी दृढता के आगे लज्जित हुआ जा सकता है उनका काव्य संसार उस झुग्गी झोपडी का संसार है जहा मानवता के आंसू टपकते रहते है। अपने को यह इस समाज इस संसार से अलग नहीं कर पाता। " कितनी भी धूप चढ जाय, मौसम आग उगलने लगे, दैन्य और विवशता के कंचुक फट जाय, पायजामा कुर्त चिथडे–चिथडे हो उठे– दिलवाले सहृदय रचनाकार का दिल राग से कैसे रहित हो सकता है। वही तो रचनाकार का मेरुदण्ड है परिस्थितियों के बदलने से उसी के विभिन्न रूप मनेजगत पर उभरते है। यह राग है ऊर्जा ही है, जो दिलदार मानव के जीवन की जडता तोड़ती है– और इस निस्तरग पाषाडी क्रीडा को समाप्त कर देती है। "–१

त्रिलोचन ने अपनी कविता के माध्यम से समाज और जीवन को जाना है । कवि यदि अपने समय समाज से सीधा साक्षात्कार नहीं करता तो उसके सर्जन के समय कई प्रकार के प्रश्नचिन्ह लगजाते हैं। कवि में यह अहसास जितना गहरा होगा, उसकी कविता उतनी ही विश्वसनीय और प्रामाणिक होगी त्रिलोचन का एक प्रस्थान बिन्दु वह है जहा वे अपने निजी सुख–दुख से संघर्ष कर आगे निकलते हैं कोई व्यथा उनका मार्ग अवरुद्ध नहीं कर पाती यही रचना की जय यात्रा है कवि को साधारण भाषुकता से बहत ऊपर उठाती हुयी । "इसी आत्मनिषध के बल पर त्रिलोचन रचना के दूसरे तीसरे चौथे वृत्त में प्रवेश करते है और जहां वैयक्तिक अनुभव समाजिक अनुभूतियों से जुडकर एक नया रचना रूपान्तरण प्राप्त करते है।"–२

स्वयं को केन्द्र में रखकर कई कवितायें हैं कई बार आत्म स्वीकृति तक की: अपराधी पाकर अपने को आज अकेले उस अपने से पूछ रहा हूं, तू क्या करने। निकला और किया क्या। तुझ को किस किस डर ने / कहां–कहां कब कब बांधा यह जी मे ले ले।" –३

---

१ – (डा रामूर्ति त्रिपाठी, कवि पर त्रिलोचन सृजन पथ–पृ० – २८)

२ – (प्रेम शंकर–बोलती बतियाती कवितायें – साक्षात्कार –जनवरी मार्च १९८७ – पृ० ११४–११५)

३ – (फूल नाम है एक : त्रिलोचन)

पर इस स्वीकृति से आगे बढने का साहस कवि की ऊर्जा है। यह एक प्रकार से उसका अत सघर्ष है, जिसमें उसका कवि , वृहत्तर मानवीयता से परिचालित है और विपक्षी होता है–

नही चाहिये, नहीं चाहिये मुझे सहारा/मेरे हाथों में पैरो मे इतना बल है।

स्वय खोज लूगा किस किस डाली मे फल हैं / उसे बाट दूग, जो लंगा भूखा, हारा।

दुर्बल दिखाई देगा–१

इसीलिए वे नागार्जुन के जनवादी व्यक्तित्व को सलाम करते हैं –" नागार्जुन क्या है, अभाव है . जमकर लड़ना/विषम परिस्थितियों से उसने सीख लिया है । लिया जगत से कुछ तो उससे अधिक दिया है। पथ कंटकाकीर्ण था पर काटो का गडना । उसके रोक न सका, युद्ध में डटकर अडना। और उलझना जान चुका है यही किया है, जीवनधारा की तरवा में और नियाहैं। देखो, हासिगार का खिलना खिलकर झडना।" –२

त्रिलोचन की कविता मे ऐसा कोई चरित्र नही जो न आया हो, ऐसे चरित्र जो ठेठ औसत भारतीय के चेहरे के प्रतिबिंब है ऐसे तमाम चरित्र जिसके माध्यम से समूचे भारतीय परिवेश और समाज की उपस्थिति न बनती हो। असल में वे ऐसाकार अपनी नैतिक प्रतिबद्धता सिद्ध करते है।

ऐसा ही एक चरित्र है चम्पा का जो काले अक्षरों को चीन्हती नहीं है । लेकिन जो मनुष्य है, अपने सुख दुख से लडेगी। और इसकी आकांक्षा,कि वह अपने पति को अपने साथ रखेगी और उसे कलकत्ते कभी न जाने देगी। त्रिलोचन की यह कविता अस्ल नें इसलिए बहुत महत्वपूर्ण बन पड़ी है कि क्यों कि इसमें जहां मनुष्य के रागबोध को समझने की कोशिश की गयी है वहीं इस रागबोध पर पडे आर्थिक दुश्चिंताओ की जकड़न इच्छा है– एक भोली इच्छा। "निर्मल और पारदार्शी। बिल्लौरी कांच की तरह। और इसे काली चट्टान से टकराते ही किरच किरच होकर बिखर जाना है। कल्कत्ते की इस चट्टान के पीछे छिपा है चम्पा का यथार्थ। ठोस और करुण। पति को तो जाना ही होगा। वह चला जायेगा। कलकत्ता उसे खींचकर ले जायेगा। कलकत्ते में चटकल है । रिक्शा है। इस चट्टान को तोडने के लिए बज्र की जरूरत होगी। वाचाल चम्पा के हृदय से एक अच्छावास निकलती है। " कलकत्ते पर बरज गिरे । " इस उच्छवास के आगे लिखी पढी जा सकने वाली भाषा अपर्याप्त हो जाती है।"– ३

यह त्रिलोचन जो चम्पा की अश्रु सिंचित हास पुलकित जिंदगी को रचते है।

---

१ – (फूल नाम है एक)

२ – (फूल नाम है एक)

३ – (राजेन्द्र शर्मा –शताब्दी कविता साहित्य विशेषांक–वर्तमान साहित्य – पृ० १२४–१३०)

एक डाक्यूमेण्टरी फिल्म की तरह। "पहली पक्ति के धुंधलके में खडी एक अस्पष्ट सी आकृति पक्ति दर पंक्ति चपत चम्पा की चतुराई क्रमश स्पष्ट होती, एक मानवीय मासल उपस्थिति मे बदलती है। अश्रुसंचित हास पुलकित उसका चेहरा क्लोजप मे आते ही एक श्राप उचारता है। और 'कट' । त्रिलोचन कहते है।– जिंदगी का मोल मौन से चकता कहा भाषा और केवल भाषा ही मौन को तोडती है। वही जीवन हैं भाषा मे फिर वह कोई प्राय ही क्यो न हो।"– १

असल में त्रिलोचन के लिए कविता किसी ऐसी आदत की तरहनही रही है। जिसे वह वृथा ढोते रहे और नही तो उनके नाम पर व्यापार करे। त्रिलोचन कविता को जीनेवाले कवि रहे है। जिनके जीवन के अनुभव कविता मे ठीक उसकी तरह उभरते हैं जिस तरह उनकी स्वाभाविक बोलचाल मे । हिन्दी कविता मे जीवन और रचना के अनुभवों संघर्षो और संवेदनाओ की एकता को ऐसा ईमानदार कवि बिरले ही है। इस स्तर पर आधुनिक हिन्दी कविता में निराला मुक्तिबोध की परम्परा के कवि हैं उनकी ही सवेदना निष्ठा और ईमानदारी की परम्परा के कवि–

" वही त्रिलोचन हैं" वह जिनके तन पर गंदे कपडे हैं " कहने वाला अपनी दीनता मे भी आत्म गौरव का मान कराने वाला यह कवि झूठे अहंबोध को आश्रय नहीं देता और न ही ऐसे आशा बाद की घोषणा करता है। जिसमें अचानक बुलंद हो जाने की कोई तरकीब निहित हो, बल्कि त्रिलोचन हमारे जीवन की विरूपताओं का प्रत्यक्ष कर, सामान्य मनुष्य की तस्वीर प्रस्तुत करते है। इस प्रतिक्षा के साथ कि वह भी सामान्य ही है। इसलिए उनके रागबोध बडे समुदाय के रागबोध से साझेदारी हैं इसीलिए वह बहुत आधुनिक है। इतने कि जितना दीखते नहीं। "आधुनिक हैं इसलिए कि परम्परा से विछिन्न नहीं है और आधुनिक हैं इसलिए कि वर्तमान जीवन संदर्भ और उससे उत्पन्न भविषयोन्मुख काव्य चेतना से सम्बद्ध हैं ।"–२

" वे ऐसे सच्चे कविाये में हैं, जिनके द्वारा अंकित साधारण वस्तुयें भी मन को लीन करने वाली है होती है।"–३

त्रिलोचन के लिए जब यह कह रहे होते हैं तो सम्भवतः उनके सामने जीवन व्यापार जाहिर है उसमें प्रकृति भी सम्मिलित हैके चित्र होंगे; छोटे संश्लिष्ट लेकिन जीवनदायक चित्र। त्रिलोचन का स्वाधीन, स्वच्छंद मन प्रकृति के रूपकारों में खूब रमा है। लेकिन प्रकृति की चित्रण की बनी बनायी लीग पर वह कम ही चलते दिखते हैं इस रूप में त्रिलोचन की कविता में छायावादी

---

१ – (राजेन्द्र शर्मा –शताब्दी कविता साहित्य विशेषांक–वर्तमान साहित्य – पृ० १२४–१३०)

२ – (खगेन्द्र ठकुर– कविता का वर्तमान – पृ० १२१)

३ – (परमानंद श्रीवास्तव – शब्द और मनुष्य –पृ० १०४)

शैली का नकार तो है ही बच्चन, नरेन्द्र शर्मा जैसे कवियो की रोमानी शैली का भी निबंध हैं खेतिहर जिजीविषा प्रकृति से सीधा साक्षात्कार, सहजता और मानवीय सरोकार उनकी कविताओं में बारम्बार रेखाकित होता है। "उनकी काव्यकता अपनी सादगी और पारदर्शिता मे असाधारण और अद्वितीय है। यहां फार्म, फ्रेम की तरह तस्वीर को अर्थात कंक्रेट को चमका देता है, स्वय नही चमकता। फिशर की पारदर्शी क्रिस्टल वाली अवधारणा की कसौटी पर उनकी कला खरी उतरती है।"–१

धूप सुन्दर धूप में जगरूप सुन्दर (धरती)

ढग गया दिन–धूप शीतल हो गयी (धरती)

हंस के समान दिन उडकर चला गया

अभी उड़कर चला गाय (धरती)

दिवस की ज्योति हुयी सरसो के फूल सी (धरती)

पवन। शाम बीतने पर। द्वंसवाणी में

छिप कर आता है

रुक–रुक बांसुरी बजाता है।

तारे चुप–चाप देखा करते है। पृथ्वी को।

राहें उदासह देखती है। आकाश को।–२

"केवल रिमझिम का संकेत सुन पड़ा था बूंदों की छनकारें। ओलतियों की टप–टप –टपकारें। पानी का कल कल करते। बहते ही जाना।"–३

इस प्रकार कवि प्रकृति सेसीधे साक्षात्कार करता है। उसके और प्रकृति के बीच कोई छाया अथवा रहस्य नहीं रहता कोई सकेत मुखर नहीं होता। " निसर्ग से यह सीधा साक्षात्कार है। प्रकृति के बहाने प्रकृति का ही चित्रण है, चित्रण कलात्मक है लेकिन कला मुखर नहीं होती, विनीत और संयत होकर लगभगअनुपस्थित हो जैसे, प्रकृति पर रचनाकार छायावादियो अथवा बाद के कायावादियों की तरह अपनी मानसिकता आरोपित नहीं करता।" –४

अपने सॉनेटों की तरह ही अपने गीतों में भी त्रिलोचन प्रकृति के रासरंग का पूरी सघनता के

---

१ – (राजकुमार सैनी – सापेक्ष – पृ०)

२ – (ताप के ताये हुए दिन)

३ – (ताप के ताये हुए दिन)

४ – (राजकुमार सैनी– सापेक्ष – पृ०)

साथ चित्रित करते है। अपने गीतों में प्रकृति से त्रिलोचन के रिश्ते दो प्रकार के दिखायी देते हैं, परम्परागत उपादान उषा , निशा इत्यादि के माध्यम से वे स्वाधीनता पराधीनता से जुडे अनेक संदर्भो को उजागर करते है। तो दूसरी ओर प्रकृति के विविध ऐंद्रिय बोध जगाने वाले दृश्यो को दर्ज करने के लिए उनके सुन्दर चित्र उकेरे है।

"इसी ऐन्द्रिय बोधात्मक कविता मनोवृत्ति के तहत त्रिलोचन का कवि सपने देखता है। सपने में उन्हे खुले आकाश में अपनी गीतमयी चांद सी दिख पडती है उनकी कविता में विह्वल समुद्ध का उत्तरंग गायन सुनने वो सुन सकते है। उनके हृदय सिंधु की गहराई तुलसी की कम जायसी की अधिक याद दिलाती है ।"– १

' जब से देखा तुम्हे तुम्ही को पाना चाहा। जीवन का क्रम अकस्मात् कुछ और हो गया। ' क्यों न होता ? उस रहस्य दर्शिनी की आखो की भाषा में आकर्षण ही ऐसा था। त्रिलोचन महसूस करते है। मानो–

" देखा नीले नभ मे तो, तुम वहा खडी हो ,
नीख सस्मित, सरिता की लहरो पर देखा
लहराती हो, क्रीड करती हो शशि लेखा
जैसे फूलों पर हंसती हो, वहीं पडी हो।
चंचल मन हो गया अचंचल पास तुम्हारे
ज्यों दीपक निष्कम्प सहन आरती उतारे।"

गीत मयी निवेदित त्रिलोचन की कविता–स्मृति में स्वच्छंद सरस सारे जातीय उपकरण उत्सुक उदग्र है। कवि की चेतना सक्रिय हैं संवादरत। गीतमयी से संवादातुर कवि मन वैसा ही हो जाता है गीतमय । उस मनोदशा के भीतर 'गर्मी के मैदानों में पूर्वा लहरा उठती है। बादलों से आकाश भरगया है। इन मेलों में परी बाजी, बूंदे छूरीं, सूखे ढेलों में छिपी गमक फैली, रिमझिम धुने केवल सुन पडती थी और यह भी कि झुलसी बेलो मे हुलसी हरियाली , फूलो के झोंप दल बांध भेज गंध संदेश लिखे कौंची–कौंची पर। उर में गूंजे कोयल और पपीहों के स्वर। '

" त्रिलोचन की प्रेमानुभूति के अंतरंग में प्रकृति का धीर पद संचरण कविता प्रेमियों को गरही आश्वस्ति देता है। गीतमयी की निकटता कवि को आत्म विस्मरण का सुख देती हैं उसकी स्मृति में उसकी हंसी जब जब खिल उठती है तब तब त्रिलोचन की कविता स्वतः स्फूर्त लगती है। उसका यह रूप कवि की स्मृति की लहरों में मिलकर कविता को निसर्ग का पर्याय बना देता हैं। गीतमयी से

१ – (डा. रेवती रमण कविता में समकाल – पृ० १२०)

कवि की देह दूरी कविता का सर्वागीण शरीर बन जाती हैं उससे दूर जाकर वह उसकी सारी मुद्राओ गतिविधियो को समझ सकेहैं। " — १

वे बाते, हसना

उठना चलना और बैठना

कहीं अकेले धसना चिंताओं की गहराई मे

बैठकर चिट्ठी लिखना

छूट न जाय कहीं कुछ, रखना ध्यान बराबर"

डा. रामविलास शर्मा ने लिखा है कि आदिम कबीलाई समाज टूटने और तथा श्रम विभाजन लागू होने पर 'स्त्री पुरुष मे छोटे बडे का भेद उत्पन्न होता है। "सभी घर का करती है पुरुष बाहर का काम करता है। सम्पत्ति का स्वामी पुरुष होता है वह युद्ध करता है। "

शस्त्र रचता है, व्यापार करता है, स्वभावत. उसके काम के आगे स्त्री का घरेलू काम छोटा लगता है। शूद्रो में जहां स्त्री पुरुष के साथ काम करती है, वह द्विजवर्ण की देवियो की तुलना में अधिक समर्थ होती हैं। " करना न होगा कि स्त्री पर उसके अनचाहे ही थोपी गई दासता को बेडियो से उसे मुक्त कराने के लिए क्रांतिशील कवियों ने दो तरीके अख्तियार किए। " पहला सामाजिक जीवन में अपने साथ उन्हें सहभागी बनाने को प्रेरित किया, और दूसरा सामाजिक विषमताओ का अंत करके समता पर आधारित नये समाज की रचना का आदर्श अपनाया। " —२

सामाजिक जीवन में स्त्री पुरुष द्वारा परस्पर एक दूसरे को अपने संघर्ष में सहभागी बनाने की कामना को व्यक्त करते हुए त्रिलोचन लिखतेहै।—

बांह गहे कोई /अपरिचय के/सागर

दृश्टि को पकडकर /कुछ बात कहे कोई।

लहरें ये /लहरें वे नमें ठहराव कहां

पल/दो पल/ लहरों मे साथ रहे कोई

यहां महत्वपूर्ण यह है कि वे अपनी सम्पन्न स्मृति से छनी हुयी इन गूंजों का केवल गहन सांकेतित इस्तेमाल करते है। इलियद पर पाउण्ड की तरह पाठक के मस्तिष्क पर कोई अतिरिक्त बोझ नहीं डालते। कहीं कहीं उनमें एक अद्भुत तिलमिला देने वाली सादगी मिलती है। बहुत कुछ

---

१ – (डा. रेवती रमण कविता में समकाल–पृ० –१२०)

२ – (डा. रविकांत पल प्रतिपल वर्ष १० संयुक्त पृष्ठ ३७–३८ पृ० – १०४ जु.दिसम्बर ६६६)

मर्त्य लोक में भ्रांत देखकर पिला रही हैं

मुझे सुधा का सार " **फूल नाम है एक** ।"

त्रिलोचन की आत्मपरक कविताओ मे उनका व्यक्ति इतिहास है, कवि के रूप मे उनके निर्माण की प्रक्रिया है, व्यवस्था के प्रलोभन और आघात हैं, कवि के रूप मे उनका अडिग विश्वास और सघर्ष है, व्यवस्था और उसके तंत्र के चरित्र या उद्‌घाटन है, समकालीन काव्य परिदृश्य की विसगतियां हैं चालू मुहावरे के विरुद्ध उनके ओजस्वी वक्तव्य है। कविता के बारे में उनकी धारणायें है, उनका सौदर्य बोध है लोक से उनकी सर्जना का संबध, व्यक्त हुआ हैं । अपनी इन्ही विशिष्टताओं के चलते केदरनाथ सिंह का कहना है कि "त्रिलोचन के यहा आत्मपरक कविताओं की संख्या बहुत अधिक है। अपने बारे में हिन्दी के शायद ही किसी कवि ने इतने रंगों की आत्मपरक कविताये लिखी हों। पर त्रिलोचन की आत्मपरक कवितायें किसी स्तर पर आत्मग्रस्त कवितायें नही है और यह अनी गहरी यथार्थ दृष्टि और कलात्मक क्षमता का सबसे बडा प्रमाण है। " — १

त्रिलोचन की इन कतिवाओं से यह प्रमाणित होता है कि देशकाल सापेक्ष जीवन जीता हुआ भी कवि अपनी स्वायत्ता चेतना का प्रयोग करता है। एक ओर कवि स्वयं को अपने काल की विकसित चेतना से जोडता है, साथ ही दूसरी ओर अपनी स्वायत्ता भी बनाये रखता है। यह कवि की स्वायत्ता सपेक्षता है।कविता के रूप में हम उनकी चेतना और संवेदना से पुर्नसाक्षात्कार करते हैं और वह पुनः समूह का अंग बन जाती है समूह की इकाई होते हुए भी कवि का उससे अद्‌भुत संबंध है । ग्रहण और प्रतिदान की यह प्रक्रिया कला सृजन का नैरन्तर्य क्रम है त्रिलोचन उसी के कवि हैं।

---

१ — (त्रिलोचन भूमिका प्रतिनिधि कवितायें)

****

अध्याय-६ - २००५-५:

वैयक्तिकता (तुलना-शमशेर, नागार्जुन एवं त्रिलोचन)

नयी कविता वादियो की युयत्सा भरी कविताओ के बरक्स नागार्जुन की कविता मे जिन स्मृति बिम्बो की रचना की गई है उनमे है घर आंगन मे व्यस्त बाल बच्चों से घिरी या चूल्हे के आग से दिपते चेहरे वाली दीप्त प्रिया। यह स्मृति बिम्ब, कोई स्थूल नैतिकतावादी टिप्पणी न करते हुए भी इसमे जीवन की रंगधर्मी सवेदना को देखा जा सकता है। नागार्जुन के स्मृति बिम्बो से एक ऐसे पारिवारिक और सामाजिक मनुष्य का ससार उभरता है जो अपने प्रेम को पूरे मानवीय परिवेश और परिवार के सन्दर्भ में अभिव्यक्ति दे रहा है। प्रेम का प्रसग भावुकता और भावानात्मक आवेग का होता है लेकिन स्मृति के अंतराल से जो निखार और प्रशांति नागार्जुन की प्रेम और प्रणय की कविताओ मे आयी है, वह उन्हे भावुकता और कोरे भावोच्छावास से मुक्त करती है। 'उनके प्रेम प्रणय चित्रो मे कही भी सामाजिक शील का इन्कार नहीं है और वह सहज पारिवारिक प्रेम के प्रगाढ रस से सिक्त है। 'सिन्दूर तिलकिति भाल' इसकी मिसाल है । प्रेम के समावेशी चरित्र का यह बडा मार्मिक आख्यान है । यह प्रेम जिन्दगी की अनिवार्य, प्रकृत और प्रेरम अनुभूति के रूप में चित्रित है न कि काम केन्द्रित व्यक्तिवादी मानसिकतां से।–

यही वजह है कि यह प्रेम सरसता का एक ऐसा प्रंसग रचता है जो जितना मानवीय है उतना ही मार्मिक भी। प्रेम सौन्दर्य और सरसता के सारे सन्दर्भो के व्यतीत हो जाने पर भी स्मृति क्षणों को रागात्मकता से सिक्त पाता है । इसलिए कि यह प्रेम सारी जिन्दगी के सुख दु.ख की सहचरी के मीठे बोल और तरल स्पर्श से धुला है । उन्मुक्ता, अनासक्त और प्रशांत भाव से प्रणय श्रृगार को संवारने में नागार्जुन निराला की ही तरह उदात्त हैं ।..................

विषय वस्तु मे अद्भुत भावात्मक एकीकरण के कारण उनकी कविता बेहद मार्मिक बन पडी है। नागार्जुन की वैचारिक सवेदना वाली कविताओं की तरह उनकी सफल कविताए वे है जो उनकी आत्मानिष्ठ कविताएं है । 'बहुत दिनों के बाद', 'नीम की दो टहनियॉ' आदि कविताओ की सारी खूबसूरती ही इसकी गीतात्मतकता के चलते है । 'अकाल और उसके बाद' को उदाहरण के लिए लिया जा सकता है.

" कई दिनो तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास

कई दिनों तक कानी कुतियां सोयी उनके साथ"

संवेदनशीन पाठक के लिए यह देखना कतई मुश्किल नहीं होगा कि कवि का 'मै' ऊपरी तौर पर गैरहाजिर होते हुए भी पंक्ति–पंक्ति में इन्वालव है । ऐसा इन्वाल्वामेण्ट जो नागार्जुन मे हद से ज्यादा है...............जो रचनाओं को एक आत्मीय विश्वसनीयता देता है ।

नागार्जुन की कविताओं में व्याप्त ऊष्मा भी इसी इन्वाल्वमेण्ट के चलते है। चाहे रिक्शा खींचते पैरी की कटी बिवाईया याद आये (खुरदरे पैर) या मल्लाहों के बच्चो की तरह नगे बदन गगा के किनारो पर घूमने की इच्छा जागे (गीले पांक की दुनिया गयी है छोड) या फिर नयी–नयी सृष्टि रचने को तत्पर करोडों हाथ–पावो के इशारों के सामने खुद के अलस–पडे रहने की बात पर क्षोभ हो , सभी जगह एक हॅाड–मॉस का इन्सान, अपने सजल आंखें से देखता मिलेगा। यहॉ कवि की उपस्थिति इसलिए और भी सुखद लगती है क्योंकि निजी कविता के सवेदन परकता में यह पूरे भावमयता के साथ विद्यमान है। इसलिए यह हमेशा लगता है कि जैसे वे कविता

को वैचारिक धरातल देने के साथ, संवेदनात्मक धरातल दे रहे है। अपनी गहरी विचार दृष्टि से पाठक–श्रोता को विचलित करने वाली तमाम कविताए नागार्जुन ने लिखी है।

शमशेर अपनी व्यैक्तिकता में अनुभूतियों की शैली को अपनाने की विवशता से कही ज्यादा उसे महसूस करते हैं। फलत· वह जिस भी विषय पर कविता लिखते हैं तो अपनी अनुभूति, अपनी मनोवेदना की समग्रता मे। मित्र, पिता, पहाड, पेड, जीवन, समुद्र किसी भी विषय पर कवि की अतरग पहचान इस विवेक मे निहित है कि कवि अपने समेत कितना वह अपने विषय के साथ हो सका है। शमशेर की कविताओं में, शमशेर खुद को ढूँढने की कोशिश करते दीखते हैं। कवि की जिज्ञासाओ मे जीवन मूल को मानने का जातीय विवेक निहित है। शमशेर की कविताओ में अनुभव का ऐसा आर्द्र स्पन्दन, ऐसे बीहड आनद की अनुगूजें हैं, जहॉ संवेदनात्मक ज्ञानधारा का साफ–सुथरा व्यक्तित्व सामने आता है। उनकी कविता मानवीय अनुभूतियो की तडपन नही, मनुष्य–बोध का तर्पण है। इसीलिए उसकी चरम परिणति उस मौन में होती है, जो हमेशा उन्हे सुनने के बाद मन में घिर आता है। उनके यहॉ, इस कारण संगीत सम्भव हुआ है।

वस्तुतः शमशेर की कविता व्यक्ति, समाज, राजनीति और सम्यता के आम–फहम मुद्दो और उनके सरलीकृत निष्कर्षों की कविता नहीं है। वह हर क्षण, हर पल नये सिरे से देखी जा रही दुनिया और उस के बदलते हुए गतिशील यथार्थ को जी रही कविता है। इस में वह क्षण महत्वपूर्ण है जिस मे कविता रची जा रही है। यह देशकाल के बहुपरतीय दावों के बीच जीने के पल तलाशती हुई कविता है। उम्मीदों से भरी, इन में कहीं कहीं गहरी निराशायें नाउम्मीदियॉ भी हैं। मगर इन निराशाओं और नाउम्मीदियों की पहचान भी कहीं न कहीं जीने की शर्तों से जुडी चीज हैं

और इसीलिए तमाम दबावो के बावजूद कविता को शब्दों मे बचाये रखने की कोशिश वहाँ लगातार है।

शमशेर ने अपनी कविता का रास्ता खुद चुना और उसे चापलूस की गिरफ्त से हमेश बचाये रखा, फिर चाहे वह अकविता हो, या नकली क्रांतिकारिता। बहुसंख्यक कवियो के हवाले से कहा जा सकता है कि जो इन प्रवृत्तियों के शिकार रहे और अंत तक उनसे पूरी तरह उबर नही सके ऐसे मे अपने को बचाये रखना और एकदम निजी रास्ते से कविता को खोजना निस्सदेह उन्हे उल्लेखनीय बनाता है। नयी कविता के दौर मे भी जब सारे कवि सामुहिक मुहावरे मे लिखते हुए कविता का नाश करने में जुटे थे, तब भी शमशेर एक ऐसी भाषा और मुहावरे की खोज मे सलग्न थे जो उनका अपना हो। एकदम अलग, एकदम चटख।

त्रिलोचन जी ने कविता, उसकी भाषा, जीवन, मनुष्य, मानवीय पुरूषार्थ, जनतात्रिक दायित्व और साहस इन सबको एक साथ मिलाकर जिस तरह कबूल किया है वह प्रगतिशील कवि से ही सम्भव है, क्योंकि यह प्रगतिशील कवि ही है, जो इन सबको समाज की ऐतिहासिक प्रक्रिया में देखता है। त्रिलोचन देश के आधुनिक इतिहास के ऐसे दौर मे कविता के साथ हुए, जब देश को आजाद हुए अभी कुछ ही साल हुए थे। लम्बे स्वाधीनता संर्घष के फलस्वरूप स्वतंत्र हुए देश का मनुष्य औपनिवेशिक अतीत के दाग को धोकर अपनी पूरी रचनात्मक को उन्मुक्त कर अपनी कल्पना के भविष्य का निर्माण करने के लिए व्यग्र था। लेकिन इस आजाद हुए देश के सपने भी बहुत जल्द टूटे। देखे हुए स्वप्न छिन्न–भिन्न हो गये। जिस प्रकार के जीवन को चाहा गया था वह व्यवस्था के पैरोकारों के हाथों कठपुतली हो चला। ऐसे अनाचारी समाज में जीवन का यर्थाथ बहुत बदरंग या यूँ कहें रंगहीन हो चला था। समाजिक विषमता की बढती हुई खाई में आम आदमी को

भयावह अधेरे में डाल दिया। त्रिलोचन इसी आम आदमी को अपनी कविता का मुख्य पात्र बनाते है। इसीलिये त्रिलोचन हिन्दी कविता को विकसित करते हैं क्योंकि ठोस किन्तु द्वदात्मक और गतिशील यर्थाथ से भोथरे हो गये एकाकी जीवन से उन्हे गहरा प्रेम था और वही उनकी कविता का कारण बना।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रसमीमांसा में प्रसंग वश कहा है कि रूप परिचय के बिना प्रेम कैसा। त्रिलोचन ने इसे सार्थक करते हुए मनुष्य जीवन को उसकी मामूली से मामूली क्रिया को बडी आत्मीयता से देखा है। अपनी तमाम ज्ञानेन्द्रियों की समग्र क्षमता से उसे देखते हैं। लेकिन बड़ी बात यह है कि मामूली जीवन को या जीवन की मामूली घटना को भी वे ऊंची कविता का दर्जा दे देते हैं।

जीवन का कविता से गहरा लगाव है यह अब बहस का विषय नहीं, लेकिन इसको मान लेने से अनायास जीवन में कविता नहीं मिल जाती और न यों ही जीवन कविता मे ढल जाता है। जीवन के प्रसंगों में से बल्कि जीवन के प्रवाह से कविता के उपयुक्त प्रसंगों को चुनना और उन्हे कविता का रूप देना पड़ता है। अवश्य ही ऐसा करने से कवि की क्षमता और अक्षमता की पहचान होती है। त्रिलोचन जी बड़ी सहजता और कुशलता से जीवन प्रसंगों को कविता में रूपांतरित कर देते है लेकिन त्रिलोचन की कविताओं की विशेषताओ की विशेषता यह है कि पूरी की पूरी कविता से कोई अश निकाल कर त्रिलोचन के कवित्व से कोई अंश निकालकर त्रिलोचन के कवित्व का दृष्टात पेश करना मुश्किल है इस प्रकार उनकी फुटकर कविताओं में भी एक प्रकार की प्रबंधात्मकता है यह प्रबंधात्मकता घटनाओं के प्रवाह से नहीं बल्कि एक जीवन–प्रसंग को समग्रता प्रदान करने से बनती है।

त्रिलोचन का जीवन बेहद संघर्षमय था। स्पष्ट है कि उनके पास आपबीती ही इतनी है कि वही सब कह लिया जाए तो कहने को 'अपर्याप्त' है। हा, यह इतना है कि इस सामग्री को तब तक काव्य की सामग्री नही बनने देते जब तक उनका सामाजिकीकरण न हो जाय। जिस प्रकार और लोग 'ज्ञान' को 'सवेदात्मक' बनाकर ही काव्य का उपजीव्य बनने देते हैं उसी प्रकार त्रिलोचन जी व्यक्ति वेदना को भी तटस्थ रहकर व्यक्तिगत भूमि से ऊपर उठकर व्यक्त करने मे सकोच नही बरतते।

"भीख मागते उसी त्रिलोचन को देखा था

जिसको समझा था है तो यह फौलादी"

त्रिलोचन जी ने हिन्दी कविता में विशिष्ट पहचान बना कर कविता को समृद्ध किया है। उनमे नागार्जुन की सहजता और शमशेर की जटिलता (दुरूहता नहीं) का समाधान दिखायी पडता है। स्वातंत्रोत्तर भारत के गहराते जटिल होते और पकते हुए सामाजिक यर्थाथ की प्रक्रिया की सूक्ष्म पकड ने शोर शराबे से मुक्त कवि की भाषा को यह विशेषता दी है। त्रिलोचन जी की काव्य भाषा हिन्दी कविता की भाषा पकने का एक समर्थ सबूत है।

अध्याय - 6 २४०५-क

सौन्दर्य

सौन्दर्य ऐसा विषय है, जिसे महसूस करना जितना आसान है, परिभाषित करना उतना ही कठिन। शास्त्र के लिये आवश्यक यह है कि उसका विमोचन विश्लेषण बुद्धि और तर्क के आधार पर किया जा सके। किन्तु सौन्दर्य की अनुभूति का सम्पूर्ण विश्लेषण केवल तर्क बुद्धि के सहारे करना बहुत सभव नहीं है। मुक्तिबोध के अनुसार तो सौन्दर्यशास्त्र एक विचित्र शास्त्र है। यह एक मूल्य शास्त्र है, आदर्श शास्त्र है।

सौन्दर्य की अनुभूति रचनाकार के मानस को उद्बोधित करती है किन्तु प्रथम अनुभूति की छाया से लेकर पूर्ण अन्वित कृति मे ढलने के बीच के रचना के कई स्तर होते है। यह अत्यन्त जटिल उलझी हुई प्रक्रिया है जिसके विश्लेषण से रचना का रहस्य प्रकट होता हुआ सौन्दर्यबोध काव्य मे ढल जाता है । कवि या कलाकार अपनी अपूर्व प्रज्ञा और रचना विधायनी कल्पना के बल पर यह कार्य कर पाना है। प्लेटो के अनुसार , " सौन्दर्य सृष्टि का मूल तत्व है और इसका सन्धान करना ही तत्व दृष्टा का चरम लक्ष्य है। यह सत्य का पर्याय हैं और श्रेयस में अभिन्न है ।" –१

सौन्दर्यानुभूति और सृजन प्रक्रिया परस्परावलम्बी है। सौन्दर्य की वास्तविक अनुभूति तो रचना सृजन प्रक्रिया के क्षणों मे ही होती है। सौंदर्यानुभूति 'घटना' है यह घटित होती है। इस घटना के आयाम ही सृजन प्रक्रिया के पडाव है। कवि की चेतना ही इसकी रंग भूमि है। संवदेनाएं, आवेग, अनुभूतियां, उत्कर क्षणों में चेतना को दीप्त कर देती है और फिर अवचेतन मन में पलकर, जीवानुभवो से पोषित होकर बिम्बों, रूपको शब्दों में ढलकर रचना मे परिणत हो जाती है। कलाकार के व्यक्तित्व का अवचेतन अंश से लेकर जाग्रत कल्पना और उसकी चेतना का सम्पूर्ण आधार इसमे भागीदार होते है। इस प्रक्रिया के अनेक स्तर अनेक परते होती है जिसका सम्यक विश्लेषण मुक्तिबोध एक साहित्यिक की डायरी तथा नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबंध मे करते है।

रचनाकार संवेदन शील और रचनात्मक कल्पना से सन्दन्न होने के कारण अपने परिवेश प्रकृति और सुन्दर पदार्थो के प्रति अधिक सचेत होता हैं यही प्रभाव मूर्त बिम्बों के रूप में संगठित हो जाते है। यही बिम्ब, संवेग, सवेदनाएं, प्रभाव रचना के उपादान है। उन्हीं के माध्यम से सुन्दर की अनुभूति रचनाकार 'रूप' में ढाल देता है।

इन प्रभावों, संवेगों, सवेदनाओ से मिलकर गाढ अनुभूति निर्मित होती है। इसका आस्वादन

---

१ – (गिल्बर्ट एण्ड कून – सम्भावना वर्ष एक अंक दो पृ० – ७० से उद्धृत)

पहले कवि करता है। अपनी अनुभूति के प्रेषण के लिये वह दूसरे स्थूल उपादानो को ढूढता है। उन भावचित्रो की ही अभियोजन होती है। इसके माध्यम से सौन्दर्य बोध काव्य में ढलता है। जगत का सौन्दर्य कला ढलकर परिवर्तित हो जाता है। इस परिवर्तन का उल्लेख आचार्यो ने रसास्वादन के समय प्रमाता की चेतना के गुणात्मक परिवर्तन उसके व्यक्तित्व की सीमाओ के विघटन, स्व के विस्तार सत्योद्रेक तन्मयता और मुक्ति के द्वारा किया जाता है। फलत बिब प्रतीक रूपक, शब्द चयन, रीति, शैली, रचना आदि माध्यमो से उद्‌भासित होता है।

सौंदर्य सिर्फ प्रकृति में ही नहीं होता, वह मानव जीवन मे भी होता है प्रकृति और मानव के प्रत्येक स्तर का सौन्दर्य सौंदर्य शास्त्र का विवेचन होता है। " वस्तुत सौन्दर्य अपने आप मे मानवीय चेतना का विस्तार है। यह सत्यं – शिवं – सुन्दरं के रूप मे संस्कृति के द्वारा प्रभावित होता है। इस प्रकार संस्कृति सौन्दर्यबोध के विकसित होने की चेष्टा है।" – १

सौन्दर्य सिर्फ इन्द्रिय बोधात्मक ही नही होता बल्कि उसकी सूक्ष्म सत्ता मनुष्य की भावनाओ और विचारो तक में विराजमान होती है। इस प्रकार सौन्दर्य प्रकृति और मनुष्य की चेतना मे वस्तुगत रूप से विद्यमान रहता है।सौन्दर्य का स्वभाव ही वस्तुनिष्ठ होता है क्यों कि सुन्दर शब्द का प्रयोग विशेषण के रूप में होता है जिसका विशेब्य कोई न कोई वस्तु अवश्य होती है। सौन्दर्य का आस्वाद्य मनुष्य की अनुभूति से जुडा है। आस्वाद्य का अर्थ ही है कि सौन्दर्य वस्तु। से संबंधित है या निसृत होता है इसलिये उस वस्तु के गुण के प्रभाव की अनुभूति वास्तव में वस्तु के प्रभाव की अनुभूति होती है। इसी को सौन्दर्यात्मक अथवा एस्थेटिक एक्सपीरियन्स कहा जाता है। सौन्दर्य कोई जुड़ अथवा नहीं है। बल्कि यह नित नवीन (तिले तिले नूतन होय) है। अतः इसके बारे में अन्तिम शब्द कह देना आसान नहीं है। सौन्दर्य का सम्बन्ध वस्तु और दृष्टि (विषय) दोनों से प्रत्यक्षतः जुड़ा होता है। अतः विषयी के संस्कार, स्वभाव आदि को सौन्दर्यानुभूति से काटकर नही देखा जा सकता है। इसी तरह विषयी की अनुभूतियों को पूरी तरह निरपेक्ष भी नही बतलाया जा सकता है।

वस्तुतः नए सौन्दर्य शास्त्र का उद्‌देश्य को अमानवीय व्यवस्था के विरुद्ध उसके संघर्ष को और कुरूपता के विरुद्ध उसके स्वतंत्र सौन्दर्य –सृजन को प्रोत्साहित करना तथा नये समाज के निर्माण मे उसकी सक्रियता में योगदान करना है। कविता अथवा कला जो अपने सौन्दर्यबोध को आयासहीन बिम्बों के रूप में मूर्त करती है तथा जो भावात्मक ही नहीं वैचारिक शिक्षण का प्रभावी माध्यम भी है उसका भी उद्‌देश्य यही है। क्या यही कारण नहीं है कि अन्याय, अमंगल और

---

१ – (जय शंकर प्रसाद – काव्य कला तथा अन्य निबन्ध पृ० – ५)

कुरूपता के विरुद्ध संघर्ष करने वाले काव्य–नामक इसी लिये मोहते और प्रेरित करते है। इसे ही हम साहित्य या कला का नैतिक दायित्व मानते है। इसका सबध हमारी सैंदर्यनुभूति से है। " जीवन का समग्र विकास ही सौन्दर्य है। यह सौदर्य वस्तुत एक सृजन व्यापार है। इस सृजन की क्षमता मनुष्य मे अन्तर्निहित है। वह इस सौन्दर्य सृजन की क्षमता के कारण ही मनुष्य है। इस सृजन व्यपार का अर्थ है बन्धनों से विद्रोह । इस प्रकार सौन्दर्य विद्रोह है – मानव मुक्ति का प्रयास है। " – १

इसी दृष्टि से प्रसिद्ध लेखक बेलिंस्की सुनदरता को नैतिकता की सगी बहन कहता है। भारतीय सौन्दर्य–शास्त्रियों ने भी नैतिक जीवन मूल्यो के परिप्रेक्ष्य मे ही सौन्दर्य को परिभाषित किया है–

" अनौचित्याद् ऋते नान्यत् रस–भग्स्य कारणम्" – क्षेमेन्द्र

इसी आधार पर आचार्य शुक्ल ने भी इसे 'लोकमंगल' से जोडा और 'कर्म सौन्दर्य' तथा 'गत्यात्मक सौन्दर्य' की सार्थक स्थापना की। प्रेम हर्ष कामना, उत्साह जैसे अनेक मानवीय अनुभव भी प्रभु वर्ग के हितों के अनुरूप अनेक व्यापार की वस्तु रहे है और है। अत· यह वर्ग अपनी लिप्सा के अनुरूप एक खास तर्ज की सौन्दर्याभिरुचि का निर्माण कर लेता है। और उसे सारे भावक समाज पर आरोपित कर कलकृतियों का संदर्भ और परिप्रेक्ष्य ही बदल देता हैं । फलतः हमारी मल प्रामाणिक सौन्दर्य चेतना कुंठित हो जाती हैं । मुक्ति बोध सर्वहारा से जुडे होने तथा एक स्वस्थ मानवीय दृष्टि से सम्पन्न होने के कारण इस निपर्यय को पहचानते है।

आज व्यापक मानव समाज में पाये जाने वाले भयानक सघर्ष की पहचान के लिये नये सौंदर्य शास्त्र की मांग जोर पकड़ रही है। आज का स्वनात्मक लेखन दक्षिणपंथी आलोचनाओं का जवाब देने अथवा उनके कृति आलोचकों के बेसिक फाल्ट या ओरिजिनल सिन ढूंढने में ही विसर्जित होती जा रही है। आखिर आलोचना की जरूरत से उसके मुकरते चले जाने के पीछे कौन से राज है? दरअसल आज की कविता अपने गुणात्मक कंला प्रभावों की क्रांतिकारी दृष्टि तभी पा सकती है जब हमारी आलोचना इन गतिरोधों को तोडने मे नयी सौन्दर्य दृष्टि का सहारा ले।

सौन्दर्य मूलत· ऐन्द्रियता का विज्ञान है। इसका उद्देश्य भी स्वतत्रता तथा सुख–भोग है। यह भी मूलवृत्ति तथा नैतिकता का समन्वय करता है। वस्तुत. सौन्दर्य अपने आप में मानवीय चेतना विस्तार है। यह सत्यं–शिवं–सुन्दरम् के रूप में संस्कृति द्वारा प्रभावित होता है। इस प्रकार

---

१ – (डा० नामवर सिंह – दूसरी परम्परा की खोज पृ० – ६६–६७)

सस्कृति बोध के विकसित होने की चेष्टा है। सौन्दर्य बोध एक सश्लिष्ट इकाई है। सौन्दर्य प्रकृति में है, मनुष्य के मन मे भी उसकी अनुभूति व्यक्तिगत होती है, समाजगत भी। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी सौन्दर्य को सौन्दर्य न कहकर लालित्य कहना चाहते हैं तथा मानव रचित सौन्दर्य को विशेष महत्व देते है। लालित्य वह इसलिए है कि मानव द्वारा लालित्य है। सौन्दर्य के संदर्भ मे आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की अवधारणा मानववादी है। इनकी सौंदर्यदृष्टि मूलतः मानव केन्द्रित है। क्यों कि सौन्दर्य का स्रष्टा मनुष्य है, बल्कि यह भी कि सौन्दर्य की सृष्टि करने के कारण मनुष्य मनुष्य है।

सौन्दर्य बोध की चिन्तन प्रक्रिया वैज्ञानितकता के प्रभाव, औद्योगीकरण तथा आर्थिक पक्ष की प्रधानता के कारण एक नया रूप ग्रहण करता है। और इस अकन का आधार भौतिकवादी हो जाता है। मानवीय एव इसी दुनिया के सौन्दर्य का अंकन नवस्वच्छन्दतावादी कवि का प्रतिपाद्य है। दिव्य और अलौकिक सौन्दर्य का अकन नवस्वच्छन्दतावादी साहित्यकार अपनी सीमा रेखा में नही लेना चाहता। दिव्यता या अलौकिकता को मानवीय धरातल पर लाता है तथा इसे यथार्थता का रूप देता है। काडवेल सौन्दर्य को एक सामाजिक भाव मानते हैं और उसकी परिभाषा देते हुए कहते है। कि जो कुछ असुन्दर है उससे भिन्न जो कुछ है उसे सुन्दर कहा जा सकता है असुन्दर ही सुन्दर हो नियत कतरा है और उसे एक निश्चित सीमा में बांधता है........ सुन्दर का विरोधी असुन्दर नही, वरन कुरूप हैं । मार्क्सवादी विचारक इस मत पर एकमत हैं कि सौन्दर्य की स्थिति व्यक्ति के मन में न होकर वस्तु में होती हैं । सुन्दर वस्तु पृथक सौन्दर्य की सत्ता नही है। नवस्वच्छन्दतावादी सौन्दर्य चेतना वस्तुपरक होती है। इसमें मानवीय एवं प्राकृतिक सौन्दर्य विशेषकर लोक सौन्दर्य व्यक्ति मन की अभिव्यक्ति है, लेकिन नवस्वच्छन्दतावादी सौन्दर्य वाह्य वस्तुओ का यथार्थपरक अंकन भी है।

साहित्य में बौद्धिकता का प्राधान्य हुआ, लेकिन भावना का अभाव नहीं हुआ, प्रत्युत उसका प्रभाव अपेक्षाकृत व्यापक हो गया। तर्क और भावना का सघर्ष आधुनिक काव्य व साहित्य की मूल चेतना है। साहित्य और जीवन का संबंध घना है। जीवन में एक ओर व्यक्ति है, दूसरी ओर समाज जीवन का संबंध घना हैं । जीवन में एक ओर व्यक्ति है, दूसरी ओर समाज जीवन की सामूहिक चेतना से आधुनिक साहित्य व काव्य प्रभावित है। यही कारण है कि आज साहित्यकार सामूहिक अचेतन को अपनी अभिव्यंजना का आधार बनाता है। इस तरह आज साहित्य जगत में सौनदर्याकन की दो दिशाएं हो चही हैं – १– उपयोगितावाद– इसके अतर्गत कोई रूप योजना प्रयोग अथवा अलंकार एक सीमा तक सुन्दर लगता है जिस सीमा तक वही उपयोगी है। वस्तु की उपयोगिता

ही आज के सौन्दर्य की मूल चेतना है। २– दूसरी दिशा उपयोगितावाद की विपरीत दिशा मे एक नवरहस्यवादी चेतना का उन्मेष भी है, जो सामयिक परिवेश मे रहस्यवादी चिन्तन को प्रस्तुत करती है। आज हम किसी ऐसे सौन्दर्य बोध को स्वीकार नही करते जिसका प्रभाव नितात वैयक्तिक अथवा असामाजिक हो। कलात्मक सौन्दर्य चेतना सासकृतिक मूल्यो की तरह जीवन की देश काल की बदलती हुई परिस्थितियों के सतुलन के व्यापक प्रतिमान के रूप मे विकसित होती है। वस्तुत कवि अन्त. और बाह्य , व्यक्ति और समाज के समुचित सामंजस्य के साथ जीवन को ऐसी सम्पूर्णता के साथ आत्मसात् करता है कि वह अपनी देशकालगत सीमाओं के बावजूद भी संवदेशीय एवं सर्वकालीन बन जाता है। " किसी वस्तु या दृश्य या भाव से मनुष्य जब एकाकार हो जाता है तब सौन्दर्य बोध होता है। सब्जेक्ट और आब्जेक्ट से तादात्म्य कर लेता है तब सौन्दर्य भावना उद्‌बुद्ध होती है । सौन्दर्य प्राकृतिक तत्वो मे स्थित न होकर मनुष्य के अन्त जगत् मे अर्थात् मनुष्य की अन्तवृत्ति को प्रकृति के साथ जोड दिया जाता है जब वह सुन्दर हो जाता हैं । इस प्रकार प्राकृतिक सौन्दर्य भी आत्मगत एवं वस्तुगत का समन्वित रूप है। सौन्दर्य एक वस्तु का बिम्ब है जो सौन्दर्यानुभूति का निश्रय करता है और बदले में, सौन्दर्य वस्तु के बिम्ब के निर्माण मे प्रभाव भी डालता है। इसलिए सौन्दर्यानुभूति सौन्दर्य को भी प्रभावित करती है। ह एक अन्योन्याश्रित रिश्ता हैं । इस प्रकार सौन्दर्यानुभूति सीधे ढंग से सौन्दर्य तत्व के ऐतिहासिक विकास को भी प्रभावित करती है। आज कलात्मक सौन्दर्य के सृजन द्वारा लोक जीवन या यथार्थता में ही सौन्दर्य का संवर्द्धन संभव है।

****

अध्याय-6 २१०५-२ब

शमशेर की सौंदर्य दृष्टि

शमशेर के यहां चारुता है वे कलाओं, परम्पराओं और सूचनाओं के दोहन से अनुभूति की निजता में जो रचते है, वह जटिल भी है और सुन्दर भी – एक ऐसी आत्मस्थ कला अनुभूति, जिसमें हम आत्मस्थता में भी सम्पूर्णता का अनुभव करते हैं। उनकी संवेदनायें धीमें आवेग और अनुशासन में सधी जटिल एवं एक साथ बहुस्तरीय या सम्मिश्र है; इसलिए उनके संवेदना गर्भ तक पहुंचना अबूझ और असूझ भी मालूम पड़ता है, जिसे किसी आलोचना के किसी पूर्व निर्धारित मानदंड अथवा शास्त्र से समझना–समझाना असम्भव रहता है जो हर क्षण पहले से अधिक सजग भाव प्रवण और उदार सहृदयता की मांग करती है। "जिसका प्रत्येक शब्द पहले के प्रत्येक शब्द से नया है किन्तु पहले का शब्द किसी भी रूप में जिससे पुराना नहीं पड़ता है।"–१

उनकी विचार सक्रियता और मानवीय चेतना सर्जन सक्रिय होती है और पूरे सौंदर्यात्मक स्व में प्रकट होती है। यहां विभिन्न भाव–संवेदना की प्रतिच्छायायें है। ध्वनियों के कोलाहल है तो शिलीभूत सन्नाटा है, कायातीत और रूपाकारातीत की अभिव्यक्ति है तो ठोस चट्टानी यथार्थ प्रत्यय भी। तर्क से यथार्थ की कई स्थितियां और इन्द्रियों की सम्वेत संवेदना के मिश्रित बोध से उनकी कविता उपजती है। भीतर से भरा कवि शब्दों में जटिल है, इसलिए अभिव्यक्ति में भी क्योंकि अन्ततः वह जटिल रचना–संसार का कवि है। उनमें यहां शब्द और अर्थ लोकोत्तर से हो गये लगते है। फलतः अभिधावादियों को उनका काव्य बहुधा जटिल अस्पष्ट और लोक विरोधी जान पड़ता है। शमशेर ने वस्तुतः रोमांटिक विदग्धता है जो उनके शब्दार्थो को काव्यार्थो से सम्पन्न करती रहती है। गहरी जीवन लालसा बराबर उनकी कविताओंके प्रति हमें उत्सुक बनाती है इसीलिए "मनुष्य ने जो कुछ सबसे सुन्दर, सबसे कोमल, सबसे उदात्त और सबसे मानवीय है, शमशेर की कविताओं में हमें प्रभूत मात्रा में वह सब मिलता है। उनकी कविता जीवन के राग की कविता है।" – २

सच तो यह है कि शमशेर की विचारधारात्मक प्रतिबद्वता घोषित रूप में मार्क्सवादी दर्शन के प्रति रही होने के बावजूद उसमें किसी किस्म की विद्रोहात्मकता या तोड़–फोड़ न होकर–'प्रेम' रहा। वह दुनिया को समझाते है इसलिए दुनिया के काव्य पाठ से, बदलते दिक्काल से, तकनीकी

---

१ – (विजय बहादुर सिंह–रोमांटिक विदग्धता के कवि शमशेर कल के लिए मार्च १६६४ पृ०– ३५)

२ – (डा० शिव कुमार मिश्र–कसौटी–पांच सम्पादक नंद किशोर नवल, प्रसंगता पृ०–१५३)

हस्तक्षेप, कोलाज से, यथार्थ की नई तटस्थ गहरी पकड से, जटिलतम संवेदना से, सर्वव्यापी प्रेम के द्वारा, मनुष्य बनाये रखने की सपनीली कोशिश मे कविता को इस रूप मे ढालते हैं। शमशेर के यहा विवशता है–सौंदर्य की विवशता। ऐसी विवशता है, जिससे उनकी एक कविता हमारा परिचय इस तरह कराती है–

यह विवशता

कभी बनती चाद

कभी काला ताड

कभी खूनी सडक

कभी बनती भीत,बांध

कभी बिजल की कडक,जो

क्षण–प्रतिक्षण चूमती– सी पहाड़।

यह विवशता

बना देती सरल जीवन को

खून की आंधी।" – १

आकस्मिक नहीं कि फ्रांस के क्रांतिकारी कवि लुई अरांगा पर शमशेर ने जो लेख लिखा है, उसका सबसे पहला वाक्य यह है – "अरांगा मे सबसे प्यारी चीज शायद एल्सा के प्रति उसका प्यार है, जो उसकी कितनी ही कविताओं में फूट–फूट कर छलकता है।" एल्सा अरांगा की बीवी थी। लेकिन अरागा के बारे में शमशेर यह भी दर्ज करना कतई नहीं भूलते कि 'फ्रांस के जर्रे–जर्रे से उसको इश्क है।" प्रेम के इन दोनों पक्षों को अरांगा अपनी कविता में कैसे साधते है, यह भी शमशेर से ही सुनिये–'शायद एल्सा से कम तो वह फ्रास को प्यार नहीं करता क्योकि वह समूचे फ्रांस को–फ्रांस की नई इन्कलाबी खूबसूरत पौध को–अपनी एल्सा के भीतर देखता है।' यह एल्सा भाव, जिसेशमशेर अरांगा के कवि व्यक्तित्व की धुरी बता रहे है, भारतीय कवियों में सिर्फशमशेर ही इसे लक्षित कर सके क्योकि इसी 'एल्सा–भाव' का एक भारतीय रंग भी है जिसमे खुदशमशेर रंगे हुए है। शमशेर की कविताओ मे किसी एल्सा की मूर्त सत्ता भले ही न मिले, एल्सा–भाव उनकी कविता मे

---

१ – (यह विवशता– प्रतिनिधि कवितायें –सम्पादक नामवर सिंह पृ० ५६)

बराबर मूर्त होता रहता है।" – १

स्पष्ट हैशमशेर की कविता मे मुख्य धुरी सौंदर्य है–कविता का सौंदर्य जीवन का सौंदर्य यहा तक कि संघर्ष भी वहां इसी स्पृहा से परिचालित होते हैं। "सघर्ष का यह रूप जिस चुनौती को स्वीकार करने से पाया जाता है, वह निरे बाहर से पेश की गई चुनौती नही है। वह कवि शमशेर के तईं एक बहुत ही आंतरिक चुनौती है जिसे स्वीकार किये बिना 'मनुष्य होना' ही सम्भव नही है, फिर भला 'कवि होना' कैसे सम्भव हो सकता है।" – २

इसीलिए शमशेर को अभीष्ट है वह कला जो मनुष्य की आत्मा का सघर्ष बनती है– ३

"संघर्ष का यह रूप जिस चुनौती को स्वीकार करने से पाया जाता है, वह निरे बाहर से पेश की गई चुनौती नही है। वह कवि शमशेर के तई एक बहुत ही आंतरिक चुनौती है जिसे स्वीकार किये बिना 'मनुष्य होना' ही सम्भव नही है, फिर भला 'कवि होना' कैसे सम्भव हो सकता है।" – ४

'कला सबसे बडा सघर्ष बन जाती है
मनुष्य की आत्मा का
प्रेम का कंबल कितना विशाल हो जाता है
आकाश जितना
और केवल उसी के दूसरे अर्थ सौन्दर्य हो जाते हैं
मनुष्य की आत्मा में।'
(कला)

कलाओं की अंतर्निभता ही नही, समान धर्मिता के समावेशी रचनात्मक चरित्र का जितना समृद्ध संसार शमशेर के यहॉ है, उतना पूरे आधुनिक काव्य इतिहास मे कहीं नहीं। उनकी जोड समावेशी रचना चरित्र हिन्दी में यदि कहीं मिलता है सिर्फ सूर में।.......इसी वजह से वह सौन्दर्य दृष्टि है जो हर चीज में एक अंतः सौन्दर्य देख लेती है। शमशेर कहते हैं 'सौन्दर्य की पूरी एक

---

१ – (डा० राजेन्द्र कुमार–शमशेर बनाम प्रगतिवाद कल के लिए – मार्च १९९४ पृ०–३८)

२ – (उपर्युक्त –वहीं–पृ०–३८)

३ (डा० राजेन्द्र कुमार–शमशेर बनाम प्रगतिवाद कल के लिए–मार्च १९९४ पृ०–३८)

४ – (उपर्युक्त –वहीं–पृ०–३८)

सरचना.......दृश्य जगत–पहले मेरी नजर में आता है....। उनकी सौन्दर्य दृष्टि को आप आत्म परख या वस्तुपरख के खानो मे नही बॉट सकते कि आत्म और वस्तु की अन्तर क्रिया से ही उसकी उपलब्धि होती है। दूसरा सप्तक के वक्तव्य मे शमशेर ने कहा था, "सुन्दरता का अवतार हमारे सामने पलछिन्न होता रहता है। अब हम पर है कि हमने अपने सामने और चारों ओर की इस अनन्त और अपार लीला को कितना अपने अन्दर घुला सकते हैं।" – १

आप चाहे तो इस वक्तव्य के अवतार, अपार लीला अपने अन्दर घुलाने को वैष्णव शब्दावली मानकर इसकी आत्म परख सौन्दर्य शास्त्रवादी ही नहीं, रहस्यवादी व्याख्या भी कर सकते हैं और यह किया भी गया है...शमशेर को विशुद्ध कवि घोषित और सिद्ध करने के लिए, लेकिन ऐसा आप तभी कर सकते हैं जब वाह्य जीवन जगत में पलक्षिन रूप लेते सौन्दर्य के अन्दर घुलने की अभ्यांतरीकृत प्रक्रिया को नजरान्दाज कर दे।.. शमशेर में अति यथार्थवादी रूपाकारों की मौजूदगी है।.... ... लेकिन इन रूपाकारो में शमशेर की समावेशी प्रयोजनवती कल्पना शक्ति की सक्रिय भूमिका को अनदेखा नही किया जा सकता । – २

उनमें यथार्थवादी रूपाकार भी आन्द्र ब्रेतां या साल्वाडोर डाली की बजाय लुई अरागॉ या पाल एलुआ से अधिक मिलते हैं। वहॉ यथार्थ से कल्पना की मुक्ति नहीं , स्वप्न के अर्द्धचेतन जगत का मुक्त साहचर्यवादी विम्ब विधान या असम्बद्ध भाव–बिम्बों का विन्यास वहॉ नहीं है। दरअसल वह यथार्थ के प्रतीत और आभासित विन्यास के पीछे छिपे वास्तव के साक्षात्कार का ही प्रयत्न हैं। डा० राम विलास शर्मा ने सही कहा है कि "शमशेर सुर्रियलिस्ट......अतियथार्थवादी....नहीं एक रियलिस्ट.... यथार्थवादी कलाकार है।".........यथार्थवाद की कलात्मक संभावनाओं का इससे अधिक दोहन करने वाला, उसे इतनी ऊंची कलात्मकता तक उठाने वाला और काई कलाकार समकालीन परिदृश्य में मौजूद नहीं है। शमशेर के लिए यथार्थ वह सब कुछ है, बकौल उनके जो "मनुष्य के जीवन में घटित और अनुभूत होता है। मनुष्य के स्वप्न, योजनाएं, उसके समस्त कार्यकलाप, संघर्ष, आन्दोलन, क्रन्तियॉ, उसका व्यक्तिगत और सामूहिक यथार्थ है।" इस यथार्थ में से निकलकर ही वे अपने सौन्दर्य विधो का निर्माण करते हैं। संवेदनात्मक प्रतिक्रियाओं के प्रति इतनी जागरूकता, ऑख,कान,नाक,स्पर्श की इतनी उत्तेजित तत्परता अन्यत्र दुर्लभ है। सवाल दरअसल इस सघन

---

१ – (दूसरा सपृक पृष्ठ ८०)

२– (धनन्जय वर्मा–प्रेम और प्रकृति : प्रगतिशील काब्य की वृहत्रयी : नागार्जुन केदार शमशेर –वसुधा अंक ६ पृष्ठ २६)

ऐन्द्रियता के काव्य निर्वाह का है और लिहाज से शमशेर मे रूमानी सघन ऐन्द्रियता के साथ जो क्लासिकी सयम है, वह निराला के टक्कर का है। ''जूही की कली'' और ''न पलटना इधर'' को साथ–साथ इस प्रसंग में देखा जा सकता है।... ..शमशेर मूलत बेमानी कवि है। स्वयं वे और उनकी कवितायें इसका ऐलान करती है। लेकिन यह रोमान जिस ससार में ऑख खोलता है, उसकी हकीकत यह है

एक रोमान

जो कही नहीं है मगर जो मैं

हूँ, हूँ

एक गूंज ऊबड खाबड

लगातार

ऑख जो कि अंसुआ

आई हो बहुत ही करीब बहुत

ही करीब (एक नीला दरिया बरस रहा है/चुका भी हूँ नहीं में)

एक गैर–रूमानी दुनिया के बीच यह स्वअर्जित हठी रोमान है–

डबडबाई आखों में सितारों भरे आसमान को पा लेने को चाह

जैसा, लेकिन जिसे वास्तविकता में पा सकना मानो मौत की

प्रतीक्षा करना है फिर भी कवि है, जो इसे किसी भी कीमत पर

इंतिहाई हद तक, पाना चाहता है :

मुझको प्यास के पहाड पर लिटा दो जहॉ में

एक झरने की तरह तडप रहा हूँ मुझको

सूरज की किरणों में जलने दो–

ताकि उसकी ऑच और लपट में तुम

फॉवारे की तरह नाचो

(टूटी हुई बिखरी हुई/कुछ और कवितायें)

" सचमुच अपने जीवन में शमशेर प्यास के पहाडो पर झरने ,रहे, खुद सूरज की किरणो जैसी आग मे जलते हुये, उसकी लपट से फॉवारो को रंगारग करते रहे। जबकि कटु क्रूर जीवन से तो निराशा, कुण्ठा, अकेलेपन या अनास्था के स्वर उठते हैं"–यह रोमान कहॉ से आ गया। यह लबालब प्रेम, यह वीणा की झनकार से बना हुआ सौन्दर्य जहॉ पृथ्वी सास लेती है। " – '१

---

१ – (प्रभाकर श्रोत्रिय–अतल में अटका हुआ आंसू साक्षात्कार–जून–१९६७–पृष्ठ ४२)

कत्थई गुलाब

दबाये हुए है

नर्म नर्म

केसरिया सांवलापन मानो

शाम की

अंगूरी रेशम की जगह

कोमल

कोहरिल

बिजलियॉ-सी

लहराये हुए है

आकाशीय

गंगा की

झिलमिली ओढ़े

तुम्हारे

तन का छंद

गतिस्पर्श

अति अति अति नवीन आशाओं भरा

तुम्हारा/वंद बंद (कत्थई गुलाव/इतने पास अपने)

शमशेर की कविताओं का मुख्य स्वर प्रत्येक स्थिति, मनोदशा और दृश्य में सौन्दर्य की आभा खोजना है और इसी आभा को वे सौन्दर्यातमक रूपाकारों और विम्बो के द्वारा व्यंजित करते हैं। भाषा का विशेष प्रयोग, शब्दों का सार्थक चयन, सपनों के मध्य एक विम्बगत संगत और अर्थो की ताल और प्रगाढ़ ध्वनियॉ-इन सबसे पाठकों को ऐसा लग सकता है कि कवि की सौंदर्य चेतना 'आत्मगत' है, पर यह 'आत्म चेतना' वाह्य चेतना का नकार नहीं है, पर उसकी वाह्य चेतना का एकीभूत संस्कार है। यह वाह्य और अन्तर का भेद इतना सूक्ष्म है कि शमशेर की

कविताओं को बगैर इसे ध्यान में रखे उनका सार्थक आस्वादन और मूल्यांकन नही हो सकता है। इसके बावजूद यह भी सत्य है किशमशेर की काब्यानुभूति की वनावट 'जटिल' एवं जैविक है और यदि अजीत कुमार केशब्दों में कहे तो इस जटिलता के कारण भाषा और बिंब के स्तर पर कई कविताओं को पढ़कर, अर्थ स्पष्ट न होने पर झुंझलाहट उत्पन्न होती है।" (कविता का जीवित संसार- अजित कुमार पृ० ११०) लेकिनशमशेर विशिष्ट है, इसीलिए विशिप्ट है और इसी से उनके प्रेरणास्रोत भी विशिष्ट है। शायद इसका कारणशमशेर का वह सृजन बोध है जो अनुभव मे धसने, डूबने और तड़पड़ा कर कुछ पा लेने की एक जटिल प्रक्रिया से सम्बन्धित है। फलतः यह जटिल संवेदी कवि वाक् से दर्शन की प्रेरणा देने और पाने मे मौत की हद तक मित रहना चाहता है। इसी स्तर परशमशेर भाषा को दृश्य और दृष्टि की प्रेरणा बताते है।

सूना सूना पथ है, उदास झरना
एक धुंधली बादल - रेखा पर टिका हुआ
आसमान
जहां वह काली युवती
हंसी भी।

आरंभ में कुछ हीशव्दों में बिना किसी उपमा के कवि एक परिचिन मे दृश्य चित्र को बना देता है। यकाएक उसके तुरन्त बाद एकशब्द की तीसरी पंक्ति 'आसमान' में वह एक छोटे सीमित दृश्य को विशाल फलक दे देता है। और लौट कर टिका हुआ एक तनाव को जन्म देता है जो भाषा और बिंब दोनों में बंटा दीखता है।शब्दों की बनावट उजागर हो जाती है और उत्सुकता जागृत। तभी कवि हमें अपने विश्वास में लेकर बताता है-

जहां वह काली युवती.....

---

१. कविता का जीवित संसार- अजित कुमार पृ० ११० ।

''वह' शब्द के प्रयोग से लगता है कि जैसे कवि और हम पहले से पूर्व कथा को जानते है और बीच से ही कथा में हम उसके साथ हो लेते है। यहां पर एक विशिष्ट ब्यौरा काली का देकर जैसे तैयार जमीन पर एक डिजाइन काढ़ दिया जाता है। इतनी सब स्थित भूमिका बना लेने के बाद पूरे दृश्यबध में 'हंसी थी' कहकर जीवन डालता है। चांद उगाता है। हम अपनी यादों की रील को चलाकर शीघ्र ही पाते है कि ऐसे ढांचे की याद हमारे पास भी है, या नहीं है तो ऐसा स्वप्न तो देखा ही है, और यथार्थ और सपने में अन्तर ही कितना है। हो न हो वह कवि का सपना ही हो, फिर से पढ़कर देखो। वर्णन तो बिल्कुल अपने सा ही है। यह यथार्थ और सपने के बीच सापेक्षता इसलिए आ सकी क्योंकि इस कविता में अमूर्तन का बहुत सशक्त उपयोग किया गया है। (अमूर्तन के पक्ष में-विपिन कुमार अग्रवाल-तीसरा साक्ष्य सम्पादक - अशोक बाजपेयी पृ० २७-२८)

शमशेर की कविता में प्रेम के लौकिक और मानवीय संदर्भ खासतौर पर प्रभावित करते है। उनके प्रेम वर्णन में समूचा सामाजिक और प्राकृतिक परिवेश गुँथा हुआ मिलता है, पर आम भावना या मांग की निश्चित पकड़ और विकृत-मानस से अक्सर ऊपर उठा हुआ यह प्रेम मनुष्य को जगाने वाला होता है, सुलाने वाला नहीं। 'प्रेम' शीर्षक कविता में शमशेर लिखते है -

''नींद नहीं तुम। नींद से हालांकि छा जाते हो
मेरे अवयव-अवयव पर। तुम चेतन उम्मीद
सपनों मे जागते हो। स्वप्न नहीं तुम
काम-वासना में तुम प्यारे प्रेम। काम-वासना नहीं
तुम इस मायाविनी रजनी के। ज्योतित इसके मधुर
अस्थिर समय के तुम स्थिर सौंदर्य

---

१. अमूर्तन के पक्ष में-विपिन कुमार अग्रवाल-तीसरा साक्ष्य सम्पादक - अशोक बाजपेयी पृ० २७-२८

आदि पुरातन तुम में

मेरे पुलकित प्राण

अभिनव-अभिनव से।" (उदिता - पृ० ४४)

शमशेर की कविता में प्रेम की प्रतिष्ठा नये रूप में हुई है। उन्होने प्रेम का मूल्य कम से कम मनुष्य का आधा जीवन माना है। यह उनके आधे जीवन का पर्याय है। प्रेम का आलम्बन शमशेर की कविता में अक्सर सुन्दर होता है। असल में शमशेर हिन्दी में अपने ढंग से अकेले वर्जनामुक्त प्रेम के कवि हैं। "विजयदेव नारायण साही ने शमशेर के बारे में कहा था कि हिन्दी में आज तक विशुद्ध सौंदर्य का कवि यदि कोई हुआ है तो वह शमशेर है।" "पर साही का यह निष्कर्ष एक तरह का सरलीकरण है कि शमशेर ने किसी विषय पर कवितायें नहीं लिखी हैं-या एक ही कविता बार-बार लिखी है है और वह एक विषय सौंदर्य है। सच्चाई यह है कि शमशेर के लिए प्रेम या सौंदर्य के सच्चे अनुभव में आदमी का भविष्य छिपा है और इसके लिए अध्यात्म का कोई घटाक्षेप जरूरी नहीं है। सौंदर्य की 'अनंत झिलमिलाहट' से भी निरे आध्यात्म का भ्रम नहीं होना चाहिए। उदस्त के लिए आदमी इसी लौकिक मानवीय अनुभव के दायरे में ही है।" (परमानंद श्रीवास्तव-शमशेर की कविता किस अर्थ में आजादी की खोज है-कल के लिए-मार्च १९९४ पृ०-३३)

शमशेर के निजी, बहुत निजी अनुभवों के बिम्ब सुसंगत रूपाकार में ढले हुए ध्यान आकृष्ट करते हैं। बदन के माध्यम से बात करती प्रिया।बदन जो कांसे का, चिकना सा और हवा में हिलता हुआ। यह हिलना ऐसा जैसे कायनात हिल रही हो। आंखे जैसे गन्दुमी गुलाब की पंखुड़ियां खुली हुई-सी। बदन जो जहां एक ओर सुडौल, दूसरी ओर आबशार (जल प्रपात) -सा। 'प्रकृति-रूप' कविता में

---

१. उदिता - पृ० ४४ ।

२. परमानंद श्रीवास्तव-शमशेर की कविता किस अर्थ में आजादी की खोज है-कल के लिए-मार्च १९९४ पृ०-३३

आबशार को स्थिर कहा गया है। प्रेम जो अपनी अभिव्यक्ति में भी गूँगा बन जाता है। प्रेम की आदिमता-जैसे नया अर्थ प्राप्त करती है। शमशेर रूपाकारों में ही नहीं, रूपाकारों में से छनकर भाती हुई अनुभूति में भी अपना निजीपन प्रकाशित करते हैं :-

मैं तुम्हारे व्यक्तित्व के मुख में

आनन्द का स्थायी ग्रास हूँ

मूक ।

यहां शारीरिकता अनुभवों में गहरे अनुभव की तरह अर्थ और दीप्ति प्राप्त करती है।

यह पूरा

कोमल कांसे में ढला

गोलाइयों का आइना मेरे सीने से कसकर भी

आजाद है

जैसे किसी खुले बाग में

सुबह की सादा

भीनी-भीनी हवा ....

जंघाएं - दो ठोस दरिया। ढेरे हुए-से !

स्थिर और गतिमान के अनुभव एक दूसरे में संक्रमित होते हुए।

मनोवैज्ञानिक तथा भाषात्मक यथार्थ के आगे इन अनुभवों को इसी जीवन - दृष्टि के अनुसार देखना जरूरी है जो असम्बद्ध अनुभव रूपों और प्रतीतियों को अन्तर्गठित करने में सक्षम है। वह न तो ऐसे अनुभव अधिक से अधिक श्रृंगारी उत्तेजक (erotic) जान पड़ेंगे। दूसरे स्तर पर शमशेर के अनुभवों की स्वायत्तता इतनी प्रकट और महत्वपूर्ण है कि उसे अन्तर्गठित करने वाली जीवन-

दृष्टि का भी सामान्यीकरण कठिन है। अनुभव-रूपों की संक्षिप्तता, कसाव, लालित्य दृढ़ता, तीखापन यदि यह शिल्पदक्षता का ही परिणाम है तो उस पर भी शमशेर के व्यक्तित्व की अद्वितीय छाप है। अर्थ की एकदेशीयता को विचलित करने वाला क्रीड़ा-भाव भी इस व्यक्तित्व की पहचान है।

दरअसल शमशेर काव्यवस्तु का 'पर्सेप्शन' ही बिम्ब में करते हैं, इसका अर्थ यह नहीं कि शमशेर अमूर्त भाषा में सोच और कह सकते ही नहीं। उनकी कई सशक्त कवितायें सर्जनात्मक सपाट बयानी की कवितायें हैं। लेकिन उनके बिबो की खूबी यह है वे धारणा या वाक्य के जरिये कवि मानस में स्वायत्त हुए विचार बोध या आग्रह को मूर्त करने के लिए नहीं गढ़े गये हैं। वे स्वत: स्फूर्त है; इन बिबो को संप्रेष्य वस्तु और संप्रेषक बिंब के सुविधाजनक युग्म में तोड़ना कई बार फिर इन बिंबो के लिए केवल अपरिहार्य शब्दों का प्रयोग करने वाला शमशेरीय अंदाज! ताज्जुब नहीं कि शमशेर की कविता पाठक से धैर्य को, बल्कि मलयज के शब्दों में 'एक तरह के आदरभाव की माँग करती है।

सौन्दर्य के प्रति शमशेर की दृष्टि ऐसी है जिसमें किसी तरह की स्थूलता के लिए सम्भावना नहीं रह जाती है। वे सौन्दर्य के सूक्ष्म से सूक्ष्मतर रूप को पकड़ना चाहते हैं और सूक्ष्म से सूक्ष्मतर प्रभाव को कविता में अंकित करना चाहते हैं : (नयी कविता अंक-७, पृष्ठ-१३७)

सौन्दर्य जो त्वचा में नहीं

थिरकते रक्त में नहीं

मस्तिष्क में

नहीं कही इनके पार

बरसता है अणु-अणु पल-पल में

---

१. नयी कविता अंक-७, पृष्ठ-१३७ ।

बदन में, दृष्टि में-

शब्द में : और उसके पार से

कहीं शब्द के अर्थ में

दु:ख-सा-मौन-सा,

अपरिमित सुख की चेतना में,

मथता है,

मथता है।

शुद्ध अनुभूति के स्तर पर सौन्दर्य को स्वीकार करने के कारण वे शरीर और इन्द्रियबोध से आगे बढ़कर संवेदना और चेतनता के स्तर पर सौन्दर्य के प्रभाव को महसूस करते हैं। शमशेर की सौन्दर्य संवेदना स्थूल के सूक्ष्य को अधिक महत्व देती है, इसलिए उनके यहाँ नारी सौन्दर्य के चित्रण में भी उस प्रकार की स्थूलता और मांसलता नहीं मिलती जैसी प्रयोगवाद और नयी कविता के अनेक दूसरे कवियों में मिलती है। शमशेर की सौन्दर्य संवेदना अज्ञेय, गिरिजाकुमार माथुर, जगदीश गुप्त, धर्मवीर भारती आदि से एकदम अलग किस्म की है। स्थूलता को कम महत्व देने के कारण ही प्रेम के संयोग चित्रण में भी संभोग के चित्रण से बचते हैं। प्रेम के संदर्भ में वे शारीरिक एकता के बदले मानसिक और आत्मिक एकता की अधिकाधिक अभिव्यक्ति करते हैं। लेकिन इसका यह तात्पर्य नहीं है कि उन्होंने सौन्दर्य को मूर्त रूप में व्यक्त नहीं किया है। सौन्दर्य के सूक्ष्म और अमूर्त रूप को मूर्त और बिम्बात्मक रूप में प्रस्तुत करना ही शमशेर की कविता की श्रेष्ठता का प्रमुख कारण है। यहीं शमशेर की कला की विशिष्टता भी प्रकट होती है। शमशेर अपनी भावनाओं और संवेदनाओं का विस्तार करते हुए जीवन जगत के सौन्दर्य को, उसकी अनुभूति को अपनी कविता में व्यक्त करते हैं। शमशेर कवि कर्म की सार्थकता की एक अनिवार्य शर्त यह मानते हैं कि कवि अपने सामने और चारों ओर की अनंत और अपार सौन्दर्य लीला का कितना अधिक से अधिक बोध प्राप्त करता है और उसे अपनी रचना में व्यक्त करता है। उन्होंने जीवन की सच्चाई और सौन्दर्य की अभिव्यक्ति को कला साधना का अनिवार्य गुण

शमशेर की कविता एक परिपूर्ण राग है- अत्यन्त कोमल और पेचीदा जिसमे शब्द-शब्द मानो शमशेर की हार्दिकता का स्पर्श पाकर किसी अलौकिक रेशम पर फिसलती रंग-ध्वनित मणि हो जाता है।

आकाशीय

गंगा की

झिलमिली ओढ़े

तुम्हारे

तन का छंद

गतस्पर्श

अति अति अति नवीन आशाओं

भरा

तुम्हारा

बंद बंद

इस कविता की अंतिम पंक्तियाँ हैं- ओ प्रेम की असंभव तरलते/सदैव सदैव! "इस कविता में शमशेर की तल्लीनता 'तन के छंद' के सम्पूर्ण सौंदर्य की एक असंभव-सी आभा बिखेरकर भी जहाँ पहुंचती है वह है प्रेम की असंभव सरलता। सरलता जैसे रूढ़ार्थ पद को शमशेर अपनी अगाधता से छूकर एक खल भर देते हैं और वह अपने नख शिख में दिप-दिप मानवीय चेतना के गुहयतम चक्रों को भेदकर निकलती कविता का आभामय रूप धर लेता है।" (मालचन्द तिवाड़ी-हंस-२० जुलाई १९९३)

यह सारा आयोजन मानो इसलिए है कि शमशेर जानते हैं कि प्रेम जैसे अत्यन्त संवेदित भाव को पाठक के मन में कितनी सावधानी और कोमलता से प्रविष्ट कराना है। वस्तुतः शमशेर में प्रेम की जो कल्पना है, स्मृतियों का जो द्वन्द्व है वह उनके राग तत्व को अपरूप नहीं होने देता, बल्कि वे स्मृति को इस तरह आंकते हैं कि उसकी

---

१. मालचन्द तिवाड़ी-हंस-२० जुलाई १९९३ ।

पृष्ठभूमि में निहित रूप वैभव और कांति का आभास पाया जा सके। दृश्य के पीछे छिपा अदृश्य उनकी स्मृतियों को और अधिक सघन करता है।

स्पष्ट है प्रेम के इस अद्‌भुत कलाकार की सौंदर्यात्मक चेतना और दृष्टि बेहद गहन मानवीय संवेदना से संयुक्त है। यह कविता अपने पाठकों को भावविभोर ही नही करती बल्कि भाव संस्कार भी प्रदान करती है।।

अध्याय- 6 - 2005 - ग

नागार्जुन की सौंदर्यात्मक अवधारणा

वस्तु की दृष्टि से नागार्जुन का काव्य सर्वथा मौलिक और अद्वितीय है। क्यो कि ये कवितायें जहा बेहद सामाजिक हैं वहीं इनमे स्पृहणीय आत्मीयता भी है। इन कविताओ को पढते हुए नागार्जुन का काव्य संसार मनुष्य के हृदय की विश्व व्यापी पहचान कराता है–हमसे एक रिश्ता बनाए हुआ, कविता के विरुद्ध होती स्थितियों के प्रति सावधान करता हुआ, चट्टान होती मानवीय नियति में मानवीय मूल्यों को झरने के पानी की प्रतिष्ठा करता हुआ सा। सामाजिक प्रतिबद्धता के सरोकारो के साथ ही उनके काव्य संसार में कुछ प्रेम और मार्मिक अनुभवों की स्मृतियों की अभिव्यक्ति का संसार है, जिसमें कवि अपनी भाषा में खोलकर सूख देना चाहता है। सस्त निराशाओं के बीच रागदीप्ति से युक्त इन कविताओं मे हमारी जिजीविषा को बनाये रखने की अजब ऊर्जा से संवलित है। कवि संवेदना बहुत कुछ वैयक्तिकता पर आश्रित है, पर अकुठ सामाजिक प्रतिबद्धता के साथ-साथ ही इन कविताओ में समाज - संस्कृति और मनुष्य के लिए चिंता का भाव है। अपने समय के आस–पास जीवन की सहज अनुभूतियों के सहारे बौद्धिकता और आधुनिकता के संकटों से जूझते हुए उनके काव्य ससार में प्रकृति प्रेम और संवेदनशी रागात्मक जीवन है। अनेक अनुभव है–

" यह तो वो नहीं है।
क्या मैं रोज यहीं बैठता था?
क्या नाशपाती का वही पेड़ है यह?
.......क्या हम इसी की छांह में
विगत ग्रीष्म के
मध्यान्ह गुजारते थे–
.......बाबा, अब आप
यहीं तो बैठोगे।
यहीं तो लौटेंगे।
पापा जब नहीं होंगे
तब मैं ही आपका साथ दूंगा। – १

स्पष्ट है कि इनकविताओं में मनुष्य के कोमल संस्कारों को सिर्फ बनाये रखने की अदम्य लालसा नहीं, प्रत्युत यह जीवन को फिर से पाने जैसा है। ऐसी पंक्तिया जहां जीवन है– उसका

१ – (प्रतिनिधि कवितायें पृ० ८६–८७)

संवेदन कवि के गहरे ऐद्रिय बोध के साथ ही इस बात को सिद्ध करता है कि कवि की जीवनके प्रति भरपूर आस्था है। यह आस्था ही उसे जैसे सब कुछ का निषेध करने की दृष्टिहीनता से बचा लेती है। इस आस्था की चमक को केन्द्र में रखकर ही हम कवि के क्षोभ, बेचैनी या आक्रोश वाले भावो की ईमानदारी को समझ सकते हैं।

जीवन से प्यार करने वाला ही जीवन में व्याप्त सौंदर्य को परख सकता है। यह सौदर्य हर जगह हर तरफ फैला है। नागार्जुन इसी लिए इसचारो ओर परिव्याप्त सौंदर्य के किसी भी कोने को अपने से ओझल नही होने देते, होने देना भी नही चाहते और इसी कारण से जब उनकी कविताये सौंदर्य के इस परिवृत्त को उघाडती हैं तो अनायास ही ऐसा सब कुछ सामने आ जाता है जो बेहद मोहक, होता है।

यही वह पृष्ठ भूमि है जिसमें वह सनी अपनो को याद करते हैं। उन सबके प्रति वह बार--बार नेह सेप्रणत होते है। यही पृष्ठ भूमि है जिसमें नागार्जुन अपने सहवर्ती 'तन मन के सजग चितेरे' (१९५६) केदारनाथ अग्रवाल को पहचानते हैं, उन पर मुग्ध होते है। और उनसे अपनी मित्रता के लिए स्वयं को 'बड़भागी' मानते हैं। और 'तुम किशोर, तुम तरुण .....(१९५६) को सम्बोधित कर युवजन का आह्वांत करते है।

दरअसल नागार्जुन का मूल स्वभाव रागधर्मी है। " फलत रचनाशीलता का यह जनबद्ध चरित्र की विशुद्ध रागत्मक संवेदना की निजी जीवन प्रसंगो में भी उभरा है। मानव संबंधों को आधार बनाकर रची गयीं इस प्रकार की कविताओं इतनी तरल, अनुभूति प्रवण एवं मर्मस्पर्शी है कि रोजमर्रा की जरूरतों को पाटने वाली मशीन बनी हमारी संवेदना विहीन जिंदगी की टेक बन सकती है।" १

इन कविताओं में रागात्मक संवेदना व्यापक, मानवीय तथा सामाजिक सतेकारो के तहत बडे वितस्तार एवं गहराई के साथ चित्रित हैं और इनकी आत्मीयता में अचल विशेष के संस्कार ही नहीं, सूचना देश, देश की धरती तथा पर रहने वाला मनुष्य सब कुछ सिमट आया है।

'सिंदूर तिलकित मात' इस मरुधरा की अप्रतिम कविता है।

"सांध्य नभ में परिश्मांत समान
लालिमा का जद अरुण आख्यान
सुन कान्ता में सुमुखी उस काल
याद आता है तुम्हारा सिन्दूर
तिलरित माक।

---

१ – (श्री नारायण समीर चुनौती का कविकर्म और कविकर्म की चुनौती पृष्ठ– २०४ पल प्रतिपल)

यह दाम्पत्य प्रेम भी परिणय सूत्र मे बधे विवाहित जोड़ों का नही , बल्कि वृद्धावस्था का घनीभूतऔर सहज रूप से प्रगाढ हुआ दाम्पत्य प्रेम है। इनमे बडे सार्थक बिम्बो के माध्यम से जीवन के आवसानावस्थामें पहुंचे दपति के रागअनुराग की संजीवनी शक्ति के रूप में परिभाषित किया गया है।

प्रेम एक आदिम अनादि मनोवृत्ति है जो मनोवैज्ञानिक और सामूहिक दोनो स्तरो पर गतिशील रहती है। यही कारण है कि प्रेम वैयक्तिक भी है और निर्वैयक्तिक भी है। जब प्रेम वैयक्तिक मनोभाव से ऊपर उठकर व्यापक मानवीय संदर्भो से जुड जाता है, तब प्रेम का एक विश्वजनीन रूप मुखर होता है। प्रेम के इस विश्वजनीन रूप का विस्तार हमे जाति, राष्ट्र और मानव प्रेम के सदर्भ मे प्राप्त होता है। इस अर्थ में नागार्जुन का प्रेम व्यापक मानवीय सदर्भ को अर्थ प्रदान करता है जो शोषित, दलित और व्यापक मानवता से संबंधित है। उसका वह रूप मुखर होता है जो वैयक्तिक राग–विरागों से ऊपर उठ जाता है। दूसरी ओर, नागार्जुन की रचनात्मकता में प्रेम का वैयक्तिक रूप भी प्राप्त होता है जिसमे कठोरता और संवेदना का घोल कही अधिक तो कहीं कम प्राप्त होता है। यहां पर मैं तुम का ही संबंध है जो रहस्यात्मक और अतीन्द्रीय नहीं है, वरन उसका संबंध यथार्थ संवेदना से गहरा जुडा हुआ है। इस यथार्थ संवदेना में परम्परा का आग्रह तो है,पर वह एक 'प्रतीक' के रूप में है क्यों कि कवि जहां एक ओर कालिदास का स्मरण करता है (प्रकृति संदर्भ और प्रेम संदर्भ) तो दूसरी ओर, वह विद्यापति को भी पूरी शिद्दत के साथ स्मरण करता है जो मध्यकालीन प्रेम के मानवीय संदर्भ को आधुनिक अर्थ प्रदान करता हैं। हमारी संस्कृति और परम्परा में राधा एक उदात्त प्रेम प्रतीक है और नागार्जुन उस उदात्ता के इस प्रकार स्वीकार करते है–

दूरागत वंशी ध्वनि मे सुन
श्री राधा का नाम,
हाथ जोडकर विद्यापति को,
मैने किया प्रणाम।–१

इन महत्वपूर्ण पंक्तियों को यहां पर देने का आशय यही है कि कवि 'विद्यापति' और 'राधा' को आदर्श प्रेम –प्रतीक के रूप में लेता है जिसमें हमारी जातीय परम्परा का वह रूप प्राप्त होता है जो श्रृंगार और प्रेम को एक मानवीय सदर्भ देता है, उसे अलौकिकता के पास से 'कुछ' मुक्त करता है। नागार्जुन की उपर्युक्त पंक्तियों को यदि इस व्यापक सदर्भ में लिया जाय, तो कवि की प्रेम दृष्टि का एक व्यापक , एवं आधुनिक संदर्भ प्राप्त होता है।

---

१ – (हजार–हजार बाहों वाली, पृ० ६६)

कवि की प्रेम –दृष्टि मे एक निष्कपट एव निच्छल रूप प्राप्त होता है जो आत्म समर्पण और निवेदन की मनोभूमि को स्पष्ट करता है। कवि ने मैं तुम के सम्बध द्वारा इन मनोभूमि को सार्थकता प्रदान की है। यहां पर 'तुम' एक प्रतीक है जो प्रिय की भावना को व्यक्त करता है, उसमें अलौकिकता का संस्पर्श नही है जो हमे महादेवी मे प्राप्त होता है यह 'तुम' यथार्थ की कठोर भूमि पर आश्रित है, उसमें मांसलता के दर्शन तो होते हैं,पर वह पारम्परिक रूप में नहीं। कवि ने एक पाषाणी मूर्ति को निर्मित किया है और वह प्रिय से यह निवेदन करता है कि वह उस पाषाणी को छूकर उसमें प्राण एवं वाणी का संसार कर दे और कवि की यह इच्छा है कि उसने भावों को सीमित कर जो गीत रचना की है, यदि 'तुम' इसे थोडा भी गा दो तो उसका रोम रोम कृतज्ञ हो उठेगा–

भावो को सीमित कर मैने
कडी जोड ली, गीत बनाया
रोम रोम होंगे मृतज्ञ ये
यदि तुमने थोडा भी गाया।
इस याचक के चिता चैत्य पर
आओ शीतल हाथ फेर दो
चरण कमल की ये पंखडियां
मै लाया हूं, तुम बिखेर दो। –१

कवि का यह याचक रूप हमें आत्म निवेदन की उस तल्लीनता का परिचय देता है जो भक्ति भावना के अंतर्गत भक्त कवियों में प्राप्त होती है, लेकिन यहां पर जो संवेग और अनुभूति की प्रगाढता प्राप्त होती है, उसका स्वरूप भक्ति संवेद से अलग है। यहा पर 'तुम' आलौकिक सत्ता का प्रतीक नहीं, वह 'मैं' की सापेक्षता में एक समान धरातल की मांग करता है। यह अवश्य है कि उपर्युक्त पंक्तियों में 'दैन्य' का हल्का संस्पर्श है जो समान धरातल की जैविकता को कुछ तोडता है।

कवि के प्रेम –भाव में यह आत्मसमर्पण और दैन्य का भाव उसकी रचनात्मकता को एक ऐसी गंभीरता देता है जो प्रेम के भिन्न स्तरीय संबंधों (मां, बहन, बेटी आदि) को अपने 'प्रिय' पर 'उडेलने' को प्रस्तुत है। यहां पर एक ओर भाई, बहन और मीत के प्यार और ममता का एक स्वतंत्र रूप होते हुए भी, सापेक्षता की स्थिति में 'तुम' में अन्र्तलय हो जाने की प्रक्रिया प्रेम के सार्वभौमिक रूप को अत्यंत सधे हुए शब्दों के संयोगात्मक अर्थ द्वारा व्यक्त करता है :–

---

१ – (पुरानी जूतियों का कोरस, पृ० ११०)

आओ, प्रिय आओ

बहुत दिन हो गए

आज फिर साथ–साथ बैठे

भाई का प्यार

बहन की ममता

मीत के नेह –छोह

आओ, सब कुछ तुम्ही पर उडेल दूं।–१

प्रेम–संबंध के विविध स्तरों के उपुर्यक्त उदाहरणो में रोमाटिक बोध का नया रूप है क्यों कि कवि चाहे किसी भी विचारधारा का पक्षधर क्यों न हो, वह किसी न किसी स्तर पर परिवर्तित रोमाटिक भाव से टकराता अवश्य है जो युगीन संवेदना को रूपायित कर सके । रोमांटिक बोध का एक अन्य रूप जो हमें नागार्जुन के काव्य में प्राप्त होता है, उसमें अभिजात् वर्ग की गंध नहीं है क्यो कि पिता–पुत्री के संबंध को कवि एक निम्नवर्ग के ट्रक –ड्राइवर के प्रसंग से उठाता है, जहां पर गियर के सामने चार गुलाबी रंग की चूडियां टंगी है जो ड्राइवर की छोटी बच्ची जिद के कारण वहां पर है जो पिता को उस छोटी बच्ची की याद दिलाती रहती है। यही नहीं यह पूरा संवेदनापूर्ण प्रसंग कवि के पिता होने की अनुभूति को भी जगा देता है और जिसका माध्यम है " नन्ही कलाईयों की गुलाबी चूडियां" ट्रक ड्राइवर का यह कथन लें–

लाख कहता हूं; नहीं मानती मुनियां

टांगे हुए है कई दिनों से

अपनी अमानत

यहां अब्बा की नजरों के सामने

और ड्राइवर ने एक नजर मुझे देखा

और मैने एक नजर उसे देखा

छलक रहा था दूधिया वात्सल्य बडी–बडी आंखों से

इसके बाद, स्वयं कवि का निम्न कथन पूरे प्रसंग को एक मार्मिक संवेदना से भर देता है जाहं दो पिताओं का राग–संवेदना भरा वात्सल्य नन्हीं, गुलाबी चूडियों में अन्तर्लय हो जाता है–

और मैने झुक कर कहा

हां भाई मैं भी पिता हूं

---

१ – (सतरंगे पंखोंवाली – पृ० १७)

वो तो बस यूं ही पूछ लिया आपसे

वर्ना ये किसको नहीं भाएगी?

नन्हीं कलाईयो की गुलाबी चूडियां।'

प्रेम के उपर्युक्त रूप के अतिरिक्त नागार्जुन की कुछ कविताए ऐसी है जहा प्रेम का खुरदुरा रूप, आज की विडम्बना पूर्ण स्थितियों से प्रभावित होकर, रूक्ष और कठोर रूपाकारो के द्वारा सकेतित होता हैं ये उदाहरण नितांत नए प्रकार का सौन्दर्य बोध उत्पन्न करते है जो मोहक, सरस और कोमल रूपाकारो के नितात विपरीत है। यहां कुरूप या वीभत्स का रचनात्मक संदर्भ है जो कुरूप को भी सुंदर बना देता है क्यों कि जहा भी सृजनात्मकता है, वहां 'सौन्दर्य' का कोई न कोई रूप अवश्य प्राप्त होगा और इस सौन्दर्य को समझने के लिए पारम्परिक सौंदर्य की भावना को नये सदर्भ मे देखना होगा। यही कारण है कि आज की कविता में'सौन्दर्य दृष्टि' अभिजात्य न होकर जनवादी है जिसकी ओर मैं प्रकृति संदर्भ के अंतर्गत भीसंकेतिक कर चुका हू। वही स्थिति प्रेम–प्रसंग की भी है क्यों कि यहां पर पूरा परिदृश्य ही बदल जाता है। इस बदले हुए परिदृश्य मे नागार्जुन की कुछ कविताएं ही रखी जा सकती है जहां विडम्बना का स्पर्श किसी न किसी रूप मे प्राप्त होता हैं । ऐसा एक उदाहरण वह है जहां किसी के हथेली स्पर्श से रीढ की हड्डी तन गयी–

झुकी पीठ को मिला

किसी हथेली का स्पर्श

तन गयी रीढ

कौधी कही चितवन

रंग गए कहीं किसी के होठ

निगहों के जरिये जादू घुसा अंदर

तन गयी रीढ़। – २

दूसरी ओर 'तुम' एक ऐसी 'जोति की फांक' है जो हृदय के तिमिर को 'चाक' कर गयी (वही, पृष्ठ २०) यही नहीं दतुरित मुस्कान का प्रभावी भी देंखे–

तुम्हारी यह दंतुरित मुस्कान

---

१ – (प्यासी पथराई आखें पृ० २६–२७)

२ – (सतरंगे पंखोंवाली , पृ० १६)

मृतक में भी डाल देगी जान

धूल–धूसर तुम्हारी यह गात

छोडकर तालाब,

मेरी झोपडी मे खिल रहे जलजात। – १

यहा पर ''धूप धूसर गात'' और 'झोपडी मे खिलते जलजात' मे एक ऐसा दृश्य है जो सौंदर्य के अभिजात रूप के द्वारा नही समझा जा सकता है। इसे समझने के लिये सौन्दर्य के खुरदुरे एवं रूक्ष रूप को समझना जरूरी है जो भिन्न प्रकार के भावबोध की माग करता है। इस प्रकार के सौदर्य बोध का एक सुदर उदाहरण नागार्जुन की 'सौन्दर्य प्रतियोगिता' कविता है इस कविता मे व्यंग्य का संस्पर्श इतना मारक है कि पूरी कविता सौन्दर्य के नितांत नए 'प्रतिमानों' की ओर सकेत करती हैं । कविताओं में 'गंगा की मछली' और 'यमुना की मछली' के बीच यह प्रतिद्वन्द्विता है कि दोनो में कौन अधिक सुंदर है। इस समस्या का वे स्वय निपटारा नही कर पाती हैं; अत वे यह निश्चय करती है कि निर्णय हेतु 'कछुए' के पास चला जाए । अस्तु वे दोनों कछुए के पास जाती है तब कछुए का निम्न कथन दोनो मछलियो के सौन्दर्य से एक अन्य प्रकार के सौन्दर्य की बात करता है जो उसका अपना सौन्दर्य है–

तुम भी सुंदर गंगा की मछली

जमुना की मछली तुम भी सुंदर हो

किन्तु बनस्पतं तुम दोनो के

मैं अधिक सुंदर हूं

बिल्लौरी कांच सी कांति वाली यह मेरी गर्द

बरगद सी छतनार ऐसी पीठ

नन्हें मसूर से ऐसे ये नेत्र। – २

नागार्जुन की उपर्युक्त कविताएं जो संख्या में अवश्य कम है लेकनि समग्र रूप से ये कविताए प्रेम और सौन्दर्य –दृष्टि के विविध रूपो का सकेत करती है। एक ओर वे विद्यापतिं और कालिदास के प्रेम–सौन्दर्य की याद करते है जो उन्हें परम्परा के आधुनिक रूप की ओर ले जाता है, तो दूसरी ओर वे प्रेम के नितांत नए सदर्भ की उद्भावना करते हैं जो अभिजात्य मनोभाव को नकारता

---

१ – (सतरगे पखोंवाली, पृ० – ५०)

२ – (सतरगे पंखोवाली, पृ० – ४२)

है और उसके जनवादी और खुरदुरे रूप के प्रति अधिक आकृष्ट होता है । अत नागार्जुन की प्रेम सौन्दर्य परम्परा और आधुनिकता के द्वद्व को स्वीकार करती हुई, उन दोनो के मध्य 'संवाद' एव सतुलन भी चाहती है।

नागार्जुन के यहा श्रम का सौन्दर्य भी विद्यमान है–

" छूती है निगाहों को

कत्थई दांतों की मोटी मुस्कान

बेतरतीब मूंछो की थिरकन"

"शमशेर की नाजुक ख्याली से मिलती जुलती नागार्जुन की यक नाजुक बयानी है– कत्थई दांतों की मोटी मुस्कान बेतरतीब मूछों की थिरकन– लेकिन एकदम भिन्न सन्दर्भ में, एक भिन्न उद्देश्य की पूर्ति के लिए। शमशेर की तरह नागार्जुन ने भी पूरी तस्वीर न देकर आंशिक बिंम्ब से काम लिया है लेकिन आधा व्यग्य तो कुली मजदूरों के लिए उस शैली के इस्तेमाल करने में है जो शमशेर के यहां आमतौर से रमणीय अंगों के उतार–चढाव के लिए सुरक्षित रहती है ।"–१

शहर की सजी धजी महिलाओं को देखकर नागार्जुन फिर उसी देहाती ढग से खूब हंसते हैं। कलकत्ता के सडकों का चक्कर लगाती हुयी 'विज्ञापन सुन्दरी' सत्रह सौ के विज्ञापन बटोर लेती है। नागार्जुन बड़े प्यार से उसे प्रोत्साहन देते है–

रमा लो मांग में सिन्दूरी छलना...............

फिर देरी, विज्ञापन लेने निकलना. ....

तुम्हारी चाची को यह गुर कहां था मालूम।

भद्रर्ण की एक महिला सबेरे उठकर किसी को गालियां देना शुरू करती है। नागार्जुन दूर खडे असपृक्त से उसकी गालियां सुनते हैं और उसके कमल की पंखड्ओिं जैसे ओंठ का बार–बार हिलना भी प्रेम से देखते रहते है,

होंठ हिले

हिलते रहे

देर तक हिलते ही रह गये

उस पार–

मोतिया दंतपक्तियों के अंदर

१– (डा. रामविलास शर्मा परिषद पाणिक वर्ष ३८ अंक १–४ नयी कविता के संदर्भ में नागार्जुन की काव्यकथा)

काँपती रही क्षोभ के मारे जीभ

निकल आयी बासी भाप ताजा सौरभ के बदले

अर्ध स्फुत कमल की पंखडियो को क्या हो गया था जाने निकलते रहे बाहर–

एक के बाद एक

काले–काले भौंरे

गालियां आक्रोश, अभिशाप।

होठ हिले और हिलाते रहे। नागार्जुन यह क्रिया देखकर वैसे ही प्रसंन्न होते हैं जैस पंत के हिलाते अधर प्रवाल को सोच सोच कर निराला हंसते थे। कमल की पंखुडियो से काले भौरो का निकलना रीतिवादी सौन्दर्य बोध का सबूत देता है, लेकिन रीझने के बजाय नागार्जुन उस पर हंसते हैं। और कमल ही अर्ध स्फुट नहीं है, नागार्जुन भी अर्ध स्फुट बिम्बो से अपनी कला संवारते हैं। अर्ध स्फुट बिब, वैसे ही अर्ध स्फुट काम। लिखा थोडा , जानना बहुत वाली साकेतिक शैली।" – १

"तन गयी रीढ, पीठ पर हथेली का स्पर्श तन गयी रीढ'।

"कंधों के पीछे किसी की सांसों की उख्ठाता का अहसास, तन गयी रीढ। इस तरह चितवन के कौंधने पर, खिल खिलाहट के गूंजने पर, अलकों से तैलाक्त परिमल का झोंका आने पर– हर दार रीढ तन जाती है। लेकिन तनने पर उसके पुरुषार्थ की प्रशंसा करने के बदले नागार्जुन हंसते हैं – चुपचाप।" – २

यह बात नहीं कि काली घटायें और पुरवाई नागार्जुन के हृदय को नीरस ही छोड़ जाती हो। पुजारिन भाभी अपने रसिया देवर को छेडती है और देवर को हसी भी आती है लेकिन तन गयी रीढ और अर्ध स्फुट कमल वाली कविताओं की हंसी से यह जरा दूसरे ढंग की हंसी है। श्रृंगार रस मे नागार्जुन की यह कविता अद्वितीय है।

झुक आये कजरारे बादल

कूक उठे मोर

दर्शाये मेढक

पहुंच कर धीरज के छोर पर

१– (डा रामविलास शर्मा परिषद पात्रिक वर्ष ३८ अंक १–४ नयी कविता के सदर्भ में नागार्जुन की काव्यकथा)

२ – (वही उपरोक्त राम विलास शर्मा)

दम साध लिये धरती ने .

बिजली की मूठ से खुजलाकर पीठ

पुजारिन भाभी बोली

आधी आयेगी

बादलों को कहा से कहा उठा ले जायेगी

तुम्हारे तो मजे ही मजे रहेंगे

धार के उस पार

झूसी की तरह

रेती पर मारोगे टहलान

फडकते रहेंगे ओंठ

चमकती रहेंगी आंखें

हल्की फुहियों से भीगता रहेगा बदन

छेडती रहेगी छिनाल पुरवइया

इकलौती बिटिया वलो अधेड बाप की भांति

झुका रहेगा तुम पर बद्दल

तुम्हारे तो भाई मजे ही मजे रहेंगे

ओ मेरे रसिया देवर!

और मुझे आ गयी हंसी

कूक उठे मोर

और मेरा रोम हो गया कंरकित

टर्राये मेढक

और मेरा दिल धडकने लगा जोरों से

हो उठी तीव्र झींगरों की रीं रीं रीं............

और मैं लगा गया गोता गहराई के अंदर

झुक आये कजरारे मेघ

और अधिक

और अधिक

"यह हसी दूसरे ढग की है, रोआं–रोआ हो उठा कंटकित और दिल धडकने लगा लेकिन जब पहुंचकर धीरज के छोर पर धरती ने दम साध लिय है इस मार्मिक अनुभूति और उसकी सफल अभिव्यक्ति की जितनी दाद दी जाये कम है। थोडी है– तब मनुष्य की क्या बिसात। पुजारिन भाभी ने नागार्जुन के ही व्यग्य धुनष पर अपना पुरुष बाण चढाया फडकते होठ, चकमती रहेंगी आखे। वैसे ही रहेगे जैसे होठ हिले, हिलते रहे, देर तकहिलते ही रह गये। बिजनी की मूठ से से पीठ खुजलाना –क्या किसी नायिका ने केशवदास से ऐसा सकेत किया होगा। और इकलौती बिटिया वाले अधेड़ बाप जैसा बादल एक दम आधुनिकता बोध वाला उपमान। मोर फूंके और रोआं कंटकित हो उठा मेढ़क टर्टाये और दिल धडकने लगा। जैसे 'प्रेम की अति रम्यता मे पहले लोगों को मूर्छा आ जाती थी वैसे ही भाव के साथ यहां यह दिल धडकने का हाब । और अंत मे – मैं लगा गया गोता गहराई के अंदर। पूर्ण आत्म समर्पण के क्षण मे बिराट की अनुभूति। धार के उस पार न जाकर मझधार में मानो दम साधकर डुबकी लगाई हो।" – १

उनकी एक कविता है–

सामने फैला पडा है शतरंज सा ससार

स्वप्न में भी मै न इसको मानता निस्सार

इसी में अंत इसी मे निर्माण

यही 'हां', 'ना' 'किंतु' 'परन्तु' – २

इसका प्रमाण है :–

'अतं–निर्माण, हां–ना; किन्तु–परन्तु' ये सभी शब्द इस घटनात्मक संसार के अर्थ प्रदान करते है। इसी संसार में भूख, गरीबी और शोषण का अमानवीय नृत्य चल रहा है– इससे पहले सघर्ष करना मानवीय अस्मिता की रक्षा करना है क्यों कि इस अमानवीय रूप केरहते 'आत्मा' 'ईश्वर' जैसे संप्रत्ययों की बात करना एक तरह का 'व्यग्य' ही हैं । इसी से कवि पहले उदरपूर्ति की बात करता है, फिर ठोस या पोल 'आत्माज्ञान' की। इसी से, कवि पहले उदरपूर्ति की बात करता है। –

'पहले उदरपूर्ति तो हो ले

फिर देखा जाएगा

---

१ – (डा. रामविलास शर्मा परिषद पात्रिक वर्ष ३८ अंक १–४ नयी कविता के संदर्भ में नागार्जुन की काव्यकथा)

२ – (हजार हजार बाहों वाली पृ० – १६)

ठोस या पोल.. . ... जैसी भी होगी

पकड मे आएंगी,

ना तो जाएगी कहां. ....आत्मानानी?

(वही, पृष्ठ २१)

अनुभववाद की यह मांग है कि वह इस अमानवीय पक्ष को जीवन यथार्थ का एक अग ही स्वीकार न करें, वरन उससे सघर्ष करे। शोषण और दमन एक ऐसा कटु तिक्त वास्तव है जिसका गहरा संबध मानव के'मानवय' पक्ष से है।

नागार्जुन की जनवादी संघर्षशील चेतना ने इस दृष्टि से कर्मअभिमुख रचनाकार है। शब्द और कर्म का एक सुंदर समाहार नागार्जुन का व्यक्तित्व है, और उनकी यायावरी प्रकृति इसमें सहायक रही है। ऐसी समाजोन्मुख सृजनशीलता मे 'अतिकल्पना' का अभाव रहता है और यथार्थ सापेक्ष कल्पना का संयमित रूप गतिशील रहता हैं । अनुभवाद का यह रूप सभी संवेदनाओं और संवेगों को स्थान देता है जो बर्कले और हयूम जैसे आदर्शवादी अनुभववादियों में प्राप्त होता है। नागार्जुन (तथा अन्य कवियों में भी) मे अनुभव मात्र ऐन्द्रिय नही है, वरन वह मानवीय संवेदनाओं, संवेगों और अभिवृत्तियों का जैविक रूप है। उनके अनुमववाद में शोषित–पीडित का प्रकृति, नारी और बहमांड का जो रूप प्राप्त होता है, वह उनके अनुमववाद को 'स्थूल' या 'कूड' अनुभववाद के बाहर ले जाता है। नागार्जुन के मूल्यांकन में इस तथ्य को ध्यान में रखना जरूरी हैं।

नागार्जुन के अनुभववाद में दो तत्व प्रमुख है– एक विवेक और दूसरी चेतना। वे अपनी एक कविता में अति भौतिकवाद से बचने के लिए 'विवेक' और 'मन' के कुंठित न होने की बात करते हैं और इस भयावह स्थिति के प्रति वे चिंतित है–

भौतिक भोगपत्र सुलभ हो भूरि–भूरि.. ....

विवेक हो कुंठित.. ....

मन हो तिमिरावृत

भीतर की आंखे निपट निमीलित

यह कैसे होगा

क्यों कर होगा ! – १

वे ऐसे 'मन' और बुद्धि को नकारते हैं " जो जरा जरा सी बातों से घबरा जाए, प्रतिशोध न ले सके, क्षमा ही क्षमा करता चला जाए **(ऐसे भी हम क्या, ऐसे भी तुम क्या,' पृष्ठ, ३२)** । इस

१ – (सतरंगे पंखोंवाली , पृ० – १५)

नकारात्मक नपुसक स्थिति को चेतना की क्रियातम्कता और ही, संघर्षाशीलता से तोडा जा सकता है। यदि व्यक्ति की चेतना (समूह की भी) ऐसा नहीं कर सकी, तो वह एक 'झाग' के अतिरिक्त कुछ भी नही है–

गंध चेतस ठस है तुम्हारी

रस बोध पुंग है

श्रुति–कुहर हो गए रबर की तरह

ऐसे मे क्या हो आप

झाग ही झाग तो हो ? – १

नागार्जुन का काव्य , चेतना के इसी क्रियात्मक रूप को व्यक्त करता है जो एकपक्षीय न होकर अनेकपक्षीय हैं। उनकी संवेदना, सोच और अभिवृत्तियां इस क्रियात्मक चमतना को ब्यक्त करती हैं। वे यदि अतीत की ओर जाते हैं, तो इयलिए नही कि वे अतीत को " ठस चेतना " के रूप मे स्वीकार करते हैं, वरन् वे अतीत को (इतिहास, मिथक ,अद्यरूप) अपने समय की संघर्ष–चेतना का वाहक बनाते हैं। वे अतीत को आँख मूँदकर स्वीकार नही करते हैं, और उसमे जो ठस , अर्थहीन है, उसके प्रति वे एक खरी आलोचनात्मक दृष्टि रखते हैं। इस पूरी स्थिति को उन्होने ' मूलकदास ' के बिम्ब के द्वारा संकेतिक किया है जो समष्टि से निरपेक्ष और युग के तनाव से उदासीन है, अर्थात वह परोक्षतः क्रियाहीनता का पक्षधर है एवं परिवर्तन का विरोधी । कर्म करने का क्या औचित्य जबकि सबके दाता राम हैं । कर्महीनता और भाग्यवाद के इस रूप का प्रतीक है " मूलकदास " जिसके प्रति नागार्जुन की उक्ति उस सारे क्रियाविरोधी भाग्यवादी मानसिकता के प्रति प्रश्नचिन्ह लगाती है जो मानव की संघर्ष ऊर्जा को कुठित करती है –

सब कहीं खीच है

सब कहीं तनाव

बीचो बीच खडा है

यह अपटु ढेठ बाबा मूलकदास

समृष्टि से निरपेक्ष

युग से उदास – २

---

१ – (ऐसे भी हम क्या.. पृ० ५०)

२ – (ऐसे भी हम क्या... पृ० ५०)

इस प्रकार नागार्जुन का अनुभववाद निष्क्रिय न होकर सक्रिय है, वह चेतना के द्वन्द को स्वीकार करता है और इस द्वन्द मे वे जीवन स्थितियो के संघर्ष और स्वरूप के प्रति जागरूक ही नही है वरन् उन स्थितियों को 'अन्नब्रह्म' से जोडता है । कवि की एक ऐसी ही कविता है ' अन्न पच्चीसी ' जो ब्रह्म को अन्न के साथ जोडकर (उपनिषद की 'अन्नब्रह्म' की धारणा का आधार है) अन्न को एक व्यापक संदर्भ प्रदान करती है जो जीवन का एक अभिन्न अंग ही नही है, वरन् यह समस्त सृष्टि का भौतिक तत्व है जो ऊर्जा का वाहक है। यह 'अन्नब्रह्म' ऋचा और मंत्र को जन्म देगा और इसी के साथ वह चिंतन को नयी भंगिमा देगा । यहाँ पर कवि ने 'अन्नब्रह्म' को चितन की क्रियाशीलता से और सृजन से जोडा है जो मेरे विचार से , पारम्परिक प्रतीक को नया अर्थ प्रदान करता है।

नयी ऋचा, नव मंत्र रचेगी अन्नब्रह्म की माया ।
चिंतन को नव इगित देगी , अन्नब्रह्म की माया।। –१

यही अन्न आम आदमी का ब्रह्म है। पेट की भूख ब्रह्म से भी बडी है। यह एक ऐसा यथार्थ है जो भूखा व्यक्ति और समूह ही अनुभव कर सकता है। इसी अन्न–ब्रह्म को कवि अन्य 'ब्रह्म' से ऊचा मानता है क्योकि इसी ब्रह्म के द्वारा हम अन्य ब्रह्म की बात कर सकते है।

अन्नब्रह्म ही ब्रह्म है , बाकी ब्रह्म पिशाच ।
औघड़ मैथिल नाब जी, अर्जुन यही उवाच।। – २

इस प्रकार नागार्जुन का अनुभववाद यथार्थवादी होते हुये भी मानसिक स्थितियो को नकारता नही है और चेतना की द्वन्दात्मकता को , मानवीय और सामाजिक स्तर पर स्वीकार करता है। वह परम्परा और अतीत को उस चेतना के रूप मे स्वीकार नही करता है और वहाँ से उन्ही इतिवृत्तों, मिथकों और आद्यरूपो को उठाता है जो संघर्षशील चेतना को गति दे सके। वह भौतिकता को मानव सापेक्ष अर्थ प्रदान करता है। वह पेट की भूख को ' अन्य ब्रह्में ' से भी अधिक महत्व देता है। जब तक व्यक्ति और समाज को ' अन्न ब्रह्म ' न प्राप्त होगा , तब तक ' अन्य ब्रह्म ' की बात करना अर्थहीन होगा। यहाँ पर कवि स्पष्ट रूप से जनवादी अनुभववाद का पक्षधर है। कवि का समस्त रचना–संसार इसी जनवादी अनुभववाद का उद्घोषक है।

इन कविताओ मे रागात्मक संवेदना व्यापक मानवीय तथा सामाजिक सरोकारों के तहत बड विस्तार

---

१ – (पुरानी जूतियों का कोरस, पृ० ५६)

२ – (पुरानी जूतियों का कोरस, पृ० ५६)

एवं गहराई के साथ चित्रित है और इनकी आत्मीय व्यजना मे अचल विशेष ही नही, समूचा देश, देश की धरती तथा धरती पर रहने वाले मनुष्य सब कुछ सिमट आया है। जीवन का प्रत्येक स्पदन , हर धडकन मानो यहॉ सॉस पाती है।

****

अध्याय- 6 - २००5-घ

त्रिलोचन की सौंदर्यात्मकता

त्रिलोचन मूलतः जीवन की स्थिर शांत स्थितियों के कवि हैं। ''बहुत तीव्र गति के बीच भी जो धुरी के पास की स्थिरता होती है, वे स्वभाव से उसी स्थिरता के कवि हैं।'' (अरुण कमल - सापेक्ष-त्रिलोचन अंक पृ० ५३६) अनेक विकट स्थितिया हैं, भावों और विचारों के परस्पर घात-प्रतिघात हैं, लेकिन सब कुछ बहुत स्थिर चित्त से, निपुण संयम से उनकी कविताओं में अंकित है-''प्रखर वेग के पार अडिग जीवन ने पायी। सोची हुई सिद्धि जीवन की (उस जनपद का कवि हूँ-पृ० ३७)। यहां जीवन की सोची हुई सिद्धि है, प्रखर वेग के पार, जो मन को और शब्दों को साध कर प्राप्त की गयी है। अपने मुखड़े से आपको टेरती या आकर्षित करती यह कवितायें नहीं है, वल्कि कागज पर जीवन की शिनाख्त की तरह पसरी ये कवितायें पहले साक्षात्कार में एकदम सादी सादी अटपटी सी लग सकती हैं। उनमें न उदात्त का आग्रह है न उस पैनेपन की तलाश जो अपनी मंशा को नोक पर लाकर कविता के अर्थ को एकाएक खोल देती है और कविता के बाकी कलेवर को पृष्ठभूमि में तब्दील कर देती हैं। यहां कविता एक अखंडित अनुभव है- जीवन की तर्ज और तौर तरीकों की अपरिहार्य साक्षी। कविता की बुनावट और गठन, उसकी वस्तु और कथन रोजमर्रापन के इतना निकट है कि सबसे पहले तो वह उन पुरानी, लीक-पिटी, अतिपरिचित जीवन छवियों में से सार्थक कथन का काम ले सकने के कलाविहीन कौशल की आस्वादक तैयारी को तत्पर दिखती है फिर निहायत अंतर्निहित किस्म की विदग्धता की अचूक धार को भीतर छिपाये स्पष्ट भोलेपन से अपनी बात कहती जाती है। अपनी वात, हम सबकी वात, गांव घर जेंवार, खेत खलिहान और इन सबके भीतर छिपे सौंदर्य की बात। जीवन को उद्घाटित करतीं, दोस्तों की तरह बाते करतीं इन कविताओं को अपने से अलगाया नहीं जा सकता।

---

१. अरुण कमल - सापेक्ष-त्रिलोचन अंक पृ० ५३६ ।

वह एक पूरा बिछावन है, ताने-बाने की तरह गझिन। ''शायद यही स्थिरता, यही 'त्वराहीनता' कुछ लोगों को अकाव्यात्मक लगती है, क्योंकि त्रिलोचन स्थितियों और भावो के संयोजन से लेकर शब्दों के चुनाव तक इसी स्थिपता के साथ काम करते जाते हैं। कहीं कोई तात्कालिक व्यग्रता नहीं, कहीं कुछ भी आकस्मिक नहीं। जो है, वह पूरा सोचा-विचारा। संभवतः इसी कारण उनका सबसे प्रिय काव्य-रूप सॉनेट रहा है, जहां तक नियत घेरा तो है ही, विराम का भी यथेष्ट अवसर है और जटिलतम स्थितियों स्रवित कर एकत्र कर देने का सुयोग भी। ''अरुण कमल-सापेक्ष पृ० ५३६'' त्रिलोचन को शब्द सिद्धि है। जाहिर है वह शब्दों के सौंदर्य को जानने वाले या यूँ कहें उसके सम्पूर्ण अर्थ का दोहन करने वाले कवियों में हैं। उदाहरण हैं अरधान की कवितायें। त्रिलोचन लिखते हैं-''डालियों के बढ़े हुए कूचों में। यहां 'डाली' और 'कूचा' का संयोग पूरी कविता को नया बना देता है। वातावरण कविता में शाम का चित्रण है। यहां भी कुछ पारंपरिक उत्पादन हैं, जैसे 'सांझ गुलाबी', हवा की छेड़छाड़ आदि। लेकिन कई नये और ताजे वर्णन हैं और-

''धूमाच्छादित हैं वृक्ष वे,
टटहनी टहनी डाली थाम के
धुँआ और ऊपर चढ़ता है।''

यह शाम का बिल्कुल नया रूप है। बहुत ही सूक्ष्म निरीक्षण। धूमाच्छादित जैसा शब्द पारम्परिक है,लेकिन जो निरीक्षण है टहनी-टहनी, डाली-डाली थाम के धुँआ के ऊपर चढ़ने का, वह त्रिलोचन का बिल्कुल अपना है।ऑधी भी ऐसी कविता है, जहाँ उनकी शब्दावली कमोवेश पारम्परिक है, लेकिन उसमें भी कुछ जीवन्त चित्र हैं। दिलचस्प बात यह है कि सकविता के सर्वाधिक सशक्त अंश वे हैं, जहाँ त्रिलोचन बिल्कुल पास के और अपेक्षाकृत स्थिति के बिन्दु देते हैं-

''डरे चौपाये भी चकित नयनों से निरखते
..............थानों से लगकर कंपे।''

---

१. अरुण कमल-सापेक्ष पृ० ५३६ ।

यहाँ आंधी की विभीषिका का अंकन उन्होंने एक पंक्ति में किया है-

'डरे चौपाए भी चकित नयनों से निरखते'।

इसके बाद आँधी की गतिशीलता चित्रित करते हैं। लेकिन वहाँ कविता शिथिल सी हो जाती है। वह प्रभाव नहीं रहता जितना 'डरे चौपाए'.........से उभरता है यह केवल त्रिलोचन के स्वभाव को व्यक्त करता है-त्रिलोचन मूलतः स्थिरता के कवि हैं। उनकी यह स्थितप्रज्ञ स्थिरता ही दृश्य में चित्र देखती है, चित्र में सौन्दर्य, सौन्दर्य मे मनुष्य । इसलिए उनकी कवितायें जीवन्त और लछदक हैं। निस्संदेह इन कविताओं में एक ऐसा समाकालीन अनुभव स्पन्दन है, बिम्बों का ऐसा कोलाज हैं जिसमें हमारी अपनी जिंदगी जगह-जगह से झांक रही है, जिसमें दुनिया जहान की सारी विसंगतियाँ तो है किन्तु ' बेहता दुनिया के निर्माण में अपने हिस्से की एक ईंट लगाने की भरपूर इच्छा और कोशिश भी है। निंदा विगर्हणा और पराजय-बोध के बीच एक ऐसा काब्य-बोध है जो हमारे जीवन बोध को अधिक जीवंत आर उत्तरदायी निाता है। एक ऐसी भाषा जो नीरस और उबाऊ भाषायी इलाकों को पार कर हमें शब्दों के ध्वनि-संगीत की ओर ले जाती है। समय के चेहरे पर असमय उभर आयी झुर्रियों के लिए शर्मिंदा पूरा काल खण्ड यदि यथार्थ का एक चेहरा है तो अपनी गरीबी और फकामस्ती में आजाद, अपनी झोपड़ी अपने आंगन में आजाद एक आबादी और भी है जिसकी जिंदगी की शर्ते उसकी मेहनत से तैयार की गयी हैं। यह मेहनत खून और पसीने की मिली जुली सुन्दरता है जो अगली सुबह के सपनों को निरंतर बुनती रहती है। त्रिलोचन इसी सौंदर्य के निरीक्षक हैं। स्पष्ट है उनका मानवीय वोध उनके सौंदर्य की रचना करता है।

त्रिलोचन एक रागात्मकता है, जो शब्द में लय की तरह, उनकी निगाहों की छंदो में बाकायदा मौजूद है। इन्हीं निगाहों से वह पृथ्वी को, उस होने वाली ढेर सारी हलचलों को देखते हैं-

बहुत दिन बाद कोयल पास आकर बोली है,

पवन ने आ के धीरे से कली की गांठ खोली है।

लगी है कैरियॉ आमों में महुओं ने लिए कूचे

गुलाबों ने कहा हँस के हवा से ब तो होली है।''

(गुलाब और बुलबुल-पृ०-८८)

यहॉं प्रकृति के बसंत आगमन पर होली खेलने का दृश्य, उनकी प्रकृति और मनुष्य के रागात्मक बोध की उपस्थिति रचना के लिए इतना जरूरी मानता है कि-

अगर चॉद मर जाता

झर जाते तारे सब

क्या करते कविगण तब!

सोंचते सौंदर्य नया?

देखते क्या दुनिया को

रहते क्या, रहते हैं,

जैसे मनुष्य सब

क्या करते कविगण तब?

(तुम्हे सौंपता हूँ-पृ०-२)

ध्यान दें, तो ये वो चीजें हैं निका ताल्लुक हमारे होने से (बीइंग) है। ये हमारी बुनियादी प्रवृत्तियों की नियामक शक्तियॉ हैं- हमारी भौतिक और मानसिक सृष्टियों की उत्प्रेरक शक्तियॉं। इस परिप्रेक्ष्य में देखें तो त्रिलोचन की कविता में ये तमाम चीजें एक लीलामय भूमि पर दिखायी देती हैं। वे जितनी सहज है उतने ही सम्बन्ध के साथ हमारे अनुभव का हिस्सा बनती हैं:-

बढ़ रही क्षण-क्षण शिखायें

चमकते अब पेड़ पल्लव

---

१. गुलाब और बुलबुल-पृ०-८८ ।

२. तुम्हे सौंपता हूँ-पृ०-२ ।

उठ पड़ा देखो विहग-रव

गये सोते जाग

बादलों में लग गयी है आग दिन की

(धरती -पृ० ६५)

लेकिन प्रकृति के इस लीला व्यपार को देखते हुए भी वह मनुष्य के बोध से असंपृक्त नहीं हैं। पत्ते केवल पतझर आने पर ही नहीं झरा करते हैं, जीवन का रस भी सूख जाता है, तभी बिना कुछ झिझके बिना मुहूर्त प्रतीक्षा के ही झर जाते हैं (धरती-पृ० ७५)

इसलिए -

छाती पर चढ़ा हुआ अंधकार का पहाड़ उतर गया

और यह प्रभात हुआ

कंचन बरसाता हुआ सुन्दर प्रभात हुआ

प्रकृति को, सृष्टि के इस विराट और भारी अवयव को इतने लाघवपूर्वक रूप में देखना हिंदी कविता में अन्यत्र (धरती-पृष्ठ-६४) दुर्लभ है । प्रकृति के इस विराट अनुभव को वस्तुतः जीवन रस से स्पन्दित एवं सौंदर्यपूर्ण रूप देना सचमुच अद्‌भुत है इसीलिए श्रुतिबोध कहते है। जीवन के इस पराजयहीन अनुरागपूर्ण, आसक्तिपूर्ण, तेजोपूरित भाग के प्रतीक-प्रभाव का कवि के मन से अंगागी सम्बन्ध है, और प्रकृति के उल्लास-चित्रों के प्रति प्राकृतिक मोह।'' (मुक्तिबोध-हंस जुलाई १६४६)

यथा-

---

१. धरती पृष्ठ ६५ ।

२ धरती पृष्ठ ७५ ।

३. धरती पृष्ठ ६४ ।

४. मुक्तिबोध - हंस जुलाई १६४६।

"लहर-लहर परिचय-परागपूर्ण

दृश्य-दृश्य अनुरंजित ज्योति-चूर्ण"

और- धूप सुन्दर

धूप में जगारूप सुन्दर

सहज-सुन्दर।"

समूची प्रकृति, पूरी पृथ्वी त्रिलोचन की कविता में ऐसी ही आत्मीय सौंदर्य और स्पन्दन से भरी हुयी है। वे अपनी इन कविताओं के इस विधेयात्मक उद्यम से हमें याद दिलाते हैं कि यह प्रकृति महज हमारे उपयोग के लिए रची गयी एक पण्यवस्तु (कमॉडिटी) नहीं है, हमारे मनमाने व्यवहार के लिए उपलब्ध एक जड़ पदार्थ नहीं, बल्कि इससे आगे बढ़कर उसमें वह जीवन और सौन्दर्य है जो जीवन और सौंदर्य की हमारी अवधारणाओं और अनुभवों का स्त्रोत है-

"चमचमाती

चांदनी की रात

शांत बिल्कुल शाँत

चर अचर सब

मौन कितनी रात

स्तब्ध नीरव रात" (धरती पृ० ८७)

या - आज का यह तिमिर करता शान्ति दान

समझने मानव लगा है शक्ति-ज्ञान

स्वत्व, जीवन प्रगति, सामंजस्य, मान

हो चला संघर्ष इससे जगत्

का अधिवास !

---

१. धरती पृष्ठ ८७ ।

त्रिलोचन की कविता में एक सहज आकर्षण है। एक लावण्य है। गद्य को एक सृजनात्मक काव्यभाषा में रच देने की एक जन्मपात शक्ति जैसे इस कवि के पास है। स्मृतियाँ उनके यहाँ खदवदाती रहती हैं। वे कई बार कविता की निर्मिति में वस्तु और इससे मनुष्य के सम्बन्धों, रागात्मकता और इससे जुड़ी स्मृतियों को ऐसे ले आते हैं जैसे वह अभी की बात हो। इस क्रम में ऐसी-ऐसी वस्तुयें और शब्द आते हैं जो हमार बीच रहे भी हों तो उनके अर्थवान्! स्वरूप से हम अवगत नहीं रहे। हम चकित होते हैं कि हमने इन वस्तुों और शब्दों की तरफ ध्यान क्यों नहीं दिया जबकि कवि के लिए वे सब उनकी जातीय स्मृति के सहज अंग हैं। श्रीकात वर्मा के 'मगध' और त्रिलोचन के काव्यसंग्रह ''शब्द' पर एक साथ विचार करते हुये उदयन बाजपेयी कहते हैं-" ऐतिहासिक समय की गहरी चेतना इन दोनों संग्रहों में स्पष्ट देखी जा सकती है लेकिन दोनों भी येआक्टेवियो पाज के शब्दों में कहे तो 'प्रति-इतिहास' का सृजन करती हैं। जब इतिहास की स्वयं की स्मृति जन्म ले लेती है जो मनुष्य से निरपेक्ष दिन रात अपनी काया फैलाती जाती है तब कविता प्रति-स्मृति रचनी है। प्रति इतिहासः प्रति स्मृति। इसी अर्थ में ये कवितायें कविता की मर्यादा का वहन करती कवितायें हैं। (उदयन बाजपेयीः संभव है कल मैं देखा जाऊँ काशी में और जरूसलम में-पूर्वग्रह-अंग-७३-७४ मार्च जून १९८६) यहाँ स्मृति तत्व को महत्वपूर्ण मानते हुए भी उदयन श्रीकान्तवर्मा के साथ त्रिलोचन की कविता को मनुष्य से निरपेक्ष मानते है- जो कि उनके द्वारा त्रिलोचन की कविता को महत्वपूर्ण माना गया है-से सहमत नहीं हुआ जा सकता। श्रीकांतवर्मा के वारे में, असल में यह सच हो सकता है जहाँ प्रति स्मृति के जरिये वह प्रतिइतिहास को सामने लाते हैं लेकिन त्रिलोचन की स्मृति को उसी

---

१. उदयन बाजपेयीः संभव है कल मैं देखा जाऊँ काशी में और जरूसलम में-पूर्वग्रह-अंग-७३-७४ मार्च जून १९८६

कवायद में अपने साथ रखना स्वय आलोचक की दृष्टि पर प्रश्न चिन्ह लगाता है। क्योंकि त्रिलोचन की कविता मनुष्य से निरपेक्ष नहीं है। वह उनके साथ उठने-बैठने वाली साथ साथ चलकर, साथ देने वाली कविता है। यह ऐतिहासिक जातीय स्मृति की कवितायें हैं लेकिन ये अतीत ग्रस्त कवितायें नहीं है। यह उनके अनुभवों की कवितायें हैं अनुभव का यह संसार घर का, परिवार का और यार दोस्तों का सहज ससार है, इस सहजता की कविता में सी तरह का देसीपन है जिसमें मर्म के साझेदारी पूरी गुंजाइश है। जहाँ छांह उठानें की सहभागिता है, थून लगाकर घर बनाने की सदिच्छायें हैं. फरका थाम कर जहाँ मदद करने की अटूट कोशिशें है-

''अपने अपन फरका सम्हरई छान्हि

हाथे-हाथे जाई टेकाने बान्हि।'' (अमोला)

ऐसी सहवर्ती क्रियाओं को प्रश्रय देने वाली कविता जीवन मे धरकर, मनुष्य से निरपेस रहकर, रह ही नहीं सकती। लोक जिसका मुख्य स्वर हो, पृथ्वी जिसका आंगन वह कविता जीवन से स्पन्दित तो रहेगी ही।

युग के कुछ अति प्रचलित मुहावरों, कवि-मुद्रा की एक रूपताओं और तथाकथित सामाजिक चिन्ताओं की एकरस व्याप्ति के चलते आज कविता लिखना जितना आसान हो गया है। कवि-कार्य उतना ही मुश्किल होता जा रहा है। भावों के भाषा में शब्दों की व्यवस्थ मात्र दे देना-यही कवि कर्म नहीं है। कवि कर्म को सच्ची सार्थकता तभी प्राप्त होती है, जब वह मनुष्य की सम्वेदनाओं को कुन्द करने वाली स्थितियों की भयावहता को कवि अपनी चेतना में पूरी ईमानदारी से महसूस करे और भाषा में शब्दों को ऐसी शिराओं की तरह स्पंदित होने दे जिनमें उसकी रचनात्मक बेचैनी रक्त की तरह प्रवाहित होने का प्रमाणदे सके।'' (राजेन्द्र कुमार-कविता में कविता से बाहरआने की जरूरत -उन्नयन-११ पृष्ठ-३६) कहना न होगा त्रिलोचन कविता के सरोकारों से पूर्णतः परिचित हैं और इस रूप में कविता में शब्दों के प्रयोग के प्रति बेहद सचेष्ट भी। इसीलिए उनकी कविता दुनिया मे अपने लिए भी जगह बनाती है और जीवन के लिए भी।

---

१. राजेन्द्र कुमार-कविता में कविता से बाहरआने की जरूरत-उन्नयन-११ पृष्ठ-३६ ।

त्रिलोचन की कविता में सुख के ढेर सारे क्षण हैं। ये सुख के क्षण उनके लोक ससक्ति में, उनके प्रियजनों के संग ढूंढा जा सकता है। त्रिलोचन की कविता में जितने प्रियजन सुलभ हैं उतने किसी अन्य समकालीन कवि में न होंगे। शमशेर में भी ऐसी ही प्रवृत्ति है किन्तु वहाँ व्यक्ति-चित्र अधिक है। इसके विपरीत त्रिलोचन ने सम्बन्धों को केन्द्र में रखा है। यह मैत्री की प्रतिष्ठा है। ये गली-मुहल्ले-गॉव घर जेंवार परिवार परिजन और मित्रों के समूह हैं। कहीं कहीं ये पात्र प्रतिनिधि चरित्र हैं तो कहीं इनकी कोई विशेष पहचान नहीं। लेकिन इनके पात्रों की जहाँ कोई पहचान नहीं उनकी वयाप्ति हर जगह है, हर गॉव देस मैं। ये दुनिया में दुख की तरह फैले हैं। इसीलिए उनके पात्र उत्तर भारत के हर गॉव हर देहात में मिल जायेगें और इसी के साथ मिलेगीं उनकी हरकतें। पृथ्वी के एक कोने पर अनाम रहते हुए भी ढेर सारी क्रियायें करते थे लोग असल में दुनिया की असल आबादी के प्रतिनिधि है। इस असल आबादी के तमाम संघर्षों उसकी मस्ती को उकेरती त्रिलोचन की कविता तमाम आत्मीयता के जीवन लय से नम है। यही कारण है कि त्रिलोचन की कविता का कोई कोना जीवन के यथार्थ आलम्बन और अनुभावन व्यापार से रहित नहीं है। कविता का प्रतिसंसार सच्चे अर्थो में जीवन व्यापार का पुनसृर्जन है। यहाँ कविता का अर्थ है-निकट से देखें आदमी की तर-वीर। त्रिलोचन इस तस्वीर की तांमीर करते हैं। उनका मानना है कि जब तक हम उस समाज की बोली को नहीं समझ सकते, उसके सौंदर्य से अभिभूत नहीं हो सकते तब तक वैसी संवेदनायें नहीं दे सकते ।

''कोई समझ न पाये अगर तुम्हारी बोली
तो इस बोली का मतलब क्या, मौन भला है,''
(अनकहनी भी कुछ कहनी)

त्रिलोचन का यह बस्तुबोध जिस सामाजिक संकट की पीड़ा का संकेत करता है, वही उन्हें क्षण प्रतिक्षण बदलने वाली दुनिया के अनुसार कविता के बदलने का संकेत भी देता रहता है। वह मानवीय इतिहास को निर्मित करने वाले सच्चे हाथों से परिचित हैं। इसीलिए खुरदुरे हाथों की संस्कृतिक में त्रिलोचन वर्तमान प्रदूषण और प्रकृति के प्रति व्यभिचार

से मानवता के सर्वनाश से बचने का विकल्प भी ढूंढते हैं।–

जब तुम किसी बडे या छाटे कारखाने मे

कभी काम करते हो किसी पद पर

तब मैं तुम्हारे इस काम का महत्व खूब जानता हूँ।

और यह भी जानता हूँ– मानव सभ्यता

तुम्हारे ही खुरदुरे हाथो में नया रूप पाती है।" – १

यह कविता के कवि के इतिहास बोध और मानव जाति के कल्ज्याणकारी भविष्य की कल्पना के लोक से सम्बद्ध है।" उनकी 'नगई महरा' मे खुरदुरे हाथों की समझ और संस्कृति का स्वरूप है जो वर्तमान संदर्भ मे कविता की अंतर्वस्तु के बदलाव का ही नहीं अनुभव सदर्भ के दबाव का भी प्रमाण है। 'नगई महरा' त्रिलोचन के गॉव कटघरा चिरानी पट्टी का भगत ही नहीं है बल्कि मात्र एक अभ्यिंजित व्यक्तित्व है जिसमें जीवन के उस स्वरूप का वर्णन है जहॉ परिवार के भीतर झांकता हुआ वर्गभेद नहीं दिखाई पडता। भ्रमनिष्ठा और आस्था व्यक्ति की विवशता का प्रमाण हो सकती बाहर से चेतना के विलय का संकेत भी कर सकती है परन्तु वह एक भिन्न प्रकार की सामाजिकता का भी कारण होती है। – २

'नगई महरा' निश्चय ही वर्णनात्मक है परन्तु यह वर्णन कई प्रकार के मानवीय सम्बन्धऔर मानसिक गॉठो का संकेत करता है। नगई का यह कथन, कविता और यथार्थ दोनो ही दृष्टियो से महत्वपूर्ण है।–

नगई ने हाथ चलाते हुये फिर कहा

दुनिया है, दुनिया का ज्ञान है,आदमी है

आदमी को क्या क्या नहीं जानना है

देखते सुनते और करते ज्ञान होता है

अपनी जब होती है समझ नई होती है।

---

१ – (ताप के ताये हुये दिन – मैं तुम'–पृ० ६०)

२ – (डा० सत्यप्रकाश मिश्र–पहल–१५ त्रिलोचन की देशी कविताये–पृष्ठ–१२)

समझ ही आदमी को आदमी से जोडती है। " – १

कर्म, ज्ञान और समझ का जो रिश्ता त्रिलोचन 'नगई' के माह या के सामने लाते हैं अपने पूर कवि कर्म में उसे कहीं भूलते नहीं है इसीलिए अपनी संवेदना की धरोहर वहॉं से उठाते हैं जहॉं श्रम से लथपथ चेहरे और कीचड–कालिख से सने हाथ हैं। वह मिट्टी को इसीलिए गौरवान्वित करते हैं क्योकि वह सामान्य जन को गौरवान्वित करना चाहते हैं। मिट्टी से प्यार सामान्य जिंदी से प्यार है। प्रस्तुत संसार से प्यार/इसीलिए उसके सौंदर्य को सांस खींच कर अपन अदर तक लेते हैं। इसीलिए त्रिलोचन की कविता पाठक को किसी तीसरे संसार की ओर नहीं ले जाती। उसमें अषाढ की उमडी घटायें हैं, तपन है, बौछार है। खेत खलिहान है, चैतिया प्रभात और भिनसार की गन्ध है, फागुन की पूर्णिमा और लू के थपेडे हैं। र्जजर शरीर,गड्ढो मे धंसी ऑखे मिटटी के कच्चे घर, मुंडेर, टूटी छाजन, अंगना डेहरी सब कुछ है निथ्रा निथ्रा सा टटका टटका सा/इस संसार का पूरा रूपाक णि–अपने रगो और ध्वनियों सहित पूरे दृश्यखण्ड के जाप उपस्थित है। और कवि की स्थिति इसे भर–भर ऑख देखने में है। जीवन का यह सम्पूर्ण दृश्यालेख है। यही कारण है कि "लोक कविता की पाठ शैलियों से कम से कम हिन्दी कविता को बहुत कुछ सीखना है। अगर उसे अपनी एकरसता और एकायमिता को तोडता है तो लोक कविता की पाठ शैलियों तक हमें जाना होगा।" – २

त्रिलोचन अपने लोकात्मक अनुभवों द्वारा जिस विशाल कविता फलक का निर्माण करते हैं–कह सकते हैं– वह इस संदर्भ में हिन्दी कविता के काव्य–गुरू काव्य–शिक्षक हो सकते हैं।

त्रिलोचन की तमाम कविताओं में मैं की उपस्थिति एक दिलचस्प नजारा प्रस्तुत करती है।

वही त्रिलोचन है, वह–जिसके तन पर गंदे

कपडे हैं..... ....

\+ + +

चीर भरा पाजामा, लट लट कर गलने से

छेदो वाला कुर्ता ....

---

१ – (पृ०–७३ ताप के ताए हुए दिन)

२ – (कविता का दूसरा पाठ– भागवत रावत पृ०–६८)

यही त्रिलोचनहै, सब मे, चलसाया भी, प्रिय है आलोचन

\+ \+ \+

भीख मागते उसी त्रिलोचन को देख कल " – १

कवि स्वय केद्र मे खडा होकर कथ्न के सारे बोझ को अपना ही जवन–परिवेश बनाकर अपने पर भुगतने दे रहा है। यह भागीदारी एक तरफ तो उस श्रे ठता भाव को ध्वस्त करती है जो कवि और कविता को किसी दूसरे संसार की चीज बताता है, दूसरे अपने पर हंस सकने की आलोचनात्मक परिपक्वता कवि में दिखायी देने गती है। उपहास द्वारा जीवन स्थिंतियो पर ऐसी नि करूण, ऐसी भेदक चोट पड़ती है कि प्रभाव को महसूस तो किया जा सकता है, पर व्याख्यायित नहीं किया जा सकता। यह बात रोचक है कविता सम्बन्धी इन कविताओं का आस्वादन कविता द्वारा बनायी गयी मनोभूमि और प्रत्याशा से मुक्त होकर ही किया जा सकता है। काब्य के स्तर पर भी यह सब उन सवालों के लिए ललकारती है जो चुराने और नये काव्यमूल्यों के प्रस्थान बिन्दु रहे हैं। लेकिन यही से–इसी वैयक्तिक मनोभूमि से वह वैयक्तिक सौंदर्य की प्रतिपरकता का आहरण भी करता है। असल में प्रकृति के बाद त्रिलोचन संसार के रूप और सौंदर्य का निश्पादन अपने प्रेम निरूपण के माध्यम से करते हैं। वस्तुतः यह उस इस प्रकृति का ही अंतर्वर्ती छोर है; जहॉ प्रेम है, प्रेम का आलंबन है और है अत्यन्त आवेगमयी सौंदर्यमयी स्वतः जीवन्त राग/लेकिन ध्यातण्य रहे अधिकांश कविताओं में प्रेयसी को आलंबन बनाते हुए भी वह देह पर निर्भर श्रंगारिकता नहीं है, इसके बाक्स वह खुद को चरितार्थ करने के लिए नितान्त अप्रत्याशित और अपारम्परिक आलम्बन खोज होती है, कुछ इस तरह कि हम अनुभव करते हैं मानों इन आलम्बनों का इस दृ टि के साथ एक अनन्य, अनिवार्य और एकान्तिक रिश्ता था। कवि की आंखे इस रूप को देखती हैं और वे नयन हैं–

नयन कहीं ले जायें या न ले जायें नयन हैं

किया करेंगे अपने संग्रह की रखवाली

रूप रूप से, आयेगी डोरो में लाली

नव आवि कृत राग की, सहज चयन हैं

विविध वि य के/विविध ग्रहो के भिन्भ्रन अयन हैं

---

१ –(उसी सभी जनपद का कवि हूँ)

बहु वर्णो से भरी सौरमण्डल की प्याली" – १

त्रिलोचन सरीखे कवि की एक खास ात यह भी है कि उन्हे सबसे अधिक अपनी आखो पर भरोसा है। इस आखों ने वैविह य देखा है,

जीवन का विस्तार भी। उनेने सीमा देखी है और समी को देखनेकी ललक से भर उठे हैं। इस समूची प्रकिया में 'देखना' अपूर्व हैं। त्रिलोचन लिखते है–

तुमको देखा, आज डीठ डहडही हो गयी,

मन का सारा शून्य आप ही आप भर गया,

लहरों का उन्माद तीर को पार कर गया,

पुर पुर गई दरार।"

गीतमयी थी वह जिसे कवि ने एक घटना की तरह देखा। देखकर उसकी शुकता तिरोहित हो गयी," उगे फूल ही फूल, तप्त संसार तर गया। यह उल्लित प्रवाह अगोचर काल डर गया।

परिवर्तन का चक थमा।' त्रिलोचन ऑखों की राह से डूब जाते हैं प्राणो की लहर में। गीतमयी को देखकर उनमें जीवन–राग का उदय हुआ।

ऐसा राग जिसमें अखिल विश्व मुखरित हो उठा।

"त्रिलोचन की सौंदर्य दृष्टि सब कुछ स्वीकारती है, पर खुले हर प्रकार की कुंठाओं का निषेध करती हुयी इसीलिए यहॉ आत्म स्वीकृति का खुला उपयोग" – २

यथा–

वही सहज मुस्कान प्राण में नित्य पगी है।" – ३

अथवा

यह पानी का रंग है मेरा, जिसे बनाते

---

१ – (फूल नाम है एक–पृ०–७१)

२ – (प्रेमशंकर–साक्षात्कार जनवरी मार्च १९८७ पेज–११६)

३ – (फूल नाम है एक–७३)

मैंने इन ऑखों का पानी चुका दिया है

रस भरने को रस जीवन का सुखा दिया है

गीत तुम्हारे आये मैंने गाते–गाने

भावो की अनंत यात्रा पर आते आते/श्रद्धा से भरकर यानी सिर झुका दिया है

त्रिलोचन की कविता मे प्रेयसी की उपस्थिति अनुभव और विचार के स्तर पर बहुत ही व्यजक उपस्थिति है। स्त्री के साथ के ये अनुभव भी, लोक–मन और प्रकृति की भाषा को, आत्मसजगता की भाषा से जोडते हैं। दरअसल इस जीवन को एक निरंतर एकसेपन में देखा ही नही जा सकता। क्योंकि एक दूसरे को काटते एक दूसरे से बारम्बार जुडत अनुभव का अटूट सिलसिला यहाँ चला करता है–

आज मैं कहीं और तुम कहीं लाचारी है

मिले कि बिछुड़े।

बिछुडन में फिर मिलने की

इच्छा जगती रही और मन इतना टेकी

रहा कि तडपा किया

.... कौन विवेकी

मेरा मर्म छू सकेगा, पावस का केकी

डज् सुनाता है, व र्ा का आभारी है।" – १

यो तो इस तरह की पंक्तियो में, भी पुरूष के साथ की दैहिकता का मुहावरा भाषा के उसी देसीपन द्वारा निर्धारित सांकेतिकता की ही याद दिलाता है लेकिन अनुभव के स्तर पर उस साथ की खलिस अंतरगंता, इसे एक तरह की निजी कविता बनाती है। यह प्रेमानुभव की दैहिकता का सयमित उत्सवीकरण है। कहीं कही स्त्री की इतनी मुखर और एकाग्र उपस्थिति है कि सौंदर्य अनबोले सौंदर्य का धरासार स्वयमेव बहता है–

"शुभे तुम्हारी छवि अपने हृत्पट पर आंकी

---

१ – (फूल नाम है एक–पृ ठ–३२)

है मैने, अविराम ध्यान से उसे सवारा।" – १

या फिर –

आंख तक कर

फिरी थक कर

डाल का फल

गिरा पक कर – **(सबका अपना आकाश)**

लय की मादकता, पदावली की कोमलता और भाव की मधुरता के द्वारा त्रिलोचन अपनी प्रेमानुभूति को बिना किसी अलकरण के बेहद सादगी से यहा व्यक्त करते हैं। प्रतीक्षा की अवधि को निरूपित करने के लिए आख के तकते–तकते फिर जाने की क्रिया को डाल पर लगे फल को पक कर गिर जाने से जोडने के फलस्वरूप इस गीत में एक अनुपम सौंदर्य की सृष्टि हो गयी गयी है। यह अनुभव प्रेयसी के साथ रहने की कल्पना का वह छोर है जहा उसकी अनुपस्थिति मात्र से संवेदना पथरा गयी। यह हादसे का अनुभव है जिसे ठोस मानवीय संदर्भों मे ही पहचाना जा सकता है। यह रूप के प्रति कवि का उद्दाम हैजिसमे मांसलता और दिव्यता के बीच एक संतुलनकारी सान्निध्य है। दरअसल, यह सौंदर्य, यह रूप विधान, यह श्रंगारिकता त्रिलोचन की कविता में एक दृष्टि (विजन) की भांति व्याप्त हैजहां प्रेयसी की उपस्थिति आलंबन होते हुए भी भांति व्याप्त है जहॉ प्रेयसी उसकी उपस्थिति आलंबन होते हुए भी जीवन के संदर्भ नदारद नही हैं।

त्रिलोचन के यहॉ यथार्थ के विविध रूप हैं। स्पष्ट है इसमें कुछ चित्र बदरंग हैं, कुछ गाढे और कुछ हल्के। लेकिन ये सभी जीवन की व्याख्याहै लेकिन कविता के उपसंहार में जो कुछ बच जाता है उसमें स्वस्ति और जीवन का सौंदर्य ही है। लोकभाषा मॉग लोक संवेदना के बहुलांश वाली त्रिलोचन की कवितायें अपने अलग मुहावरों के साथ आती हैं जो हमारे समय को समृद्ध ही करता है। स्वस्ति और सौंदर्य से वंचित इस समय को वह इसकी निर्धनता दूर करने वाली कवितायें हैं। लेकिन ये आनन्दवादी कविताये नहीं है क्योंकि आनन्दवाद की परिणति उपभोक्तावाद में होती है। इस दृष्टि से देखें तो त्रिलोचन की कवितायें इस धारणा का अतिक्रमण कर जीवन के बेहतर विकल्पो को प्रदान करने वाली कविता है।

---

१ – (फूल नाम है एक पृ०–४७)

त्रिलोचन की सौंदर्यपरक कवितायें, मनुष्य को उसके अकेलेपन से बाहर लाती हैं। और इस रूप मे वह उस आत्मविस्तार, परिष्कार और आत्म प्रच्छालन करती हैं। मर्मस्पर्शी तरलता से युक्त ये हमारे छोट–छोटे सुखो की भागीदार हैं। दृश्यात्मकता इतनी सरल है कि पाठक कही उलझता नहीं। अभिधा की की क्षमता का विस्तार करती ये कविताये बोली और भाषा के अतरग संचरण से विकसित भाषा की विरल संरचना है। वर्णन का सुख इसका लक्षण है और स्थानीयता के भीतर वैश्विक संयोग इस कविता पर विश्वास करने का कारण।

सौंदर्य (तुलना – शमशेर, नागार्जुन, त्रिलोचन)

नागार्जुन सस्कृत की क्लासिकी धारा से प्रभावित रहे हैं। फलत वह जनता के कवि होते हुए भी लोकमन और लोक सवेदना की तरफ उनका अनोखा आकर्षण रहा और उन्होने लोकमंच पर अनोखी लोकप्रियता अर्जित की। उनका कवित्व जन से जुडा हुआ प्रगतिशील चेजना का वाहक तो रहा ही पर रागात्मक संवेदना की कमी भी उसमे नही रही लेकिन नागार्जुन केवल उन्ही रचनाओ के लेखक नही हैं जिन्हें लेकर उनके कवि–व्यक्तित्व का एक माहौल बनाया गया है। उन पर ज्यादातर बहिर्मुख आलोचना हुई है और किसी गहरी आभ्यांतरिक दृष्टि से उन्हे पहचानने की कोशिश न के बराबर की गयी है जबकि वे गहन सवेदना और व्यापक आयामोंके कवि भी हैं। प्रेम, वियोग, प्रकृति, सौंदर्य और अनेक कोमल–कठोर प्रसंगो, भावो और उदात्तताओं से नागार्जुन का काव्य और रचना–जगत सराबोर है।

नागार्जुन के आत्म भर्त्सना के बहाने अपनी पत्नी के प्रति जिस मार्मिक प्रेम की व्यंजना की है उसमें भी एक स्त्री की सम्पूर्ण गरिमा और कर्तव्यनिष्ठा का ही स्तवन है। प्रकृति को लेकर उन्होंने अक्सर वर्षा पर कवितायें की हैं क्योंकि बरसात ग्रामीण जनता की जीवन–आशा है। शायद इसीलिए कालिदास का मेघदूत उनके मन में बेहद रमा हुआ है। वह एक प्रेयसी से विछोह की यातना ही नहीं, जन–जीवन का व्यापक सर्वेक्षण और उसकी अंतरंगता का काव्य भी है। खेती–किसानी से जुडे कबि का मेघ से जुडना भी स्वाभाविक है और वियोगी कवि का मेघदूत से भी।

असल में मेघदूत की कविता ओं में जीवन की ऊष्मा है और उनकी कविताओं में प्राण भरती है आस्था और उनका विश्वास। कवितायें मोहभंग और आक्रोश की भी हो, तो क्या हुआ? उनका विश्वास नही डगमगाता, वे निराशा से सीझ नहीं जाते। इसीलिए उनकी रचना–शक्ति बहुआयामी और उनका रचना–शिल्प वैविध्यपूर्ण है। संप्रेषण उनके लिए विद्वद्चर्चा का विषय नहीं है, उनकी कविता का व्यवहार–धर्म है। गीत हो या मुक्त छद द्रोनों के मूल स्वरूप को धक्का पहुंचाये बिना वे सरल और सहज भाषा में अपनी बात बडे प्रभावशाली ढंग सेकह लेते हैं। दुरूहता,अर्थ–वैविध्य, सूक्ष्मतम अर्थ–प्रसार, अंतरतर के उलझाव को अभिव्यक्त करने वाली रूपक और प्रतीक–रचना की कविताओ मे कहीं नही दिखाई देती। फिर भी उनका खिलन्दरा मन जनता के बीच प्रच लित शब्दों और लयो की पकड़ से कविता में नित नया आवेग और अर्थ भरता रहता है। तुक के मेल, शब्दों की द्विरुक्ति, बातों की अथवा वाक्यासों की दुहराहट, लोकगीतों अथवा सिने–गीतों की प्रचलित कुछ ऐसे कौशल और लटके हैं जिनके सहारे नागार्जुन कविता की रूपता में भी रंजकता , अर्थगर्भता और

बिम्बात्मक की योजना कर लेते हैं । भदेस उनके लिए वर्जित नही है, बल्कि
सशक्त अभिव्यक्ति और अनुभूति के लिए बडा प्रबल माध्यम है। तभी वह सुअर मे भी सौदर्य देख सके। प्रकृति के चितेरे के रूप मे भी नागार्जुन की एक विशिष्ट भूमिका रही है। पहली भूमिका मे उनकी भाषा जितनी ही प्रखर और धारदार होती है, दूसरी भूमिका मे उतनी ही तरल और लहरदार। देवदारू, सफेद बादल, पीपल के पत्ते, करवटें लेगे बून्दो के रूपने , महामना मेघराज, जय है कीचड आज मैं बीज हूँ, हजार बाहो वाली शिशिर, दौड़ गयी हे। पुवकन रोम रोम मे, बदलियॉ हैं और बेतवा किनारे १ तथा २, प्रकृति की ही कविताएँ है। प्रकृति के सान्निध्य मे नागार्जुन बडे सौम्य, भवनात्मक और मृदु हो उठते है। झीलों में स्वर्ण कमल की अविकच कलियो के खिलने को खिलखिलाने से जोडकर नागार्जुन सहसा सारे वातावरण को उल्लास और रूप तरंग से आदोलित कर देते हैं। सफेद बादल दृष्टि पद मे आते ही कवि कालिदास और उनके ' मेघदूत' की स्मृति उन्हें बदली के प्रति रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करने में सहायक हो जाती है। चूंकि संस्कृत की शास्त्रीय धारा से नागार्जुन की पूरी काव्य –चेतना विकसित हुई है अतः पुरातन का प्रावर्तन, मिथको का पुनः प्रस्तुतीकरण नागार्जुन की प्रकृति बन गये है। श्रृंगारिक अनुभूतियां यद्यपि उनके स्वरचित काव्य मे गौण रूप से उभरी हैं पर नागार्जुन का मन सौंदर्यानुभूति के उस सागर से हमेशा आप्लवित रहा है जिससे संस्कृत के महाकवि कालिदास, रसिक विद्यापति, या राधाकृष्ण श्रृगार, सस्कारी कवि जयदेव काव्य– सृजन के लिए उत्प्रेरित होते रहे है। संभवतः नागार्जुन ने मुक्त छंद को 'मेघदूत' के अनुवाद के लिए सर्वथा उपयुक्त माना और इसे भारतीय मन की यूरोपिया कहा है और माना कि कालिदास को मानवीय हृदय की भारी पहचान थी। इसी के साथ नागार्जुन का विद्यापति के गीतों के प्रति भारी आकर्षण है। स्पष्ट है कि नागार्जुन रागात्मक भावधारा को अपनी कविता मे पर्याप्त स्थान देते है। नागार्जुन ने वाल्मीकि , कालिदास, जयदेव, रवीन्द्रनाथ को पढा है' उनका विद्यापति के लोकपक्षीय सौन्दर्य और श्रृंगार चेतना से सम्बन्ध है। यह सब मिलकर ही उसकी सौन्दर्याभिरूचि का आकार का शिकार नहीं होते। ओढ़ी हुई विचारधारा से उनका कोई सरोकार नही। जो कुछ है एक बने–बनाये संस्कार को तोड़कर सर्वहारा संस्कृति को प्राणवान करने के महान उद्देश्य से चालित है। नागार्जुन चाहे जहॉ बसे हो जन–जन के सजग चितेरे के रूप में वे अपने देश और मातृभूमि को कभी एक झण के लिए भी नही भुला पाते । मिथिला की धरती वहॉ के प्राकृतिक उद्यादान, बँसवर, आम, कटहल, लीचियों के बाग, मछलियों से भरा पोखर, धान से भरा बखार उन्हें याद ही आते है।

याद आता है मुझे अपना वह तरउनी ग्राम

याद आतीं लीचियो व आम

याद आते मुझे मिथिला के रूचिर भूभाग

याद आते धान

याद आते कमल कुमुदनी और ताल मखान

याद आते शस्य श्यामल जनपदों के रूप गुण अनुसार नहीं रखे गये वे नाम

याद आते वेणुवन में नीलिमा के निलय अति अभिरूम" — १

उनके काव्य में जीवनके यथार्थ का सौन्दर्य भी लहराता है। उनके बारे मे सहज ही कहा जा सकता है कि वह एक अद्‌भुत ही कहा जा सकता है कि वह एक अद्‌भुत सौन्दर्य–चेतना के कवि है। यह सौन्दर्य वह खेत –खलिहानों से लेकर ग्रामीण जन व समाजों से ग्रहण करते है। उनका एक जीवन्त रिश्ता ग्रामीण परिवेश से ˉजुडा हुआ है। आहलाद और सौन्दर्य का विरल गुम्फल उनके काव्य में है। यह सैन्दर्य उनेह राजनीतिक कविताओं में दिखाई देता है और हमें चकित कर देता है। काव्य सौन्दर्य और उपमा की जटिल सौन्दर्य उनके कविताओं का एक अलग गुण है। उनकी नजर अगर गॉव की उस महिला पर जाती है जो बीजनी से अपनी पीठ खुजला रही है तो उसके साथ कई सामाजिक जटिलताऍं भी जुडी हुई है। ग्रामीण जीवन क्षेत्र का वह अप्रविम सौन्दर्य चित्रण है। जिसमें बडी बारीक उत्तेजना है। " अकाल और उसके बाद" कविता अगर अविस्मरणीय है तो इसका कारण यही है कि उसमें जीवनकी एक रोमांचकारी सुंदरता है सत्य है। सिंदूर तिलकित भाल, वह दंवरित मुस्कान ऋतु संधि, तन गई रीढ , वह तुम थी, एक मित्र को पत्र आदि सैकडो कविताऍं है जिनमें नागार्जुन सौन्दर्य के विविध रू के एक सशक्त कवि के रूप में खडे हैं। देखने में तब आता है कि जब राजनीतिक कविताओं मे भी वे काव्य–सौन्दर्य की अविस्मरणीय झांकी प्रस्तुत कर देते है। जैसे' नवादा' कविता के दूसरे हिस्से की पंक्तियॉं – "पिच रोड पर। धूरूर दाग लहू के देखे। बेदम बूढे हाथी की खुरदरी पीठ पर। मरूल गया हो कोई ज्यों सूखा –सूखा सिन्दूर। नागार्जुन की सौन्दर्य चेतना बिल्कुल यथार्थ पर खडी , उसी के अनुभवों से आप्लवित सौंदर्य चेतना है। उसमें वायवीयता की कही कोई गुंजाइस नहीं है। नागार्जुन की सौन्दर्य चेतना बिल्कुल उन यथार्थवादी रचनाकारो की सैन्दर्य चेतना से मेल खाती है जो किसी –न किसी रूप में क्राति की

---

१ – (चुनी हुई रचनाऍं –खण्ड२, पृ० ३०)

उपज होते है। अत: नागार्जुन अपने समय को लांघते हुए बहुत।" – १

–बहुत आगे बढ जाते है। अपनी सौन्दर्य चेतना में जिस क्रातिकारी या युवा सार्थक नई पीढी के साथ वह देस्ताना निभाते उन्हे अपनी अगली पीढी मानते हुए ("आजा। जल्दी आजा। बुझने को है यह " ...) वह बार– बार याद करते हैं , उनकी सौन्दर्य चेतना जाती है।

शमशेर के कवि –मूल में जो प्रेम है वही विराट होकर मनुष्य की आत्मा का बहुविध सौन्दर्य बना है जिसकी जिद में दुनिया की सारी हलचले, अनुभूतियॉ , सघर्ष आ जाते हैं। क्योंकि सौन्दर्य सुन्दर ही नही है, सुन्दर की अनवरत तलाश है जिसमे असुन्दर भी मिलता है– और हद तक। इसीलिए शमशेर के संवेदन केन्द्र पर ही नहीं, उसके विकास क्रम, प्रयोजन और परिणति पर भी गौर करना जरूरी है। बिना इसके उनके विचार और काव्य ; समय और काव्य; जीवनानुभव और काव्य में दरारें ही दरारें देखी जाती रहेगीं। उदाहरण के लिए अक्सर कहा जाता रहा है कि शमशेर बात तो प्रगतिशीलता की करते है। और कविताएँ रोमानी लिखते है——यानि वे कविताएँ जो उनकी श्रेष्ठ और गहरी कविताएँ हे। विंसगति देखिए कि पहले तो इन्हें अलग –अलग किया गया और फिर उन पर अलग –अलग होने का आरोप लगाते हुए उनमें फॉक देखी गयी ; जबकि कवि को हमेशा ही इस पर हैरत होती रही कि:

शतरंज का एक खाना है

जिसमें तुम मुझे उठाकर रखते हो।

(मेरे समय को । इतने पास अपने) लेकिन

शमशेर है कि शतरंज का मोहरा बनने को तैयार नहीं। न खुद । न कवि ।

सौन्दर्य और प्रेम शमशेर के लिए सम्पूर्ण जीवन है जहॉ वे अपने की पूरी तरह समर्पित करते और सुरक्षित महसूस करते हे; क्योकि वहीं से निकलते हैं जीवन के सारे रस–राग–प्रयोजन:

तूने मुझे दूरियों से बढकर

एक अहर्निश गोद बना कर

लपेट लिया है। (सौन्दर्य/ इतने पास अपने)

---

१ – (चुनी हुई रचनाएँ –खण्ड२, पृ० ३०)

सौन्दर्य की कितनी विराट, कितनी अद्वितीय अनुभूति शमशेर के रचना ससार में है, उसकी यह एक झलक है। फकत । जो सौन्दर्य –स्मृति को सारे आसमान और जमीन मे समा देती है :

सूना–सूना पथ है, उदास इसरना

एक –बादल–रेखा पर टिका हुआ आसमान

जहॉं वह काली युवती हॅंसी थी।

शमशेर अनुभूति की एक गर्मी, राग की एक अन्तर लय पाठक ने जगा देते हैं, उनकी भाषा में हरकत है, पाठक ने हरकत पैदा करने जैसी। प्रेम का स्पन्दन और धडकन तक इन कविताओं में देखी और सुनी जा सकती है। उनकी भाषा सांस्कृतिक पवित्रता के बजाय राग की सादगी और पावनता है। शमशेर मे वर्णन इसारे मे बदल गये है, उनकी भाषा लथपथ नहीं करती, गन्ध की तरह, राग की तरह भीतर तक छू लेती है। दो –एक कविताओं कों छोड़कर शमशेर के काव्य में मांसलता कहीं नहीं है; केवल सम्वेदन है सूक्ष्म लेकिन अधिक जीवन हलचल लिए हुए।............निर्वैयक्तिकता का मतलब शमशेर के यहां व्यक्तित्व की अनुपस्थिति नहीं, उनकी कविता में विलीनीकरण है।

अनुभूति का क्षण का देश और काल दोनों में विस्तार है, यह जितना 'जहान' को समेटे है उतना ही 'इतिहास' को । इस सन्दर्भ में शमशेर की यह व्याख्या अच्छी तरह समझी जा सकती है– " सुन्दरता का अवतार हमारे सामने पल –छिन होता रहता है। अब यह हम पर है, खासतौर से कवियों पर, कि हम अपने सामने और चारों ओर की इस अनन्त और अपार लीला की कितना अपने अन्दर घुला सकते है। "स्वयं शमशेर के लिए सुंदरता का अवतार के अंतर्गत उन की अपनी कविताएं स्वभावतः न आती होंगी, पर हमारे लिए वे इस व्याख्या का सजीव उदाहरण हो जाती हैं। इन पंक्तियों में एक ओर आस्था का परंपरित रूप है ('अवतार'–'लीला') और दूसरी ओर आधुनिक यथार्थ का सापेक्ष स्वभाव। इस दृष्टि से काल के लघुतम खंड (पल) में देश का संपूर्ण विस्तार (जहान) समाया हुआ है। काल मे देश का संपूर्ण काल प्रवाह को समझाने के लिए ही कवि बार–बार जल और आकाश में पैठता है देश या कि मिटटी की स्थिति उसी मे समाई हुई है। यहॉं अपने आय स्पष्ट हो जाता है कि कवि के लिए वर्णन देश का होता है और अनुभव काल का।

डा० राम स्वरूप चतुर्वेदी – (आधुनिक कविता यात्रा) के अनुसारः चॉंदनी रात के लिए नीले आइने का विम्ब जैसे प्रस्तुत अप्रस्तुत का आमने–सामने होकर एक–दूसरे को गहराते जाना है। इस संदर्भ में 'बेठोस' का व्याकरण और शैली से अलग नया प्रयोग दर्पण को द्रवणशीलता की छवि

प्रदान करता है जिसमें घुल गया हूँ मैं/बहुत कुछ अब। कवि का अनुभव–परिवेश यो 'अनन्त और अपाई' हो जाता है। देश काल मे बद्ध साधरण भाषा विम्ब के सहारे काव्यभाषा मे रूपान्तरित होकर अत–हीन अर्थ–प्रक्रिया बन जाती है, जिसका अकन कवि ने यों किया है–

रह गया सा एक सीधा विब

चल रहा है जो

शांत इंगित सा

न जाने किधर

एक गतिशील विम्ब मे संपूर्ण अर्थ और अनुभव क्रियाशील हो गया है। विम्ब कैसे अर्थ के कई स्तरों को अपने में समाए रहता है और उनकी क्रिया–प्रतिक्रया में परस्पर गतिशील रह कर अनुभव को अंतहीन बना देता है। फिर एक व्यक्तित्व से दूसरे व्यक्तित्व में सक्रमित करता हुआ उसे देश काल से परे विस्तृत कर देता है– सूर्य, सागर मेघ के उन प्रकृति –तत्वो की तरह से जो ऋग्वेद के कवि से लेकर शमशेर तक सभी उन्मुख संवेदनशील कवियों के लिए अक्षय प्रेरणा–स्रोत रहे हैं– और एक व्यक्ति के अनुभव को जातीय–अंतर्जातीय अनुभूति मे रूपान्तरित करता है। रचना की यह जीवन्त प्रक्रिया शमशेर में धीरे–धीरे खुलती है, जिसे उन्होंने अपने ढंग से 'सुंदरता का अवतार' कहा है।

शमशेर के यहाँ कविता का नूर ही उसका पर्दा बन जाता है। सरलता ही गूढ़ता का रूप ले लेती है। अपने आशय को पारदर्शी बनाने की चिन्ता ही उन्हें उन अथाह गहराईयों में पहुंचा देती है जहाँ तक उतरने का अक्सर लोग साहस नहीं जुटा पाते और इसलिए सरल भी गूढ बन जाता है·

सरल से भी गूढ़ ,गूढ तर

तत्व निकलेगे

अमित विषमय

जब मथेगा प्रेम सागर

हृदय।

त्रिलोचन अपने इन्द्रिय बोध के शब्दों का खूब सूरत जामा पहनाते हैं। किन्तु शब्दो का वह खूब सूरत जामा जागतिक सच्चाई की शर्त के आडे नही आता बल्कि शब्द और गहरा और विस्तृत अर्थ गृहण कर लेता है। त्रिलोचन अभीष्ट अर्थ की प्राप्ति के लिए अपने परिचित लोक से जाने पहचाने शब्दों का चयन प्राय. करते हैं। किन्तु वे भाषा के सकट से अपरिचित नहीं हैं। इन्द्रिय–बोध को ठीक–ठीक ग्रहण करने के बाद भी अनुत्तरित प्रश्नो से ज्यादा असम्बद्ध उत्तर भाषा की शक्ल बदल देते हैं–'जाने हुए शब्द भी मैं प्रायः चुनता हूँ अपने अन्तर्गत अर्थो में अभिप्रेत ध्वनि वर्ण–तरंगों में लहराती है कानो की संवेदना विदित है मुख को पर सुनता हूँ असम्बद्ध उत्तर कैसी हो गई है अवनि क्या भाषा को चाह नहीं है संध्यानों की भाषा की चिन्ता केवल भाषा की चिन्ता नहीं है। क्योंकि यह चिन्ता हमे वहॉ ले जकाकर खडा कर देती है, जहॉ मनुष्य अपने जीवन के अनेकानेक प्रश्नो को लेकर या तो शब्दहीन खडा है अथवा उसे अपने ही शब्द अपरिचित और अप्रासंगिक लगते हैं। वास्तव में शब्द और भाषा की चिन्ता संस्कृति की चिंता है, जो सामाजिक आर्थिक और राजनैतिक प्रश्न से दूर कहीं जाकर जुड. ही जाती है।

मनुष्य जीवन को उकेरने वाले त्रिलोचन के भाव–संसार के मनुष्यों में वर्णजाति, कद–काठी, शक्लो–सूरत आदि में भेद होते हुए भी, भेद बेमाने हैं, क्योंकि जीवन–रस प्राप्त करने का साधन सबका एक ही है– 'गर्म–गर्म वह रोटी जो मुंह में जीवन बनती है भई रहा क्या अंतर उसमें 'त्रिलोचन के 'मानव छौने' वाली दुनिया में सबकी चिन्ता एक है और सबकी परेशानी एक सी। मनुष्य जीवन की तलाश में भटकते हुए त्रिलोचन पाते हैं, कि मनुष्य का जीवन लगातार आघातों–प्रतिघातों को सहते–सहते, जैसे–तैसे ही सही, बढता ही जा रहा है। इसलिए जय–पराजय की गणना बेमानी है। मनुष्य रोधारोध के बावजूद 'जीवन के नए अंकुर' अंकुरित करता हुआ, ऑधी–तूफान को अंततः अपने सुख के साधन बना लेता है।

त्रिलोचन इसीलिए जीवन – सौन्दर्य के रेखा चित्र को निर्मित करने वाले कवि । जीवन के सभी पक्षो को यथार्थ की सभी दृष्टियों से ही देखते हुये त्रिलोचन वह उसको उसकी समग्रता में ग्रहण करते हैं । यह जीवन से प्रीति करने वाला कवि ही कर सकता है । प्रीति करने वाला कवि ही सौन्दर्य की उपास्थना प्रस्तुत कर सकता है। शब्दों के सौन्दर्य को जानने वाले त्रिलोचन इसीलिए जीवन के सौन्दर्य को पहचानते हैं । उनके यहॉं जीवन का रोमॉंस नहीं है अपितु

अनुभूत्यात्मक स्तर पर उसे अपने मे जज्ब कर लेने का माद्दा है। उनके यहॉ शब्द की सरलता का जो सौन्दर्य है वह मानव जीवन की सरलता के सौन्दर्य से ही निकलता है।

अध्याय- ८
काव्य-भाषा के संदर्भ

कविता के साथ भाषा का गहरा, अनिवार्य और अविच्छेद्य सबंध है। बल्कि यह कहा जाना चाहिये कि वह भाषा की एक विधि विशेष है। जीवन की भट्टी मे ढलकर ही जीवत काव्य भाषा जन्म लेती है। कबीर, तुलसी, निराला, त्रिलोचन, केदार, नागार्जुन, मुक्तिबोध, विजेन्द्र और ज्ञानेन्द्रपति जैसे कवियो ने अपने–अपने रचना ससार के माध्यम से इस तथ्य को पुष्ट और प्रमाणित किया है। जीवन के सुख–दुख राग विराग और संघर्ष को वहां आत्मीय और विश्वसनीय वाणी मिली है। एक अच्छी कविता की पहचान केवल उसकी वस्तु से नही अपितु उसकी भाषा–सामर्थ्य से आकी जाती है। भाषा में कविता उसी प्रकार बीजभूत होती है जिस प्रकार फूल में फल अन्तर्निहित होते है। कविता मे भाषा अपनी अभिव्यजना के चरमोत्कर्ष पर होती है। प्राण वायु की मानिन्द।

ऐन्द्रिय जागरूकता एव सवेदनशीलता रचना धर्मिता की सर्व स्वीकृत प्रथम शर्त है। अपने देशकाल, समाज एवं परिवेश से अन्त क्रिया करते हुए रचनाकार या कवि का ऐन्द्रिय बोध समृद्ध होता हैं। अपने जीवन यथार्थ से टकराते हुए उसे विभिन्न जीवन अनुभव प्राप्त होते हैं। ये जीवन अनुभव भाषा निरपेक्ष नहीं होते। हर मानव समाज के दृश्य अनुभूत एवं सृजित जगत की अपनी भाषा होती है। " शब्दो की यह रगड. कविता की रचना प्रकिया का केद्रीय तत्व है और इसकी पहचान पाठक या कि समीक्षक को सही अर्थ दिशा मे उन्मुख करती है, जहाँ अनुभव उसके लिये अनुभूति मे रूपान्तरित होता हुआ कविता में देशकाल का अतिकमण करके अनुभूति और विचार का सन्श्लेष बन जाते हैं। कविता इस दृष्टि से भाषा की स्थिति नही भाषा की प्रक्रिया है।" – १

यह भाषा एक सुदीर्घ सांस्कृतिक प्रक्रिया के अंतर्गत विकसित भी होती हैं जो अपने कथ्य को पूरी इयत्ता एव जीवन्तता से उद्घाटित करती है। एक सजग रचनाकार अपने व्यापक जीवन यथार्थ से टकराते हुए, उसकी भाषा का भी साक्षात्कार करता है। अपनी शक्ति एवं सीमा के अनुरूप रचनाकार अपने यथार्थ जगत के अनुभवों के साथ–साथ उससे जुडी हुई इस भाषा अर्थात इसके रूप, नाम, क्रियाओ, ध्वनियों, लय आदि को भी आत्मसात करने का प्रयास करता हैं कवि की संवेदनशीलता एव कल्पना उसके इन अनुभवों को और अधिक गहन एवं व्यापक बनाती है। ये अनुभव कवि की जडीभूत रुचि को तोडते हैं। उसमें नवीन दृष्टि का विकास करते है। कवि अपने व्यापक जीवन अनुभव के सार को व्यक्त करन के लिए बेचैन हो उठता हैं । कवि के मानस में

---

१ – (डा० राम स्वरूप चतुर्वेदी – सर्जन और भाषिक संरचना पृ० – २७)

अनुभव के भाव एव भाव के अनुरूप भाषा के शब्द की रचना का द्वद्व निरन्तर सक्रिय रहता है। अपने यथार्थ जगत से विकसित अपनी संवेदना के द्वारा कवि अपने भावो का ऐसा कलात्मक संमूर्तन करता है कि उसकी कविता में सशक्त भाव एवं प्राणवान भाषा सहज ही नि.सृत होने लगती है।

यह भाषा ही कविता मे कवित्व का निर्वाह करती हैं । कल्पना युक्त होते हुए भी यथार्थ से अविच्छिन्न होती है। यह व्यंजक होती है तथा अपने नवीन एवं गहन अर्थ की प्रतीकात्मक योजना करती हैं। उसके अर्थ में गहराई, व्याप्ति एवं वैविध्य आ जाता है। यह व्यापक जीवन बोध का विकास करती है तथा कथ्य से भी आगे जाकर सौन्दर्य, सृष्टि करती है। इस प्रकार सशक्त काव्य भाषा सामान्य होते हुए भी विशिष्ट एवं सर्जनात्मक हो जाती हैं । यह कविता या कवि का ही संस्कार नहीं करती अपितु अपने पाठक का भी संस्कार करती है।

" काव्य भाषा सामान्य व्यवहार की भाषा से ही रची जाती है । फिर भी अपने स्वभाव मे वह उससे अलग है। दरअसल काव्य भाषा मूर्त, अमूर्त और समूर्त की आत्मीकृत प्रक्रिया की सघन यात्रा से परिपक्व होती है। अर्थात वाह्य सत्ता के ऐन्द्रिक अनुभव का प्रथम सोपान जहां हर मूर्त सत्ता का भाव के रूप में अमूर्तन होता है। फिर मूर्त को अनेक और विविध पूर्व में अर्जित भाव समूहों के साथ अमूर्तन में जीना। उसे अपने व्यक्तित्व में रच कर उसे अपनी निजता में रंग कर उसके रगों की निजता बनाए रखना। एक प्रकार से वाह्य सत्ता को अपने व्यक्तित्व में रच कर भी उसे व्यक्तित्व हीन न होने देना। उसे तब तक रचना जब तक प्रथम अनुभव भावबोध के रचाव का रूप न धर ले। यह सारा क्रिया , व्यापार मानव समूहों में रहकर भी बडा एकांतिक है। यह वही सोपान है जहां सत्ता का मौलिक रूप में गुणात्मक परिवर्तन होता है । उसके कथिक आयामों में ऐश्वर्यवान समृद्धि होती है।" – १

यह सोपान समूर्तन का है जहां मैं काव्य भाषा चुनने को बैचेन हूं। इस सोपान पर सामान्य भाषा को अपने में आवेगमयी लाक्षणिकता और सृजनधर्मी बिंबात्मकता को धारण कर उन्हें पूरे स्वभाव में झेलना होगा। अंकुरण होने के पूर्व धरती तडकती है। अनुभव से जाना धरती तडकना अंकुरण से पूर्व प्रकृति की सहज लाक्षणिकता है। इससे न केवल हम प्रकृति की रचना समझाते है वरन् उसके विकास की प्रक्रिया को भी जानते है। काव्यभाषा में इसी सहज लाक्षणिकता की महिमा छिपी रहती है। इसकी परिणति है अनेक भाव सहचर्यो को मन मे जगाना। नई अर्थ संभावनाओं से विचलित होना। उसमे हमारी भाव भूमिया विस्तृत होती हैं। इसीलिए काव्यभाषा में अर्थ प्रसंगों की नई संभावनायें काव्य भाषा में अर्थ प्रसंगो की नई संभावनाएं उद्‌दीप्त होती है। वह हमें शब्दार्थों से तृप्त

१ – (ओर – जु० सित० १६६१ सम० विजेन्द्र पृ० – ३)

नही करतीं। जीवन प्रकृति और संसार के प्रति और अधिक जिज्ञासु और सवेदनशील बनाती हैं। क्रियाशील भी। हमारे पूर्व अनुभवो में कुछ नया जोडती हैं उन्हे समृद्ध करती हैं। परिष्कृत भी। काव्य भाषा मे एक ऐसी शक्ति का उदय होता है कि वह अपने दिक्काल के तनावो को झेलकर उनसे कभी आक्रान्त नहीं होती। रचना-प्रक्रिया के दौर में अर्जित जीवन और प्रकृति की विविध क्रिया भंगिभाओ को सहेज कवि जैसी तटस्थ सबद्धता का निर्वेद स्वर काव्य भाषा में भी बना रहता है। इसी शक्ति से वह भाव और विचार के तनाव को इस तरह साधती है कि शब्द मे दोनो का रूप धुल मिलकर नई और कविता के लिए अपरिहार्य भाषिक सत्ता का बोध होने लगा।

भाषा जीवन से उपजती है और कविता एव जीवन के बीच सेतु का काम करती हैं। सेतु व्यक्ति प्रक्रिया के साथ–साथ एक सामाजिक प्रक्रिया भी है– निर्माण और व्यवहार दोनों मे। तुलसी ने कहा भी हैं –

" अति अपार से सरित बर,जौ नृप सेतु कराहिं।
चढ़ी विपीलि कऊ परम लघु, बिनु श्रम पारहिं जाहि।

कवि सेतु निर्माता है, जो व्यक्ति और समाज का जीवन से रिश्ता कायम करता है और सही और उचित रिश्ते की ओर से जाता हैं इस क्रम में शब्द और यथार्थ में रिश्ते की परम्परा का विकास करने का काम कवि करता है। इस प्रक्रिया में कवि की भाषा, जीवन से उपजी होकर भी जीवन से अलग दिखती है, जो सुन्दरता की वादक भी होती है, इसलिए उसे "काव्यभाषा" कहते है।

" काव्य भाषा का गठन कई रूपों में होता है। उसके गठन के पीछे कविता की लम्बी श्रव्य एवं वाचिक परम्परा है, जिससे कविता में लय का निर्धारण होता रहा है। पुराना कवि लय का निर्धारण द्वंद्व से करता था और छंद के भीतर शब्दो के सटीक संयोजन एवं तालमेल से भी ।आज का कवि 'छंद प्रवीण' नही है। अतः लय की समस्या आज कविता और काव्य भाषा की सबसे प्रमुख समस्या है। लयविहीन भाषा, कविता की भाषा न होकर गद्य की भाषा होती है। कविता और गद्य का फर्क, लय संयोजन का फर्क है।" – १

आज के अधिकांश कवियों की भाषा, लयशून्य होने के कारण काव्य भाषा के स्तर तक नहीं पहुंच पाती। कविता की वाचिक और श्रव्य परम्परा के सिकुडते और मिटते जाने का संकट यही है कि कविता और गद्य का अंन्तर मिट चला है। इसीलिए कविता, सामाजिक स्मृति में तब्दील नहीं होती। वह अपने श्रोता और पाठक का निर्माण एक गम्भीर अर्थ और उसकी लयात्मकता के आधार पर करती है। इस बात को समझकर निराला ने कविता को उस रूढ़ और रीतिबद्ध छंद से मुक्ति

---

१ – (डा० जीवन सिंह – ओर वही पृ० – ३२)

दिलाई थी जो उसके आतरिक और आत्मिक स्वरूप को बिगाड देता था या घटिया बना देता था उन्होंने लय को नही त्यागा था, उसे बरकरार रखा और जिन शब्दों का विधानकिया था, उनसे कोई कृत्रिम लय भी निर्मित नही की थी वरन हिन्दी जाति के शब्दों को व्यापक लायात्मक प्रकृति का ही संयोजन उन्होने अपनी काव्य भाषा के भीतर किया था। जिसे नयी दिशा, अर्थगाम्भीर्य और जीवन संबंधों की पहचान का नया तर्क देते हुए नागार्जुन केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन , विजेन्द्र आदि कवियो ने विकसित किया है।

" जीवन के भावों की उत्पत्ति क्रियाशीलता से होती है। इसलिए रचना मे क्रियाशील जीवन के चित्रण को ही सृजनशीलता का पर्याय माना गया है। दरअसल, काव्य मे वास्तविक जीवन की चेष्टाओं और क्रियाओ का जितना विधान होगा, काव्यभाषा उतनी ही काव्यमय प्राणवान एवं सृजनशील होगी।" – १

अज्ञेय की काव्य भाषा कुलीनता का ऐसा आग्रह है कि वह अनुभव की जाच पर पिघल जाती है। शब्दाडम्बर वाला लालित्यऔर चमक–दमकतो वहां खूब है। पर जीवन का गहरा और व्यापक संदर्भों वाला सरोकार नहीं। वह पाठ्य परम्परा वाले कवि की भाषा है। हमारी वाचिक और पाठ्य परम्पराओ का भाषा संश्लेषण वहा नहीं है। वह जातीय जीवन से दुराव की भाषा है। अज्ञेय की भाषा में क्रिया–व्यापारों का भी घोर संकट दिखाई देता हैं । उनकी भाषा "काव्यात्मक भाषा" तो है, "काव्य भाषा" नहीं। मुक्ति बोध की काव्य भाषा के विवेचन के संदर्भ में डा. नामवर सिंह ने लिखा है कि अंग्रेजी में कुछ कुआलोचकों ने कविताा की भाषा के लिए 'पोएटिक' और 'पोएटिकल' दो शब्दों का प्रयोग किया है। अनुकरणशील कवि प्रायः उस 'पोएटिकल' भाषा का प्रयोग करते हैं, जो परम्परा से काव्यात्मक भाषा के रूप में प्राप्त होती है । इसके विपरीत सृजन शील कवि परम्परागत "काव्यात्मक भाषा" के दायरे को तोडकर अपने नये तथ्य के अनुरूप " काव्य–भाषा" का निर्माण करता है, जो आरम्भ में खुरदुरी लगते हुए भी अपनी अर्थवक्ता में जानदार होती है। स्पष्ट है कि काव्यभाषा का सम्बन्ध सृजन से है, जबकि काव्यात्मक भाषा का सम्बन्ध अनुकरण से है। इसप्रतिमान से आज के अधिकांश कवियों की भाषा सृजनशीलकवियों की काव्यभाषा से भिन्न अनुकरणीयशील कवियो की काव्यात्मक भाषा ही नजर आती है। जिन कविताओं में जीवन क्रियाओं का संकोच रहता है वहा कवि की भाषा सपाट और इकट्ठी रहती है। उनकी शब्दावली कुछ घिसे–पिटे बिम्बो प्रतीको तक ही सीमित रहने को जैसे अभिगत हो?

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने जब कविता मे " गोचर रूपों के विधान" पर बल दिया था तो वे

---

१ – (डा० जीवन सिह – ओर जु० सित० १९९१ पृ० – ३६)

कविता मे कही गयी बात के चित्र, रूप मे, उपस्थित होने पर बल दे रहे थे पर उस साधारण कोटि की चित्र प्रियता का समर्थन नहीं कर रहे थे जो निराला को स्वछन्द काव्यभूमि में विचरण करने से रोकने वाली प्रवृत्ति है। कविता के संगीत को महत्व देते हुए शुक्ल जी ने कहा था नाद सौन्दर्य से कविता की आयु बढती है। पर साथ ही यह भी कि कविता मे भाषा की सब शक्तियो से काम लेना पडता है। " सब शक्तियो" का यहा अधिक व्यापक अर्थ लेना चाहिए–शास्त्रीय ढग से परिभाषित अभिधा लक्षणा व्यजना तक इसे सीमित नही करना चाहिये निराला जब मुक्तछद को कविता के लिये उपयोगी बता रहे थे तो कविता की मुक्ति को मनुष्य की मुक्ति के समान्तर बता रहे थे। गद्य की ताकत लेकर कविता को प्रभावशाली बनाने का बहुत उल्लेखनीय प्रयत्न उनके यहा नही दिखाई देता है लेकिन जब वे मुक्त छंद की विशेषता बताते हुए पाठ की कला ( ) पर बल दे रहे थे तो आने वाली कविता को रास्ता दिखा रहे थे। त्रिलोचना जब काव्य–भाषा की नयी अर्थ व्यंजकता के लिए पूरे–पूरे वाक्यों पर बल देते हैं तो वे गद्य और कविता की निकटता के सार्थक परिणामो के प्रति सचेत करते है। इसे वे हिन्दी की अपनी जातीय प्रकृति, खुले मैदानी गद्य की अंतर्निहित क्षमता से सम्बद्ध करके देखते हैं।

संध्या ने मेघों के कितने चित्र बनाये
हाथी, घोडे,पेड, आदमी, जंगल, क्या–क्या
नही रच दिया और कभी रंगों से क्रीडा
की आकृतियां नहीं बनाई, कभी चलाये
झीने से बादल जिनमें चटकीली लाली
उभर उठी थी," – १

यहा यह स्पष्ट करना जरूरी है किबिम्बविधान और सपाट बयानी को आमने–सामने रखकर और एक दूसरे को विलोम बनाकर हमारे यहां सरलीकृत नतीजे नहीं निकाले जा सकते है। असल में न बिम्बविधा को निरस्त किया जा सकता है न बयानी को तरजीह दी जा सकती है क्यों कि अच्छी कविता दोनों के घनिष्ठ लगाव से काव्यत्व अर्जित करती हैं। " इसके साथं ही यर्थाथ के नाम पर आज जो एक कठिन क्रूर और जटिल परिवेश मिला है भाषा की पकड. में , अनुभव मे उसे कैसे लाया जाय यह एक विकट प्रश्न है । कविता का काम यह है कि वह इस परिवेश की हाहाहुती मे अपने अनुभव को विला जाने से किसी तरह बचायें इस काम को अन्जाम देने के लिये जरूरी हो

१ – (उस जनपद का कवि हू। पृष्ठ ५५)

जाता है कि कवि अपनी भाषा के साथ सलूक बदले ।" – १

त्रिलोचन जन आदोलन के हिस्सेदार कवि नहीं है। नागार्जुन के कवि का कार्य क्षेत्र, राजनीति को तेज करना रहा है। त्रिलोचन की कविता यह काम बहुत कम करती है। दो बाते, त्रिलोचन की कविता को " सर्वश्रेष्ठ नायाब चीज" बनाती है। एक काम त्रिलोचन का कवि करता है, वह उस क्षेत्र का परिवेश, चरित्र, उसका संवाद यानि जीवन का पूरा एक लघु प्रसंग। यह यथार्थ त्रिलोचन का घुमक्कड कवि रचता है। दूसरा वह भाषा और शब्द के पुराने स्वरूप को नया बनाता चलता है। भाषाओं के अगम समुद्र में अवगाहन करते हुए वद उस जीवन में ही गहरे पैठते है। जीवन को अलग न भाषा है, न शब्द। पर्वत की दुहिता त्रिलोचन की जनता है। यह पद, कालिदास से त्रिलोचन ने लिया और "महाकुभ" मे जनता के बीच इसका प्रयोग किया। इसी संदर्भ में कबीर, तुलसी और त्रिलोचन के कवि को मैने ध्रुमक्कड़ कवि कहा है । दूसरी बात है त्रिलोचन की भाषा मे उनका रचना क्षेत्र नए से नए रूपो में आता है।

कबीर, तुलसीदास की तरह त्रिलोचन का भी बनारस–रचना क्षेत्र रहा है। "लडता हुआ" बनारस का समाज, उस समाज की नई आशा और अभिलाषा, यही उनके रचना क्षेत्र का नया सत्य है। त्रिलोचन की भाषा, व्यंजना और लक्षण से अधिक अभिधा की सादगी और पुरकारी की भाषा है। आदि कवि और वेद व्यास की पुरानी भाषा नए समाज की सादगी की, हर समय ताजा बनाएरखती है। बाल्मीकि और वेदव्यास अनुष्टुपछंद को जितना नया रूप दिया, त्रिलोचन ने सॉनेट को उसी तरह अपने व्यक्तित्व में ढाल लिया। वह त्रिलोचन के लिए " हर मौसम का कर्ता" है। डा. राम विलास शर्मा ने यही लिखा है। त्रिलोचन की भाषा में शब्दो का 'स्थापत्य' पूर्तिकला का काम करता हैं त्रिलोचन गुजरात पंजाब, राजस्थान, आगरा, बनारस, मे जीवन भर शब्दों की तलाश में घूमते ही रहे। यह शब्द त्रिलोचन की कविता में आने पर 'स्थानीयता' का मोह छोड़ता जाता है।

त्रिलोचन के जातीय कवि की प्रयोगशाला पूरा हिन्दी क्षेत्र है। वह हिन्दी पाठको से बिना कोई दावा किए, अनवरत संवाद करते रहते हैं । यह है शब्दों के स्थापष्ट का उनके कवि का सूत्र लडता हुआ समाज नई आशा अभिलाषा नए चित्र के साथ नई देता हूं भाषा। शब्दों को नया संस्कार देना इसीलिए समर्थ कवि की शक्ति है।

शमशेर कविता के विचार–पक्ष के साथ जिन्होंने उसके शिल्प को भी अत्यधिक गम्भीरता से स्वीकार करते हुए अपने कलाकार की सम्पूर्ण शक्ति के साथ उसमें बहुविध प्रयोग किये है नई कविता के उन कवियों मे शमशेर बहदुर सिंह सबसे महत्वपूर्ण है।

१– (राजेन्द्र कुमार – कसौटी – छः सम ० नन्दकिशोर नवल पृ० ६८)

वस्तु—विचार भाव को एकमेल करके चलने वाली शमशेर की रचना प्रक्रिया शिल्प को भी प्रतिबंधहीन दृष्टि से स्वीकार करती है यानि शिल्प शमशेर के काव्य का वाहय पक्ष न होकर वह वहां वस्तु के अनुरूप ही प्रकट होता है।

शमशेर का काव्य शिल्प जिन तत्वों से निर्मित है, बकौल कवि उनमे सर्वाधिक महत्वपूर्ण है निजी रुचि, जो उन्हें प्रयोग वादी कवियो मे सर्वाधिक प्रयोग शील अर्थात शिल्प के प्रति सबसे ज्यादा जागरूक (अज्ञेय से भी ज्यादा) सिद्ध करती है। इस रुचिगत निजता के कारण ही शमशेर एक साथ ही प्रतीकवादी, बिम्बवादी, अति यथार्थवादी तथा अंतश्चेतना के मुक्त प्रवाह के प्रयोक्ता सभी कुछ है। "'शमशेर प्रतीकवादियो के अधिक निकट है'... . .. प्रतीकवादियो के समान ही वे विषय विषयी, अन्तः वार्ह्य का विभेद नहीं करते शमशेर का काव्य शिल्प बहुत कुछ फ्रांस के प्रतीक वादियों के समान लगता है शमशेर जब अपनी अस्पटता मे दूसरे से विशिष्ट दिखायी देते है तब वस्तुतः वे प्रतीक शैली के विश्रंखल और ध्वन्यात्मक विम्बो का आश्रय ग्रहण करते है।" — १

' यूरोपीय संगीत सुनकर कविता में इसी प्रकार के प्रतीकों द्वारा संयोग वियोग का रोमानी चित्रण किया गाय है रात की हंसी तेरे गले में। सीने में। बहुत काली सुर्मई पलकों में। सासो में लहरीली अलकों आयी तू ओ किसकी । फिर मुस्करायी तू। नींद मे ....खामोश ....वस्ल।

शमशेर की कविताओं को समझने के लिए विश्लेषण अपेक्षित हो सकता है, विशेषण नहीं। वे आदि से अंत तक कविताएं हैं और शमशेर कवि। निराला के प्रति कविता मे जैसे शमशेर ने निराला के लिये महाकवि का प्रयोग किया है वैसी ही निष्ठा के स्वयं शमशेर के लिये 'कवि' संबोधन हो सकता है। जीवन के कटुतम संघर्षों को लेकर उन्हें कविता में एकदम तरल बना सकना शमशेर के रचना व्यक्तित्व की पहचान है। और इस रचना क्षमता का बराबर प्रदर्शन कवि का चरित्र। तभी यह संभव हुआ है कि उन्होंने भ्रम और यथार्थ का अंतर मिटाकर एक ऐसा रचना लोक खड़ा किया है जिसे बोलियों में 'भरम' संज्ञा दी गई है, जो जितना भ्रम है उतना ही यथार्थ भी। "अब यह हम पर है खास तौर से कवियों पर, कि हम अपने सामने और चारों ओर की इस अनंत और अपार लीला को कितना अपने अंदर धुला सकते है।" —२

इसी संदर्भ मं अपने और मुक्ति बोध के काव्य व्यक्तित्व के अंतर के स्पष्ट करते हुए शमशेर ने 'चांद का मुंह टेढा है' संकलन के आमुख में लिखा " गजानन माधव मुक्तिबोध मुझे खास तौर से शायद इसलिए ज्यादा अपील करता है कि वह मझसे कितना भिन्न है।

१ — (डा. रघुवंश)

२ — (शमशेरः वक्तव्य दूसरा सप्तक)

एबस्ट्रैक्ट नही, ठोस।" – १

शमशेर वस्तु और भावना के अनुरूप भाषा की खोज और प्रयोग करने मे शमशेर अपने समान धर्माओं मे परम विशिष्ट है और इसीलिए सम्भवत उनकी काव्य भाषा की विन्यास इतना विलक्षण है, कि रचनाभिप्राय प्राय. ही पाठक की पकड के बाहर रहता है नामवर सिह के शब्दो शमशेर वाक्य नहीं, प्रायः शब्द लिखते हैं वे ग्राफ पेपर पर जैसे बिन्दु निश्चित करते है। जिन्हे रेखाओं से मिलाने का काम पाठक करता है। जैसे गाएं मैली सफेद काली भूरि/पत्थर लुढक पडे स्थित नीरव/ दो पहाडिया धूम विनिर्मित पावन इसका कारण सम्भवत. यह है शमशेर को शब्दो की फिजूलखर्ची नापसंद है।

भाषा को लेकर उनका निजी मत है कि दो–चार अलग–अलग मिजाज की और उनकी अलग–अलग तरह की रंगीनियो और गहराइयों की जानकारी हमेंजितनी ही ज्यादा होगी उतना ही हम फैले हए जीवन और उसकी झलकने वाली कला के अन्दर सौन्दर्य की पहचान और सौंदर्य की असली कविता की जानकारी बढा सकेंगे" (दूसरा स्पतक) शमशेर का भाषा सम्बन्धी दृष्टिकोण यह है कि वह काव्य भाषा को मात्र एक काव्योपकरण के रूप में स्वीकार न क, उसे जीवन और उसके सौन्दर्य की सही पहचान की सार्थक व्याख्या का माध्यम मानते है। और जहां तक शैली का प्रश्न है, अपनी कविता पर वे निराला और पंत की छायावादी शैली के अतिरिक्त उर्दू की लय और बेसाखतगी तथा स्वर्गीय विसराम, भिखारी ठाकुर और खेमसिंह नागर की लोकशैली का न्यूनाधिक प्रभाव भी स्वीकार करते है।

शमशेर बोलियों की शक्ति को पहचानते हैं उनकी कविता में इनका असर किन्ही आंचलिक हैं उनकी कविता में इनका असर किन्ही आंचलिक शब्दों के प्रति मोह के रूप में नहीं आता, जैसा कि त्रिलोचन मे आता है। शमशेर एक बोली पर त्रिलोचन के अधिकार और उनके अनूठे अर्थ देने वाले शब्दों के साहित्यिक प्रयोग के घोर प्रशंसक रहे है, पर साथ ही उनमें भाषा के लेकर एक सूक्ष्म विवेक निरन्तर चलता रहा हैं । जहां त्रिलोचन के लिए भाषा सब कुछ ,सब कुछ ,सब कुछ, हो जाती है और वह जो कुछ देखते है वह 'ध्वनि रूप' हो जाता है और अपनी सीमा में अधिकाधिक भाषाओं का 'ज्ञान' प्राप्त करते हुए वह 'भाषाओं के अगम समुद्रों का आवगाहन' करने लगते हैं, शमशेर यह तो मानते हैं कि 'शब्द का परिष्कार/स्वयं दिशा है। वही मेरी आत्मा हो, पर सिर्फ आधी दूर तक। साहित्यिक भाषा में बोली की क्या भूमिका है। इसकी गहरी समझ उनमें है इसमें किन्हीं आंचलिक शब्दों का होना कतई जरूरी नहीं यह तो दूरारूढ और भाव्य शब्दों के प्रयोग का ही एक रूप हुआ

१ – (चांद का मुख टेंढा है – आमुख – समशेर)

से जिसमें संस्कृत शब्दो का स्थान बोली का शब्द ले लेता है। उन्हे देशज ही नही, ज्ञात भाषाओं मे किसी के किसी ऐसे शब्द से परहेज नहीं जिससे कोई ऐसा आशय प्रकट होता हो जो किसी दूसरी तरह सम्भव न है। शोलती, उहार, हुन, जोलाई, अंगनारे, कर्नल, भूर्भुवः स्वः, मकानीकि, ऐब्सेट्रक्ट, स्टैचू, यूपियन, सिफोनिक, अल्लहमा आदि शब्द उनकी भाषा मे इस तरह रचकर आते है कि भाषा के रचाव का हिस्सा मालूम होते हैं और इसका कारण यह है कि ये इतने विरल होकर आते है कि इनका बोझ महसूस नहीं होता।

खडी बोली तत्सम शब्दों का ही नही तद्भव शब्दों के भी मानक रूपों का ही प्रयोग कविता में करती है। पूर्ववर्ती कवि तुक और मात्रा आदि के लिए उनमे कुछ तोड़–मरोड कर लिया करते थे। उर्दू और बोलियां इस अधिकार का निःसंकोच प्रयोग करती हैं । उर्दू के तो शब्द भण्डार का ही एक हिस्सा ऐसा है जिसे आसमन/आसमां, जहर/ जद नसल/नस्ल, दो रूपों में पढा जा सकता है, साथ ही अर्धस्वर या या हृस्व का प्रयोग दीर्ध स्वर के लिये (एक यह/इक वह/वो/वह) का प्रयोग करने की परम्परा वहां है। वह हिन्दी और अरबी दोनों के संबध कारकों का भी प्रयोग करती है (दिल का हाल/हाले–दिल)। इससे कविता में सगीतात्मकता और खानगी के लिए जो विकल्प मिलते है। उनकी अनदेखी नहीं की जा सकती। बोलियों में तो ध्वनि–नियमों का उपहास करते हुए एक ही शब्द के एक से अधिक उच्चारण सम्म्सव है। उनमें स्टेशन/टीशन/टेशन/इस्टेशन कुछ भी हो सकता है। जो लोग समझतें है कि ध्वनि परिवर्तन ऐतिहासिक विकास या भौगोलिक अंतत के ही परिणाम है। वे सम्भवतः इस समस्या को अधिक सरल बनाकर देखते है।

शमशेर के लिए इस तरह के विकल्प मध्यकालीन कवियों की तरह ही खुले रहे है। नाटकीय अर्थभंगी, तुक या वजन के लिए वे उन सभ का प्रयोग करते हैं और ये प्रयोग वह इस तरह करते हैं कि इनसे अर्थगर्भिता, नाटकीयता और प्रभाव बढ जाता है।

शमशेर की कविता अपनी साधारणता के कारण ही अनूठी उक्तियों से भरी हुई है एक –जनता का । दुःख एक/ हवा में उडती पताकाएं अनेक। " बेकस की हंसी है मेरा जीना शमशेर, " " सोना ही –सा हैं, जागना भी मेरा" । इन पंक्तियों की शक्ति है इनकी व्यंजना या ध्वनि जिसके काव्य की आत्मा कहा गया है पर यदि ध्वनि जिसे काव्य की आत्मा कहा गया है पर यदि बालियों की अच्छी समझ हो तो हम कहेगे यह कवियों द्वारा आविष्कार की हुई चीज नहीं अपितु बोलियों से ग्रहण की हुई विशेषता है, यही उनका प्राण है। यह हमें स्वीकार करना होगा कि हिन्दी की तुलना में उर्दू ने इसका अधिक प्रयोग किया है पर उस मात्रा में उसने भी नही किया है जिसमें यह लोग व्यवहार में प्रयोग में आता रहता है रीति और भक्ति काव्य में इसका खुलकर उपयोग हुआ

है। हिन्दी कवियों में इसका उर्दू कवियों से भी अधिक बारीकी स्तेस, यद्यपि उतनी बहुलता से नही शमशेर ने प्रयोग किया है।

शमशेर न तो गजलें उर्दू में लिखते है न मुक्त कविताएं हिन्दी मे। " मैं तो न जानू उर्दू किहिन्दी/प्रेम की बानी सांची रे साची। " वे अपनी जबान मे जिसमे अपने को पूरी तरह व्यक्त कर सके। वे " उपहास है सीमा–रेखाओं.............. और एक दुनिया हमारे साथ है। सदा से, सदा/सीमा रेखाओं को/ मुक्त। सच कहें तो उनकी भाषा रेखता है, हिन्दवी:

मैं उर्दू और हिन्दी का दोआब हूं।

मैं वह आईना हूं जिसमें आप है।

मैं एक नज्म हूं।

एक दोहा, न जाने किसका।

समकालीन हिन्दी कविता के प्रगतिशील कवियों ने सृजन प्रक्रिया के अंतर्गत क्रियाशील शब्दो को बखूबी साधा है। यही कारण है कि वे आज भी हिन्दी काव्य सृजन के केन्द्र में है। इस कविता मे अनुभव की उपस्थिति में बहुसंख्यक समाज कालताप है जिनके सुखी और सम्पन्न होने का सपना नागार्जुन ने देखा, जिसे प्राप्त करने के लिए वह आजीवन वचनबद्ध रहे और इसके लिए नागार्जुन और त्रिलोचन जैस सृजन कर्मियों ने सिर्फ अपनीवाणी ही नही अपना हृदय भी इनके साथ एकाकार कर दिया। इन कवियों ने अपने परिवेश और प्रकृति से गहन रागात्मक संबंध स्थापित किया। फलत कवियों की भाषा व्यापक और मार्मिक यथार्थ व्यक्त करती है। ये कवि स्वाभाविक एव सहज भाषा में प्रकृति एवं जीवन यथार्थ के विविध चित्र प्रस्तुत करते हैं। स्पष्ट, है इन कवियों की भाषा संघर्ष एवं सृजन की भाषा है, जिजीविषा और आस्था की भाषा है–

बाढ़ मे /आंखो के आंसू बहा करेंगे

किन्तु जल थिरने पर /कमल भी खिलेंगे। (त्रिलोचन)

या **बहुत दिनों के बाद/अबकी में जी भर छू पाया**

अपनी गंवई पगडंडी की चंदनपणी धूल/ बहुत दिनो के बाद/ (नागार्जुन)

नागार्जुन जिस जिंदगी भर 'गंवई पगडंडी' पर ही चलते रहे क्यों कि उन्हें इसके धूल उसकी पवित्रता मे अगाध और अखण्ड विश्वास था। यही अखण्ड विश्वास उनकी भाषा की निर्मिति में भी हैं। संस्कृत भाषा की लोकलुभावनी और शिष्ट संस्कारों को पढने और गहन अध्ययन के बाद भी उनमेंआम गंवई के लिए अगाध प्यार था जो उनकी भाषा में भी उभरा। बादल को घिरते देखा जैसी क्लासिक कविता लिखते हुए भी–

शत शत निर्भर निर्झरणी कल
मुखरित देवदास कनन मे
शोणित धवल भोज पत्रो से
छाई हुई कुरी के भीतर
मृगछालो पर पलथी मारे
मदिरारूण आखो वाले उन उन्मद किन्नर-किन्नरियों का
मृदुल मनोरम अंगुलियो ाके
वशी पर फिरते देखा"

दूसरी ओर वह –

" धूप में पसरकर लेटी है
अधेड मादा सूअर
यह भी तो यादरे हिन्द की बेटी है
भरे पूरे बारह थनों करती

यह भी लिखते हैं । यानी भाषा का एक पूरा परिदृश्य जहां सभी कुछ, सारे विषय सारा रचनाकर्म सिमट आया है। इसीलिए वे अपनी अभिव्यक्ति को घोर अंघोी कहते हैं जिसमें अभिशाप भी है तो गाली भी। ठंठ बोलियों के छिनाल, रखैल, चुडैल जैसे भदेस शब्द भी और शब्द को वहन निरूपित करने वाली भाषा के भी। इसलिए नागार्जुन की कोई हदबंदी नहीं दिखायी जा सकती। सिर्फ उसकी चहलकदमी का जायजा लिया जा सकता है। वैदिक ऋचाओं से शुरू होकर लौकिक संस्कृत से होती हुयी उनकी कविता खडी बोली के ठाठ और हिन्दी प्रदेशों की गंवई अभिव्यक्तियों तक को समेटे हुए है। अद्भुत संग्रहकारी है जिसमें अंगरेजी , बंगला, मैथिली , अवधी, भोजपुरी का धडल्ले से उपयोग किया गया है। उनकी एक कविता है जिसकी शुरुआत ही बंगला की पक्तियों से होती है ' धाकचो खो फोन एइ जे गांधी महाता। एक कविता का शीर्षक अंग्रेजी में है' प्लीज एक्सक्यूज मी। " अंग्रेजी और बगला के अलावा उनकी कविता में उर्दू शैली की झलक भी खूब मिलती है–

हमसफीर को सलाम, हमसफर को सलाम
सूबा-ए-बिहार के जौहर को सलाम।"

स्पष्ट भाषा के संदर्भ मे नागार्जुन का दृष्टिकोण सर्वग्राही है। " केवल 'उदार' कहकर हम उसकी सही परिचय नहीं दे सका सच्चे जन कवि की वह यह पहली पहचान है कि वह भाषा के

किस स्वरूप का अग्रणी है। क्या वह अपनी कविता को चद बुद्धिजीवियो की रखैल के रूप में पाल पोस रहा है या उसकी सरचना लोकहित मे कर रहा है। नागार्जुन का दृष्टिकोण लोकहितकारी है तुलसीदास की तरह उनकी कविता मे भी लोक को मगल के ख्याल से लिखी गयी है किन्तु लोकमंगल यही नहीं कि आप जनता के भविष्य के प्रति सिर्फ शुभकामनायें प्रकट करते रहे। लोकहित के लिए सघर्ष और प्रतिद्वंद्विता के निकट अखाडे मे उतरना भी पडता है। सिर्फ जबान हिलाने से काम नहीं चलता। इसीलिए कविता यहां सिर्फ जबान नही हिलाती। वह ललकरती है और बाज की तरह अपने शिकार पर टूट भी पड़ती है। " – १

नकवी क्षोभ और रोष की दुनिया मे वह ईमान और सच्चाई की बेमिसाल हैं। शब्दों की यह तप्ता क्यों है? क्यों कि नागार्जुन जन जीवन से न केवल जुडे हुए हैं बल्कि इसके प्रति उनके मन मे गहरी करुणा और स्नेह है। वे शब्द चुनते नही जनता की बोलचाल को कविता मे सीधे उठा लाते है–

चदू मैने सपा देखा, इम्तिहान मे बैठे हो तुम

चंदू मैने सपना देखा, पुलिस मान मे बैठे हो तुम

चंदू मैने सपना देख, उछल रहे तुम ज्यों हिरनौटा

चंदू मैने सपना देखा, ममुआ से हूं पटना लौटा।"

काव्य–भाषा के इस अनेक रूपी ससार में– जहां कि अराजकता होनी ही थी व्याकरण और **शास्त्र की मयार्दायें** भी खूब हैं। यहां शब्द जितने बहुरंगी है वाक्य उतने ही खुले–खुले । धान फूटती **किशोरियों की कोकिलकंठी** तान / देखिये न, आखिर तक रोकती रही हैं। मगर इन पर तो भूत हो गया सवार। लेकर कर्ज, बनवाया है मकान। कही वाक्य एकदम संक्षिप्त और सारगर्म है–

क्या खूब!

क्या खूब!

कर लाई सिक्योर विज्ञापन में आर्डर। असल में नागार्जुन शब्दोऔर वाक्योंकी सादगी किन्तु अर्थ की गम्भीरता और मार्मिकता के कवि है। उनके सीधे साधे पदो मे भी कितनी वचन भंगिया और भाव गूढता है,इसे उनके व्यंग्य काव्य को देख के पहचाना जा सकता हैं सीधे सादे शब्द हैं भाव बडे गूढ कहकर, नागाबाबा संतई वाले अंदाज में जिन निरन्त नूंटों को सचेत कर रहे हैं वे बडे भोले–भाले किस्म के लोग है। कविता–कविता नहीं जानते। इसलिए 'कविताई' दिखाने की जरूरत

---

१ – (नागार्जुन का रचना ससार–विजय बहादुर सिंह पृष्ठ ६१)

आज उतनी नही है जितनी की लोककठ के गूगेपन को मुरता में परिणत करने की।" – १

शब्दो की सादगी के नाम पर जो लोग विचारहीन मुद्रा में यहां आयेगे उन्हें काफी अजनबीपन मिलेगा। क्यो कि यहां कागज भर नहीगोदा जा रहा है, अनुभव की वह धरती कोडी जा रही है, जो अब तक हिन्दी कविता मे प्रवेश नही पा सकती थी इसे वे लोग समझ पायेगे जिनका लोक मन जिन्दा है। सिर्फ शास्त्रीयता के सहारे नागार्जुन को समझ पाना दुष्कर ही नहीं असम्भव भी है। सहज संप्रेषण उन्हीं के साथ जमेगा जो लोक अनुभव कोश के पन्ने उलट चुके हों या जिनकी चिन्ता लोक की रहनी सहनी के जुडी हुई है। जो सिर्फ कविता पढ़ने के ख्याल से आयेगे वे यहां निराश ही होगे।

नागार्जुन के मुहावरे भी कम रोचक नहीं ।उनके यहां दुःखी मूक युवतियां ढेर ढेर सी हसी और छतफाड ठहाका भर स्वेच्छा सुखो की तो कोई बात ही नहीं। तामझाम का यह आलम हैं कि टके की मुसकान पर करोडों का खर्चा कर लिया जाता है। ऐसी रानी साहिबा के क्या कहने । क्या कहने। कभी–कभी मन मौज में यह देवी तिहरी मुस्कन के चटकीले डैनो पर सवार होकर कूरी पराग भी छिड़कनेलगती है ओर दूधिया हंसी तो खैर वहीं हसती है। और कोई नहीं।

नागार्जुन की काब्य भाषा के इस बीहड विशाल किन्तु जाने पहचाने जंगल में अद्भुत नाटकीयता, संगीतमयता, ध्वनि–रमणीयता और चित्रात्मकता है। काव्य भाषा की समस्त शक्तियां अपनी सम्पूर्ण ऊर्जा के साथ यहां उपस्थित है। अक्सर आरोप लगाया जाता है कि नागार्जुन सारे प्रगतिशीलों में सबसे अधिक गद्यात्मक और लापरवाह है।किसी शब्द को कहीं भी फिट कर देते है। संयोग और निपुणता, योग्यता और संगीत का ख्याल किये बिना ही वे भाषा के नमक, हींग जोश को आटे की तरह गूंथने लगते है। और यह सच भी है। पर यह पूछा जा सकता है कि भाषा का मुख्य प्रयोजन रूप की शेखी बघारना है या उसका धर्म है कवि के अन्तस्थ भावों का संप्रेषण । हमारे इसी युग के कवियों ने घोषणा की है कि पुराने प्रतीकों के देवता कूच कर चुके हैं ।इसी युग का कवि सपाट बयानी पर उतर आया है। यह क्यों? क्या यह युग की मांग नहीं है कि हम तथा कथित अभिजात निर्जीवता के छद्म सप्रेषणाों से बचें और अनी अभिव्यक्ति की मौलिक आविष्कृतियों की मार्यादाए स्थापित करें। हमारी जिन्दगी में चीजें जितनी गड्डमड्ड है, उनका बयान भर करके संतुष्ट हो जाना आज का कवि कर्म नहींहै। उन्हे सिलसिला देना उनके पीछे छिपे हुए तर्कों की खोज करना भी आज का कवि दायित्व है। नागार्जुन को पढते हुए यह अनुभव हमें बार–बार होता है कि

१ – (नागर्जुन का रचना–ससार– विजय बहादुर सिंह पृष्ठ ६२)

हम अपने समय की कविताओं को अपनी ही भाषाओ मे पढ रहे हैं। हमारे अनुभव अभी हमारी भाषा की पकड मे है। इसके लिये किसी अनुदित जुबान की मुह ताकने की जरूरत हमें नहीं है। परिवेश का सम्पूर्ण राजनीतिक चेहरा तो इसमे दीख ही सकता है इस रोशनी में उसकी सामाजिक, सांस्कृतिक मनौवैज्ञानिक, अर्थशास्त्रीय , नैतिक और आधिभौतिक छाप भी खोली जा सकती है।

समकालीन कविता के पूरे परिदृश्य मे शमशेर नागार्जुन और त्रिलोचन की उपस्थिति बेहद उत्तेजन पूर्ण है। यह इसलिए है कि इसकी रचनात्मकता हमारे बोध और विचार को रचनात्मक सदर्भ देने मे ... हुआ है। और साथ ही यथार्थ से सीधी टकराहट से उत्पन्न देश पीडा और आक्रोश को वे व्यक्त कहते हैं। जीवन को बेहद नजदीक और आक्रोश को वे व्यक्त करते हैं जीवन को बेहद नजदीक से जाकर देखने का वो औजार वह मुहैया कराते हैं वह बहुत मुक्किमल है। इसीलिए इनकी कविताओंमें यदि संवेदनात्मक मनोदशायें है तो वैचारिक द्वन्द्व भी अपनी पूरी शिद्दत से है। यथार्थ एक एसा प्रत्यय है जो विविध आयामी है जिसमें इतिहास, व्यवस्था तंग तथा विसंगतियों की एक द्वन्द्वात्मक स्थिति रहती है। इन सभी के चित्र इन कवियों मे प्राप्त होते हैं स्पष्ट है इनकी भाषा इनकी भाषा इनकी संवेदनात्मक अवधारणाओ को प्रस्तुत करने में लगातार समर्थ है। यही कारण है कि लगाता बदलते परिवेश को साक्ष्य देती इन कविताओं की भाषा के तेवर भी अलग–अलग हैं इनकी भी कात भिन्नत की तरह ही इनकी भाषाएं वैशिष्ट्य इनकी आइडेन्टीटी के चिन्हित करता है।

असल में आज के समय में बदलाव की प्रक्रिया बडी तेजी के साथ घटित हो रही हैं यह समय भारतीय जनता के लिए अत्यत ही मुश्किलों और शासन वर्ग की क्रूरताओंसे भरा है। हमारी मुश्किलें और भी इसलिए बढ़ गयी है क्यों कि इस दौर में जन जीवन से कटे मध्य वर्गीय बुद्धिजीवियों की एक ऐसी पीढी है जिनमें जन जीवन से जुडने की न तो ललक है और न ही आकांक्षा। उनमें भी कुछ के पास बनी बनायी उधार ली हुयी एक आस्था अलग है भी तो इस आस्था के अनुरूप चलाये जने वाले संघर्षों के खतरे से बचने की कोशिशें भी इनके पास हैं यह निर्मम वास्तविकताओं से मुंह छुपाना भी कहा जायेगा। इन कवियों का रचना कर्म इसीलिए महत्वपूर्ण हैं कि वे इसकी ताकीर पहले से कर रहे है।– यह बताते हुये कि जीवन मे जीवन की सारी चीजें महत्वपूर्ण हैं सास की तरह शायद सघर्ष भी इसलिए लोटा लेने से पहले लोहा होना ज्यादा महत्वपूर्ण हैं।

उपसंहार

कविता अपनी समावेशिता से स्वतत्रता को चरितार्थ करती है। कविता मे दूसरो के लिए जगह है और वह सरलीकरण करने से इनकार करती है। वह मनुष्य की स्थिति का सारराश करने से बचती है। बल्कि वह सारे अन्तर्विरोधो का बेहिचक सामना करती है। वह अपने बौद्धिक सयम से उनसे मुठभेड कर पाती है और अपनी सच्ची सघन गहराई मे उनकी जटिलता का अन्वेषण करती है। "कविता की बुनियादी शालीनता यह है कि वह उन्हे मुक्त करती है जो ऐसी मुक्ति की आकाक्षा करते हैं। कवि होना ही स्वतत्रता का अग्रदूत होना है : वह अपने को भाषा की मुक्तिदायी शक्ति से लैस करना है। कविता हमारे लिए एक स्पेस खोजती है, दीप्त और धडकता हुआ, स्वतंत्रता के लिए, समय और इतिहास के पार, पर स्वप्नलोक नही, हमारे पडौस मे ही। स्पेस, हमारे बीचोबीच, शोरोगुल और शिद्दत से भरी दुनिया में ही। कविता हमे पुनराश्वस्त करती है कि स्वतत्रता सभव है, कि वह हमारे बस में है और कि विपरीत शक्तियॉ कितनी ही क्रूर और अपशकुनकारी क्यो न हो, स्वतंत्रता को नष्ट नहीं किया जा सकता।"

कविता ने किसी भी युग में अपने को व्यक्तिगत यर्थाथ तक बाधकर नही रखा, जड़वाद और कठमुल्लापन से लोहा लेकर हर युग मे इसने समाज और विश्व तक अपना सरोकार विस्तृत किया, व्यक्ति और विश्व तक अपना सरोकार विस्तृत किया, व्यक्ति और विश्व के बीच अतःक्रिया के सबसे अधिक प्रभावी कला–माध्यम के रूप मे यह आज से नहीं, अपने जन्म से जानी जाती है, यह अलग बात है कि जादू, धर्म, विज्ञान और प्रौद्योगिकी के रास्तों से समाज के ऐतिहासिक विकास के क्रम मे कविता का विश्व से और विश्व का कविता से अतर्क्रिया का स्वरूप हमेशा बदलता रहा है।

आज भी पहले की तरह दो ही मुख्य समस्याए हैं– भूख और युद्ध। इनसे समकालीन विश्वदृष्टि की इस जटिलता की पृष्ठभूति मे टकराना हे कि भूख को विकास के तथा युद्ध को शांति के छद्म नारे दीर्घजीवी बना रहे हैं। जब तक दुनिया में भूख है, युद्ध भी रहेगा, क्योंकि ये एक ही

अशोक बाजपेयी– पूवग्रह अंक ८७, जुलाई–अगस्त १६८८, पु० ५

अबौद्धिकता के दो चरम रूप हैं। दोनो कृत्रिम राजनैतिक रूप है। जितना यह सच है कि आठवे दशक मे विकसित और तथाकथित विकासशील देशों के बीच अंतर बढा है— दुनिया के करीब एक अरब लोग गरीबी रेखा से नीचे हैं, उतना ही यह भी सच है कि भीषण संहारक हथियारो की दुकाने अब पहले से ज्यादा बडे स्तर पर चल रही हैं। इस तरह की आततायी और भयानक अमानवीय व्यवस्थाओ के प्रति ये कवि बहुत सवेदनशील हैं। इसीलिये नागार्जुन अपनी कविता बडी मछली.. छोटी मछली में इसे बडे तीखेपन से उघाडते हैं। कवि के लिए विश्वदृष्टि का महत्व कविता के चरित्र के बाहर नही, इसके भीतर है। नागार्जुन ने वियतनाम गुरिल्लो की राजनैतिक लाइन से भावना ग्रहण कर कविता के चरित्र मे अपनी प्रतिरोध चेतना उपस्थित की है, 'हजार हजार बाहो वाली' की प्रथम कविता में। यहा अत्याचार की सहनशीलता के मिथक टूटते हैं और प्रतिरोध की चेतना अपने ऐतिहासिक सार के साथ प्रकट होती है। इन कवियों की विश्वदृष्टि का मूल आधार 'दुनिया के मेहनतकश वर्गो के नेतृत्व में धरती पर इन्किलाब' है। इसीलिये शमशेर ने 'सफेद अरोरा' मे अपनी विश्वदृष्टि का परवर्ती उदात्तीकरण इसी बिंदु पर किया—

यह पावन धरती है

तमाम इमारतें इतिहास हैं

सास—सा रोके हुए

यह रिमझिम एक खामोश

प्रार्थना है

यह धरती इन्किलाबों की मां है

जो हमे प्यार से तक रही है

प्यार से सजग और मौन

इस प्रकार एक विश्वव्यापी दृष्टिकोण के साथ इन कवियो ने एक वृहत्तर फलक पर कविता को देखा जहॉ सीमायें नहीं, मनुष्य महत्वपूर्ण है। लेकिन वे अपनी जडो से कटे हुए नही है यही कारण है कि ये कवि अपने काव्य–संसार में व्यक्तिगत एव सामाजिकता के बीच कोई विभाजन नही करते। कई बार ऐसा लगता है कि शमशेर का निजत्व उनके सामाजिक सरोकारो से ज्यादा बडा है। लेकिन होता यह हे कि उनकी सौंदर्यानुभूति का उभार कॉस्मिक हो जाता है। दूसरी ओर जान पडता हे कि नागार्जुन में निजत्व के लिए 'स्पेस नहीं' लेकिन ऐसा है नहीं। दाम्पत्य प्रेम में पगी, प्रकृति के दृश्यबंधों को निहारती तमाम ऐसी भावपरक कवितायें हैं जहाँ कवि की कामनाओ का भरापूरा ससार है। दरअसल वह लगातार अपनी विजययात्रा को भारतीय–मानस की यात्रा मे बदलते रहते है। जो कुछ कवि का निजी अनुभव का मूल रिक्थ था वह गहरी सामाजिक व्याप्ति हासिल कर लेता था।

शमशेर की कविताओ मे एकांतभाव ज्यादा है यहॉ यर्थाथ भी कला के सम्मोहन से नहीं बच पायी है। स्पष्ट है कि शमशेर के यहाँ सृजन का मूल उत्स सौंदर्य और प्रेम से ही उपजता है जो उनके मानवीयता के प्रति उनकी प्रतिबद्धता का द्योतक है। शमशेर की कविताओं में प्रेम सौंदर्य और मानवीय समृद्धि के एक से बढकर एक दुलर्भ दृष्टान्त उपलब्ध होते हैं। यहॉ शब्द, अक्षर, भाषा, आस्था की एकत्र परिणति हुई है। उनकी कविताओ का वातावरण और परिवेश कवि का अतरंग और आत्मीय है किन्तु काव्यगत चिन्ता अनिवार्यतः और आत्यन्तिक रूप से मानवीय और विश्वजनीन है शब्द सस्कार परिमार्जित हैं फलतः रंगारंग विविधता की रचनात्मक समृद्धि उनके यहॉ विद्यमान है शब्द योजना का उनका ऐहिक ढंग है, जिसके अन्तर्गत उजाले की तरह शब्द सुबह–सुबह दरवाजे पर दस्तक का संदेह उत्पन्न करती है।

अपनी रूढिबद्धता के चलते ही शमशेर की कविताओं को लोगों ने खाँचाबद्ध करके देखने

की कोशिश की है और रचना विधान के समग्र मुल्यांकन का मूलभूत समालोचकीय आधार की अनदेखी की है। जहॉ तक उनकी आत्मपरक और प्रतिबद्ध रचनाओ के बीच एक सम्बन्ध या तनाव की खोज का सवाल है, उसकी तो शायद शुरूआत भी नहीं की गयी है। सौन्दर्य के पारखियों ने उनकी प्रतिबद्ध कविताओं को हाशिये पर मानकर कृपालु ढंग से उन्हे सिर्फ बरदाश्त किया और क्रातिधर्मियो ने उनके सौन्दर्य को इतना सदिग्ध समझा कि उनकी खुल्लमखुल्ला प्रतिबद्ध रचनाओ को भी स्वीकार करने मे उन्हे खतरा नजर आया। शमशेर की, व्यापक अर्थों में समाजिक, और सकुचित् अर्थों मे राजनीतिक कविताओ के बारे मे मुक्तिबोद्ध की यह टिप्पणी बिल्कुल सटीक है कि शमशेर जैसा अलग ढंग का कवि जब समाजिक और विश्वबन्धुत्व की कवितायें लिखता है, तब उन कविताओं मे भी इतना बेजोड हो जाता है, जितना प्रतिबद्धता के उस क्षेत्र मे मूलरूप से काम करने वाले कवि नहीं हो सकते। इसीलिए वह शान्ति पर लिखी शमशेर की कविता को कालजयी कृति का दरज़ा दे देते हैं। शमशेर जैसे अलग मिजाज़ वाला कवि प्रतिबद्ध कविता को एक नये रूप में अन्जाम देता है। यह मानना समाजोन्मुख कविता की एक नये सौन्दर्य शास्त्र को जॉचने और व्याख्यायित करने चुनौतियों की ओर सिर्फ एक पहला कदम है। शमशेर ने किसी विषय पर कवितायें नहीं लिखी। उन्होंने कविता में सिर्फ कवितायें लिखी हैं। यही कारण इस पल छिन अवतार लेते हुए, सौन्दर्य के गवाह हैं।

शमशेर की कविता का सौन्दर्य पकड मे आते आते रह जाता है – यह कवि मे होकर भी उससे परे है। भाषा में रचा होकर भी भाषा को मिटाता है। आलोचक के लिये वह पारे की बूँद है – सामने झलकता हुआ भी, पकड़ते ही बिखर जाये ऐसा। सच कहे तो पाठक का भी ध्यान कवि के प्रयास पर अधिक जाता है और कविता के सौन्दर्य पर कम या कभी–कभी नहीं जा पाता वह घबराकर पीछे लौट आता है। कविता का सौन्दर्य, प्रयास की इस विभूति के नीचे दबा रह जाता है। सौन्दर्य के इस धूप छांही आभा से ही शमशेर का सौन्दर्य विनिर्मित होता है। स्पष्ट है उनके यहाँ अनुभूति मुख्य है। और उससे भी ज्यादा उसे व्यक्त करने की बेचैनी।

त्रिलोचन औसत भारतीय आदमी के चितेरे है । वे मानव- अनुभूतियों की विशिष्टता के नही, मानव-अनुभूतियों की मार्मिकता के कवि है। वे अनुभूति की जटिलता को नही, उसकी सम्पन्नता को पकड़ते और अपनी कला में साधते है। वे मानव-मर्म के किसी नये स्तर का उद्घाटन नहीं करते, वरन् जीवन-जगत् की आपाधापी में, जो सहज मानव-सत्य आंख की ओट हो गये है, उन्हें एक नयी और विश्वसनीय पहचान के साथ हमारे सामने लाते है। उनकी काव्य अनुभूतियां सरल है (सपाट नही), जैसे आकाश, जैसे नींद की इच्छाये (शमशेर)। सरल और सबकी। थोड़े को बढाकर बड़े को घटाकर रखने बाली वक्रता, कवि की दृष्टि में, सहज 'नवीन ऐयारी' है, छूछा अभिनव- कौशल।

त्रिलोचन की कला सेल्फ- कांशस कला नही है। उसमें संशय अथवा द्विविधा की दरार नहीं पड़ी है। वह जिस वस्तु को उठाती है, मुजस्सिम उठाती है। त्रिलोचन का काव्य-स्वर चेतना के अन्तर्विरोधों से कॅंपकॅंपाता हुआ निश्चय और अनिश्चय के बीच झूलता डगमग स्वर नहीं है। रचनात्मक तनाव में इस काव्य -स्वर के पीछे, कार्यरत सॉंस बहुत दूर तक खिची रह सकती है, उसके बीच में ही टूट कर खंड़ित हो जाने का अंदेशा नही रहता । यह एक साथ कवि की स्नायुविक ऊर्जा और उसके काव्य-संयम दोनों को ही उजागर करता है। कवि का अपने ऊपर अदृभुत नियंत्रण है, उसकी रचनात्मक ऊर्जा अभिव्यक्ति के चौखटे को तोडकर, मुक्त नहीं बहने पाती। इसीलिए त्रिलोचन को पढ़ते समय एक कसाव का अनुभव होता है । कही-कही यह कसाव बहुत अखरता भी है। त्रिलोचन का क्लासिक की हद तक छूने वाला काव्य-संयम अक्सर हमारा ध्यान उनकी संप्रेष्य अनुभूति से हटाकर, उनके शिल्प की तराश और चुस्ती पर ज्यादा केन्द्रित कर देता है। हम उनकी कविता के रूप-बंध की चातुरी पर मुग्ध होने लगते है। ऐसा शायद अनुभूति के ताप में कमी रह जाने-या अनुभूति को कम ताप वाले स्तर से उठाने-के कारण होता है। अनुभूति त्रिलोचन के यहां वैसे भी 'पिच' पर नहीं होती। यहां उनकी कविता की क्लासिक स्वभाव के विपरीत पड़ता है। त्रिलोचन अनुभूति का पका हुआ रूप रखते हैं, शान्त और ओजपूर्ण, जिसकी सह-अनुभूति, क्षुब्ध संवेगों के घात-प्रतिघात के स्तर पर नहीं, विवेक युक्त अन्तदृष्टि के स्तर पर की जा सकती है। त्रिलोचन की कविता इसीलिए एक सहृदय एवं परिपक्व मानसिकता की मांग करती है। इस कविता को भागते हुए तीव्र ऐहसासों के क्षण में पकड़ पाना मुश्किल, बल्कि, दुस्साध्य है। इसे पकड़ने के लिए थोड़ा इतमिनान वाला भाव लाना होगा, जिसमे आप इसके अन्तरंग सौष्ठव का, उसकी बनावट की एक-एक सजीव पत्ती का, आनन्द ले सकें।

हिन्दी में शायद त्रिलोचन ही एक मात्र ऐसे कवि हैं, जिन्होंने अपने को लोक-जीवन से पूरी तरह, जोड़ लिया है, सौन्दर्य की एक अन्तः गरिमा के साथ। सृजन के एक आह्लादकारी अनुभव के साथ, रचना को एक बराबर की साझेदारी के साथ। त्रिलोचन के लिये रचना किसी तनाव से मुक्त होने में नहीं, बल्कि, जीवन का कुछ खोजने, पाने और फिर, उसे बांट देने में होती है। इसीलिए उनकी कविता की रचना-प्रक्रिया का कोई रहस्यमय पक्ष नहीं है। कला त्रिलोचन के लिये एक ऐसा आइना है, जिसमें वे अपनी और दूसरों की

अनुभूतियो के मर्म को, सजीव थिरकते हुए रूपो मे दिखा सके। और उसमे उनकी कलाकारिता बस, इतना है कि, वह उस आइने पर जरा भी धूल धब्बा न पडने दे। उसे झकाझक साफ पारदर्शी रखे।

रूप के प्रति इतने सजग शायद शमशेर ही हैं जो उर्दू मिजाज के कवि है। उनमे सौन्दर्य का वस्तु सत्य नही, भाव सत्य है। शमशेर, त्रिलोचन और नागार्जुन की तरह बाहर के कवि नहीं हैं। नागार्जुन सबसे अलग जीवन के हर रंग के यथार्थ के रोमांटिक कवि हैं। उनके पास यदि व्यग्य के नुकीले तीर है तो प्रेम के कुसुम वाण भी। नागार्जुन के प्रेमानुभूति शमशेर से एकदम भिन्न है। शमशेर अपने भीतर प्रेम और सौन्दर्य की दिव्य झलक तलाशते हैं। उनकी कविता मे यद्यपि नागार्जुन और त्रिलोचन की तरह किसान और मजदूर नही हैं – न ही उनकी भाषा है लेकिन इस व्यवस्था के प्रति एक विस्फोटक तनाव है। यदि रूपक में कहूँ तो नागार्जुन कल कल, छल छल बहती गगा हैं तो शमशेर धीर ललित यमुना और त्रिलोचन अदृश्य सरस्वती के समान जीवनानुभूति की त्रिवेणी को पूर्ण करते हैं।

इन तीनो कवियो की वैचारिक संकल्पना मनुष्य कल्याण के वृहत बोध से सवलित है। नागार्जुन की राजनीति को देखने की प्रक्रिया की अगर जॉच की जाय तो साफ मालूम होता है कि उनकी व्यक्तिगत् प्रतिकार की क्षमता एक बड़े प्रतिरोधात्मक आन्दोलन की मेधा मे बदल जाती है। इन्दिरा गॉधी के साथ संवाद की सीमित प्रकृति अचानक एक बड़े राजनीतिक फलक मे बदल जाती है और वह उन्हें एक बडी राजनीतिक आततायी शक्ति के रूप में देख पाते हैं।

त्रिलोचन के यहॉ वैचारिकता के उन्मेष भी निजी स्तर पर व्यक्त हुए हैं। उनका अपने पडोस, गॉव, देहात, मित्र परिचित के साथ गहरा और व्यापक रिश्ता है। कई बार लगता है कि वह बहुत सीमित सम्बन्ध की परिधि में ही हैं। लेकिन यदि उनकी कविताओं को ध्यान से देखा जाय तो यह कविताये कई स्तर पर अनेक अर्थों को प्रस्तावित करती हैं। जो कुछ सीमित सम्बन्ध का काव्यात्मक विवरण था, वह एक बडी मनुष्यता की परानुभूति के प्रवक्ता के रूप में सामने आती हैं। त्रिलोचन इतने सघन सम्बन्धों की कवितायें लिखते हैं कि कई बार ऐसा लगता है कि वह व्यक्ति बहुत जाना पहचाना सा है। उसे हमने कहीं देखा है। कुछ ऐसा ही स्वरूप नागार्जुन की कविताओं

का भी है। उनकी कवितायें दूर दूर तक फैले उत्तर भारतीय समाज के पता नही कहॉ कहॉ के चरित्रो के इर्द गिर्द बुनी गयी हैं। यह लोग उन्हें रास्ते में मिले हैं। नागार्जुन ने अपनी यायावरी के दौर मे उन्हे देखा जाना है, उनसे बातचीत की है, उनके साथ सफर किया है या उनका आतिथ्य स्वीकार किया है। नागार्जुन इन सभी को गहन मानवीय सहकार और अपनापे के साथ विवृत्त करते है। इस तरह से कोई एक आसंग या चरित्र नागार्जुन की आगाध मनुष्यता को पुर्नजाग्रत करता है। यह परानुभूति का बार बार नवीकरण है। इसी तरह से शमशेर भी अपनी मनुष्यता को बार बार खोजते और पाते है। शमशेर के सदर्भ मे मनुष्यता का पुनरावेषण का सदर्भ प्रेम से बिधा हुआ है। वह आतरिक दीप्ति को देखने के कायल हैं लेकिन उनके यहॉ आन्तरिकता में प्रवेश मनुष्य के बहुत सवेदनमय ससार की व्याप्ति का पुनराविष्कार बन जाता है। यानी जो कुछ व्यक्ति की स्वायत्त कामना से मूलतः निःसृत था, एक व्यापक सौन्दर्य का रूपक बन जाता है।

कहना चाहिए कि यह तीनो कवि एक बडे विजन से संचालित हैं और इसीलिए उनकी एकातिकता एक बेचैन परिवर्तनकामी रचनाकार की चिन्ता है। इसीलिए वहॉ निजत्व, लोक के साथ सम्पृक्त हो उठा है और लोक की विवृत्तियाँ और उसका प्रत्यय कवि के व्यक्तित्व को बहुआयामी बना देता है। यह एक वचन और बहुवचन की अविभाज्यता है। इस बात को हिन्दी कविता के प्रेमी बहुत स्पष्ट रूप से जानते हैं कि तीनो कवियों ने अपनी कविता का वैचारिक आधार स्पष्ट रखा था और उन्हें अपनी वैचारिक प्रतिश्रुति को लेकर किसी तरह का कोई विभ्रम नहीं था। शमशेर में बहुत अमूर्त्तन है। उनकी कवितायें कई बार अस्पष्ट और चित्रकार शिल्प का समरूप जान पड़ती हैं। लेकिन शमशेर की मुख्य प्रतिज्ञा उस वामपंथी विचार के प्रति अडिग थी जिसने अग्रगामी परिवर्तनों के द्वारा दृष्टिकोणो को बदला। शमशेर की कविता वाम वाम वाम किसी को भले ही बहुत मुखर और नारेबाजी के करीब लगे लेकिन इस तरह वह अपनी अमूर्तता और कॉस्मिक विभ्रम के क्षति पूर्ति करना चाहते थे। शमशेर ने अज्ञेय का सम्मान किया लेकिन यह अपनी विचारधारा से समझौता नहीं था, वरन किसी प्रतिभावान समकालीन से संवाद बनाये रखने की सहिष्णुता भर थी। नागार्जुन में यह सहिष्णुता नहीं रही। उन्होंने वैचारिक टकरावों के ध्रुवीकरण में अपनी उपस्थिति को कभी

कयास का भोपू नही बनने दिया। वह अपनी सहानुभूति मे इतने स्पष्ट थे कि कई बार उससे अधिक मुखर होकर वह उसे अपनी कविता मे परावर्तित कर देते थे। नागार्जुन मे कई बार विचलन भी दिखा लेकिन यह विचलन इसलिए रहा क्योकि वे अपनी पक्षधरतावादी भूमिका से समझौता नहीं कर सके। यही कारण है कि उन्होने अपने समानधर्माओ को भी गाली दी।

वे अदम्य यायावर हैं। त्रिलोचन में भी यायावरी है लेकिन इस यायावरी का उद्देश्य एक के बाद दूसरा भूगोल देखना नही है। वह इस घुमक्कड़ी मे लोकसत्ता, लोकरग, लोकव्यवहार, लोकसस्कृति, लोकभाषा, लोकानुभव से गहरा साक्षात्कार करते हैं। नागार्जुन और त्रिलोचन से ज्यादा कोई नही जानता कि "भाषा बहता नीर है"। वह नीर की तरह बहे और भाषा की तरह सर्वव्याप्त हुए। लोक के साथ उनकी यह संपृति उनकी ऊर्जा का बढाव है। त्रिलोचन ने जब एक बार अवध के जनपदीय लोक राग को पहचाना तो जीवन भर उस आसक्ति से स्वयं को मुक्त करने का कोई कारण नहीं देखा। त्रिलोचन के यहॉ सॉनेटों में पूरे वाक्य हैं तो इस लिए कि वह बार बार जैसे पूरे जीवन को लिख देना चाहते हैं। त्रिलोचन के बारे मे जो जानते हैं, उन्हें मालूम है कि इस अवधी बाबा ने शब्दों के उत्स के बारे में यही आशंसा और अनुराग दिखाया। दरअसल, यह लोक तक पहुँचने की बहुत आन्तरिक बौद्धिक और संवेदनात्मक कोशिश रही है।

इनके द्वारा जीवन, समाज, लोक, प्रकृति और वह सब कुछ जिससे जीवन निर्मित होता है, का यह उन्मेष और इसकी पुर्नव्याख्यायें एक प्राकृतिक और लगभग अपूर्व चेष्टायें थीं। कहना चाहिए कि इन तीनो कवियों के अपने निजत्व के बावजूद, इन्होने सामाजिकता और लोकात्मकता के नये नये अयामो की तलाश की। जो उत्पीडित व्यवस्था में विश्वास के एक नये सूत्र से बँधा है।

नागार्जुन, त्रिलोचन और शमशेर की कविताओं को यदि अभी और एकदम अभी लिखी जा रही कविताओं के परिप्रेक्ष्य में परखा जाय तो यह बात स्पष्टतः सामने आती है कि उसमें भाव भूमि एवं संरचनात्मक दोनों स्तरों पर एक क्रमवद्ध विकास हुआ है।सपष्टतः यह अपनी परम्परा से असीम संरचनात्मक संभावनाओं का दोहन है। अपने संवेदनों को चमकाने तराशने के बजाय उसे गहनतम और जीवन्त बनाने के लिए एक लगातार संघर्ष इस दौर के कवियों के भीतर यदि जारी है तो इसका कारण उस जीवंत बौद्धिक रचानात्मकता में विद्यमान है जो इन बुर्जुग कवियों के रूप में सामने आती है। हिन्दी की कविता में इस रूप में इन तीनों कवियों की जीवंत उपस्थिति कविता को बेहद ऊर्जाक्षम बनाती है।

इन तीनों कवियों की कविता इस माने में उल्लेखनीय है कि वह कविता के प्रचलित मुहावरों, भाषिक संरचना और स्थूल संवेदनाओं को तोडने वाली कविता है। आस पास का मनुष्य और परिवेश इन कवियों की कविताओं के केन्द्र में है। इस स्थानीय बोध के बावजूद उनकी सरजनात्मक चिंता क्षितिज के सभी छोरों तक जाती है। कविता में स्थानीयता न तो शब्दों से प्रकट की जा सकती है और न स्मृति रेखाओं से । कविता में स्थानीयता की सार्थक उपस्थिति का केवल एक ही कारण है – कवि की वह उर्जावान शक्ति जो इस जीवन में गहरे धँसकर ही प्राप्त हो सकती है। असल में केवल देशज शब्दों और लोक भाषा के इस्तेमाल या केवल परिवेश के बखान भरसे ही कोई कविता स्थानीय नही बन जाती, प्रत्युत उसका निर्माण अनुभव संसार से उपजी संवेदनाओं के द्वारा ही होता है। शमशेर ,नागार्जुन और त्रिलोचनकी कविताओं में यह जीवनोन्मुखी सर्जनात्मक आंच है जिसने मनुष्य के बोध को अपनी कविता मे ढाला है।

इन कवियों का अपना एक निजी अनुभव संसार है,जिसके दायरे में वे अपने सच्चे अनुभवों के माध्यम से मनुष्य की सत्ता को, उसके बोध को, उसके अस्तित्व को पहचानने का प्रयास करते हैं। इसके लिए उनके पास अपने औजार है और निश्चिततः अपने पैमाने भी। इन कवियों को अपनी पृथ्वी को बचाये रखने की चिन्ता है, वे इस पर ढेरसारी कियायें करना चाहते हैं जैसे – प्यार। इसके लिये वह थोडी सी जगह चाहते हैं– हथेली भर जगह। वे पेडों के हरेपन को बचाये रखने के लिये परेशान हैं। इस हरेपन के द्वारा वे जीवन को बचाना चाहते हैं। सड़ी हुयी और गंधाती व्यवस्था के बीच में इनकी कविता मुलायम हवा के झोंकों की तरह हम तक आती हैं–प्राणवायु देने के लिए वह हौले से आती हैं, एक साथी की तरह । उनका दोस्तों की तरह आना और कंधें पर हाल–चाल

लेते हुये हाथ रखकर बतियाना सचमुच प्रीतिपरक है। विनम्रता और निरभिमानता इस कविता की विशिष्टता है। वे सताये हुये और कमजोर मनुष्य की प्रवक्ता–कवितायें हैं। इन्हे मनुष्यों से प्रेम है इसलिए अपनी भावसंवेदना में ये बहुत प्रीतिपरक हैं। इसलिये इनमें सौन्दर्य के ढेर सारे चित्र विद्यमान है। यह कला को उसकी वास्तविक सार्थकता तक पहुँचाना है। कहा जा सकता है कि कला का भविष्य भी उसी के हाथ में सुरक्षित है। जीवन के और प्रश्नों की तरह कला के प्रश्न भी वहीं सुलझने आते हैं।

कविता अक्सर हमें अपने परिचित संसार में ही ले जाती है लेकिन नयी दृष्टि के साथ जो एक साथ यदि यथार्थ परक है तो भावबोध के स्तर पर बहुत संश्लिष्ट भी। वे हमारे जातीय स्मृतिबोध की कवितायें है जिनमे ऐतिहासिक दृष्टि की विरासत और जातीय परम्परा की समझ एक साथ विद्ययमान हैं। यथार्थ की गहरी समझ होने के बावजूद यह निषेद्यवाद में विश्वास करने वाली कवितायें नही हैं।

कृतियाँ

१ दूसरा सप्तक (अन्य कवियो् के साथ)	ज्ञानपीठ नयी दिल्ली, १६५२
२ कुछ कवितायें	चयनकर्ता और प्रकाशक जगत, कमच्छा, वाराणसी, १६५६
३ कुछ और कवितायें	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १६६१
४ शमशेर बहादुर सिंह की कवितायें	चयन, पहचान सीरीज़, संख्या १, १६७२ स० अशोक वाजपेयी
५ चुका भी हूँ नहीं मै	राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, १६७५
६ इतने पास अपने	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १६८०
७ उदिता	वाणी प्रकाशन, दिल्ली, १६८०
८ बात बोलेगी	सम्भावना प्रकाशन, हापुड़, १६८१
६ काल तुझसे होड है मेरी	१६८८
१० प्रतिनिधि कवितायें	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १६६०
११ दोआब	सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद, १६४८
१२ धरती	नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, १६७७
१३ गुलाब और बुलबुल	वाणी प्रकाशन, दिल्ली, १६५६
१४ दिगन्त	प्रकाशक जगत शंखधर, १६५७
१५ ताप के ताए हुए दिन	सम्भावना प्रकाशन, हापुड़, १६८०
१६ शब्द	वाणी प्रकाशन, दिल्ली, १६८०
१७ उस जनपद का कवि	राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, १६८१
१८ अरघान	यात्री प्रकाशन, दिल्ली, १६८३
१६ अनकहनी भी कुछ कहनी है	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १६८५
२० तुम्हे सौपता हूँ	राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, १६८५
२१ फूल नाम है एक	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १६८५
२२ प्रपिनिधि कविताये	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १६८५
२३ सबका अपना आकाश	वाणी प्रकाशन, दिल्ली, १६८७
२४ चैती	वाणी प्रकाशन, दिल्ली, १६८७
२५ अमोला	वाणी प्रकाशन, दिल्ली, १६८७

२६ खिचडी विप्लव देखा हमने	सभावना प्रकाशन, हापुड, १६८०
२७ तालाब की मछलियाँ	अनामिका प्रकाशन, पटना, १६७५
२८ तुमने कहा था	वाणी प्रकाशन, दिल्ली, १६८०
२६ पुरानी जूतियों का कोरस	वाणी प्रकाशन, दिल्ली, १६८३
३० भस्मांकुर	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १६७१
३१ युगधारा	यात्री प्रकाशन, दिल्ली, १६५३
३२ हजार हजार बाहो वाली	राधाकुष्ण प्रकाशन, दिल्ली, १६८१
३३ पत्रहीन नग्नगाछ	संभावना प्रकाशन, हापुड, १६६१
३४ गीत गोविन्द	वाणी प्रकाशन, दिल्ली, १६७६
३५ मेघदूत	वाणी प्रकाशन, दिल्ली, १६७६
३६ विद्यापति के गीत	वाणी प्रकाशन, दिल्ली, १६७६
३७ अन्नहीनं क्रियाहीनं	वाणी प्रकाशन, दिल्ली, १६८३
३८ आसमान में चन्दा तैरे	प्रस्ताव प्रकाशन, पटना, १६८२

पुस्तक –सूची

१	समकालीन कविता का यर्थार्थ –	–	डा परमानन्द श्रीवास्तव
	प्रथम सस्करण १६८८		
२	कविता की लोक प्रकृति	–	डा. जीवन सिंह
	प्रथम सस्करण १६६८		अस्मिता प्रकाशन, इलाहाबाद
३	त्रिलोचन	–	महावीर अग्रवाल
	प्रथम सस्करण १६६८		श्री प्रकाशन, दुर्ग (म प्र)
४.	साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका	–	मैनेजर पाण्डे
	प्रथम सस्करण १६८६		
५	कविता के संदर्भ	–	डॉ. राजाराम भादू
			राज पब्लिशिंग हाउस पूर्वदिल्ली
६	साहित्य और विचार धारा	–	ओम प्रकाश ग्रेवाल
	प्रथम सस्करण १६६४		आधार प्रकाशन, पचकूला (हरियाणा)
७	कविता का अतर–अनुशासनीय विवेचन	–	डॉ वीरेन्द्र सिंह
	प्रथम संस्करण १६६५		साहित्य रत्नालय, कानपुर
८.	हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास	–	विश्वनाथ त्रिपाठी
	प्रथम संस्करण : अप्रैल १६६६		
६	मेरे समय के शब्द	–	केदार नाथ सिंह
	प्रथम संस्करण : १६६३		राधाकृष्ण प्रकाशन, विदिशा (म.प्र)
१०	शब्द और मनुष्य	–	परमानन्द श्रीवास्तव
	प्रथम सस्करण . १६८८		राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
११	नागार्जुन की कविता	–	अजय तिवारी
	प्रथम सस्करण . १६६०		वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
१२	रचना के सरोकार	–	विश्वनाथ प्रसाद तिवारी
	प्रथम सस्करण १६८७		वाणी प्रकाशन नई दिल्ली

१३ फिलहाल — अशोक बाजपेई
प्रथम सस्करण : १६७० राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

१४. साठोत्तरी हिन्दी कविता मे जनवादी चेतना — नरेन्द्र सिंह
प्रथम संस्करण : १६६० वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

१५. नौ स्वछन्दतावाद — डॉ. अजब सिंह
प्रथम सस्करण : १६८७ वि.वि. प्रकाशन

१६ तीसरा साक्ष्य — अशोक बाजपेयी
प्रथम संस्करण . १६८६ सम्भावना प्रकाशन, हापुड

१७ कुछ पूर्वग्रह — अशोक बाजपेयी
द्वि०स० १६८६ राजकमल प्रकाश नई दिल्ली

१८. कविता की संगत — विजय कुमार
प्रथम संस्करण : १६६५ आधार प्रकाशन,हरियाणा

१६. साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका — डॉ. मैनेजर पाण्डे
प्रथम संस्करण : १६८६ हरियाण साहित्य अकादमी

२०. जनान्तिक — नेमिचन्द्र जैन
प्रथम संस्करण : १६८१ सम्भावन प्रकाशन, हापुड़

२१. साहित्यानुशीलनः विभिन्न दृष्टियां — डॉ. दयाशंकर शुक्ल
प्रथम संस्करण : १६८६ लोक भारती प्रकाशन

२२. भाषा, और संवेदना — राम स्वरूप चतुर्वेदी
तृतीय संस्करण : १६८१ लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद

२३ नागार्जुन — सुरेश चन्द्र त्यागी
प्रथम सस्करण : १६८४ अशिर प्रकाशन ,सहारनपुर

२४. समकालीन कविता की पहचान — वीरेन्द्र मोहन
प्रथम संस्करण : १६६१ कश्य रूप के सहयोग से प्रकाशित, इलाहाबाद

२५ कविता में समकाल — डॉ. रेवतीरमण
प्रथम संस्करण : १६६६ रामकृष्ण प्रकाशन, विदिशा (म.प्र.)

२६ त्रिलोचन किंवदन्ती पुरुष — महावीर अग्रवाल
प्रथम संस्करण : १६६८ श्री प्रकाशन, दुर्ग (म.प्र.)

२७. आधुनिक हिन्दी कविता और आलोचना की द्वन्द्वात्मकता– कमला प्रसाद
प्रथम संस्करण : १६८६ साहित्यवाणी, इलाहाबाद

२८. शब्द–संसार की यायावरी – नंद चुतर्वेदी
प्रथम संस्करण : १६८५ पंचशील प्रकाशन, जयपुर

२६. हिन्दी कविता का वैयक्तिक परिप्रेक्ष्य – राम कमलराय

३०. सर्जन और भाषिक सरचना – राम स्वरूप चतुर्वेदी
प्रथम संस्करण : १६८० लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद

३१. ओर – विजेन्द्र

३२. सतरंगे पंखोवाली – नागार्जुन

३३. अशुद्ध काव्य की संस्तुति में – डॉ. विजेन्द्र नारायण सिंह
प्रथम संस्करण १६८४ – परिमल प्रकाशन इलाहाबाद

३४. शमशेर कविता लोक – डॉ. जगदीश कुमार
प्रथम संस्करण १६८२ राधा कृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली

३५. नागार्जुन का रचना संसार – विजय बहादुर सिंह
प्रथम संस्करण १६८२ संभावना प्रकाशन हापुड

३६. अभिन्न – विष्णुचन्द्र शर्मा

३७. आधुनिक कविता यात्रा – राम स्वरूप चतुर्वेदी
प्रथम संस्करण १६६८ लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद

३८. कविता की मुक्ति – नंद किशोर नवल

३६. कविता का जीवित संसार – अजित कुमार

४० कविता की तलाश – चंद्रकात वादिवेडकर

४१. समकालीन हिन्दी कविता – विश्वनाथ प्रसाद तिवारी
प्रथम संस्करण १६८२ राज कमल प्रकाशन नई दिल्ली

४२. तार सप्तक के कवियों की समाज चेतना – डॉ. राजेन्द्र प्रसाद
प्रथम सस्कृरण १६८७ वाणी प्रकाशन ,नई दिल्ली

४३. मिथक और आधुनिक कविता – शंभूनाथ
प्रथम संस्करण १६८५ नेशनल पब्लिशिंग हाउस , नई दिल्ली

४४. कविता का अंत — सुधीर पचौरी
प्रथम संस्करण १९९० प्रकाशन सस्थान, नई दिल्ली

४५. जन कवित सम्पादक — विजय बहादुर सिह
प्रथम संस्करण १९८४ राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली

४६. कविता का जनपद सम्पादक — अशोक बाजपेयी
प्रथम संस्करण १९९२ प्रकाशक राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली

४७ हिन्दी कविता सवेदना और दृष्टि — राम मनोहर त्रिपाठी
प्रथम संस्करण १९८६ नेशनल पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली

४८. समकालीन कविता पर एक बहस — जगदीश नारायण श्रीवास्तव
प्रथम संस्करण जून १९७८ चित्रलेखा प्रकाशन, इलाहाबाद

५०. शब्द और कर्म — मैनेजर पाण्डे
प्रथम संस्करण १९८१ धरती प्रकाशन बीकानेर

५१. कविता से साक्षात्कार — मलयज

५२. समकालीन कविता वैचारिक आयाम — डॉ. बलदेव वंशी
प्रथम संस्करण १९७९ संभावना प्रकाशन हापुड

५३. कवितान्तर — डॉ. जगदीश गुप्त
प्रथम संस्करण १९९२ ग्रन्थम प्रकाशन, कानपुर

—

प्रथम सस्करण १९८६

१.	साक्षात्कार	आग्नेय	अंक २०८	अप्रैल १९९७,
२..	पल प्रतिपल	देश निर्मोही	सयुक्तांक	२७–२८ जनवरी जून १९९४
३.	आलोचना	नामवर सिंह	अंक ८२	जुलाई सितम्बर १९८७
४.	पहल	जसरंजन, कमला प्रसाद	अंक १५	अक्टूबर १९८०
५.	साक्षात्कार	पूर्णचन्द्ररथ	अंक १७४–१७५	जून–जुलाई १९९४
६.	साक्षात्कार,	प्रभात त्रिपाठी	अंक १७६	अगस्त १९९६
७.	साक्षात्कार	आग्नेय	अंक २५१	नवम्बर २०००
८.	पल प्रतिपल	देश निर्मोही	संयुक्तांक ३७–३८	जुलाई, दिसम्बर १९९६

६. आलोचना नामवर सिंह अंक ७८ जुलाई सितम्बर १९८६

१० पलप्रतिपल देश निर्मोही संयुक्ताक ५१–५२ मार्च, जून २०००

११. वसुधा कमला प्रसाद अंक ४० जुलाई, नवम्बर १९९७

१२. वसुधा कमला प्रसाद अंक ३२ जुलाई, नवम्बर १९९५

१३. अभिप्राय राजेन्द्र कुमार अंक १४–१५ फरवरी १९८६

१४. पहल ज्ञानरंजन अंक ६६ जुलाई, अगस्त २०००

१५. पहल ज्ञानरंजनकमला प्रसाद अंक ४४ मार्च, अप्रैल, मई १९८८

१६. समकालीन भारतीय साहित्य गिरधर राठी अंक ५७ जुलाई, सितबर १९९४

१७. साक्षात्कार आग्नेय अंक २३६ नवम्बर १९९९

१८. पहल ३५, ज्ञान प्रसाद, कमला प्रसाद, मई , जून, जुलाई, १९८८

१९. अलाव रामकुमार कृषक, अंक ७ अगस्त १९९७

२०. पल प्रतिपल देश निर्मोही संयुक्तांक ४७–४८, मार्च, जून १९८७

२१. साक्षात्कार समोदत्त ६५–६७ सयुक्तांक अक्टूबर, दिसम्बर १९८७

२२. समकालीन भारतीय साहित्य शानी अंक १० अक्टूबर, दिसम्बर १९८२

२३. साक्षात्कार आग्नेय मार्च ९८, २१९

२४.कदम, चन्द्रदेवराय, जय प्रकाश, धूमकेतु, साहित्यिक, सांस्कृतिक संस्थ 'मंथन' मऊनाथ भंजन मऊ, अप्रैल, अक्टूबर १९९८

२५. उद्‌भावना सरवर हसन 'सखर' अंक ८ अप्रैल जून १९८७

२६ अभिप्राय राजेन्द्र कुमार अंक २० जनवरी, फरवरी, मार्च १९९८

२७. संवेद किशन कालजयी अंक ८ अप्रैल १९९८

२८ कव्यराम अनिल श्रीवास्तव अंक ४ अक्टूबर, दिसम्बर १९८८

२९ पल–प्रतिपल देश निर्मोही संयुक्तांक १८–१९ अक्टूबर, १९९१ मार्च १९९२

३० तद्‌भव अखिलेश अंक २, सितम्बर १९९९

३१. समकालीन भारतीय साहित्य गिरधर राठी अंक ६० अप्रैल, जून १९९५

३२. अभिप्राय/२ डॉ. राजेन्द्र कुमार अप्रैल १९८२

३३. नयापथ चंद्रबली सिंह अंक ३ जनवरी, मार्च १९८७

३४ समकालीन भारतीय साहित्य, शानी अंक १३ जुलाई, सितम्बर १९८३

३५. कथ्य–रूप अनिल श्रीवास्तव प्रवेशांक

३६. वातायन हरीश भादानी अंक अक्टूबर, दिसम्बर १९६२

३७. साक्षात्कार सोमदत्त अंक ८६–८८ जनवरी, मार्च १९८७ संयुक्तांक

३८. अंतदृष्टि विनोद दास अंक १ जून १९८८

३९. पहल १३ ज्ञानरंजन कमला प्रसाद जनवरी १९७९

४० पहल २३ ज्ञानरजन कमला प्रसाद अगस्त १९८३

४१. पहल ३३ ज्ञानरजन कमला प्रसाद दिसम्बर,जनवरी १९८८

४२. कथ्यरूप अनिल श्रीवास्तव अंक ५ जून १९८९

४३. तद्‌भव अखिलेश अंक ३ अप्रैल २०००

४४. साक्षात्कार सोमदत्त अंक ६६–६७ मई, जून १९८५

४५. कथा मार्कण्डेय अंक १० फरवरी २०००

४६ नई कहानी सतीश जमाली अंक १० जुलाई १९८८

४७. उत्तर प्रदेश लीलाधर जगूड़ी अंक १ मई १९९८

४८. हंस जनवरी १९८७

४९. जनसत्ता शमशेर १८ नवम्बर १९८४

५०. जनसत्ता त्रिलोचन नामवर सिंह ३० अगस्त १९८६

५१ आजकल सितम्बर १९९३

५२. जनप्रसंग सितम्बर १९८९

५३. साक्षात्कार सोमदत्त अंक ७४–७५ जनवरी, फरवरी १९८६

५४. वर्तमान साहित्य धनंजय अंक १२

५५. पूर्वग्रह अशोक बाजपेयी अंक ८१–८२ जुलाई, अक्टूबर १९८७

५६. अलाव रामकुमार कृषक अंक ६ फरवरी १९९५

५७. जन संस्कृति मैनेजर पाण्डेय अंक १०, अप्रैल, जून १९८८

५८. समकालीन भारतीय साहित्य शानी अंक २८ अप्रैल, जून १९८७

५९. कलम मार्कडेय अंक १३

६०. साक्षात्कार् आग्नेय जून, २०००

६१. सापेक्ष महावीर अग्रवाल अंक ३० जनवरी, मार्च १९९४

६२ आजकल सुभाष सेंतिया अंक ९ जनवरी १९९९

६३. कल के लिए जयनारायण अंक १३ जनवरी, मार्च १९९६

६४	कबीर	भृगुनन्दन त्रिपाठी	अंक ४	नवम्बर १९८६
६५.	साक्षात्कार	आग्नेय		अप्रैल १९९८–२०००
६६.	वसुधा	धनंजय वर्मा	अंक ६	अप्रैल जून १९८६
६७.	वर्तमान	विभूति नारायणाराय	अंक ५	मई १९९९
६८.	कथादेश	हरिनारायण	अंक ३–४	मई,जून १९९८
६९.	कसौटी	नन्दकिशोर	अंक ५	
७०.	आजकल	प्रताप सिह	विष्ट अंक ४	अगस्त १९९५
७१.	हंस	राजेन्द्र यादव	अंक ४	नवम्बर १९८८
७२.	उत्तरगाथा	स्वयसाची	अंक १२	जनवरी, फरवरी, मार्च १९८३
७३.	पुरुष	रवीन्द्र रविकर	अंक १९	सितम्बर १९९३
७४.	साक्षात्कार	सोमदत्त	अंक ९८–१००	जनवरी, मार्च १९८८
७५.	वसुधा	धनंजय वर्मा	अंक १३–१४	१९८८
७६.	पलप्रतिपल	देश निर्मोही	अंक २२	अक्टूबर, दिसम्बर १९९२
७७.	साक्षात्कार	सोमदत्त	अंक७२–७३	नवम्बर, दिसम्बर १९९५
७८.	वर्तमान साहित्य	विभूतिनारायण राय	अंक ७–८	अप्रैल,मई संयुक्तांक १९९२
७९.	साक्षात्कार	आग्नेय	अंक २१०	जून १९९७
८०.	पूर्वग्रह	अशोक बाजपेयी	अंक ८४–८५–८६	जनवरी, जून १९८८
८१.	कसौटी	नन्द किशोर नवल	अंक ६	
८२.	हस	राजेन्द्र यादव	अंक ७	फरवरी २००१
८३	अभिप्राय	राजेन्द्र कुमार	अंक २४–२५	नवम्बर २०००
८४	प्रतिपल	देश निर्मोही	अंक १२	अक्टूबर, दिसम्बर १९९८
८५	अंतर्दृष्टि	विनोद दास	अंक १	१९९८
८६			अंक ३७	मार्च १९९०
८७	प्रयोजन	वीरेन्द्र यादव और राकेश	अंक ३	जुलाई, सितम्बर १९८७
८८.	साक्षात्कार्	सोमदत्त	अंक ६२–६४	जुलाई, सितम्बर १९८७
८९.	नया विकल्प	विजय बहादुर सिंह	अंक ७	१९८६
९०.	संवेदना	हरीशचन्द्र	अंक १	जनवरी १९९४
९१.	पूर्वग्रह	अशोक बाजपेयी	अंक ७५	जुलाई, अगस्त १९८६

९२.	कथा	मार्कण्डेय	अंक ६	जनवरी १९९९
९३.	वागर्थ	प्रभाकर श्रोत्रिय	अंक ३४	जनवरी १९९८
९४.	पूर्वग्रह	अशोक बाजपेयी	अंक ८३	नवम्बर, दिसम्बर १९८७
९५.	आलोचना	नामवर सिंह	अक ५६–५७	जनवरी,मार्च, अप्रैल,जून १९८१
९६.	वर्तमानसाहित्य	विभूतिनारायण राय	अंक १	अक्टूबर १९९०
९७.	कल के लिए	डॉ. जय नारायण	अंक ४–५	मार्च १९९४
९८.	वसुधा	कमला प्रसाद	अंक १	अक्टूबर १९९१
९९.	दस्तावेज	विश्वनाथ प्रसाद तिवारी	अंक ४	जुलाई, सितम्बर १९९३
१००.	कथ्यरूप	अनिल श्रीवास्तव	अंक १०	जुलाई,सितम्बर १९९१
१०१.	आलोचना	शिवदान सिंह चौहान	अंक २	जनवरी १९५२
१०२.	वसुधा	हरिशंकर परसाई	अंक ५	जनवरी, मार्च १९८६
१०३.	समकालीन	भारतीय साहित्य	अंक ५२	अप्रैल, जून १९९३

****